Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ed by Arya Samaj Foundation Chennai and eGa

JAN BHARTI

1963

G.K.V.

n Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

71304

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय
को सादर समर्पित,
निर्मल तालवार
२२.५.६४

70304

श्रद्धेय

आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

की

६२-वीं जन्म-तिथि की पुनीत स्मृति

के

अवसर पर परिषद की विनीत भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती का आगामी-अंक

निराला-अंक-भाग-२

लेखसूची

१. अजर निराला, अमर निराला — प्रो० विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

२. महाप्राण निराला — श्री रामप्रीत उपाध्याय

३. स्मृति-चिह्न — श्री 'अवस्थी'

४. निरालाजी — आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

५. 'यमुना के प्रति' — प्रो० निर्मल तालवार

६. 'बादल' और निराला — प्रो० कल्याणमल लोढ़ा

७. कलकत्ते में पत्रकार निराला — श्री रामप्रीत उपाध्याय

८. कुछ नवीन— निराला संबंधी कुछ शोध पूर्ण बातें

९. निराला साहित्य — श्री कृष्णाचार्य

१०. 'निराला' और 'रवीन्द्र' — श्री अवध प्रसाद वाजपेयी

११. गीतिका

इत्यादि

[नोट—निराला अँक भाग—१ की लेख-सूची पृष्ठ १७२ प
देखिये ।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

निराला-अंक

वर्ष १०   अंक ३ एवं ४   संवत् २०१६

महाप्राण निराला के प्रति

डॉ० हरीश

कविर्मनीषी कलाकार तुम !
तुम विराट पौरुष हिन्दी के
प्राणवान ! क्या सपना देखा
बना राजपथ पगडंडी को
खींच गए तुम लक्ष्मण-रेखा
गीतों की ज्योत्स्ना के नूपुर
हे चपला के चन्द्र हार तुम—कविर्मनीषी
हे शब्दों के शिल्पी ! तेरी
हर मूरत में प्राण प्रतिष्ठा
तुमने द्वार-द्वार को दे दी
स्वर्णिल संकल्पों की निष्ठा
अंधियारे के ज्योतिदूत कवि !
छायापथ से दुर्निवार तुम—कविर्मनीषी
ओ ! यौवन के प्रहरी ! तुमने
चिरकुमार सा लिखा काव्य है
प्यास, पीर, पुलकों में डूबा
गीतों का यह महाकाव्य है
जन-जन का जय लेखा खींचा
हे करुणा के चित्रकार तुम—कविर्मनीषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अनंत आचार्य युगंकर !
स्वर को शाश्वत गान दे गए
कर्णधार-राजर्षि ! देश को
विजय दान अभिमान दे गए
टूट जाय पर झुके नहीं जो
उस जीवन के महाज्वार तुम —कविर्मनीषी

सूर्य चन्द्र सी आलोकित है
ज्योति किरण तेरे मानस की
बहा गई अमृत मंदाकिनी
राशि-राशि सम्मोहन रस की
हे प्रज्ञा के आशुतोष कवि !
ओजस्वित स्वर के विहार तुम—कविर्मनीषी

गरल पिया तुमने कटुता का
अमृत बांटा संघर्षों में
अश्रपान करके यथार्थ को
तुमने बांधा आदर्शों में
हे वाणी के वरदपुत्र कवि !
अचल हिमाचल निर्विकार तुम—कविर्मनीषी

तेरे प्रण के अध्वर जग में
तेरे यश की वेद ऋचाएं
शक्तिवंत कविता के स्रष्टा !
दिग दिगंत में गूंजें गाएं
ध्वंसोन्मुख जीवन को दे दो
प्राण गीत हे काव्यकार तुम—कविर्मनीषी

एक किरण फिर से लौटा दो
गीतों के शतदल खिलजाएं
खुल जायें, भावों के बंधन
खोये कवि को पथ मिल जायें
हे निसर्ग के राग ! नमन लो
महाप्राण हे गीतिकार तुम—
कविर्मनीषी कलाकार तुम !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्राण निराला

एक संस्मरण

डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'

बहुत पहले की बात है जिस समय निरालाजी पुष्कल ख्याति प्राप्त कर रहे थे और हिन्दी काव्यजगत में उनका एक स्थान बन चुका था। उनकी कविताएँ सुप्रचलित हो चुकी थीं। एक दिवस उन्होंने मेरे यहाँ आने की कृपा की। मैं अपने बाहरी कमरे में तखत पर बैठा था, बरामदे में कमरे के द्वार पर पहुँच, निरालाजी रुक गए। मैं उस समय एक सद्य मनोगत भाव पर छन्द लिख रहा था, कदाचित दो पंक्तियां उसकी हो चुकी थीं और तृतीय पंक्ति के शब्द-संगठन का विधान कर रहा था, साथ-साथ निरालाजी को देख मैंने नमस्कार के साथ स्वागत करते हुए उन्हें अपने साथ आसनासीन होने का निवेदन किया, किन्तु निरालाजी ने उत्तर में नमस्कारादि न कहते हुए कहा यह—"इस सब औपचारिक व्यवहार से पूर्व मुझे लड़ाई की बात करनी है। और इसीलिए मैं आया हूं।" मैंने कहा—"बिना लड़े ही आपकी विजय स्वीकार करता हूं।" आग्रह करने पर वे आसनासीन हुए और बोले "और कोई बात इस समय न होगी, जिससे मेरा आवेश ठंडा हो जाये, पहले लड़ाई ही की बात है।" पूछने पर कि क्यों और क्या लड़ाई की बात है, उन्होंने कहा—"मैं आपको अपना सजातीय और आत्मीय मानता हूँ। अपने को आपके घर का मानता हूँ, क्या आप मुझे ऐसा नहीं मानते?" मेरे स्वीकार सूचक उत्तर देने के पश्चात उन्होंने फिर कहा—"यदि आप मुझे अपना समझते हैं और वस्तुतः समझते हैं तो आपने अब तक मेरे लिए क्यों नहीं कुछ लिखा? आपने रत्नाकर के उद्धवशतक और हरिऔध के रसकलश पर भूमिकाएं लिखीं। मैं क्या इनकी कोटि का कवि नहीं हूँ? न भी होऊं तो भी आपके लिए आपका होकर स्नेह सराहना का पात्र हूँ। मैं रवीन्द्र के समान ही कवीन्द्र हूँ। क्यों नहीं आप मुझे ऐसा मानते?" मेरे पूछने पर उन्होंने फिर कहा—"ये दो मुख्य बाते हैं जिनका स्पष्टीकरण आपको करना है। यही लड़ाई का कारण है, यदि आप स्पष्ट नहीं करते तो मुझसे लड़ाई होगी।" इस पर उत्तर में मैंने निवेदन किया—"निरालाजी आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न और उत्तर दोनों साथ ही साथ कर चुके। मेरे लिए उत्तर का स्थान और आवश्यकता नहीं रही। उन्होने पूछा—"यह कैसे ?" मैंने बताया "अभी आप मेरे साथ आत्मोयभाव रखने की बात कह चुके हैं, और मुझसे स्वीकार करवा चुके हैं, इसलिए अपनी अथवा अपने आत्मीय की प्रशंसा करने को समीचीन न समझ कर मैंने आपके लिए अब तक कुछ नहीं लिखा। रत्नाकर और हरिऔध मेरे आत्मीय नहीं, उन्होंने मुझ से अपनी पुस्तकों पर भूमिकाएं लिखने के लिए कहा—मैंने उन्हें अपने से वयोवृद्ध समझ स्वीकार किया, और भूमिकाएं लिखीं। आपकी सर्वत्र सराहना सुन कर प्रसन्न होना मुझे अधिक अभीष्ट है। साथ ही कदाचित आप मुझे बड़ा मानते हैं, तब तो और भी यह मेरे लिए उचित नहीं होगा।" इस पर निराला जी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—"मैं वस्तुतः भ्रम में था। आपमें आत्मीयता का भाव रखते हुए भी मैं भूल में रहा। आज स्थिति स्पष्ट हुई इस लिए क्षमा करें।" उस समय के पश्चात मैं स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि निरालाजी बराबर मुझे ज्येष्ठ समझते हुए सर्वदा समादर भाव रखते रहे। अपनी रुग्णावस्था में भी जब मैं उन्हें देखने गया तो वे उसी भाव से मुझ से मिले। और लगभग डेढ़-दो घण्टे तक विविध विषयों पर बात करते रहे, इस प्रकार मानो नितान्त रोगमुक्त हैं। इसलिए निराला के इस शुद्ध हृदय का और निश्चलता तथा स्पष्ट वादिता का मेरे हृदय में आज तक स्थान है। मैं निराला की कवि-प्रतिभा को उनके जीवन काल में बराबर अपने हृदय में चाहता और सराहता रहा। किन्तु कभी मैंने उसे कहीं विशेष रूप से स्पष्ट नहीं किया—आज भी यहाँ मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि निराला का काव्य हिन्दी संसार में बहुत ऊँचा स्थान रखता है, और वस्तुतः वह युगान्तर कारक रहा है। निराला में अपूर्व प्रतिभा थी। वे हिन्दी ससार में इसलिए अपनी कृतियों के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। यह मेरा विश्वास है।...

— ::*:: —

एक वाक्य में निराला जी के काव्य की व्याख्या करनी हो तो इस तरह हम कहेंगे—निराला हिन्दी काव्य के प्रथम दार्शनिक कवि और सचेत कलाकार हैं।

—आ० नन्द दुलारे वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुवन-व्यापिनी भुवन-मोहिनी आत्मा

डॉ० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

निराला जी से मेरा परिचय आज से ३४ वर्ष पुराना है। उनके निकट आने और उनका स्नेह पाने का सौभाग्य मुझे उस समय मिला था, जब मैं १३-१४ वर्ष का था। मेरे पूज्य पिताजी स्वर्गीय पं० मातादीन शुक्ल (भूतपूर्व 'माधुरी' संपादक) निराला जी के पुराने मित्र थे। हमारे गांव में निराला जी की दिवंगता पत्नी की ननिहाल थी और इस नाते उनका वहां आना-जाना बहुत शुरू से था। निराला जी की गता-पत्नी के सबसे बड़े मामा स्व० पं० जगन्नाथ प्रसाद जी मेरे प्रथम गुरू थे। उन्होंने मेरा पट्टिका-पूजन कराया था। वे सारे गांव में 'व्यास जी के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके स्वाभिमान, साधुता और अध्ययनशीलता के कारण सब लोग उनका बड़ा आदर करते थे। पिताजी से और उनसे निराला जी की प्रतिभा, फक्कड़पन और मल्लोचित आत्मशक्ति की चर्चा सुन-सुन कर मैं मन ही मन निराला जी के प्रति बड़ी श्रद्धा करने लगा था। सबसे पहले मैंने निराला जी की 'तुम और मैं' शीर्षक कविता कलकत्ता से प्रकाशित 'साहित्य प्रभाकर' नामक संकलन में पढ़ी थी, जिसे लोकमान्य के संपादक संचालक पंडित रामशंकर त्रिपाठी ने संपादित किया था। यह सन् १९२६ की बात है। मेरे पिता जी मध्य-प्रदेश में पत्रकारिता और अध्यापन-कार्य छोड़कर 'माधुरी' के संपादन-विभाग में आ चुके थे। मेरी अवस्था उस समय ११ वर्ष से अधिक न थी। कवि की इस सुन्दर कविता का अर्थ उस समय मैं पूरे तौर पर क्या समझ सकता था! पर उसकी कोमलकान्त पदावली, संगीत की लयमयता और जोर-जोर से गाकर पढ़ने पर उसका नाद-सौन्दर्य मुझे इतना भाया और मैंने उसे इतनी बार पढ़ा कि वह मुझे याद हो गई। उसका दार्शनिक अन्तरस्थ और अर्थ-गौरव तो मैं उस समय समझा, जब यूनिवर्सिटी में पढ़ते समय मैंने उसे एक हाईस्कूल की परीक्षा के छात्र को समझाने के लिए भली प्रकार तैयार किया। पर ११ वर्ष की अवस्था में भी उसका [पं]क्तियों को पढ़कर मैं झूमता रहता था :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम दिनकर के खर किरण जाल, मैं सरसिज की मुस्कान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूं पिछली पहचान ॥

* * *

तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा ।
तुम भव सागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा ॥

* * *

तुम आशा के मधुमास और मैं पिक कल-कूजन तान ।
तुम मदन पंचशर हस्त और मैं हूं मुग्धा अनजान ॥

* * *

मुझे याद है उन्हीं गर्मियों में मेरे फूफ़ा पं० देवदत्त मिश्र (एम. एल. ए. उत्तर प्रदेश) लखनऊ आये थे। एक दिन उनमें और पिता जी में तत्कालीन हिन्दी कविना के विषय में बात हो रही थी। मैंने बड़े गंभीर भाव से, जैसे, निराला जी की सारी कविताएं पढ़ चुका हूं, कहा, 'निराला जी की सबसे अच्छी कविता 'तुम और मैं' है' पिताजी ने कहा 'तुम क्या जानो निराला जी की कविताओं को। अपनी हैसियत देखो। बड़े-बड़े उन्हें नहीं समझ पाते। उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता 'यमुना के प्रति' और 'जूही की कली' है।'

फूफ़ा जी ने भी पिताजी की बात का समर्थन किया। मुझे उसी समय निराला जी की अन्य कविताओं की चाह हो गई। पर, मुझे वे कहां मिलतीं ? 'मतवाला' की पुरानी फाइलों का पाना मेरे जैसे बालक के लिए कहां संभव था ? 'माधुरी के परिवर्तन में जो पत्र-पत्रिकायें आती थीं उन्हें मैं प्रतिमास पढ़ता था। पर निराला जी की ये दोनों कविताएं मेरी दृष्टि में नहीं आईं। 'यमुना के प्रति' और 'जूही की कली' शीर्षक कवितायें मुझे उस समय पढ़ने को मिलीं जब, १९२९ में उनका 'परिमल' नामक संग्रह छप रहा था। निराला जी उन दिनों हमारे घर में ही रहते थे। उनके कमरे में जाकर उनकी सारी पुस्तकें उलटने, कागजपत्र देखने सुनने का अधिकार मुझे मिल चुका था।

* * *

निराला जी का दर्शन पहले-पहल मैंने १९२८ में किया। लखनऊ की बात है। शाम को मैं पिता जी के साथ अमोनाबाद की ओर जा रहा था। सामने से निराला जी दो-तीन साहित्यिकों के साथ चले आ रहे थे। पिताजी को देखते ही लिपट कर बोले—'कहां थे ? मैं सुधा-आफिस से आ रहा हूं।'

पिताजी उस दिन दफ्तर नहीं गये थे। लखनऊ आने के बाद उनसे निराला जी की यह पहली भेंट थी। मैं थोड़ा पीछे खड़ा हुआ सफेद कुर्ता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेद धोती और चप्पल पहने, शाम को हल्के नीले रंग का धूप का चश्मा लगाये, बड़े-बड़े बाल वाले इस नवयुग-प्रवर्तक कवि को अपने सामने देख रहा था जो नवयौवन के पथपर अग्रसर, मुझ जैसे असंख्य साहित्यिक रूचि रखने वाले किशोरों का 'हीरो' बन चुका था। निराला जी ने मेरी ओर देखा। मैंने उन्हें प्रणाम किया। पहली ही भेंट में मैं उनसे बहुत सी बातें करने का सुयोग पा गया। उनकी चालढाल, बोलचाल और हंसी के ठहाकों में विचित्र अलमस्ती थी। बात करते समय बीच-बीच में एक भेदभरी शून्यता, एक घनीभूत आत्म-विसंज्ञना उनकी आंखों में फैल जाती थी। विद्रोह के अवतार —साहित्य की परम्पराओं को तोड़ कर उन्हें नये रूप में गढ़ने वाले —धैर्य, साहस, त्याग और उदारता की मूर्ति ! वे मेरे सामने खड़े थे। हाथ में 'सुधा' की नयी प्रति थी जिसमें उनके द्वारा अनूदित बंगला के कवि गोविन्द दास की पदावली के कुछ पद छपे थे। पिता जी ने पूछा —'तुम्हारा सामान कहां है ?'

मुझे याद है दार्शनिक की-सी निरासक्तता के साथ उन्होंने कहा था 'बन्दे के पास सामान कहां ?' इतना कहकर वे बड़े जोर से हंस पड़े थे। उनके अट्टहास से सारा वातावरण जगमगा उठा था।

हम लोग बड़ी देर तक पार्क में बैठे रहे। निराला जी की बातचीत से मालूम हुआ कि वे गांव में थे, प्रकाशक से रुपये वसूल करने यहां आये थे। शीघ्र ही उनका कलकत्ता लौट जाने का विचार था। अनेक साहित्यिकों व पत्रकारों पर चर्चा होती रही। मैं बैठा सब सुनता रहा। बीच-बीच में अपनी राय देने की पुरानी आदत जोर मारती थी, पर मन मसोसकर रह जाता था। बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। इसके बाद निराला जी कुछ समय के लिए कलकत्ता जरूर लौट गये, पर उसके पहले वे हमारे घर आकर रहे और एक-दो लेख लिखकर 'माधुरी' और 'सुधा' में देते गये।

जहां तक मुझे स्मरण है, इसके बाद निराला जी का कार्यक्षेत्र कलकत्ता से बदलकर लखनऊ आ गया। कुछ समय तक हमारा घर उनका स्थाई निवास बना रहा। 'परिमल' की प्रेस-कापी वे तैयार कर रहे थे। स्फुट लेख और कवितायें भी लिखते थे। उनके अत्यन्त निकट आने और उनके स्नेहपूर्ण हृदय को परखने का अवसर मुझे अब मिला। मैंने उस समय तक कविता लिखना तो नहीं सीखा था, पर साहित्यक विषयों पर लेख लिखा करता था अपने कालेज की पत्रिका में छपे अपने दो-तीन लेख मैंने निरालाजी को दिखाये। निराला जी ने मेरी भाषा की शुद्धता और विषय की गम्भीरता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा कर दी। यही नहीं, कई बार बड़े साहित्यिकों के सामने कहा 'यह लड़का बड़ी अच्छी हिन्दी लिखा है।' निरालाजी के मधुर और संगीत में मँजे हुए कंठ से उनकी न जाने कितनी कविताएं सुनने का सुयोग मुझे घर में उठते-बैठते अनायास मिलता था। चंडीदास, विद्यापति और गोविन्द दास के पद, रवीन्द्रनाथ के गीत वे उठते-उठते गाया करते थे। पन्तजी की अनेक कविताएं उन्हें याद थीं, जिन्हें ये छायावादी कविता की कलात्मक सुधरता बताते हुए गा गाकर सुनाते रहते थे।

मुझे याद है, उन्हीं दिनों स्वर्गीय पं० कृष्ण बिहारी मिश्र ने अपने त्रैमासिक पत्र 'साहित्य समालोचक' का 'पद्माकर अंक' निकाला था। निरालाजी से उन्होंने पद्माकर की कविता पर लेख मांगा था। मुझे भी पद्माकर की कविताओं का बड़ा चाव था। उनके बहुत से घनाक्षरी-सवैये मुझे याद थे। निराला जी भी पद्माकर की भाषा और सौन्दर्य-चित्रणपर मुग्ध थे। मुझे यह देख कर आश्चर्य और गर्व भी हुआ कि मेरे अनेक प्रिय छंदों को अपने लेख में उधृत करते हुए निराला जी ने पद्माकर के सौन्दर्य-वर्णनों पर प्रकाश डाला।

* * *

मेरे काव्य संस्कारों के निर्माण में निरालाजी का हाथ है, यह मुझे बराबर लगता रहा है। उन्होंने मेरे जीवन के दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया है। उनका सबसे बड़ा गुण उनकी निर्भीकता और विचारों की स्वतन्त्रता है। मैं नहीं कह सकता कि मैं उनके गुणों को कहाँ तक अपना पाया हूँ। पर चेष्टा यही रही है कि मेरा सिर केवल वहीं झुकना चाहिये जहाँ ज्ञान, चरित्र और प्रेरणा का प्रकाश हो। समाज जिन्हें बड़ा मानता है जिन्हें ऊँचा कहकर आदर, मान, और गौरव देता है, उनके जीवन को निकट से देखकर अधिकतर उनसे घृणा हो जाती है। बनावट और आत्मछलना पर ही जैसे उनके जीवन की भित्ति होती है। इसके विपरीत निरालाजी का जीवन वेदान्ती संतत्व का जीवित उदाहरण था।

निराला जी अब लखनऊ में बस गए थे। महीनों हमारे घर पर रहे। 'परिमल' प्रकाशित हो गया। उसके प्रूफ निराला जी ने हमारे यहां रहते हुए देखे। उसकी भूमिका हमारे घर पर लिखी गई। उन दिनों हमारा घर साहित्य-चर्चा का केन्द्र हो रहा था। प्रत्येक समय नवीन और प्राचीन काव्य की आलोचना चलती रहती थी। 'परिमल' की सारी कविताएं मैंने प्रूफ में ही पढ़ डाली थीं। निराला जी की बहु-प्रशंसित कविता 'यमुना के प्रति' मैंने इन्हीं दिनों पढ़ी। समझ में न आने पर उनसे पूछ लेता था। वे बड़े प्रेम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ समझा देते थे। उनकी कविताओं में उस समय मुझे बड़ी क्लिष्टता लगती थी। जो क्लिष्ट न थीं वे भी अपनी अधकचरी समझ के कारण क्लिष्ट लगती थीं। पन्त जी का 'पल्लव' मैं इसके दो वर्ष पूर्व पूरा पढ़ चुका था। उसकी अधिकांश कविताओं में जो अर्थ की स्पष्टता और रसमयता थी—भावनाओं की निश्छलना की सरल अभिव्यक्ति थी, वह मुझे उस समय 'परिमल' की कविताओं में कम मिलती थी। इस बात को लेकर मैं कभी-कभी निराला जी से उलझ जाता था। आखिर क्यों उनकी कविता दिल पर चोट नहीं करती? क्यों उसमें अर्थ की ऐसी दुरूहता है? उसका अभिप्राय समझने में अपनी ओर से इतना प्रयत्न क्यों करना पड़ता है? आज मुझे अपनी वह कमी अपने में ही समझ में आती है। गेटे का यह वाक्य मुझे बराबर अपनी समझदारी की कमी का बोध देता है—"He who would reproach an author for obscurity should look into his own mind to see whether it is quite clear there. In the dusk the plainest writing is illegible."

निरालाजी की वात-बात में तीव्रता, मुखरता और उनके अखण्ड आत्म विश्वास के दर्शन होते थे। आत्मविश्वास उनकी जीवन-साधना का चेतनाधार था। आत्मविश्वास ही उनके निकट परमात्म विश्वास था। उन्होंने जीवन में इतनी विपत्तियां झेली थीं इतने दुख सहे थे कि उनका संघर्ष साहस और सहनशक्ति चरम सीमा पर पहुंच गए थे। उनकी कविता पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। निराला जी बीच-बीच में हमारे घर आते थे—रहते भी थे: उनका आना हमारे परिवार के लिए कोई असाधारण बात नहीं रह गई थी। पर उनके संपर्क में आने वाले उनके व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होते थे। उनका सत्संग, वार्तालाप और काव्य-चर्चा, कविता और कला के सम्बन्ध में उनके मौलिक विचारों के साथ उनका तीक्ष्ण मार्मिक विवेचन चलता ही रहता था। अपने व्यक्तिगत जीवन में वे उतने गंभीर नहीं हैं, जितने अपने साहित्य में। हास्य और व्यंग की मात्रा उनमें चोटी पर की थी। उनकी सूझें और उनकी युक्तियां सुन-सुनकर बड़ा आनन्द आता था। पर बात करते-करते बीच में एकाएक अपने में खो जाने की—आंखों में—मुखमण्डल पर आकर उसी दार्शनिक शून्यता के भर जाने की बात भी बराबर चलती रहती थी। आपके साथ घूमने चले जा रहे हैं—बात कर रहे हैं, एकाएक किसी ध्यान में डूब जायेंगे। मुझे बराबर लगता था कुछ दार्शनिक तथ्य हैं कुछ आलौकिक प्रकाश हैं, जो बराबर उनकी दृष्टि के सामने झिलमिलाते रहते थे। वे रह रह कर चिंतन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डुबकी में ओझल हो जाते थे। अपने जीवन में वे आदर्शवादी रहे हैं। उनका समस्त जीवन-दर्शन एक उच्च भावात्मक निस्संगता का, सुख दुख के ऊपर उठते रहने की मर्यादा पुरुषोत्तमता का आदर्श रहा है। दूसरे लोग आदर्शों को असुविधाजनक पाते ही छोड़ने लगते हैं निराला जी ने न केवल आदर्शों के प्रति अपनी आस्था नहीं खोई, वरन उन्होंने असफलताओं में भी अपने जीवन की निष्ठाओं और तन्मयताओं से उन्हें अनुप्राणित किया है। मैं बराबर देखता था, बीच-बीच में आलोचकों की कटुता उपहास-वृत्ति, उनकी कृतियों को पूरे मनोयोग और सहानुभूति के साथ बिना पढ़े ही उसपर फतवा दे डालने की प्रवृत्ति, उनके विरुद्ध विरोध संगठित करने की प्रचारक-वृत्ति कवि के हृदय को कष्ट देती थी। कभी कभी वे आपस की बातचीत में उत्तेजित भी हो उठते थे। पर वह क्षणिकहोता था। कुछ समय बाद फिर वही चित्त की शान्ति, प्रसन्नता, विवेक और अपने विश्वासों की शक्ति पर अटूट विश्वास! मनचाही नवीन सृष्टि की रूपरेखायें सजाने में फिर पहले जैसा ज्वलन्त उल्लास!

* * *

निराला जी हैवेट रोड पर एक होटल मे रहने लगे थे। मैं तब यूनिवर्सिटी में आ गया था। दिन भर हम लोगों का वहाँ जमघट लगा रहता था। रामरतन भटनागर (अब डाक्टर और सागर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक) गिरिशचन्द्र पन्त (पं० सुमित्रानन्दन पंत के भतीजे और उस समय के उदीयमान सुकवि) कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, स्वर्गीय बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' और उनके सुपुत्र स्वर्गीय बुद्धिभद्र दीक्षित, श्री उमाशंकर वाजपेयी "उमेश", श्री लक्ष्मी शंकर मिश्र "अरुण" प्रो० पुरुषोत्तम लाल भार्गव आदि उस समय के लखनऊ के उदीयमान और कवि-लेखक वहाँ जमा होते थे। निराला जी सबकी सुनते थे। सबके मनों का आदर करते थे और सभी की रचनाओं को पढ़कर या सुनकर उन्हें प्रोत्साहित करते थे। बीच-बीच में पं० सुमित्रानन्दन पन्त लखनऊ आकर हफ्तों अपने बड़े भाई साहब के यहां रहते थे। पन्त जी निराला जी से रोज ही मिलते थे। बराबर दोनों युग-प्रवर्तक कवियों में साहित्यिक वाद-विवाद और कविता, कला और संगीत सम्बन्धी मान्यताओं पर, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर बात-चीत होती थी। कभी-कभी घंटों वार्तालाप चलता था और हम लोग मुग्ध-मन बैठकर यह सब सुनते-गुनते रहते थे। बीच बीच में बोलने और अपनी राय देने की हमें पूर्ण स्वाधीनता थी। पर हम अधिकतर विद्यार्थी थे। तत्कालीन हिन्दी साहित्य और उसकी गति-विधि पर बातें होतीं-तुलसीदास, कालिदास और रवीन्द्रनाथ पर बातें होतीं-काव्य कला के नये पुराने रूपों पर विचार होता। पन्त जी के लिए निराला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी के मन में जो अथाह आदर स्नेह था उनकी कविताओं के लिए जो मान था, वह उनकी अनुपस्थिति में हम लोगों के सामने व्यक्त होता रहता था। पन्तजी की उपस्थिति में बहस की गर्मी ज्यादा रहती थी। पन्तजी को वे चाहे जो कहें, पर मजाल नहीं थीं कि पन्तजी की कविता की कोई दूसरा अप्रशंसात्मक आलोचना निराला जी के सामने कर सके।

जब वे हमारे घर पर आकर बैठते थे या इसके पहले रहते थे, तब पिताजी से भी उनकी गर्मागरम बहसें चलती थीं। अपनी कविता की खूबियों को स्वयं समझाते-समझाते वे कभी-कभी इतने डूब जाते थे कि दूसरे की बातें सुनने या उनकी ओर ध्यान देने की उनकी प्रवृत्ति ही न होती थी। पिताजी ब्रजभाषा की कविता और काव्य दर्शन के समर्थक थे। छायावाद की बहुत सी बातें उन्हें अच्छी न लगती थीं। पर वे साहित्य में नयी-नयी काव्य शैलियों और चित्रणप्रणालियों के समर्थक थे। 'सुधा' में जब पं० रामचन्द्र शुक्ल जी ने छायावाद और रहस्य-वाद का उपहास और विरोध करते हुए 'पाखण्ड प्रतिशोध' नाम की कविता लिखी थी, तब पिताजी ने 'सुधा' के दूसरे अंक में 'पाखंड परिच्छेद' के नाम से उन्हीं छन्दों में लिखकर शुक्लजी को उत्तर दिया था। उस समय के अनेक छायावादी और रहस्यवादी कवियों को आचार्य शुक्लजी के आक्षेप अच्छे न लगे थे। पिताजी की कविता पर हार्दिक प्रसन्नता उन सबने प्रकट की थी। स्वयं निराला जी ने कई बार पिताजी की उस कविता का अभिमान पूर्वक उल्लेख किया था। पर इतना सब होने पर भी निराला जी द्वारा बताई जानेवाली छायावाद की बहुत सी खूबियों से सहमत न थे। छायावादी कविता में जो रूढ़ता आती जा रही थी, वह उन्हें स्वीकार न थी। यह बात मैं १९३१-३३ के आस पास की कह रहा हूँ। साहित्य के इतिहास के पाठक जानते हैं कि उस समय छायावाद की परम्परा ह्रासोन्मुख हो चली थी। कवि सम्मेलन में जनता छायावादी कवियों के स्वर माधुर्य से मनोमुग्ध अवश्य होती थी पर उनके भावों को पकड़ न पाती थी। उनकी कविताओं की तुलना में कानपुर स्कूल के ठुके-पिटे सवैया और घनाक्षरी छन्दों में उसे अधिक रस मिलता था। पिताजी छायावाद की कोमलकान्त पदावली-व्यंजना का लालित्य पसंद करते थे। पर अत्यधिक स्वप्नशीलता और आकाशी बातों के स्थान पर उसमें जीवन की यथार्थ अनुभूतियों का संचय चाहते थे। उस समय देश की दशा को देखकर भी उन्हें कविता में पौरुष, विश्वास, दृढ़ता और कर्म की प्रेरणा की अधिक आवश्यकता अनुभव होती थी। निराला जी की कविताओं में भी उनकी सामाजिक-अनुभूतियों वाली और आशा का अर्घ्य आलोक लेकर चलने वाली दार्शनिक-प्रकाश से दीप्त कवितायें उन्हें अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय थीं। निरालाजी ब्रजभाषा को जीवित काव्य के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। अक्सर इस विषय में निरालाजी के मन से मेरी सहमति होती थी।

निरालाजी के साथ मैं इतना अधिक रहा हूं कि उनके सम्बन्ध में क्या लिखूं क्या न लिखूं! उनकी उदारता, मनकी दर्पमयी दृढ़ता, असंयमित रहन-सहन और आत्माभिमान के ऐसे-ऐसे सहज रूप मैंने देखे हैं, जो असाधारण हैं। उनके मन की निर्विकारता बिल्कुल उनकी थी। आपके साथ कड़े से कड़े विरोध और गरमागरमी-यहाँ तक कि बकायदा झगड़े! घन्टे दो घन्टे के बाद, वही तटस्थ, उदार दार्शनिक मन। कहीं कोई द्वेष नहीं, कोई कीना नहीं, कोई शिकायत नहीं। मन क्या है, गंगा के चौड़े पाटका बहता पानी है, जो केवल बहना जानता है, बहना ही जाता है। जैसे उनके प्राण स्वप्नलोक की मधुर झंकार केवल लहराना जानते थे और जानते थे अपनी आन्तरिक समत्वावस्था के सहज स्वाभाविक उत्तर। शान्ति के सहजसौंदर्य के साथ उनका मन एकाकार एकरस हो गया था। क्रोध में आकर उत्तेजित होकर भी वे कल्याणमय भावनाओं में रमे रहते थे। उनका खरे सोने जैसा प्रोज्ज्वल हृदय संसार में विरले को ही मिलता है। काव्य-कला साधना पर उनका अटूट विश्वास रहा। उसे ही उन्होंने जीवन का ध्येय माना।

आसक्तियां, विरक्तियां सबके जीवन में होती हैं, पर वे मनकी सात्विक उदात्त भावना में डूब जायं-सब अपने हो जायं, पराया कोई न रहे, इससे बड़ी मानवमन की परिणति और क्या होगी? संसार की सभी जानी-अनजानी दिशाओं के प्रवाह हृदय के लिए खुल पड़ें—जीवन की भाँति चित्रण की पटभूमि अधिकाधिक विस्तृत होती जाये, यह कवि के मन की मुक्ति है। निरालाजी जगत के मिथ्यात्व को मानते हुए भी जीवन की अविनाशी परम्परा और अमरता के गायक हैं। 'शैली' के शब्दों में, उनके कलात्मक हाथों ने जीवन की अस्थिरता का उपहास किया है और उनकी सजग चेतना ने बड़प्पन के गर्व को तोड़ा है। उनके जैसा गहरा आत्म-विश्वास और अन्तश्चेतना का दर्शन हिन्दी में पन्तजी की कविता को छोड़कर मुझे अन्य किसी कवि की कविता में नहीं मिला। उनकी सौन्दर्य-चेतना आत्मा व्यक्ति की अपेक्षा भावना से अधिक अनुप्राणित थी। मुक्ति और शान्ति की उर्ध्वमुखी वृत्तियों को लेकर वे चलते थे। उनकी कविताएं जीवन के संशयपूर्ण अशान्त क्षणों में शान्ति देती हैं। सौन्दर्य के पार्थिव रूप को हटाकर उसके बाह्य आवरण के भीतर छिपी रहने वाली आत्मिक-दिव्यता केवल दिव्यता का दर्शन उन्होंने किया। संसार के प्रत्येक बड़े कवि ने यही किया है और जीवन को सौन्दर्य-बोध विश्व-विवेक की क्षमता प्रदान की है। उनकी भुवन व्यापनी भुवन-मोहिनी आत्मा को मेरी यह असम्बद्ध श्रद्धाञ्जलि स्वीकार हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महाकवि निराला—स्मृतियों की छाया में'

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल

निराला जी के प्रथम दर्शनों का सौभाग्य अगस्त, ५४ में प्राप्त हुआ। 'लोक सेवा-आयोग' धार्मिक तथा अधार्मिक सभी प्रकार के तरूणों को तीर्थराज के दर्शन करा ही देता है। ऐसे ही प्रसंग में मुझे दर्शनों का अवसर मिला। किशोरावस्था में दो बार तीर्थराज के दर्शन कर चुका था, अतः दारागंज की गलियों से थोड़ा पूर्व-परिचय था। निराला जी सर्व-जन विदित व्यक्ति थे ही, अतः उनके स्थान तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उनका प्रौढ़ावस्था का चित्र 'अनामिका' में है, और श्मश्रु-युक्त चित्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे। कितने ही व्यक्तियों से डील डौल, आकृति, रहन-सहन, आचार-व्यवहार के बारे में सुनता रहा था, कुछ शब्द-चित्र पढ़ चुका था, अतः निराला जी की विराट् मूर्ति मेरी कल्पना में स्पष्ट थी। कुरता-तहमद पहने विशालकाय व्यक्ति, टहलते समय पीठ पर गुम्फित हाथ, लम्बे शीश-केश और दाढ़ी में ऋषि-आकृति, केसरी सा मुख, गजराज-सी गति—सारा व्यक्तित्व कह रहा था, मैं ही निराला हूँ, पूछने की आवश्यकता न थी।

प्रणाम करने के साथ उन्होंने जान लिया कि यह जन हमीं से मिलने आया है। बैठक में बुला ले गये। तखत पर आसन लगाकर बैठ गये, मैं सामने कुर्सी पर बैठ गया। कई प्रश्न किये-कहाँ से आये हैं? कैसे आये हैं? कब आये हैं?? 'अच्छा, अलीगढ़ में अमुक व्यक्ति रहते हैं, आप उन्हें जानते हैं? मैंने नकारात्मक उत्तर दिया। शायद उसकी सत्ता कवि-कल्पना में ही रही हो। 'मैं जब अलीगढ़ गया था, तो उन्हीं के यहाँ ठहरा था, वह मेरे मित्र हैं।' मैं चुप था। हिन्दी के एक सेवक के रूप में तीन वर्ष से अधिक अलीगढ़ में रह चुका था, पर, किसी साहित्य-प्रेमी से यह नहीं सुना था कि निरालाजी कभी अलीगढ़ पधारे हैं। शायद उन्होंने अपनी कल्पना में दो स्थानों को परस्पर स्थानान्तरित कर दिया था।

'आप कुछ लिखते हैं?

जी, हाँ, कभी-कभी कविता लिख लेता हूँ। इधर मैंने आधुनिक छन्दों का अध्ययन किया है और इस विषय पर एक निबन्ध लिखा है। आपके मुक्त छन्दों का विशेष अध्ययन किया है और उनके लक्षणों का निर्देश किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला जी गंभीर थे, पर प्रत्यक्ष था कि ध्यान सुनने की ही ओर है। शान्त गंभीर दृष्टि से कुछ भंगिम मुद्रा में बोले—'मुक्त छन्दों का अध्ययन किया है?' मेरी हालत कुछ ऐसी हो गयी, जैसी मौखिक परीक्षा देने के पहले किसी छात्र की हो जाती है। पर निराला जी ने वैसे प्रश्न नहीं किये। जिज्ञासु की शिथिल उत्कण्ठ मुद्रा से पूछा-'मुक्त छन्दों में भी नियम हैं? 'जी, हाँ'।

फिर वह स्वयं भी कह उठे-'मुक्त छन्दों में नियम हैं। कुछ रुककर फिर बोले नियम तो हैं। सोचने लगे और कई मिनट मौन रहे। मैं भी मौन एकटक उनकी मुद्रा निहारता रहा।

'कवि होना सरल है, पर, विद्वान होना कठिन है'। वे अचानक बोले। कविता करना भी बहुत कठिन कर्म है।' मैंने तात्कालिक सहज-संभवी उत्तर दिया। पर, लगा, मैंने उनके वाक्य का अर्थ गलत सन्दर्भ में निकाला है और उस पर की गयी टिप्पणी भी सामान्य ही है।

कई मिनट तक वे मौन रहे, फिर आत्म-संलाप करते रहे। मैं चुपचाप कुछ कौतूहल की दृष्टि से उन्हें देखता रहा, पूर्व जिज्ञासा और औत्सुक्य को प्रत्यक्ष रूप से शमित करता रहा। निराला जी ने अचानक कहा—'अच्छा अब आप जाइये, नहीं तो शाम हो जायेगी फिर मिलेंगे।'

* * *

निरालाजी के विषय में मैं नयी धारणा बनाकर निकला। लोगों से सुना था, उनकी स्मृति ठीक नहीं है और वे विक्षित से हो गये हैं। पर प्रत्यक्षतः ऐसा कुछ नहीं लगा।

कलाकार को थोड़ी छूट तो देनी हो पड़ेगी। उसकी असामन्यताओं को किसी सीमा तक सामान्य रूप में स्वीकार करना ही पड़ेगा। एक ही व्यक्ति से, हम रचना में असामान्यता की आशा करें, और व्यवहार में सामान्यता की आशा करें, तो यह एक किस्म की ज्यादती है।

प्रत्येक कलाकार असामान्य या पागल है कोई उपेक्षणीय मात्रा में कोई सह्य मात्रा में और कोई चिन्त्य मात्रा में। वह कलाकार क्या 'जो थोड़ा पागल न हो। वह सुन्दरी क्या जो थोड़ा मानिनी न हो। वह विद्वान क्या, जो कभी उग्र न हो। यदि कोई अपवाद मिले तो उसे भगवान का अवतार कहिये।

मैंने अनूप शर्मा को निराला जी की भेंट का हाल बताया। 'निराला जी का लोग पागल कहते हैं, पर, मैंने कोई ऐसी बात नहीं देखी।'

अनूप जी ने कहा मैं पहले से ही कहता रहा हूँ निराला जी पागल नहीं हैं निराला को पागल कहने वाले पागल हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बार निराला जी के दर्शन सन् '५६ में करने गया। गलती यह हो गयी कि रिक्शा उनकी गली से इतनी दूर पर रुका कि उसे निराला जी आसानी से देख सकते थे। मुझे पैदल जाना चाहिये था। गङ्गा-तट पर यों भी दर्शनार्थी वाहन का प्रयोग नहीं करते हैं और कुछ भक्त तो नंगे-पैर ही चलते हैं निराला जी गली में चहलकदमी कर रहे थे।

प्रणाम के उत्तर में उन्होंने यह प्रश्न किया-'यह रिक्शा आपका 'वेट' कर रहा हैं?' 'जी, हाँ।' 'कल आप यहीं हैं?' जी, हाँ।'

अच्छा तो अब आप जाइये, कल आइयेगा। शाम' चार और पाँच के बीच' मेरे मिलने का समय है।'

दर्शन मिलने की प्रसन्नता थी और झिड़की मिलने का थोड़ा खेद' यद्यपि मानसिक दृष्टि से' इससे भी बुरी स्थिति को झेलने के लिए तैयार होकर आया था। उनके आकस्मिक रोष के विषय में' मैं अनेक दार्शनिक, सामाजिक और सांस्कारिक संभव हेतुओं की कल्पना करने लगा, जिनका बहुत अर्थ तो न था, पर, मन को तो कुछ सोचना ही था।

दूसरे दिन मैं बस पर दारागंज गया और बस-स्टैंड से पैदल ही चला। मैंने यह भी सोचा था कि शायद वह अंगरेजी वेश-भूषा को भी नापसन्द करें, पर, जाड़ों के दिन थे, अतः उसमें परिवर्तन असुविधाजनक था। विलम्ब के भय से कुछ पहले ही पहुँच गया, पर, वह 'मुहूर्त बहुत अच्छा नहीं सिद्ध हुआ।'

'कहाँ से आये हैं?'

'नैनीताल से।'

'क्या करते हैं?'

'गवर्नमेंट कॉलेज में अध्यापक हूँ।'

निराला जी की मुद्रा तन गयी, तो फिर नहीं सुधरी।

'आप गवर्नमेंट कॉलेज में हैं। आपको गवर्नमेण्ट ने भेजा है? आप मेरे बारे में पता लगाने आये हैं?'

'नहीं पण्डित जी, मैं तो आपके दर्शनों के लिए आया हूँ।' मुझे गवर्नमेंट ने नहीं भेजा है। मैं स्वयं ही आया हूँ।'

'आप गलत कहते हैं। आप मेरी हालत जाँचने आये हैं। आपने मेरे दर्शन तो कर लिये, अब आप जा सकते हैं।'

मैं इतना हयादार नहीं हूँ कि एक ही डाँट में भग आता। बैठा रहा। कुछ भय तो लग रहा था फिर भी आश्वस्त था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला जी अंगरेज़ी और बगला में आत्म संलाप करते रहे। कुछ शब्द सुनायी भी पड़ जाते थे।

मैं कुशल क्षेम के प्रश्न पूछना चाहता था, पर उन्होंने प्रश्नों पर ध्यान नहीं दिया। उन्हें जो ग़लत-फ़हमी हो गयी थी, उसकी सफ़ाई देना बेकार ही था। मैं १५-२० मिनट चुपचाप बैठा रहा। कुछ जिज्ञासा और खेद से निराला जी की ओर देखता रहा। निराला जी के मन में क्षोभ और रोष का अन्धड़ उठ रहा था जिसमें होठ पत्ते की तरह काँप रहे थे, शब्द टपक कर गिर रहे थे, और मुखमण्डल का गगन अरुणिम हो रहा था, फिर भी हिमवान अचल था। कुछ समय में अन्तरिक्ष निर्मल और शान्त हुआ। उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। 'अब, आप जाइये'। सामान्य औपचारिकता का ध्यान करके मैंने आज्ञा मानना उचित समझा।

मैं सोच रहा था कि भूमिका बाँधने में ही गड़बड़ी हो गयी। पर, महाकवि का यह भी तो एक पक्ष है और उसके दर्शन करना भी इष्ट ही है।

जनवरी सन्' ५७ में फिर उनके दर्शनों का अवसर मिला। इस बार मैं अधिक सतर्क था कि पिछली प्रतिक्रिया की आवृत्ति न हो। इसके लिए पूरी मानसिक तैयारी कर ली थी।

'कहाँ से आये हैं?'

'सीतापुर से आया हूँ। पं० बलभद्र प्रसाद दीक्षित 'पढीस' जी का आपको 'ध्यान होगा' अम्बरपुर के निवासी। 'हाँ ध्यान है।'

'मैं भी अम्बरपुर का निवासी हूँ'।

(गोमती और सरायन के संगम के समीप स्थित अम्बरपुर मेरे पूज्य पिता और पितामह की जन्मभूमि और पुण्य भूमि है। यहीं के निवासी 'पढ़ीस' जी आधुनिक अवधी कविता के प्रवर्त्तक थे। उनकी खड़ी बोली की कविता पुस्तक 'हर हर महादेव' की भूमिका निराला जी ने लिखी थी। वस्तुतः इसी पुस्तक से मैंने निराला जी का नाम जाना था। सन् ३३-३४ में जब प्राइमरी स्कूल का छात्र था। ये निराला कौन है? जिससे काका ने हर-हर महादेव की भूमिका लिखायी है? उत्तर में मेरे परिवार के एक भाई ने निराला जी का प्रशंसात्मक परिचय दिया था पर मैं उन्हें बड़ा कवि मानने का तैयार नहीं हुआ क्योंकि उनकी कोई कविता मेरी पाठ्य पुस्तक में नहीं थी)।

इस बार का परिचय खूब जमा। निराला जी ने बड़ी आत्मीयता से से बात की। 'पढ़ीस जी' के पुत्रों का समाचार पूछा। इसक्षेत्र का निराला जी को ज्ञान था क्योंकि लखनऊ में रहते हुए इधर कई बार पिकनिक की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीपस्थ ऐतिहासिक ग्राम मणिपुर (मनवाँ) का प्रभावती' उपन्यास में वर्णन भी किया है। इसी प्रसंग में पैसिया, ग्राम का नाम भी आया और मैंने कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह जी की चर्चा को तथा उनको कवित्व शक्ति और विद्वता की प्रशंसा की तो निराला जी ने भी समर्थन में कहा-बहुत अच्छे विद्वान् पुरुष हैं।

निरालाजी ने मेरे बारे में कई प्रश्न किये। 'क्या करते हैं?' 'अध्यापक हूँ।' पिछली आवृत्ति की आशङ्का से सतर्क होकर संक्षिप्त उत्तर दे रहा था।

'कुछ लिखते हैं?' 'जी, हाँ।'

'कविता करते हैं?' 'जी, हाँ।'

लगातार एकरूप और संक्षिप्त उत्तर सुनकर वह मुस्करा उठे। थोड़ा गम्भीर होकर आत्म-संलाप में कहा—'यह भद्र पुरुष है।'

मैं प्रसन्न हुआ कि इस बार खूब रंग जम रहा है, ऐसी आशा नहीं थी।

इसी बीच एक महिला चाय का एक प्याला रख गयीं। निरालाजी कुछ असमंजस में पड़े, गंभीर होकर आत्म-संलाप करने लगे। स्टूल पर रखा प्याला ठंडा होता रहा। मैं चुप था। सहसा बोले—'लीजिये, चाय पीजिये'।

'पण्डितजी, आप पीजिये। मैं पी चुका हूँ।' 'अच्छा' कहकर ठंडी चाय तीन-चार घूँटों में पी गये।

इस बार मैंने चलने की आज्ञा मांगी। उन्होंने कहा—'मैं भी चल रहा हूँ। पाठकजी के यहाँ जाना है।' दाहिनी ओर खूँटी पर खद्दर का कुरता टँगा था। तखत से उठे, कुरता पहना, हाथ में डंडा सँभाला और नंगे-पैर तहमत लपेटे हुए चल पड़े। मैं भी उनके गन्तव्य तक साथ गया। बन्द दरवाज़े पर डंडा मारा। 'पाठकजी हैं?' 'नहीं हैं, कहीं गये हैं।' उत्तर आया। निरालाजी ने मुझ से कहा—'नहीं हैं, बाहर गये हैं, चलो चलें।' इस सरल स्पष्टीकरण पर मैं मन ही मन मुस्काया। 'मेन रोड' आने पर उन्होंने आज्ञा दी. 'अच्छा अब आप जाइये।'

इस बार मैं बहुत प्रसन्न था। इतनी आत्मीयता से निरालाजी से फिर कभी बात करने का अवसर नहीं मिला।

[४]

इसी वर्ष फिर उनके दर्शनों का अवसर मिला। इस भेंट में सबसे अधिक बौद्धिक चर्चा भी हुई और सब से अधिक फटकार भी मिली।

इस बार निरालाजी सिर्फ़ अंगरेज़ी में बात कर रहे थे. यह नयी बात देखी। मनःस्थिति ठीक देखकर मैंने अपना विस्तृत परिचय दिया। उन्होंने डिगरियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी पूछीं। मुझे संस्कृत में एम. ए. जानकर संस्कृत में बात करने लगे। यह भी नयी बात थी। स्कूल जीवन में उन्होंने संस्कृत में एक शिखरिणी छन्द की रचना की थी, उसे मैंने कहीं पढ़ा था। पर, वे संस्कृत में भी बोलते हैं, यह नहीं जानता था। मुक्त-छन्द का प्रभाव उनकी संस्कृत भाषा पर भी था। उन्होंने संस्कृत-निष्ठ हिन्दी बहुत लिखी है, उस दिन मैं उनकी हिन्दी-निष्ठ संस्कृत सुन रहा था। वे संस्कृत में कर्ता, कर्म, क्रिया सभी प्रयोगों में निःसंकोच हिन्दी संज्ञाओं और धातुओं का उपयोग कर रहे थे पर भाषा-प्रवाह की गति मन्द नहीं पड़ती थी। पता नहीं उनका संस्कृत भाषण किसी अन्य व्यक्ति को सुनने को मिला है या नहीं, पर इस विषय में मैं भाग्यशाली हूँ। वे अंगरेजी शब्दों का भी संस्कृत में प्रयोग करते थे। उन्होंने बताया 'अब मैं हिन्दी नहीं बोलता, अंगरेजी बोलता हूँ और संस्कृत भी।' मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने बताया—'मैं लगभग दो हज़ार पृष्ठ हिन्दी गद्य और पद्य लिख चुका हूँ। इतना मेरे जीवन के लिए पर्याप्त है। अधिक नहीं लिखना चाहता और अब मैंने हिन्दी को छोड़ दिया है। मैं अंगरेजी ही पढ़ता हूँ और अंगरेजी ही बोलता हूँ। आजकल 'शेक्सपिअर-ग्रन्थावली' पढ़ रहा हूं और पुस्तक की ओर इशारा किया। 'बहुत बड़ा नाटककार है।'

मैंने पूछा - 'कालिदास और शेक्सपिअर में कौन अच्छा लगा?'

"अभिज्ञान शाकुन्तल मुझे प्रिय है। दोनों ही अच्छे नाटककार हैं।"

कुछ और कहना चाहते थे, जाने क्यों एकदम रुक गये। शायद, वह इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे।

'पण्डितजी, आजकल और क्या पढ़ रहे हैं?' शायद किसी की हिम्मत ऐसा पूछने की न होती, पर बौद्धिक संतुलन ठीक देखकर मैंने ऐसा प्रश्न कर दिया था।

आजकल 'हॉयर मैथमेटिक्स' पढ़ रहा हूं।

मैंने सोचा, काश, ये आरम्भिक अरिथमेटिक् पढ़ लेते, तो इतना कष्ट न पाते पर, उसे ही नहीं पढ़ा।

मैंने एक अवाञ्छित प्रश्न पूछा—'आप स्वयं पढ़ रहे हैं या किसी से पढ़ रहे हैं?'

'एक यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर पढ़ाने आते हैं।'

मैंने कहा – 'उमर खैयाम भी गणित का पण्डित था।'

वे बोल उठे, 'मैथ्मेटिक्स' मेरा भी प्रिय विषय है। आजकल मैं ज्योतिष का भी अध्ययन कर रहा हूं।' वे आले से पञ्चाङ्ग उठाकर पलटने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आपने लिखना बन्द कर दिया है, सिर्फ़ पढ़ते ही हैं ?' मैंने पूछा।

'नहीं इधर मैंने गीत लिखे हैं। उर्दू में गज़लें लिखीं हैं। मैं पर्शिअन में भी लिखता हूं।'

मुझे कुछ कौतूहल और कुछ आश्चर्य हुआ। मैंने बड़ी ढिठाई से प्रार्थना की, 'कोई अपनी फ़ारसी की गज़ल सुनाइये।' वे रंचमात्र भी रूष्ट नहीं हुए, बल्कि मुस्करा उठे। फ़ारसी की एक पंक्ति तीन बार पढ़ी, और चुप हो गये।

महाकवि थोड़ी देर तक अंगरेजी में बोलते रहे, कुछ समझ में नहीं आया, क्या प्रसंग है। फिर गरजते सिंह की मुद्रा में बोले—

'तुम डाक्टर हो ? मेरा लड़का रामकृष्ण भी डाक्टर है, तुम जानते हो ?' 'जी हाँ'।

'वह भी प्रोफ़ेसर है, यह तुम जानते हो ?,। 'जी हाँ, पता है।'

'क्या पता है! तुमने किस यूनीवर्सिटी से डाक्टरेट किया है ?' 'जी, लखनऊ से'।

'आजकल लखनऊ यूनीवर्सिटी का कौन वाइस चाँसलर है ?' 'डॉ० राधाकमल मुखर्जी'

'डॉ० राधाकमल मुखर्जी ; हमसे बात कर सकते हैं ? बुलाओ उनको।'

'जी, आप से वह बात नहीं कर सकते।'

'बात नहीं कर सकते, तो क्यों वाइस चाँसलर हैं ?'

'जी, आपके सामने कोई वाइस चांसलर बात नहीं कर सकता।'

'हमारे बराबर कोई अंगरेजी बोल सकता है ?'

'जी आपके बराबर कोई अंगरेज़ी नहीं बोल सकता है।'

निराला जी अंगरेज़ी में क्या भाषण देने लगे, मैंने ध्यान नहीं दिया। भाषण रोक कर निराला जी ने अंगरेज़ी में ही पूछा—

'आप किसलिए यहाँ आये हैं ?'

मैं झट हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। 'आपके दर्शन करने आया था, अब आज्ञा दीजिये!' उन्होंने अंगरेज़ी में कहा—हाँ, अब आप जा सकते हैं।'

[५]

दिसम्बर, ५८ में भारतीय-हिन्दी-परिषद् का अधिवेशन इलाहाबाद में था। इस बीच अलीगढ़ के मित्रों के साथ संगम स्नान और निराला जी के दर्शन का प्रोग्राम बना। स्नान के बाद रेती में चलते हुए मैंने डॉ० मनोहरलाल गौड़ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'अगर निरालाजी गुस्से में मारने दौड़े, तो बचने का यह···नुस्खा है। इसमें शर्माजी सहायक बन सकते हैं।'

'शुक्लजी, क्या नुस्खा बता रहे हैं? मैं सब सुन रहा हूं।' शर्मा जी ने पीछे से कहा। वह सेक्टो प्लान' जनता के हित में था. इसलिए सार्वजनिक कर दिया गया। कार्यान्वयन-पद्धति पर कुछ संशोधन भी आये, और हंसते हँसते रेती का रास्ता कट गया।

* * * *

निरालाजी के दर्शनार्थ—डॉ० हरवंशलाल शर्मा, डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल, 'वीमेन्स कॉलेज' की एक अध्यापिका, मनोहरलाल गौड़, प्रकाशक पं० बदरीप्रसाद शर्मा, एक सेठ जो, और मैं—सभी पहुँचे। थोड़ी देर में डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित आ गये।

निरालाजी ने बड़ी प्रसन्नता से बातचीत की: क्रमशः सभी का परिचय पूछा। अध्यापिकाजी के संस्कृत एम. ए. बताये जाने पर, निरालाजी ने पूछ ही तो लिया, 'आप संस्कृत बोल सकती हैं?' शायद निरालाजी का संस्कृत में 'कुछ' बोलने का मन था। कई लोग संरक्षण-भाव से एक साथ बोल उठे, 'संस्कृत नहीं बोल सकतीं।' झूठे भी कोई 'हाँ' कर देता, तो निरालाजी का सस्कृत-भाषण सुनने को मिल जाता।

निरालाजी 'मूड' में थे। बीच-बीच में अवधी भी बोलते थे।

दीक्षितजी से कहा—'तुमका त हम कलिया बनाय क खवावा रहै। यादि हइ?' यह 'सम्बद्ध स्मृति' अच्छी थी; और इस पर बड़ी हंसी चलती रही।

'कलिया' अवधी में गोश्त को कहते हैं। 'कलिया', 'सालिकराम' और 'सोमदेव' की आराधना से निगुण-साहित्य' समझने में बड़ा बल मिलता है।

उस दिन के स्नेह-वार्तालाप में मैं केवल दर्शक ही रहा। और, निरालाजी के यही अन्तिम दर्शन थे।

[६]

इस वर्ष मार्च '६२ में श्रीमती शुक्ल का अनुगामी बनकर इलाहाबाद गया था। उन्होंने संगम-स्नान का प्रोग्राम बनाया। शायद, वह मानती हैं कि गंगा-स्नान का 'लोक-सेवा-आयोग' पर तत्काल प्रभाव पड़ता है। मुझे भी संगम-स्नान के पुण्य के अतिरिक्त बहुत से लाभ सहज ही प्राप्त हो गये।

दारागंज से किले की ओर, गंगा की समानान्तर सड़क पर चलते हुए सड़क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76304 76304
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गंगा की कछ़ान के बीच, रेलवे पुल के आगे, निरालाजी की चिता लगभग छः महीने बीतने पर भी सुरक्षित थी। पास के दूकानदारों ने उनकी चिता का अंगुलि-निर्देश किया और महाप्रयाण का आंखों देखा हाल बताते रहे। मैंने निरालाजी के व्यक्तित्व को प्रणाम किया और कुछ पंक्तियां श्रद्धाञ्जलि रूप में पढ़ीं, जो थोड़े परिवर्तन के बाद इस प्रकार हैं—

"भारती के लोक का नरेन्द्र सूर्य-कान्त यहाँ ;
देख लो, अनन्तता में चेतना समोता है।
सुन्दरी उषा के करों द्वारा ओस-बिन्दुओं से ;
गङ्गाकी तटी में अभिषेक नित्य होता है ॥
आता है वरुण-दूत मेघ वायु वाहन से ;
देव-अभिनन्दना में चरण भिगोता है।
धीरे चलो, पग-ध्वनि सुनके विकल होगा ;
लोक से विरक्त हो निराला यहाँ सोता है ॥"

सोच रहा था, आगामी बरसात में यह क्षार-कण भी सुर-सरिता में विलीन हो जायेंगे। यदि हिन्दी के लोग निरालाजी के केवल 'वाचिक भक्त' न होते, तो यहाँ अब तक विशाल स्मारक बन गया होना। अन्त में, महाकवि निरालाजी के परम मित्र महाकवि अनूपशर्मा की इन पंक्तियों से मन को सन्तोष दिया—

ठीक है समाधि के सदन बनवाना नहीं,
स्मारक निधन का चिता ही एक चाहिये।

(हरिश्चन्द्र घाट, 'सुमनाञ्जलि')

76304
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला जी का अनगढ़ व्यक्तित्व

डॉ० बालाप्रसाद मिश्र

बात सन् १९४० की है ; स्थान था लखनऊ। बचपन से ही 'भारत की विधवा' सुन रक्खी थी और उसकी दो एक पंक्तियाँ कानों में गूँजा करती थीं। प्रबल इच्छा थी कविवर से साक्षात्कार करने की। किन्तु यह भी सुन रक्खा था कि उनके व्यक्तित्व में कठोरता का प्राबल्य है अतः उनसे मिलने की इच्छा होते हुये भी दूर ही रह रहा था। एक दिन दो साहित्यिक मित्रों के आग्रह तथा हिम्मत दिलाने से जाने का निश्चय किया और तीसरे पहर ही त्रिपाठीजी के यहाँ जा धमका।

उन दिनों वे एक छोटे से मकान की छत पर दो कमरों में रहते थे। उनके साथ रहते थे उनके सुपुत्र। कमरे में एक खिड़की थी और खिड़की से सटी हुई एक छोटी सी मेज। फ़र्श पर दरी के बदले तितर बितर कागज, समाचार पत्रिकाओं के पन्ने और पत्र पड़े थे। मानों महीनों से झाड़ू भी न पड़ी हो। एक किनारे एक चारपाई थी, जिसपर कवि सम्राट लेटे थे। हम लोगों के आने का समाचार पाकर वे उठे और अभिवादन इत्यादि के पहले ही पुत्र को चाय बनाने का आदेश देकर चारपाई पर ही बैठ गये। उनका लम्बा चौड़ा सुगठित बदन, घुँघराले बाल, मुड़ी हुई मूंछे और गोरा रंग, उन्हें दूर ही से सौ में एक मानवरत्न बनाता था। परिचय की आवश्यकता नहीं थी। वे थे एक विशेष पुरुष, एक महान व्यक्ति। लेकिन, हाँ उन्हें देख कर कवि कहना कठिन था, वे मालूम होते थे अखाड़े के एक नागा। पहिन भी रक्खा था एक तहमद। वे थे पहलवान।

परिचय पाने पर उन्होंने मुझ से केवल दो बातें पूछीं। 'आप यहाँ कब से आये हैं?' 'आप कान्य-कुब्ज हैं?' शेष वह स्वयं ही बोलते रहे, उन्होंने मुझे बोलने का अवसर ही नहीं दिया। और बोलना भी क्या? उन्हें समाज से बड़ी शिकायत थी। "एक कलाकार के लिये हिन्दी भाषा-भाषियों में कोई स्थान नहीं है। बंगाल को देखिये, टैगोर को एक देवता बना रक्खा है। यदि मेरे पास पैसा होता, तो मैं टैगोर से कम नहीं होता।"

डरते-डरते मैंने प्रार्थना की कि 'भारत की विधवा' सुनने की मेरी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा है। वे बोले 'विधवा या सधवा' क्या वह तो मेरी बहुत पुरानी कविता है, आजकल तो मैं 'चतरी चमार' में जुटा हूँ। कविता से पेट नहीं भरता। देखिये न हमलोगों को खाना ही कितना मिलता है। चाय पीकर कलेजा जलाते रहते हैं। हाँ, आप तो अंग्रेजी पढ़ाते हैं, उसका ('भारत की विधवा' का) अनुवाद क्यों नहीं करते ?' इतने में चाय आ गई और बातचीत का क्रम टूट गया।

जब फिर कुछ सुन पड़ा तो वही शिकायत। कविता में कुछ नहीं रक्खा है। कवि-सम्मेलनों में भी अजब पार्टी-बन्दी है। सोहनलाल श्री नारायण चतुर्वेदी दोनों अजब हैं। मैं तो अब जाता ही नहीं, इतना कह कर वह चील की तरह झपटे फर्श पर और जिन्हें मैंने फटे पुराने कागज समझा था उसी रद्दी में से एक पत्र निकाल लाये। मानों उसे वहाँ जानबूझ कर रख दिया हो। लगे कहने 'कल ही तो यह पत्र आया है, मुझे कलकत्ते बुला रहे हैं, फस्ट क्लास का किराया देकर……मैं जाऊँगा नहीं।'

बातों बातों में समय निकल गया। निराला जी उपनिषदों से चलकर दुलारे लालजी की नई पत्नी तक किसी भी विषय पर बोल सकते थे। उनका वाक्य-विन्यास और शब्दचयन किसी सामाजिक बन्धन में नहीं बँधा था। अनवरत शब्दों की धारा बहती रही। हममें से किसी ने उठने की आज्ञा माँगी। वे "मैं भी चल रहा हूँ", कह कर साथ हो लिये। हाँ, चलने के पहिले सफेद खद्दर की धोती बंगाली ढंग से पहन ली, कुरता गले में डाल लिया और "लोफर" टाइप जूते पैरों में। एक बड़ी छड़ी हाथ में लेकर, अपने बालों को सोते से उठे हुए शेर की तरह झटके से सीधा कर वह वाक्वीर हम लोगों के साथ हो लिया। अमीनाबाद की तस्वीरों वाली गली में पहुँच कर सभी ने रबड़ी खाई और उन्हें खिलाई। फिर उनसे विदा ली। बिना किसी प्रकार के धन्यवाद इत्यादि दिये ही कविवर ने चारबाग की ओर अपने पैर बढ़ाये।

आज उनका शक्तिशाली व्यक्तित्व हमारे बीच नहीं है, किन्तु जिस किसी को भी उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उन्हें भूल नहीं सकता। हीरा था वह, यद्यपि अनछिला हुआ ! उसके व्यक्तित्व के सामने डॉ० जानसन भी फीके पड़ जाते।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला का मानसिक विक्षेप तथा उसके कारण

श्री रमेशचन्द्र मेहरा

१. संघर्षमय जीवन :— यद्यपि निरालाजी को जीवन के आरंभ से ही संघर्षों का सामना करना पड़ा था, परन्तु तरुणावस्था में उन्होंने इन संघर्षों की परवाह नहीं की और विपरीत परिस्थितियों के रहते हुए भी निरन्तर शक्ति, सौंदर्य और आह्लाद से भरी काव्य-रचनाएं प्रस्तुत करते रहे। कविता के क्षेत्र में सन् १९३६ तक की उनकी कविता की मुख्य चेतना उल्लासमयी है। यदि हम उनके गद्य को देखें तो उपन्यासों में उनकी अप्सरा (१९३१), अलका (१९३३), प्रभावती (१९३६) और निरूपमा (१९३६) कृतियाँ पूर्ण स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। इसके पश्चात् उनकी उपन्यास-रचना में नयी प्रवृतियां दिखाई देने लगती हैं। 'कुल्लीभाट' (१९३९) 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१९४१), और 'चमेली' (१९४१) की अधूरी रचना में यद्यपि हास्य के पुट भी हैं, परन्तु इन सभी रचनाओं के केन्द्र में सामाजिक व्यंग्य और जीवन की कुरूपता का निर्देश प्रधान हो गया है। उनके अन्य दो अधूरे उपन्यास 'चोटी की पकड़' (१९४६) और 'काले कारनामे' (१९५०) तो स्पष्ट रीति से उनकी अस्वस्थ मनोदशा का परिचय देते हैं। इसी प्रकार उनकी छोटी कहानियों में भी उनकी आदर्शवादी भावधारा सन् १९३७ तक काम करती रही। इसके पश्चात् उनकी कहानियाँ व्यंग्यात्मक हो चलीं। कहा जा सकता है कि इस प्रकार के परिवर्तन तो किसी भी लेखक या कवि में स्वाभाविक रीति से हो सकते हैं। परन्तु यहाँ हम निरालाजी की जीवनी के उन अंशों को देना चाहते हैं जिनमें यह प्रकट होना है कि यह परिवर्तन स्वतः निराला के व्यक्तित्व में होनेवाले परिवर्तन की प्रतिक्रिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९२७ के आसपास 'मतवाला' का संपादन कार्य छोड़ कर निरालाजी कुछ दिनों तक अपने गांव गढ़ाकोला (जिला उन्नाव) में रहने लगे थे। इस समय तक उनकी एक भी उल्लेखनीय पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी और अर्थागम का कोई साधन न था। इनके दायित्व में इनका अपना परिवार, एक पुत्र और एक कन्या तो थी ही, इनके कई भतीजे और भतीजियां भी थीं, जिनका भरण-पोषण ये ही करते थे। गांव पर खेती-पाती की कोई ग्रामीण व्यवस्था भी न थी। फलतः निरालाजी लखनऊ की गङ्गा-पुस्तक-माला प्रकाशन संस्था के संपर्क में आये। इसी पुस्तकमाला से 'सुधा' पत्रिका भी प्रकाशित होती थी। उसके लिये लेख, कविताएं लिखने लगे, परन्तु इस माध्यम से उनकी आय इतनी अल्प थी कि गृहस्थी का काम चलना कठिन था। इसीलिये सन १९३०-३१ में वे लखनऊ आकर रहने लगे और 'सुधा' पत्रिका के संपादकीय कार्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास और कहानियाँ लिखना आरंभ किया। कविता और लेखों से जो काम नहीं चल सकता था, वह अब संपादकीय धंधे और उपन्यास लेखन से थोड़ा-थोड़ा चलने लगा। पर आर्थिक कठिनाइयाँ अब भी दूर न हुईं। निरालाजी के स्वभाव में मांगने की वृत्ति रंचमात्र भी नहीं रही है। अतएव जो कुछ मिल जाता था उसी से संतोष करना पड़ता था। उनकी उदारता उन्हें बाध्य करती थी, कि वे अपने प्रकाशकों से भी अधिक पैसा न मांगे, क्यों कि गंगा-पुस्तक-माला को छोड़कर उनके अन्य प्रकाशक भी अत्यंत साधारण स्थिति के व्यक्ति थे; गंगा-पुस्तक-माला का व्यवसाय यद्यपि बड़ा था, पर जितना काम निरालाजी उसके लिये करते थे, वह अधिक न था और उसी के अनुपात में उन्हें द्रव्य भी कम मिलता था। फिर निरालाजी में स्वाभिमान की वृत्ति भी इतनी प्रमुख रही है कि वे किसी की एक बात सुननेवाले न थे। 'सुधा' के सम्पादकीय कार्य में यद्यपि उन्हें यथेष्ट स्वतन्त्रता रहती थी, पर वे अपने मालिक को अपना मित्र समझकर ही व्यवहार करते थे। इस मैत्री में दूसरे पक्ष से यदि लेशमात्र भी असम्मान का भाव दिखाई दिया, तो निरालाजी के लिये वह असहनीय था। इन्हीं कारणों से निरालाजी अधिक दिनों तक 'सुधा' का सम्पादकीय कार्य न कर सके।

सन् १९३२ में उन्हें फिर कलकत्ते का बुलावा आया। 'रंगीला' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला गया। पर यह पत्र भी कुछ ही दिन चल पाया अथवा यों कहें कि निरालाजी का संपर्क इस पत्र से कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही महीनों का रहा। सन् '३३ के पश्चात् निरालाजी फिर कुछ वर्ष लखनऊ में रहे, परंतु इस दौर में उन्होंने कहीं नौकरी नहीं की। किसी संस्था से संपर्क नहीं स्थापित किया। साहित्यिक लेखन के बल पर ही वे लखनऊ का अपना खर्च चलाते रहे। परन्तु उनके यहाँ मेहमानों की कमी न रहती थी। कोई न कोई आया ही करता था। निरालाजी अपना ध्यान कम रखते थे, अतिथियों का अधिक। अच्छी से अच्छी खातिर में पैसे तो लगते ही थे। पैसे आते कहां से? इमी समय उनका लड़का श्री रामकृष्ण त्रिपाठी भी संगीत की शिक्षा के लिये लखनऊ के 'भात खंडे महाविद्यालय' में अध्ययन करने लगा था। उसका व्यय भी निरालाजी को वहन करना पड़ता था।

२. पुत्री का निधन : परिवर्तित मनोभावना :—सन् १९३५ के आसपास उनकी एकमात्र पुत्री सरोज का बड़ी कारुणिक परिस्थितियों में निधन हो गया! 'सरोज-स्मृति' कविता में निरालाजी ने उस घटना को लेकर मर्मस्पर्शी उद्गार व्यक्त किये हैं। इसी समय से उनकी मनोदशा में परिवर्तन आने लगा। लखनऊ का लवाजमा उन्हें छोड़ देना पड़ा और तब से वे प्रायः अनिकेतन ही हो गये। कुछ दिन वे उन्नाव युगमंदिर में सुमित्रा कुमारी सिन्हा तथा उनके पति चौधरी साहब के साथ रहे।

सन् १९४१-४२ में निरालाजी एक वर्ष तक पण्डित वाजपेयीजी के साथ रहे। इसके पहले भी वे काशी के नवाबगंज मुहल्ले में कुछ समय तक रहे थे। 'गीतिका' के अनेक गीत यहीं लिखे गये थे। इस अवधि में निरालाजी की व्यक्तिगत मनोदशा विकार सूचना देने लगी थी। वे अकारण ही एक-ब-एक हँस पड़ते थे। कारण पूछने पर कोई उत्तर नहीं देते थे। कभी कभी अपने आप से भी बातें करने लगते थे और अपने आप ही प्रश्न करते और उत्तर भी दे देते थे। आरंभ में वे बड़े संकोच के साथ कहते थे कि उनका रवीन्द्रनाथ से इतने दिनों का घनिष्ट संबन्ध है। वे उन्ही के घराने के हैं। परन्तु जब उनके इस कथन का प्रतिवाद किया जाता था, तब वे चुप हो जाते थे। स्पष्ट है कि १९३६ से '४२ तक का समय निरालाजी के व्यक्तिगत असंतुलन और विक्षेप का पहला चरण था।

३. विक्षेप की स्थिति : इसमें संदेह नहीं कि सन् '४१ के पश्चात् निरालाजी की मानसिक दशा और भी चिन्ताजनक होती गई। वास्तविकता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर एक काल्पनिक स्थिति में अपनेको डालकर व्यवहार करने और बरतने की वृत्ति बढ़ती गई है। पहले रवीन्द्रनाथ से जो पारिवारिक संबंध की धारणा बनी थी, वह आगे चलकर अन्य क्षेत्रों के लोगों से भी बनती गई। उदाहरण के लिये शारीरिक बल में वे गामा से बढ़कर हैं, उसे पराजित कर चुके हैं। राजनीतिक भूमिका पर उनका मिलन और वार्तालाप चर्चिल अथवा अष्टम एडवर्ड आदि से होता रहा है। ऐसी अतिकल्पनायें (Fantacies) धीरे धीरे जड़ पकड़ती गई हैं। सन् '४७ में जब काशी में बड़े पैमानेपर उनकी जयंती मनाई जा रही थी, २-३ हजार जन-समूह के सामने उन्होंने 'अद्वितीय विक्टोरिया क्रास' के प्राप्त करने की जो चर्चा की थी, उससे यह स्पष्ट होता है कि आपस की गोष्ठी या मंडली में ही नहीं, सार्वजनिक रूप में भी वे अपनी विश्रृंखल मनोवृत्तियों का इजहार करने लगे थे। इसके पश्चात निरालाजी की विक्षेप की स्थिति और भी उग्र हुई और उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र और आत्तिथेय उन्नाव के प्रतिष्ठित नागरिक श्री चौधरी महोदय से जो दुर्व्यव्यवहार किया था, वह घटना साहित्यिकों से अविदित नहीं है।

सन् '५० के आसपास निरालाजी प्रयाग में रहने लगे और अपने अंतिम समय तक नहीं रहे। इस अवधि में उनकी मनोदशा के बहुत से वर्णन पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। कुछ लोगोंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि निराला जी की मानसिक स्थिति एकदम स्वस्थ है और उसमें विकार देखने वाले स्वयं विकृत बुद्धि के हैं। कभी कभी उनके वक्तव्यों को, जो वास्तविक रूप में निरे निरर्थक हैं, कुछ लोगों ने गंभीर प्रतीक-आशय देकर अथवा आध्यात्मिक भूमिका पर ले जाकर समझाने की चेष्टाएं की हैं। पर इस प्रकार की टीकाएं निरालाजी का तो कोई उपकार करती नहीं। सत्यन्वेषण में भी बाधा डालती हैं। उनको अंतिम समय तक की दशा में उनको मन से निर्लिप्त बताना अथवा उनके किसी भी कार्य में रंचमात्र भी स्थिति न देखना निरी भ्रांति है। जब निरालाजी अपने वश में नहीं थे, जब उनकी सजग चेतना, उनकी अंतश्चेतना आक्रांत हो रही थी, तब उनके कार्य में किसी उचित या अनुचित को ढूंढ़ना ही एक मिथ्या प्रयास है।

यहाँ एक दृष्टांन्त जो हमें अपने गुरुदेव पंडित वाजपेयीजी से प्राप्त हुआ है, उपस्थित करना अनुचित न होगा। पंडितजी निरालाजी के अत्यन्त निकटस्थ साथियों में रहे हैं और दोनों की अभिन्नता अशंकनीय रही है। निरालाजी ने पंडितजी पर एक निबंध लिखा था, जो 'चाबुक' नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी पुस्तक में बाद को प्रकाशित भी हुआ था। इससे दोनों के संबंधों का पूरा पता लगता है। पर सन् १९५६-५७ में जब 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से पंडितजी की स्वर्ण-जयंती मनाई जा रही थी, काशी से कई साहित्यिक उन्हें प्रयाग से काशी ले जाने आये थे; पर उस समय अन्य तथाकथित तर्कों के साथ जो विशेष तर्क देकर उन्होंने जाने से इनकार किया था, यह था कि मैं तभी जाऊँगा जब महादेवी जी भी मेरे साथ चलें। निराश होकर लोगो को लौट आना पड़ा। इस घटना से यह सूचित होता है कि इतने अटूट आत्मीय संबंधों को भी निरालाजी विस्मृत कर चुके थे। यही नहीं जिस तर्क की उन्होने शरण ली, उसमें बौद्धिक तत्व का नितान्त अभाव है।

यह उदाहरण केवल इस आशय से दिया जा रहा है कि अपने अंतिम वर्षों में भी निरालाजी को स्वस्थ और आध्यात्मिक समझने वाले लोग वास्तविक तथ्यों से कितने दूर जा पड़े हैं। बीमारी अंततः एक बीमारी है। उसे स्वीकार न करना, बल्कि उसे एक उदात्त या दिव्य-स्थिति घोषित करना बीमारी के परिहार का तो साधन नहीं है। किसी वस्तु को उसकी वास्तविक दृष्टि से ही देखना होगा। आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष स्थिति का परोक्ष समाधान बताना निरा अवैज्ञानिक है।

सन् '६० की कुछ घटनाओं से यह भी सूचित होता है कि निरालाजी उस समय निराला से भिन्न पूर्णतः एक नये व्यक्तित्व का अपने में प्रत्यय करने लगे थे। वे कई बार यह कहते देखे गये हैं कि निराला या सूर्यकान्त त्रिपाठी प्रयाग में नहीं हैं। वे अन्यत्र चले गये हैं, और जो व्यक्ति वहां उपस्थित है उसके पास केवल अपनी चाभी दे गये हैं। इस प्रकार की चेतना परिणति विक्षेप की बहुत गहरी अवस्था की सूचक है। परन्तु उनके विक्षेप की इस परिणति के सामान्य निरूपण के साथ हम उनकी इस बात को नहीं भूल सकते कि निरालाजी की स्मृति अंत तक पैनी रही है और वे वर्षों पहले घटित हुई घटनाओं, अनेकानेक व्यक्तियों से वर्षों पहले हुई भेटों और उस समय की वार्ताओं को भी ज्यों-का-त्यों स्मरण रखते थे। यही नहीं जब वे प्रशांत साहित्यिक चर्चा छोड़कर ताश खेलने लगते थे, तब एक सधे खिलाड़ी का सारा कौशल इनमें दिखाई देता था।

देखा यह गया है कि अत्यंत घनिष्ठ मित्रों और परिचितों से मिलनेपर निरालाजी कुछ क्षण तो अत्यंत प्रसन्न और भावान्वित दिखाई पड़ते थे पर कुछ क्षणों के बाद उनकी स्थिति बदल जाती थी और फिर वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल्पनिक जगत में प्रवेश कर जाते थे। अपरिचितों या अल्प परिचितों के समक्ष इस प्रकार की प्रतिक्रिया कम होती थी। खासकर वे लोग जो साहित्यिक नहीं थे, या जिनसे निरालाजी का कोई पुराना परिचय नहीं था, निरालाजी को मानसिक उत्तेजना नहीं देते थे। कदाचित ऐसे लोगों के साथ ही वे ताश खेला करते थे।

पूछा जा सकता है कि एक ओर निरालाकी यह विक्षेपावस्था और दूसरी ओर उनकी अस्खलित स्मृति-शक्ति, उनकी मार्मिक काव्य-रचना और उनका जमकर ताश खेलना, किस प्रकार एक संबंध सूत्र से जोड़े जा सकते हैं? साधारणतः ये वस्तुएं एक साथ नहीं रहा करतीं। इस प्रश्न के उत्तर में हम अपना यही अनुमान प्रकट कर सकते हैं कि निराला के संपूर्ण व्यक्तित्व पर विक्षेप-दशा का आंशिक प्रभाव ही पड़ा है। उनका एक अंश, उनकी कुछ घड़ियां निश्चय ही विक्षेप की घड़ियां थीं। परन्तु उनकी दिनचर्या में स्वस्थ क्षण भी आते थे। विशेषकर उनकी काव्य रचना में, उस स्थिति के चिह्न मिलते हैं जिसमें वे उत्तेजना के पश्चात शांति की स्थिति में आते थे। यह शांति की स्थिति जब जब निर्बाध होती तब तब वे एकदम निर्दोष कविताएं लिखते थे पर ज्यों ही कुछ बाधा आती उनकी कविता में उसके चिह्न दिखाई देने लगते। संभवतः साधारण व्यक्तियों के विक्षेप से निराला का विक्षेप भिन्न प्रकार का है। निरालाजी एक निसर्गजात कवि और कलाकार भी रहे हैं अतः अन्तिम समय तक उनकी काव्य और कला-चेतना बरकरार रही। उसमें अवरोध अवश्य आते थे। कदाचित इसीलिये उनकी साहित्यिक रचना अन्तिम दिनों में न्यून हो गई थी, परन्तु वह कलाचेतना निष्क्रिय नहीं हुई। अन्तिम समय तक वे उत्तम कलात्मक सृष्टियां करते रहे। यद्यपि बाद में उन्होंने लम्बे मजमून नहीं लिखे। कल्पना-छवियों का वह संग्रथन और प्रवाह परवर्ती काल में नहीं दिखा सके जो अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में अबाध रूप से दिखाते रहे। परन्तु छोटी-छोटी काव्य-कृतियां वे अपने अन्तिम समय तक प्रस्तुत करते रहे, जिनमें तात्कालिक आत्मवेदना निहित रहती थी। उनमें से अनेक अपनी छोटी सीमा में अतिशय मार्मिक हैं। जब कभी वे बड़े आख्यानों को लेकर चले हैं, आधी दूर से ही लौट आये हैं या थक कर बैठ गये हैं, जैसे उनके अन्तिम उपन्यास 'काले कारनामे' और 'चोटी की पकड़' हैं। अन्तिम कुछ वर्षों में तो उन्होंने आत्मवेदना की सूचना देनेवाले आत्मनिवेदन की भावना से ओतप्रोत छोटे-छोटे गीतों की ही रचना की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां हम दो ऐसे उदाहरण देरहे हैं, जिनसे निरालाजी की अनियंत्रित मनोदशा का पता लगता है। उनके कुछ गीतों में ऐसी पंक्तियां आई हैं, जो उनके मानसिक विक्षेप का परिणाम हैं। कुछ स्थलों पर उनकी विक्षिप्त मनःस्थिति का प्रभाव दिखाई देता है। 'आराधना' में प्रकाशित उनकी एक रचना देखिये—

आज मन पावन हुआ है
जेठ में सावन हुआ है।
अभी तक दृग बन्द थे ये,
खुले उर के छंद थे ये,
सजल होकर बन्द थे ये,
राम अहिरावण हुआ है।
कटा था जो पटा रहकर,
फटा था जो सटा रहकर,
डटा था जो हटा रहकर
अचल था, धावन हुआ है।

आरंभ की ६ पंक्तियां तो सुन्दर भाव-व्यंजना करती हैं। यद्यपि इनमें भी 'खुले डर के छंद सजल होकर बंद' जैसे प्रयोग नेत्रों के लिये विशेष समीचीन नहीं हैं पर अन्तिम चार पंक्तियाँ 'कटा था जो पटा रहकर···धावन हुआ है' किसी भी प्रकार निराला के शैली-सौन्दर्य की परिचायक नहीं है। बल्कि ये विक्षितावस्था की ही सूचक हैं।

जुलाई ६१ में उनका एक गीत पटना को 'ज्योत्स्ना' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। गीत इस प्रका है—

फूलों के दीपों की माला
यह उकसे बालों की बाला।
बेसुध की हाला की हाला,
काली की लिपि, गोरी काला।
डाली के माली की पाली
जीवन-जीवन के वन वाली
जीने की मरने की ताली,
कानों के कानों की ताला।
चितवन के चीते की बसकर
गोरे तारों से कस-कस कर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसकर अंतर तर भर-मर कर,
कर दी कुल आले से आला।

यहां 'काली की लिपि गोरी काला' 'कानों के कानों की ताला' आदि प्रयोग इतने दूरान्वयी हैं कि उनका अर्थ कोई कुछ भी लगा सकता है। इसी प्रकार कर दी कुछ आले से आला' में 'आले में अलि से आला' का फारसी प्रयोग उत्तमसे उत्तम मे अर्थ में आया है।

यहां हम इन दो गीतों का उद्धरण इस आशय से भी दे रहे हैं, जिससे यह ज्ञान हो सके कि वे अपनी अंतिम वर्षों की गीत-रचना में मानसिक व्याधि से निरंतर संघर्ष करते रहे। अनेकशः विजयी होकर कहीं-कहीं पराजित भी हुये हैं। जो लोग निरालाजी के इस मानसिक विक्षेप से परिचित नहीं है, या उसे स्वीकार नहीं करना चाहते, और उनके अंतिम दिनों की रचनाओं को पूर्णतः दिव्य-भूमिका पर ले जाकर देखना चाहते हैं, वे निराला के मानसिक संघर्ष और उनकी संकट कालीन विजिगीषा के प्रति अन्याय करते हैं।

४. वाह्य परिस्थितियों के दबाव :—निरालाजी के व्यक्तित्व में क्रमशः आनेवाली भिन्नता और विशेष कर उनके मानसिक विक्षेप की स्थितियों को देख लेने के पश्चात् अब हम उन स्थितियों को देखना चाहते हैं, जिनके प्रभाव से निराला के व्यक्तित्व में इस प्रकार का परिवर्तन घटित हुआ था। विद्रोह और सौम्यता का, क्रांति और शान्ति का स्वरूप निरालाजी के व्यक्तित्व को अन्तर्विरोधात्मक रूपों में सामने लाता है। अन्तर्विरोधों में सामंजस्य की स्थिति है तथा उस सामंजस्य की विकट आस्था पर निरालाजी विद्यमान रहे हैं। यहाँ हम सामान्य रूप से सम्पूर्ण भारतीय परिस्थितियों में होने वाले उन परिवर्तनों का उल्लेख करना चाहते हैं, जिन्होंने निराला के व्यक्तित्व को नये मोड़ दिये थे और उन्हें क्रमशः अवसाद और विक्षेप की स्थिति में ला पहुँचाया था। व्यक्तित्व की पहचान उन्हें सन् १९१५ से होने लगी की जब कि निरालाजी किशोरावस्था को पारकर तरुण आयु में प्रवेश करने लगे थे और जब उन्हें अपने दायित्व को समझने का बोध हो चला था। उनके सभी संस्मरण-लेखकों ने और स्वयं उन्होंने भी इस बात की सूचना दी थी कि उनका आरंभिक समय काफी अच्छी परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। यद्यपि उनके पिता बंगाल के महिषादल स्टेट में एक साधारण कर्मचारी थे, पर निरालाजी का साहचर्य विशिष्ट व्यक्तियों से हो गया था और वे उनके साथ रहकर अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। फुटबाल वे खेलने में ये काफी निपुण थे और राजदरबार में उपलब्ध अन्य सुविधाओं का भी वे उपयोग करते रहते थे। पिता के निधन (सन् १९१८-१९) के पश्चात् उनको स्टेट में ही नौकरी करने को बाध्य होना पड़ा। परन्तु जिस स्थान पर वे राजपरिवार के लोगों के समकक्ष होकर रहे थे, वहीं उनका अनुचर होकर रहना स्वभावतः उनके अनुकूल न था। फिर निरालाजी की प्रकृति में महत्वाकांक्षा के बीच भी बड़ी मात्रा में मौजूद थे। फलतः उन्हें महिषादल की नौकरी छोड़ देनी पड़ी। कलकत्ता जाकर स्वतंत्र लेखन का कार्य अपनाना पड़ा। सन् १९२३ के आसपास आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से रामकृष्ण आश्रम से प्रकाशित होनेवाले दार्शनिक, आध्यात्मिक 'समन्वय' पत्र के सम्पादक का कार्य मिल गया।

कुछ ही समय के पश्चात् कलकत्ता से 'मतवाला' नामक साहित्यिक पत्र प्रकाशित हुआ और निरालाजी उसके संपादकीय विभाग में आगये। सन् २४ से २७ तक निरालाजी की कविताएं 'मतवाला' में प्रकाशित होती रहीं। इसे ही हम उनकी काव्य रचना का स्वर्णकाल कह सकते हैं। 'मतवाला' में रहते हुये निरालाजी को किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाइयां नहीं थीं। उनकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति 'मतवाला' के संचालक श्री महादेव प्रसाद सेठ किया करते थे। वास्तविक स्वच्छन्दतावादी प्रकृति की अधिकांश रचनाएं इन्हीं दिनों प्रकाशित हुई थीं। इस समय निरालाजी युवावस्था के शीर्षबिंदु पर थे और उनकी प्रतिभा अपने पूर्ण उन्मेष में थी। सन '२८ के पश्चात् भारतीय परिस्थितियों में और विशेषकर निरालाजी के साथ एक बड़ा परिवर्तन घटित हुआ। वे कलकत्ता से बीमार होकर घर चले आये और कुछ दिनों तक काशी में रहे। इसके पहले ही निरालाजी पर और भी पारिवारिक संकट आचुके थे। उनकी पत्नी तथा अन्य कुटुंबियों का प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् आनेवाली महामारी (सन् १९१८ १९) में एक साथ निधन हो गया था। इस मानसिक आघात से वे निकल ही रहे थे कि वे कलकत्ता में एक संक्रामक रोग से आक्रांत हो गये। निरालाजी की जीवन परिस्थितियाँ अधिक गंभीर हो चली थीं। सन् १९३० के पश्चात् विश्वव्यापी सस्ती का दौर आया। जिसका सबसे बुरा परिणाम यह पड़ा कि लोगों को नौकरियों की कठिनाई हुई। यद्यपि चीजें सस्ती थीं पर किसान और मध्यवर्ग के लोगों को ख़रीदने के साधन नहीं रहे थे। बेरोज़गारी अपनी चरम सीमा तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैल गई थी। सन् १९३३ के पश्चात् इस परिस्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ, फिर भी व्यवसाय मंदा ही बना रहा। कोई ऐसा साप्ताहिक या मासिक पत्र नहीं था, जिसमें निरालाजी को पूरे समय का कार्य मिल सकता। फलतः इन वर्षों में निरालाजी को कठिन आर्थिक परिस्थतियों का सामना करना पड़ा, जिसने उनकी मानसिक स्थिति को काफी विचलित और क्षुब्ध कर दिया। निरालाजी में सामाजिक परिस्थिति के प्रति व्यंग का भाव इसी समय उत्पन्न हुआ था और उनके काव्य में दिखाई देनेवाली यथार्थोन्मुखी प्रवृत्तियां इसी समय उदय होने लगी थीं। साम्राज्यवादी अनुशासन के पहिये में निरंतर घूमता हुआ भारत का भविष्य, भाग्य के सहारे प्रयत्न तो कर रहा था, कर्मशक्ति के अभाव में किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहा था। अंग्रेजी शासन के प्रति उदारवादियों के सद्भावों और सुधारों की मांगें तथा मध्यवर्ग की मानसिक दासता से जो पंगुता आगयी थी, उसने जनमानस की आत्मा को केवल चिंतित ही नहीं किया था, वरन् अतीतोन्मुखी आदर्श पर भाग्यवादी भी बना दिया था। गांधीजी से सन् १९३६ में निरालाजी की भेंट और इंटरव्यू की कटुस्थिति ; फिर हिन्दी-हिन्दुस्तानी के मामले में गांधीजी तथा नेहरूजी से उनकी बातचीत और फ़ैजाबाद के अधिवेशन में राजनीति बनाम साहित्य का उनका विवाद इसी समय की घटनायें हैं। सामान्यतः यह प्रश्न अपने में महत्वपूर्ण तो थे पर निरालाजी के लिये उनकी इतनी बड़ी अहमियत कदाचित इसलिये थी कि उनकी व्यक्तिगत परिस्थितियां उन्हें कठोर यथार्थ के अधिक समीप ले जा रही थीं। सन् १९३६ के पश्चात् जब हिन्दी में 'प्रगतिवादी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ तब निरालाजी ने मार्क्सवाद की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारणा को कभी नहीं अपनाया। परंतु वे अपने लेखों और कविताओं में सामाजिक वैषम्य और विडंबनाओं को अधिकाधिक चित्रित करने लगे। निरालाजी के इस दृष्टि-परिवर्तन में भी उनके परवर्ती काव्य के वैचारिक आधार पाये जाते हैं, यद्यपि यह कोई सैद्धांतिक परिवर्तन नहीं था। यह मूलतः भावात्मक परिवर्तन ही था। निरालाजी के काव्य साहित्य में इसका अपना महत्व है।

सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ हो जाने पर श्रमजीवी लेखकों के लिये और भी कठिन परिस्थिति आ गई। वस्तुओं के मूल्य क्रमशः बढ़ने लगे और बेकार बैठना किसी के लिये संभव न रहा। जो स्वतन्त्र लेखक कोई नियमित वेतन नहीं पाते थे, नौकरी करने को बाध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये। जिस मात्रा में वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हुई थी, उस मात्रा में आय में वृद्धि तो हुई ही नहीं। अतएव लेखकों के लिये युद्ध की परिस्थिति और भी जटिल हो गयी। इसी युद्धकाल में निरालाजी ने 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया परन्तु तब उनकी मनःस्थिति इतनी विशृंखल हो चुकी थी कि ये उपन्यास पूरे नहीं किये जा सके।

द्वितीय महायुद्ध के कुछ आगे बढ़ने पर सन् '४२ के आसपास जब सभी चीजें बहुत महँगी हो गईं, लेखकों और कवियों ने अपने प्रकाशकों से रायल्टी नियमित रूप से मांगनी शुरू की। इसके पहले न तो पुस्तक का कापीराइट ही किसी बड़े मूल्य पर बिकता था और न रायल्टी के सम्बन्ध में लेखकों को कोई बड़ी तत्परता रहती थी। पर युद्धकाल में यह तत्परता बहुत बढ़ गई और लोग एक-एक पैसे का हिसाब रखने लगे। पर निरालाजी के प्रकाशक आरंभ से ही उनकी पुस्तकों के कापीराइट खरीदे बैठे थे। उस समय तक का कापीराइट कानून भी लेखकों के पक्ष में अत्यधिक अनुदार था। किसी लेखक को कापी-राइट बेचने के बाद अनिर्दिष्ट समय तक एक भी पैसा पाने का हक न था। कापी-राइट की इस गड़बड़ी के कारण ही निरालाजी को अधिक कष्ट रहने लगा और इसी कारण वे अपना स्वतंत्र वास-स्थान, छोड़कर अपने मित्रों के साथ रहने लगे। सन् '४७ के पश्चात् यद्यपि वस्तुओं के मूल्य में कोई विशेष कमी नहीं आई, पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कापी-राईट कानून में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये, जिससे लेखकों को थोड़ी बहुत राहत मिली। निरालाजी के सम्बन्ध में तो कुछ प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं ने भी व्यक्तिगत ध्यान दिया जिसके कारण निरालाजी को नियमित आर्थिक सहायता मिलने लगी। उनकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की गई और उनके प्रकाशकों से भी उनकी पुस्तकों के कापीराइट उठा लेने का प्रस्ताव किया गया जिससे निरालाजी की आर्थिक और शारीरिक स्थिति कुछ सुधर सकी। परन्तु निरालाजी के मानसिक विक्षेप में सुधार का कोई स्पष्ट लक्षण नहीं दिखाई दिया।

निरालाजी के इस मानसिक विक्षेप का स्वरूप भी कतिपय समीक्षकों ने बताने का प्रयत्न किया है। श्री दिनकरजी ने निरालाजी के निधन के पश्चात् दिल्ली में होनेवाले प्रथम जयन्ती सभारोह (११ फरवरी १९६२) में वैयक्तिक विश्लेषण करते हुये कहा था कि निराला में चेतन और अवचेतन के दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षों की वह विभाजक रेखा मिट गई थी, जो सामान्यतः सभी सचेत व्यक्तियों में रहा करती है। इसका अर्थ यदि यह है कि निरालाजी चेतना और अचेतना के व्यावहारिक अन्तर को मिटाकर नितांत विक्षिप्त हो गये थे तो यह व्याख्या गलत प्रमाणित होती है। कुछ विशेष अवसरों को छोड़कर निरालाजी की व्यावहारिक चेतना कभी उन्मूलित नहीं हुई। बीच-बीच में विक्षेप के अवसर आते थे। पर उनकी काव्य कृतियों में कुछ थोड़े स्थलों को छोड़कर (जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर किया गया है) इस प्रकार की मनोदशा का कहीं परिचय नहीं मिलता। विक्षेप के बावजूद निराला का समस्त व्यावहारिक कार्यों में भाग लेना और सधे हुये खिलाड़ी के समान ताश खेलना इसके प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। वास्तव में निरालाजी में अनेक बड़े कवियो और कलाकारो की भांति कुछ संविभ्रमी प्रवृत्तियाँ (Paranoid Tendencies) पायी जाती थीं जो कभी कभी उग्र होकर पैरानोइया (मानसिक उन्माद) में परिणत हो जाती थी। पैरानोइया मानसिक विक्षेप को एक अवस्था विशेष है जिसे विशुद्ध पागलपन नहीं कहा जा सकता। परन्तु इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन एक स्वतन्त्र निबन्ध की अपेक्षा रखता है, जिसका सम्यक विवरण हम किसी अन्य लेख में देना चाहेंगे।

—:*:—

"यदि सामयिक हिन्दी में कोई ऐसा विषय है जो अन्य सब विषयों की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट और दुरूह समझा जा सके तो वह पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का विकास है। इस कवि के व्यक्तित्व और काव्य के निर्माण में ऐसे परमाणुओं का सन्निवेश हुआ है जिनका विश्लेषण हिन्दी की वर्तमान धारणा-भूमि में विशेष कठिन क्रिया है।"

—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
(हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी)

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराजेय 'निराला' और हमारे कवि

प्रो० लक्ष्मीनारायण दुबे

हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने ('हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी'—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला') महाप्राण 'निराला' को हिन्दी का एक मात्र दार्शनिक कवि बतलाया है। वास्तव में 'निराला' जी के व्यक्तित्व या कृतित्व में अभूतपूर्व बातें ही उपलब्ध होती हैं। उनका पौरुष से परिपूर्ण उदात्त शरीर और मस्ती तथा निस्पृहता से परिप्लावित क्रिया-कलाप एक अनूठे रूप वैभव को सृष्टि, हमारे समक्ष, कर देते हैं। भौतिक व्यक्तित्व की यथार्थ अभिव्यक्ति की वे साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। समाज, साहित्य, कार्य-क्षेत्र, जीवन, परिवार, समस्त, स्थलों पर उन्होंने उपेक्षा, संघर्ष, दुःख और प्रतिक्रिया ही सहन की पर उनके क्रान्तिकारी, युगान्तकारी, विप्लव से परिपूर्ण, अपराजेय व्यक्तित्व ने कभी पराजय स्वीकार नहीं की। स्थिति यहां तक आ गई कि कवि के काव्य की पंक्तियां—'स्नेह-निर्झर बह गया है : रेत सा तन रह गया है'—स्वयं उन पर चरितार्थ हो गईं परन्तु वे अडिग रहे और आज भी उनमें वह निरालापन, मतवालापन, फक्कड़ता तथा स्वाभिमान, अपनी गरिमामयी स्थिति को महसूस करता है। द्विवेदी युग, छायावाद-युग और नवीन युग के विकासपूर्ण साहित्य के इतिहास में उन्होंने अपने को सदा-सर्वदा युगानुकूल बनाया और हिन्दी काव्य के शिल्प व वैचारिक पक्ष को सुदृढ़ बनाने में अग्रणी रूप में कार्य सम्पन्न किया।

डा० प्रभाकर माचवे ने ('व्यक्ति और वाङ्मय'—'निराला') लिखा है 'निराला' बंगला से हिन्दी में आये। साथ में रामकृष्ण परमहंस का वेदान्त, रवि बाबू की सौन्दर्यपूजक दृष्टि, विवेकानन्द का स्वस्थ राष्ट्र-प्रेम और बंकिम बाबू की चुटीली व्यंग-परिहासमयी गद्यशैली भी लेते आये। उनके व्यक्तित्व तथा साहित्यक निर्माण के पीछे इस प्रकार एक समृद्ध व विशाल परम्परा दृष्टिगोचर होती है। बंगाल की भावुकता तथा आध्यात्मिकता ने उनके भाव-बपन किये, बैसवाड़े के जन-जीवन ने उन्हें जिन्दादिली और रोचकता प्रदान की। उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी ने उन्हें हिन्दी की ओर उन्मुख किया। साहित्य के आरोप-प्रत्यारोपों ने उन्हें संघर्ष प्रधान बना दिया। समाज की कटु स्थितियों व अनुभवों ने उन्हें व्यंग, हास-परिहास और वेदनापूर्ण रचनाओं को लिखने के लिए बाध्य किया। अध्ययन ने चीजों को बारीकी से देखने और प्रस्तुत करने का माध्यम प्रदान किया। दर्शन की चिन्ताधारा उन्हें बौद्धिक और रहस्यपूर्ण काव्य की ओर उन्मुख कर गई। जनता के प्यार व स्मरण ने उन्हें जन गम्य साहित्य के सृजन के लिए उद्बोधित किया। राष्ट्रोपासना की पावनभावना ने जागृति के स्वर साधने की सामग्री प्रदान की। संगीत के माधुर्य और आकर्षणों ने उनकी कविता को सुमधुर व गेय बना दिया। इन सब स्थितियों को प्यार करता, दुलारता और फिर भी विरक्त बना हमारा महाकवि शालीनता के साथ रोग-व्याधि, सम्मान-असम्मान को वहन करता अपने व्यक्तित्व की छटा बिखेरे रहा है। 'निराला' जी ने जुही की कली, से प्यार किया। विधवा की समवेदना ग्रहण की। प्रयाग के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली मजदूरिन को प्राणान्वित किया। नये पत्ते और कुकुरमुत्ता की सजीव समाजिक परिप्रेक्ष्य में झांकियां ली। तुलसीदास और उनके राम की शक्ति और महत्ता की अभिव्यंजना की। 'तुम और मैं' का सूक्ष्म अन्तर समझाया। वसन्त और सन्ध्या की सरसता का वातायन बनाया। श्यामा के मुक्त नृत्य का भव्यता के साथ रसपान किया और अब भी वीणा वादिनी के वर को मांगते हुए, वे साधक के रूप में जीवन को झाड़ फूंककर बढ़ाते चले जा रहे हैं।

महाकवि 'निराला' ने द्विवेदी युग को विप्लव से आप्लावित किया। छायावाद को परिपक्वता प्रदान की। नवीन हिन्दी काव्य को अपने 'नये पत्ते' व 'कुकुरमुत्ता' काव्य से जन्म दिया। कटुक्तियों के विष को पीकर और प्रसव की पीड़ा को सहकर उन्होंने हमारे काव्य का मार्दव बढ़ाया और उसका शृंगार किया। साहित्य के नायकों में कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चतुरी चमार को स्थान दिलाया। वे हिन्दी के एकमात्र प्रगल्भ व्यंग लेखक हैं। इस प्रकार 'निराला' का काव्य वैविध्य, विचित्रताओं व विरोधाभासों से परिपूरित है। संस्कृतमयी कविता लिखते हैं तो गजलें व आमफहम भाषा भी लिखते हैं। तत्व-चिन्तन का यदि एक पक्ष है तो दूसरा पक्ष हास्य, विनोद, वाक्-वैदग्ध व उक्ति चमत्कार का। डा० रामविलास शर्मा ने ('निराला') लिखा है कि उन्हें हिन्दी के छन्दों के उतने नाम याद नहीं है जितने कुश्ती के दांव के। कवीन्द्र रवीन्द्र और गामा, नेहरूजी व टी० एस० इलियट - दोनों पर वे घण्टों सारगर्भित भाषण देते हैं। ऐसे मनीषी साहित्यकार का काव्यात्मक मूल्यांकन श्री प्रभाकर माचवे ने ('अनुक्षण' — 'निराला' की स्वर्ण-यन्ती पर) सुन्दर ढंग से किया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रूढ़ वृत्त की रीति से मुक्त किया हिन्दी कविता को,
नये कण्ठ से नई 'गीतिका' का गलहर पिन्हाया :
कुछ दुरूह थे सूत्र और थी वन्य हार की सुम-काया,
बोल उठे कुछ अरसिक, इसको काव्य-क्षेत्र से हांको !'

आगे कवि ने वस्तुस्थिति का यथार्थ चित्रण करते हुए 'निराला' जी के अर्थमय या सार्थक नाम का विश्लेषण किया है :—

'छले गये तुम भले, कहा, जो-जो आये वो चले गये,'
लेखक-शोषित प्रकाशकों की चिकनी-चुपड़ी बातों से,
अक्षर के कालेबाजारवालों से, उन आघातों से,
आलोचक-पुंगव के डंडे से जितने ही दले गये—
बांट चले निज मधुर वेदना—अनुभव तुम दोनों हाथों :
इसीलिए यह नाम 'निराला' अजब अर्थमय है, हां, तो :'—

महाकवि 'निराला' का, हिन्दी की नई व पुरानी पीढ़ी पर गहन व व्यापक प्रभाव है। उनकी तपस्या, निस्पृहता तथा साधना ने हमारी हिन्दी की नई कविता के अनुयायी बंधुओं को अभिभूत कर किया है। प्रायः प्रत्येक कवि ने अपनी कविता की ऋचाओं से उस अवढरदानी को अपनी भावभीनी अंजलि चढ़ाई है। पद-यश, धन-वैभव-लिप्सा से कोसों दूर रहने वाला यह परमहंस साहित्य का जीवित शहीद है। अपने अध्यवसाय व सतत लेखन से साहित्य के कोष की उन्होंने श्री वृद्धि की और हमें समय-समय पर दिशा-दर्शन प्रदान किया।' उन्होंने मतवाला पत्र की मुख-पंक्तियों को, अपने जीवन का साक्षात् दृष्टान्त दे दिया है :—

अमिय-गरल शशि-सीकर-रविकर
राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका।
प्यारा है यह मतवाला॥

इस मनुष्यत्व तथा विश्व-प्रेम के अन्य वन्दक का भारत को, प्रधान सन्देश स्वर यह है :—

साम्य रखते हुए
विश्व के जीवन से
बदले हुए कुम्हार,
नाई-धोबी-कहार
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पासी-भंगी-चमार,
परिया और कोल-भील,
नहीं आज का यह हिन्दू,
आज का यह मुसलमान,
नहीं है कल्पना.
सत्य है मनुष्य का,
मनुष्यत्व के लिये,
बन्द है जो दल अभी
किरण-सम्पात से
खुल गये वे सभी ।

हमारा कवि आज रोग-जर्जरित है। अपने संघर्ष पूर्ण स्वभाव के कारण वह प्रकृति से भी मुठभेड़ ले रहा है। हम निष्क्रियता, सहानुभूति और शाब्दिक वाचालता को लिये बैठे हैं। साहित्य आजकल फैशन व अभिरूचि हो गया है। 'निराला' का जीवन व साहित्य, साधना और कठोर अध्यवसाय का सारपुंज है। तप तप कर स्वर्ण निखरा है : दमका है। द्वन्द्वों से वह उभरा है। ऐसे समय में हमारा विक्षोभ, आक्रोश और दयनीयता, श्री राजा दुबे की ('एक हस्ताक्षर और'-'निराला' की जयन्ती पर) निम्नकविता में फूट पड़ती है। सुक-रात व मीरा के विष का प्याला सामने झलकने लगता है। हृदय कचोट खाने लगता है। भावनाएं मचल उठती हैं :—

'अब भलें मनाएं जयन्तियां
फेरे रात-दिन राष्ट्र भाषा की माला।
पर जीते जी हमने
हिन्दी का एक तुलसी मार डाला।

साहित्य को खा गई राजनीति
हाय! किसी 'जवाहर' से,
कम नहीं था–
पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि महाकवि निराला ने हिन्दी कविता के आधुनिक स्वरूप-निर्माण में दधीचि के सामन त्याग बलिदान व अध्यवसाय किया है। उन्होंने श्री नीलकण्ठेश्वर के सदृश्य युग की पीड़ा के हलाहल को सस्मित पान कर लिया है। इसीलिए आज भारत की मिट्टी का कण-कण उनका यशोगान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा है। श्री नागार्जुन ने उनका असम महत्व दिग्दर्शित करते हुए ('५५ की श्रेष्ठ कविताएं'-'निराला के प्रति') कहा है :—

हे दधीचि, तुमसे घबराते हैं मान्धाता,
नहीं पूछते तुमको भारत भाग्यविधाता,
मुदित देव गण, किन्तु तुम्हारा तप जारी है
जन जीवन आलोड़ित अद्भुत लाचारी है।

'निराला' जी में प्राचीन ऋषि का तेज और भव्य रूप उभर उठा है। उन्होंने कालिदास. तुलसी व रवीन्द्र की पुनीत परम्परा को अपनी वाणी से गरिमामय कर दिया है। ऐसे अपराजित् तथा अप्रतिम कलाकार के प्रति श्री गिरिजाकुमार माथुर के शब्दों के द्वारा ('धूप के धान'-महाकवि) ही अपनी विनम्र श्रद्धा समर्पित की जा सकती है :—

'ओ शक्तिदूत, युग के विद्रोही कलाकार
तुम बढ़े रूढ़िगत भावों की प्राचीर तोड़
भीषण अवरोधों की चट्टानों के ऊपर
निर्माण पथ बन गया धीर पद चिन्हों से
इन नई युक्त सीमाओं पर निर्बाध बही
युग की पुंजित गति सी कविता की भगीरथी।

—*—

छन्द बंध ध्रुव तोड़ फोड़ कर पर्वत कारा,
अचल रूढ़ियों की, कवि तेरी कविता धारा।
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी निःसृत,
गलित, ललित, आलोकराशि, चिर अकलुष, अविजित।
अमृतपुत्र कवि, यशःकाय तव जरामरण जित्,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत!"

पंतजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला : जीवन और काव्य-परिचय

डॉ० रामविलास शर्मा

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।"

और जिसे वह कवि नहीं कह पाया, उसे आलोचक क्या कहेगा ?

बहुत कम लोगों ने देखा कि निराला के जीवन में दुःख है ; अपना ही नहीं, दूसरों का दुख भी उसमें सिमट कर भर आया है। वह बाल्मीकि, भवभूति और तुलसीदास की परम्परा का कवि है और उसमें प्राचीन मंत्र द्रष्टाओं की सी दीप्ति है। यद्यपि वह पराधीन भारत का अभिशप्त कवि रहा है।

लोगों ने देखा छह फुट से लम्बा शरीर, कंठ तक लहराते हुए कुञ्चित केश, वेश अस्तव्यस्त, कभी कुर्ता-धोती, कभी तहमत या लुंगी, विशाल नेत्र, अजन्ता की कारीगरी सी लम्बी और वक्र उँगलियाँ, पम्प शू, फटी चप्पल या नंगे पैर, बातचीत में अटपटा, जिसे हम सभ्यता और शिष्टता कहते हैं उसका अक्सर उल्लंघन करनेवाला, मतवाला के सम पर नाम निराला, कविता भी निराली, कोई लाइन तीन फुट लम्बी, कोई सिर्फ डेढ़ इञ्च को, भाषा ऊबढ़खाबड़, छंद बेसिर पैर के। विद्वान् कहते—कोश देखकर लिखता है ; जो कुछ लिखता है उसका कोई अर्थ ही नहीं होता। कविता तो वह जो पढ़ते या सुनते ही समझ में आ जाय, यह भी कोई कविता हुई कि या तो आप समझें या फिर खुदा समझे। कवि-सम्मेलनों के मंच पर लोग स्वांग बनाकर आते, मुक्त-छंद के साथ कवि की चाल-ढाल की भी नकल करते, पत्रिकाओं में कार्टून छपते और विरोध में लिखे हुए लेखों की भरमार। निराला की पीढ़ी के शेष सभी कवियों के खिलाफ़ जितना लिखा गया, उसका दसगुना अकेले निराला के विरुद्ध लिखा गया। जितना लिखा गया, उससे ज्यादा कहा गया। निराला राह चलते प्रवादों और अफ़वाहों का केन्द्र बन गया।

धीरे-धीरे यह कोलाहल कम होता गया। सैकड़ों सम्मेलनों में—आवश्यक रूप से कवि सम्मेलनों में ही नहीं—निराला की आवाज़ गूंजी। भारत-सोवियत मैत्री संघ के खुले अधिवेशन (लखनऊ) में जहाँ सहस्रों जवानों ने श्री जवाहरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू और श्री सरोजिनी नायडू का भाषण सुना, वहाँ निराला ने अपने मेघमन्द्र स्वरों में 'बादलराग' सुनाया। निराला युवकों का विशेष प्रिय कवि बना। वह उन्हें उत्साहित करता, नयी प्रेरणा देता और स्वयं नये आत्मविश्वास से आगे बढ़ता। निराला का साहित्य विश्वविद्यालयों के अध्ययन क्रम से बाहर रखा गया, अब भी बहुत कुछ बाहर है। किन्तु विद्यार्थी-समाज ने उसे बहुत पहले अपना लिया था; उसने अपने सहज ज्ञान से परख लिया कि तरुण हृदयों में जो भावना प्रकट होने के लिये कसमसा रही है, उसी को मूर्त रूप दिया है कवि निराला ने। इस सम्पर्क की एक झलक निराला के इस पत्र में मिलती है— जिसे २० नवम्बर १९३६ को उसने इन पंक्तियों के लेखक के नाम इलाहाबाद से लिखा था—

"यहाँ की युनिवर्सिटी में 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य की गतिविधि' पर भाषण था। यह यहाँ की एक हिन्दी की सभा है। प्रायः ४०/५० विद्यार्थी और १०/१२ छात्राएं थीं; पं० देवीप्रसाद शुक्ल और कवि रामकुमार वर्मा जैसे प्रोफेसर; कुछ प्रोफेसर डा० धीरेन्द्र वर्मा जैसे काम से बाहर गये हुए थे; कुछ अन्य सज्जन थे, अतिथि। यहाँ वही छात्र और छात्राएँ आ सकते हैं जो इसके मेम्बर हैं। भाषण और कविता पाठ दोनों एक प्रकार अच्छे रहे। फिर सब ने एक साथ चाय नाश्ता किया। भाषण और कविता पाठ प्रायः डेढ़ घण्टे हुआ। पहले एक विद्यार्थी ने निबन्ध पढ़ा, फिर कुछ समय रामकुमारजी ने मेरी तारीफ की; कुछ समय तक छात्र और छात्राओं के नोटबुकों में मैं कविता लिख लिख कर हस्ताक्षर करता रहा; कुछ समय चाय-नाश्ता और प्रश्नोत्तर में बीता इस प्रकार ढाई घण्टे से कुछ अधिक समय सर्फ़ हुआ, शाम सात बजे तक।"

विरोधी परास्त हुए, कवि की साधना विजयी हुई। किन्तु कवि के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के साथ उसकी रचनाओं का अध्ययन और मूल्याङ्कन भी आवश्यक है।

कवि का सही परिचय उसका काव्य है। फिर भी निराला के जीवन से संबन्धित कुछ घटनाओं को जानने से उसका साहित्य समझने में आसानी होती है। उनका जन्म बंगाल के महिषादल राज्य में हुआ। उसके पिता ग्राम गढ़ाकोला, जिला उन्नाव के निवासी थे और जीविका के लिये महिषादल राज्य में सिपाही थे। अपने पिता के पेशे की याद करके कवि निराला ग़ालिब की ये पंक्तियां दोहराया करते थे—

"सौ पुश्त से है पेश-ए आबा सिपहगरी।
कुछ शायरी ज़रीय-ए-इज्जत नहीं मुझे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला में जो अक्खड़पन है, उसकी सहज बिलंबित गति और गर्वोन्नत अविनीत भाल—यह सब सम्भवतः उन्हें अपने पिता से विरासत में मिला है। बंगाल में पैदा होने से उन्हें बंगला का सहज बोध मातृभाषा के समान ही हुआ। "परिमल" संग्रह की अनेक कविताओं में विशेष कर वर्षाऋतु से सम्बन्धित रचनाओं में उन्होंने बंगाल के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन किया है जैसे इन पंक्तियों में—

धंसता दलदल
हँसता है नद खल्खल्
बहता, कहता कुल्कुल कलकल कलकल।
देख देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल-बेकल।

निरालाजी का विवाह लड़कपन में हुआ और वह बीस साल के भी नहीं थे जब उन्हें एक पुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी और एक कन्या (स्वर्गीया) सरोज देकर उनकी पत्नी इन्फ्लुएंजा के प्रकोप से स्वर्ग सिधारीं। कवि के मन पर वह अपनी मधुर वाणी, संगीत प्रियता और रामचरित मानस प्रेम की अमिट छाप छोड़ गईं। धरती के सौंदर्य के गीत गाते हुए —

"रंग गई पग-पग, धन्य धरा—,
हुई जग जगमग मनोहरा।"

इन पंक्तियां में कवि ने उन्हीं मनोहरा देवी को स्मरण किया है जिन्हें "स्वर्गीया प्रिया प्रकृति" कहकर "गीतिका" समर्पित की है।

जिस महामारी में कवि की पत्नी और परिवार के अन्य सदस्य उनसे बिछुड़ गये, उसे याद करके उन्होंने अपने "अलका" उपन्यास में लिखा था, "गंगा के दोनों ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं, उनमें हर एक पर एक-एक दिन में दो-दो हज़ार लाशें पहुँचती हैं। जलमग्न दोनों किनारे शवों से ठँसे हुए, बीच में प्रवाह की बहुत ही क्षीण रेखा ; घोर दुर्गन्ध, दोनों और एक-एक मील तक रहा नहीं जाता।" चारों ओर मृत्यु की विभीषिका—इस वातावरण में निराला ने अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ किया। वैसे अपने भौतिक जीवन के आरम्भ में ही वह मातृस्नेह से वंचित हो गये थे। मानों उसी अभाव की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने गीतों में इष्टदेवी के रूप में बारबार अपनी दिवंगता जननी को पुकारा है : "अनगनित आ गये शरण में जन,जननि।"

प्रकृति के सौंदर्य का प्रतीक बनकर यदि स्वर्गीया प्रिया आती हैं तो मृत्युञ्जयी शक्ति के रूप में—जिनकी अर्चना "राम की शक्तिपूजा" में स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम ने ने को—उनकी स्वर्गीया जननी अवतरित होती हैं—

"दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पदरागरंजित मरण !"

उनके लिये जननी के पदराग से रंजित हो कर मृत्यु भी मंगलकारी हो गई है। अप्रत्यक्ष रूप से इन दो स्वर्गीया देवियों की स्मृति ने निराला को शक्ति और सौंदर्य के अद्भुत समन्वय का कवि बना दिया।

प्रथम महायुद्ध के बाद से कवि ने साहित्य रचना का कार्य आरम्भ कर दिया था किन्तु उसकी रचनाओं का महत्व आँकनेवाला कोई न था। सम्पादक के दफ्तर से कविताएं "स्थानाभाव" से सधन्यवाद वापस आ जातीं। लौटी हुई रचनाएं लेकर वह आकाश की ओर देखा करते और घास नोंच कर सम्पादकों के नाम चढ़ाया करते—

"लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुनगुन कर
सम्पादक के गुण ; यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर।"

श्रावणी पूर्णिमा संवत् १९८० को कलकत्ते से स्वर्गीय महादेव प्रसाद सेठ ने "मतवाला का प्रकाशन आरंभ किया। प्रथम वर्ष के अठारहवें अंक में कवि की प्रसिद्ध रचना "जुही की कली" (जो अभी "जूही की कली" थी) प्रकाशित हुई। "मतवाला" में साल-दो साल काम करने के बाद वह बनारस आये और उसके बाद अपने गाँव में रहे। उन दिनों वह अस्वस्थ थे। तभी कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त का कविता संग्रह "पल्लव" प्रकाशित हुआ और निराला ने "पन्तजी और पल्लव" नाम से उसकी आलोचना लिखी। गाँव में रहते हुए उनका घनिष्ट सम्पर्क गरीब किसानों और समाज के सबसे दलित अंग अछूतों से हुआ। "अलका", "निरुपमा" जैसे उपन्यासों में और "चतुरी चमार", "कुल्ली भाट", "बिल्लेसुर बकरिहा" जैसे रेखाचित्रों और अनेक कहानियों में गद्य लेखक निराला ने अपनी कला को एक नया यथार्थवादी रूप दिया।

सन् २८ के लगभग वह लखनऊ में आ कर जमे। गंगा पुस्तकमाला कार्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय से उनका कविता संग्रह 'परिमल' 'निकला, 'अप्सरा' आदि उपन्यास निकले, 'सुधा' के सम्पादन में वह हाथ बटाते रहे, दस वर्ष तक लखनऊ में रहते हुए उन्होंने गद्य-पद्य की सर्वोत्तम कृतियाँ हिन्दी को दीं। इसके बाद दूसरे महायुद्ध का समय आया। उनको आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ीं। वह इलाहाबाद गये और तब से अस्वस्थता, बुढ़ापा, तरह-तरह की आधि-व्याधियाँ उन्हें घेरे रहीं। वह लिखते रहे और अब भी जब तब उनके गीत प्रकाशित होते रहते हैं लेकिन अब उस मेघमन्द्रस्वर की गूँज ही जब तब सुनाई देती है।

सन् ४३ में उनकी वर्तमान अस्वस्थता की पहली मंजिल थी। उस समय वह बड़े सचेत और सतर्क ढँग से अपनी स्थिति का विश्लेषण कर सकते थे। दूसरी फरवरी १९४३ को अवधी के सरस कवि स्व० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने पत्र में मुझे लिखा था,

'दीक्षित के लिये बहुत सोचता हूं, मगर वह नस मेरी कट चुकी है जिसमें स्नेह सार्थक है : अपने आप दिन रात जलन होती है। किसीसे अपनी तरफ़ से प्रायः नहीं मिलता। मिल नहीं सकता। कोई आता है तो थोड़ी सी बातचीत। आनेवाला ऊब जाता है। मुझे भी बातचीत अच्छी नहीं लगती। कभी रात रात भर नीद नहीं आती। तम्बाकू छूटती नहीं। खोपड़ी भन्नाई रहती है। चित्रकूट में एक दफ़ा बीमारी के समय छोड़ दिया था खाना, फिर आदत पड़ गई।'

निरालाजी का स्वभाव, उनका व्यक्तित्व उनकी रचनाओं का अभिन्न अंग है। इस स्वभाव की मुख्य विशेषता है, करुणा, सहानुभूति। दूसरों का दुख देखकर वे इतना द्रवित हो जाते हैं कि उन्हें अपने वर्तमान या भविष्य की चिन्ता नहीं रहती। संसार में जो बुद्धिमान कहलाते हैं, वे निराला में व्यवहार कुशलता का अभाव देखते हैं। आखिर अकेले आदमी हैं, साहित्य से कुछ पैसा तो मिला ही, थोड़ा अर्थशास्त्रका ज्ञान होता तो खाते-कमाते मज़े में दिन काटते। लोग इससे कम पूँजी में मालोमाल हो जाते हैं। लेकिन निराला जल में कमलपत्र की तरह इस व्यापारिक सभ्यता से अछूते रहे! इस पर तबीयत बादशाहों की पाई है। जिस पर प्रसन्न हो जायँ, उस पर सब कुछ निछावर कर दें। दोस्त की तो बात ही क्या, दुश्मन भी आये तो क़र्ज़ लेकर उसका सत्कार करें। आत्म-सम्मान की मात्रा इतनी अधिक है कि पैसे को "त्वमेव माता च पिता त्वमेव" कहनेवालों से वे समझौता नहीं कर पाते। एक बार किसी कवि-सम्मेलन में कोई सज्जन उन्हें बुलाने आये; गर्व से कवि के लिये मोटर भेजने की बात कही। कवि ने कहा हम पैदल ही आ जायँगे। इसी आत्म-सम्मान के कारण जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी राजा के यहाँ तथाकथित अराजकतावादी लेखक आश्रय खोजते थे, वह निराला उनके सम्मान में अन्य लेखकों के साथ अपने आसन से उठे भी नहीं। आत्म-सम्मान से अधिक उन्हें हिन्दी भाषा और उनके साहित्यकारों के सम्मान की चिन्ता रही है। किसी साहित्यिक सभा में राजनीतिक नेताओं को मंच पर और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को नीचे बैठे देखकर भरी सभा में नेताओं को ललकारना निराला ही का काम था। हिन्दी भाषा और साहित्य के गौरव के प्रतिकूल अपमानजनक शब्द कहने वालोंको उन्होंने हमेशा आड़े हाथों लिया, साहित्य से भिन्न क्षेत्रों में उन लोगों का चाहे कितना ही नाम क्यों न रहा हो।

अपनी आलोचना के प्रति वह सदा सजग रहे हैं। अपनी चीज़ों को परखने और सुधारने में उन्हें कभी हिचक नहीं रही। छोटों के मुंह से भी अपनी आलोचना वे धैर्यपूर्वक सुन लेते थे। अपनी प्रशंसा सुनकर उन्हें बच्चों की तरह खुशी होती थी यद्यपि ऊपर से वे वीतराग दिखने का प्रयत्न करते थे। लेकिन प्रशंसा समझ कर की जा रही है या केवल उनकी चापलूसी करने के लिये—यह वह बहुत अच्छी तरह भांप लेते थे। ऐसे प्रशंसकों पर वह व्यंग्य करने में न चूकते थे। जैसे एक मित्र ने उनकी आँखों की प्रशंसा की तो बोले—जी हाँ, बड़ी बड़ी हैं, बैल की सी।

अन्यायपूर्ण आलोचना से वह बहुत क्रुद्ध होते थे यद्यपि उनका यह क्रोध कुछ दिन तक ही रहता था। लेकिन लगातार और इतने दिन तक लिखित और मौखिक रूप में इतनी ज्यादा उनकी आलोचना हुई है—और इतनी बे सिर पैर की और अन्यायपूर्ण—कि उससे उनके मन पर प्रबल आघात हुआ है। उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से अस्वस्थ करने में व्यक्तिगत कारणों के अलावा उनसे विरोधी आलोचकों का बहुत बड़ा हाथ है। इनके बाद वे प्रकाशक स्मरणीय हैं जिनके व्यवहार से निराला सदा असन्तुष्ट रहे और आजीवन एक के बाद दूसरा प्रकाशक टटोलते रहे। साहित्य के सौदागरों ने निराला की प्रतिभा को न पहिचाना। बिकाऊमाल पाने की तलाश में उनसे अनुवाद वगैरह का काम कराया और उन्हें अपनी श्रमशति बहुत सस्ते दामों बेचने पर मजबूर किया। इनके बाद हिन्दी भाषी प्रदेश—विशेषकर उत्तर प्रदेश—के राजनीतिक नेता हैं जिन्होंने या तो हिन्दी साहित्य या हिन्द प्रदेश की संस्कृति को बिल्लकुल अवज्ञा की दृष्टि से देखा, या अपने चाटुकार साहित्यकारों को उकसा कर छिपे तौर से निराला के विरोध को बढ़ावा देते रहे। इसी कारण निराला कहीं अपने को "वसन्त का अग्रदूत" घोषित करते हैं तो साथ ही यह भी बताना नहीं भूलते कि वह "ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत" हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका जीवन जब तब उच्छृंखल का सा लग सकता है किन्तु उसकी मुख्य गति एक सामाजिक क्रान्तिकारी के जीवन की रही है। चोटी कटा कर, जनेऊ उतार कर, खान-पान के भेद भाव की पूरी अवहेलना करके, गाँव के चमारों के मुकदमों में जमींदार के विरुद्ध उनका साथ देकर और अपने घर उनके बच्चों को पढ़ा कर उन्होंने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया था। इसीलिये वह दुख और वेदना के साथ संघर्ष और चुनौती के कवि भी हैं।

जब लोग उनके चरण छूते तो वह हाथ जोड़ कर या एक हाथ उठा कर "नमोनमः" कहते। उन्होंने वेदान्त को इस रूप में अपनाया था कि सभी मनुष्य समान हैं, इसलिये प्रणाम कौन किसको करे! विदेशी अत्याचार से जैसे उन्हें घृणा थी, वैसे ही हमारे रूढ़िवादी समाज में स्त्रियों, किसानों और दलित जनों पर अत्याचार होते देख कर उन्हें रोष हो आता था और वह समाज के शत्रुओं पर तीव्र व्यंग्यवाणों की वर्षा करते।

वह चरणस्पर्श से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देनेवाले गुरु कभी नहीं रहे। वह गुरु से अधिक अपने परिचितों के मित्र अधिक रहे हैं। इस मित्रता में भी दूसरे के आत्मसमान को धक्का न लगे, उसका वह सदा ध्यान रखते थे।

परिश्रम करने की उनमें अद्भुत क्षमता रही है। उनका साहित्य इधर उधर बिखरा पड़ा है। हजारों सफ़े उन्होंने अनुवादित किये हैं, जीवनियां लिखी हैं, निबन्ध लिखे हैं जिनमें बहुत से संग्रहीत नहीं हुए, उपन्यास, कहानियां, रेखाचित्र, मतवाला और सुधा में छद्मनाम से या बिना नाम के टिप्पणियाँ लिखी हैं। और जितना काम किया है उतना ईमानदारी से, भाषा और शैली को भरसक सँवारते हुए। इसीलिये कवि होने के साथ वह हिन्दी के बहुत समर्थ गद्य-लेखक—कथाकार, निबन्धकार, और अलोचक—भी हैं। निराला बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। हिंदी, बंगला, अँग्रेजी, संस्कृत और उर्दू काव्य के अध्ययनशील साहित्यकार।

अब निराला के काव्य पर विचार करना चाहिये। उनका जीवन-दर्शन क्या है? बंगाल में रहते हुए उनपर रामकृष्ण मिशन के साधुओं और स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव पड़ा। वह कुछ दिन तक मिशन के दार्शनिक पत्र "समन्वय" के सम्पादक भी रहे। स्वामी विवेकानन्द की कुछ रचनाओं का उन्होंने अनुवाद किया। संसार माया है, मनुष्य सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप हैं, इसलिये कायरता और दुर्बल इच्छाएँ उसे अपने पास न फटकने देनी चाहिए। "जागो फिर एक बार" में उनके दर्शन का सारतत्व देखा जा सकता है। सिंहिनी की गोद से कोई उसका शिशु नहीं छीन सकता; शिशु छिनने पर मेषमाता ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्निमेष रहती है। वह गीता का स्मरण करा के ऐतिहासिक प्रसंग के बहाने पराधीन देश की जनता को संघर्ष के लिये ललकारते हैं।

जयशंकर प्रसाद और श्री सुमित्रानन्दन पंत के साथ निराला जिस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं, उसे छायावाद नाम दिया गया है। छायावाद की एक प्रवृत्ति रहस्यवाद की है। लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति प्रकृति में रहस्यमय चेतना की झलक, ब्रह्म में लीन होने की उत्कंठा—यह सब रहस्यवाद कहलाता है। निराला रहस्यमयी अनुभूति के कवि नहीं हैं, उन्होंने रहस्यवाद को वेदान्त का पर्यायवाची मान कर उसे बौद्धिक रूप में अपनाया है। उनका विवेक कभी-कभी इस दर्शन के प्रति विद्रोह भी करता रहा है। 'अधिवास' कविता में वह वेदान्तियों को माया के बारे में कहते हैं कि दुखी को देखकर उनके हृदय में करुणा उमड़ती है, वह गतिहीन सच्चिदानन्द में कैसे लीन हों ?

"फँसा माया में हूँ निरुपाय
कहो, फिर कैसे गति रुक जाय ?"

इस 'माया' से न निकल पाने पर उनका रहस्य-वादी अधिवास छूट जाता है लेकिन इससे उन्हें चिन्ता नहीं होती।

रहस्यवादी कवि कहते हैं, अज्ञान को निशा बीत गई, संसार नये आलोक से प्रकाशित दिखाई देता है, निराला ने भी यही भाव प्रकट करते हुए बहुत से गीत लिखे हैं। लेकिन "कौन तम के पार रे कह"—इस गीत में वह अन्धकार को भी जीवन के लिये आवश्यक बताते हैं। "अशिव उपलाकार मंगल द्रवित जल नीहार,,—जो अशिव है, वही स्थिति बदलने से शिव बनता है, जो पत्थर के समान कठोर है, वही द्रवित होकर नीहार बनता।

शिव और अशिव, उपल और नीहार—विरोधी तत्वों की एकता से यह संसार बना है। संसार के सभी पदार्थ और उनकी गतिविधि शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं। मनुष्य को यही शक्ति का सागर पार करना होता है :

'प्राणसिद्धात के सिन्धु के तीर में
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं,
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण।"

ऐसी स्थिति में कवि के लिये जीवन के अभिशाप भी वरदान हो जाते हैं। अपमान की आग इसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है ; इस ज्वाला से प्रेरित होकर वह जीवन के प्रलोभनों पर विजय पाता है :

"लाञ्छना इन्धन, हृदय-तुल जले अनल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरत सबल,
पारकर जीवन-प्रलोभन समुपकरण।"

फूल की खुशबू धरती का ताप सहकर ऊपर उठती है। अगर कोई चाहे कि कर्ममय जीवन के क्लेश सहे बिना परोक्ष सत्ता का ध्यान करने से सिद्धि मिल जायगी तो यह संभव नहीं है। "वन-बेला" को देखकर कवि कहता है—

"यह ताप, त्रास
मस्तक पर लेकर उठी अतल की अतुल साँस,
ज्यों सिद्धि परम
भेद कर कर्म-जीवन के क्लेश, सुषम
आई ऊपर।"

"नर्गिस" नाम की कविता में गंगा के किनारे खड़ा हुआ कवि चाँदनी का सौन्दर्य देखता है। उसे लगता है कि स्वर्ग ने जो कुछ सबसे सुन्दर रचा और सँवारा है, वह यह चाँदनी ही है। लेकिन नर्गिस उससे कहती है कि पृथ्वी का फूल धरती का अन्धकार पार करके आकाश की ओर उठता है, वह स्वर्ग की सृष्टि चाँदनी से भी सुन्दर है।

शक्ति के उपासक कवि के लिये कर्ममय जीवन व्यर्थ नहीं है। वह जीवन संघर्ष में भाग लेने के लिये जनता का आह्वान करता है :

"जीवन की तरी खोल दे रे
जग की उत्ताल तरंगों पर।"

निराला की कविता अपने सत्य से पाठक को इसलिये प्रभावित करती है कि कविने संघर्ष का स्वप्न नहीं देखा वरन् अपने जीवन में प्रतिक्षण उसका अनुभव किया है। "सरोज-स्मृति" में उसके जीवन-संघर्ष का चित्र देखते हैं। चारों ओर से प्रहार होने पर कवि भविष्य में अपना विश्वास दृढ़ रखे हुए उनका सामना करता है। अपने साहित्यिक कर्मों से ही वह अपनी स्वर्गीया कन्या का तर्पण करता है। "तुलसीदास" में उसने रामचरितमानस के मानसिक संघर्ष का चित्रण किया है। उन महाकवि को भी सिद्धि आसानी से नहीं मिल गई। "राम की शक्तिपूजा" में राम पहले रावण से पराजित होते हैं, क्योंकि शक्ति रावण की ओर है। शक्ति की उपासना करके ही राम इस योग्य होते हैं कि वह तमोगुण के प्रतीक रावण पर विजय प्राप्त कर सकें। पराजय का क्षोभ, अभिशाप की पीड़ा, फिर भी साधना के लिये प्रयास और अन्तिम विजय में विश्वास—निराला के जीवन-दर्शन का अन्तस इन्हीं कोमल-कठोर मानवीय सूत्रों से रचा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति-उपासक निराला के काव्य का एक सबल सामाजिक पक्ष है। "अधिवास" कविता में उसने लिखा था कि वह अपने दुखी भाइयों का दुख भूल नहीं सकता, इसलिये 'माया' में फँसा हुआ है। "भिक्षुक" में उसने उन गरीबों का चित्र खींचा है जो 'घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।" "दान" में वह उन पाखंडियों पर व्यंग्य करते हैं जो :

"कर रामायण का पारायण
जपते हैं श्री मन्नारायण"

और मनुष्य को भूखा छोड़ कर बन्दरों को पुए खिलाते हैं। "तोड़ती पत्थर" में एक मज़दूर-स्त्री धूप और लू सहती हुई पत्थर तोड़ती है। सामने अट्टालिकाओं में धनी-जन आनन्द से समय बिताते हैं। किन्तु वह मजदूर-स्त्री परास्त नहीं हुई :

"देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।"

निराला की आस्था का आधार भारतीय जनता की यह अजेह शूरता है।

निराला क्रान्तिकारी कवि हैं। शक्ति का उपासक कवि चुपचाप अन्याय कैसे सह सकता है? "महाराज शिवाजी का पत्र" में ऐतिहासिक प्रसंग द्वारा पराधीन राष्ट्र के सुप्त संस्कारों को जगाते हैं :

'आ रही है याद यदि अपनी मरजाद की,
चाहते हो यदि कुछ प्रतिकार
तुम रहते तलवार के म्यान में,
आओ वीर, स्वागत है,
सादर बुलाता हूं।
हैं जो बहादुर समर के,
वे मर के भी
माता को बचायेंगे।
शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे!
निर्जर हो जाओगे—
अमर कहलाओगे।"

सन् '३०-'४० में इन पंक्तियों का स्पष्ट राजनीतिक संकेत समझने में किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
श्रोता को दिक्कत न होती थी। इसी तरह "जागो फिर एक बार" में इतिहास का हवाला दे कर वह कायरता की भर्त्सना करते हैं :

'सिंहों की माँद में आया है आज स्यार।"

बादल को क्रान्ति का प्रतीक बना कर उन्होंने क्रान्ति का आह्वान किया :

भयके मायामय आंगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !"

उन्होंने इस क्रान्ति के सामाजिक तत्वों का भी उल्लेख किया। समाज में बड़े कहलानेवालों को इस क्रान्ति से प्रसन्नता नहीं होती। आतंक का सहारा लेने पर भी उन्हें भय से मुक्ति नहीं मिलती :

"रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना-अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।

क्रान्ति से प्रसन्नता होती है साधारण जनों को

"हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार।"

भारतीय जनता का अधिकांश भाग है किसान। इनकी दशा में आमूल परिवर्तन हुए बिना देश की दशा सुधर नहीं सकती। क्रान्ति की बाट जोहनेवाले यही किसान हैं :

'जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार !"

प्रेमचन्द के समान भारतीय साहित्य के लिये निराला का यह युगान्तरकारी महत्व है कि उन्होंने देश के स्वाधीनता-आन्दोलन में किसानों की भूमिका के महत्व को समझा और राजनीतिक नेताओं की तुलना में उसे ज्यादा स्पष्टता से जनता के सामने रखा।

ये नये भाव थे जो सन् '२०-'३० के भारतीय समाज को आन्दोलित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे। निराला के साहित्य में विदेशी साम्राज्य वाद और सदियों से चले आते हुए घरेलू रूढ़िवाद के विरुद्ध कसमसाती हुई जनता की नयी चेतना प्रतिबिम्बित हुई। लेकिन निराला ने साहित्य के जिन पुराने विषयोंको चुना उनके चित्रण में भी उन्होंने आमूल परिवर्तन किये। संसार सुन्दर है, जीवन उल्लासमय है, इसलिये निषेध भावना त्याग कर इन्हें हृदय से स्वीकार करना चाहिये। "जुही की कली" वह अनन्त यौवन का स्वप्न देखते हैं। "गीतिका" के अनेक गीतों में कहीं होली खेलने वाली महिला के "नयनों के डोर लाल" का चित्र खींचते हैं; कहीं स्पर्श से लजाती हुई "चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल" रमणी की छवि आँकते हैं, कहीं रात की जागी हुई "अलस पंकज दृग अरुण मुख तरुण अनुरागी" पर मुग्ध हो जाते हैं। पुराने नायिका-भेदी साहित्य और इस शृंगार में बड़ा अन्तर है। सौन्दर्य की यह गरिमा, रूप की यह उदात्त भावना, हृदय की यह विह्वलता, कवि की ऐसी आत्म-विभोर गेयता पुराने कवियों में सूरदास को छोड़ कर—कम मिलती है। इसी तरह प्रकृति के चित्रण में कवि पूर्ण तल्लीनता का परिचय देता है। शरद शिशिर, वसन्त और सबसे अधिक वर्षा में इस देश की प्रकृति जिस तरह उल्लसित होती है, उसे देखकर कवि का मन मयूर नाच उठता है। बेला, नर्गिस, हरसिंगार, जुही, देश के इन फूलों को निराला ने अमर कर दिया है। वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द का कवि है। वन-बेला कवि के सन्तप्त मन को ऐसे ही आह्लादित कर देती है,

"प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गंध"

मेघ का गर्जन प्रकृति का सुन्दरतम संगीत है और जब कवि प्रकृति का संगीत सुनता है, तब वह उस का रूप देखना नहीं भूलता :

"रंग अपार
किरण तूलिकाओं से अंकित
इन्द्रधनुष के सप्तक, तार,—
व्योम और जगती का राग उदार
मध्य देश में गुड़ाकेश!
गाते हो बारंबार।
मुक्त! तुम्हारे मुक्त कण्ठ में
स्वरारोह, अवरोह, विघात,
मधुर मन्द उठ पुनः पुनः ध्वनि
छा लेती है गगन, श्याम कानन,
सुरभित उद्यान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला की कविता भी ऐसी है। "वधिर विश्व के कानों में" जैसे बादल अपना राग भर देता है, वैसे ही तटस्थ, उदासीन, विरोधी आलोचकों के कानों में निराला ने अपनी वज्रहुङ्कार से कँपकँपी पैदा कर दी।

निराला की काव्य-कला की विशेषताएँ क्या हैं?

निराला काव्य का मुख्य स्वर है उदात्त, उसका सहज गुण है ओज। उसमें ऐसी शक्ति है जो सिद्ध संगीत की तरह मनुष्य कीचेतना को ऊपर उठाती है। यह उदात्त तत्व काव्य की विषय वस्तु, मूर्ति विधान, शब्दों की ध्वनि और छन्द की लय में एक साथ व्याप्त रहता है। काव्य की ऐसी अखण्ड आन्तरिक एकता बहुत कम कवियों में चाहे वे देश के हों चाहे विदेश के - देखने को मिलती है। उदाहरण के लिये "राम की शक्ति पूजा" को ले सकते हैं। राम-रावण का संघर्ष राम की पराजय और क्षोभ, परोक्ष रूप में स्वयं निराला के जीवन-संघर्ष का चित्रण—विषय वस्तु महत्वपूर्ण है। उसे नाटकीय रूप दिया गया है, राम के चरित्र-चित्रण से, धनुष की प्रत्यञ्चा शिथिल हो गई है, दृढ़ जटामुकुट खुलकर पीठ और बाहों पर फैल गया है। सीता बन्दिनी है। स्वयंवर का दृश्य याद करके एक बार मानों फिर धनुष तोड़ने के लिये राम की भुजा फड़क उठती हैं। तभी रावण का अट्टहास सुनाई देता है। राम शक्ति की उपासना करते हैं लेकिन यहाँ भी उन्हें तरह- तरह की अड़चनों का सामना करना पड़ता हैं। एक क्षण निराला के राम अपने को धिक्कारते हुए कह उठते हैं—

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध।"

राम के विरुद्ध है महाशक्ति। वह राम की धनुर्विद्या को निष्फल कर देती है। रावण महाशक्तिके अंक वैसे ही शोभित होता है जैसे चन्द्रमा में लाञ्छना दिखाई देती है। ऐसे संघर्ष, पात्रों के नाटकीय अन्तर्द्वन्द्व, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण आदि की भिन्न चरित्रगत विशेषताओं का चित्रण करते हुए निरालाने घटनाओं की पृष्टभूमि के लिये प्रकृति का यह दृश्य आँका है :

"है अमानिशा ; उगलता गगन घन अन्धकार ;
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवनचार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल ;
भूधर ज्यों ध्यान मग्न ; केवल जलती मशाल।"

"राम की शक्तिपूजा" का छन्द अपनी समर्थ विलंबित गति से विषयवस्तु के ओज को प्रकट करने का एक साधन बन जाता है।

उदात्त भावना के लिये विस्तृत कथावस्तु या सूक्ष्म चरित्र चित्रण सदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षित नहीं है। छोटी कविताओं में भी—बादल राग, जागो फिर एक बार बन-बेला, दे मैं करूँ चरण आदि में—यह तत्व देखा जा सकता है। निराला थोड़े से सारगर्भित शब्दों में एक विशद् चित्र खींच देते हैं। संसार को उन्होंने प्राण संघात का सिन्धु कहा। इतने से ही शक्ति की लहरों का चित्र सामने आ गया।

कोई भी कवि सदा उदात्त और ओजपूर्ण रचानाएँ नहीं कर सकता। एक ही रचना में यदि उदात्त स्वर ही सुनाई दे तो श्रोता विचलित हो उठे। निराला की काव्य की विशेषता है, विरोधी तत्वों का सन्तुलन, उदात्त और अनुदात्त का समन्वय। इससे कथा वस्तु, चरित्र चित्रण या छन्द-प्रवाह में एकरसता नहीं आने पाती। "राम की शक्तिपूजा" में एक ओर राम का पराजित मन है तो दूसरी ओर हनुमान का शक्ति प्रदर्शन है. विभीषण की दीनता और राज्य लोलुपता है तो दूसरी ओर लक्ष्मण का अमोघ तेज है। कविता में युद्ध की विभीषिका का वर्णन है तो माँ को याद करते हुए राम की यह सरल उक्ति है,

"कहती थी 'माता मुझे सदा राजीव-नयन !"

एसे ही 'बादल राग' में गगन से स्पर्द्धा करने वाले पर्वत हैं जिनपर वज्र गिरता है, तो दूसरी ओर पृथ्वी के हृदय में "सजग सुप्त अंकुर" हैं जो सिर ऊँचा करके बादल की ओर देखते हैं। एक ओर बादल को दुर्धर्षवीर के रूप में चित्रित किया गया है तो दूसरी ओर किसान का करुण चित्र भी है। विरोधी तत्वों की यह विषमता और उनका सन्तुलन विषयवस्तु, मूर्तिविधान और छन्द-प्रवाह सर्वत्र देखा जा सकता है।

निराला चतुर काव्य-शिल्पी हैं। उनकी प्रत्येक रचना सुगठित होती है। वह रोमान्टिक काव्यों की तरह उपमानों का ताँता नहीं बाँधते। चाहे गीत और मुक्तक हों, चाहे प्रबन्ध-काव्य, वह अपने भावों को नियंत्रण करके उनको एक सुनिश्चित ढाँचे में डालते हैं। उनकी बुद्धि तटस्थ न रह कर अपना निर्माण कौशल प्रदर्शित करती है। प्रत्येक रचना में किसी भाव या विचार की विवेक-संगत परिणति देखी जा सकती है। उनके गीत अपने गठन में इतने सुन्दर लगते हैं मानो संगीत ने स्थापत्य का रूप धारण कर लिया हो।

निराला काव्य में प्रवाह है लेकिन फैलाव नहीं है। भावना घनीभूत हो कर कम से कम शब्दों में प्रकट होती है। इसलिये शब्दों के साधारण अर्थबोध के अतिरिक्त उनमें एक गूढ़ सांकेतिकता के दर्शन होते हैं। कवि के उपमान काँच की तरह चमकते नहीं हैं, हीरे की तरह दमकते हैं। निराला की कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज सुबोध नहीं है। इस का कारण भाषा की क्लिष्टता ही नहीं है; भाव की गहराई, व्यञ्जना का बाँकपन, शब्दों की ध्वनि और छन्द की लय का अनूठापन भी इसका कारण है। थोड़ा परिश्रम करने पर जैसे मिल्टन के उदात्त काव्य का रस मिलने पर उस के आगे अन्य कवियों की रचनाएं फीकी लगती हैं, वैसे ही निराला-काव्य का एक बार रस मिलने पर दूसरे कवि कम अच्छे लगेंगे। काव्य की परख जितनी ही निखरेगी, जीवन के अनुभवों में जितनी ही गहराई आयेंगी उतना ही दिन प्रतिदिन निराला का काव्य आपको अधिक रुचेगा और क्रमशः वह आपका जीवन साथी बन जायगा।

मुक्तछन्द लिखने के कारण निराला का बहुत विरोध हुआ। निराला ने दो तरह के मुक्त छंद लिखे हैं मात्रिक जैसे 'भिक्षुक" में और वर्णिक जैसे "जागो फिर एक बार" में। मात्रिक मुक्त छंद का आधार हिन्दी के विभिन्न मात्रिक छन्द हैं—भिक्षुक में सोलह मात्राओं का छन्द; वर्णिक मुक्त-छंद का अधार है कवित्त। मुक्त छंद गद्य का दूसरा नाम नहीं है। उसके भी अपने नियम हैं जिनका निबाह तुकान्त छन्दों के नियमों की अपेक्षा कठिन है। सबसे पहले मुक्तछन्द का कोई आधार चरण होना चाहिये जिसकी आवृत्ति से उसमें आन्तरिक एकता उत्पन्न होती है जैसे "जागो फिर एक बार" नाम की कविना में यह शीर्षक वाली पंक्ति ही आधार चरण हुई। इसी में थोड़ा हेरफेर करके भाव के अनुसार लय का उत्थान-पतन दिखाया जाता है। यदि आधार-चरण की पूर्ण अवहेलना की जाय तो लय-सौन्दर्य नष्ट हो जाय। शेक्सपियर के नाटकों का 'ब्लैंक वर्स" मुक्त छन्द के काफी निकट आता है। दस सिलेबल की आधार पंक्ति के सहारे कहीं छह, आठ, ग्यारह, बारह सिलेबल की पंक्तियाँ रची जाती हैं। लय की विविधता के लिये विराम का स्थान बराबर बदलता रहता है। मुक्तछन्द का सौंदर्य इसी में है कि उसमें लय की विविधता है और लय का यह परिवर्तन भावानुगामी होता है। मुक्तछन्द के प्रवाह को सम्बद्ध करने के लिये, शब्दावली में आन्तरिक गठन पैदा करने के लिये निराला ने एक विशेष कौशल से काम लिया है जिसे वह ध्वनि के आर्वत कहते थे। जैसे—

"समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से
सिन्धु नद तीर वासी!
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमूसंग" इत्यादि।

इन पंक्तियों में समर अमर, प्राण गान, सिन्धु सैन्धव, तुरंग चतुरंग आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों में समान ध्वनियों की आवृत्ति की गई है। यह कला निराला ने तुलसीदास से सीखी है जैसे—"केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई।" इस पंक्ति में रानि, रिसानि, पानि शब्दों में एक ही ध्वनि दोहराई गई है। तुलसीदास में "तरुण अरुण बारि नयन" के कौशल से निराला की इस पंक्ति की तुलना कर सकते हैं :

"अरुण पंख तरुण किरण खड़ी खोल रही द्वार।"

इस तरह का ध्वनि-सौन्दर्य निराला मुक्तछन्द के अलावा अपने तुकान्त छन्दों में भी प्रदर्शित करते हैं जैसे "राम की शक्तिपूजा" में

"वानरवाहिनी खिन्न लख रघुपति चरण चिह्न।"

या

"वारित सौमित्र भल्लपति अगणित मल्लरोध।"

ध्वनि के आवर्तों के आलावा स्वर-व्यञ्जनों के नये सामञ्जस्य से और विराम का स्थान बदलने से वह साधारण छन्दों में अद्भुत लय सौंदर्य उत्पन्न करते हैं। शब्द शक्ति के वे ऐसे पारखी हैं कि कोमल और पुरुष हर तरह की वृत्ति से काम से काम लेकर वे भाषा की व्यञ्जन क्षमता के अनूठे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

क्या कला, क्या विषय-वस्तु, क्या भाव, क्या छंद—हर दृष्टि से निराला आधुनिक हिन्दी के अद्वितीय कवि हैं। वह सरल सुबोध नहीं हैं लेकिन नितांत दुर्बोध और दुरूह भी नहीं हैं। "जुही की कली" जैसी रचनाओं से प्रायः सभी हिन्दी पाठक परिचित हैं। इस संग्रह में उनकी चुनी हुई रचनाएं हैं। लेकिन उनकी श्रेष्ठ रचनाओं की संख्या इनसे बहुत ज्यादा है। आशा है, जिन लोगों ने अबतक उनकी कविताएं न पढ़ी होंगी, वे इस संग्रह को देखने के बाद "परिमल" "अनामिका", "गीतिका" आदि उनके संग्रहों को अन्य कविताओं को भी रुचि से पढ़ेंगे।*

---

*नोट— यह लेख निरालाजी के जीवन काल में ही लिखा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला जी : जीवन और काव्य

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

निरालाजी से मेरा परिचय सन् १९२५ में कलकत्ते में हुआ था। उसके पहिले मैं उनकी कविताओं से प्रभावित हो चुका था। प्रत्यक्ष परिचय के बाद भी उनकी कविताओं से मैं आप्यायित होता रहा, किन्तु उनके व्यक्तिगत सम्पर्क से आतंकित होता रहा। कविताओं में उनका जो ओजस्वी व्यक्तित्व था उसे प्रत्यक्ष रूप से झेलने के लिए भूधर-जैसी दृढ़ता चाहिये थी। मुझमें जितनी आस्था और अनुरक्ति थी उतनी शक्ति नहीं थी। तब क्या जानता था कि जिन परिस्थितियों और समस्याओं का मैं अशक्त भुक्तभोगी हूं उन्हीं के सशक्त प्रतिनिधि निरालाजी थे। वे मुझ जैसों को जीवन देने के लिए आत्मोत्सर्ग कर गये।...

निरालाजी से अन्तिम बार मैं सितम्बर : सन् १९६१ : में मिला था। उस समय उनका महाबलिष्ठ सुदीर्घ शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया था, प्रखर सूर्य जीवन की सन्ध्या में शिथिल हो गया था, व्यक्तित्व सौम्य और निरीह हो गया था। वही व्यक्तित्व मेरे स्मृति-पटल पर अमिट होकर छा गया।

...उसके बाद निरालाजी का दर्शन फिर फिर कहाँ पा सका! इस वर्ष : सन् १९६२ में : अकस्मात् उनकी वार्षिकी के एक दिन पहिले मैंने उन्हें स्वप्न में देखा। उन्हीं की 'स्वप्न-स्मृति'—शीर्षक कविता के शब्दों में...

आँख लगी थी पल भर
देखा, नेत्र छलछलाये दो
आये आगे किसी अजाने दूर देश से चल कर।
मौन भाषा थी उनकी किन्तु व्यक्त था भाव,
एक अव्यक्त प्रभाव
छोड़ते थे करुणा का अन्तस्तल में क्षीण,
सुकुमार लता के वाताहत मृदु छिन्न पुष्प-से दीन।
भीतर नग्न रूप था घोर दमन का,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर अचल धैर्य्य था उनके दुखमय जीवन का,
भीतर ज्वाला धधक रही थी सिंन्धु-अनल की
बाहर थी दो बूंदें—पर थीं शान्त भाव में निश्चल—
विकल जलधि के जर्ज्जर मर्म्मस्थल की।

—('परिमल')

—यही थे निरालाजी।

उस स्वप्न में डबडबाई-आँखों से हम दोनों गले मिले थे—वह एक जीवन-धारा के बिन्दु-सिन्धु का स्नेहार्द्र सम्मिलन था।

वेदना का संसार ही निरालाजी का आवास था, सन्तप्त प्राणी ही उसके पारिवारिक थे। 'अनामिका' की एक कविता में उन्होंने स्वयं कहा है—

कहाँ ?—
मेरा अधिवास कहाँ ?
क्या कहा ? रुकती है गति जहाँ ?
भला इस गति का शेष—
सम्भव है क्या—
करुण स्वर का जबतक मुझमें रहता है आवेश ?
मैंने 'मैं'—शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई,
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई ··।

निरालाजी की 'मैं'—शैली क्षुद्र अहम् की शैली नहीं है। वह आत्मानुभूति में सर्वात्मानुभूति है, सब्जेक्टिव में ऑब्जेक्टिव है। अपनी 'प्रबन्ध-प्रतिमा' के एक लेख में उन्होंने 'मैं' का सुस्पष्ट विवेचन किया है।

उनकी 'मैं'—शैली में जो संवेदना थी वही 'दीन', 'भिक्षुक', 'विधवा', 'रास्ते के मुरझाये फूल' और 'इलाहाबाद के पथ पर' पत्थर तोड़ती मजदूरनी—को अपने में आत्मसात् कर लेती थी—

खंड़हर ! खड़े हो तुम आज भी
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मालिन साज,
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?

—('अनामिका')

—संवेदना और संस्कृति ही निरालाजी की आर्ष काव्यात्मा थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाजी 'व्रजादपिकठोर' और 'कुसुमादपि कोमल' कवि-मानव थे। उनका कठोर रूप आततायियों के लिये था, कोमल रूप निरीह प्राणियों के लिए। अपनी कठोरता और कोमलता में वे अर्धनारीश्वर कवि थे। कठोर होते हुए भी वे मदान्ध नहीं थे, सजग थे, यदि कभी भूल से कोई प्रमाद हो जाता था तो पश्चाताप करते थे।

निराला जी शैशव और कैशोर्य्य महिषादल (बंगाल) के राजसमाज में अंकुरित और प्रस्फुटित हुआ था। आर्थिक दृष्टि से सामान्य कृषक परिवार में उत्पन्न होने पर भी वे जैसे अपने शरीर से शक्तिशाली थे, वैसे ही स्वभाव से वैभवशाली थे। किन्तु कर्म्मक्षेत्र में प्रविष्ट होने पर उन्हें वस्तु-जगत का कैसा दारुण दुखद अनुभव हुआ। 'स्मृति' शीर्षक दीर्घ प्रगीत में उन्होंने कहा है—

छिपी जो छवि, छिप जाने दो,
खोलते हुए तुम्हें क्यों चाव ?
दुखद वह झलक न आने दो
हमें खेने भी तो दो नाव।
हुए क्रमशः दुर्बल ये हाथ
दूसरे और न कोई साथ।

—क्या बाद में उनकी स्थिति ऐसी ही नहीं हो गयी थी ?

वस्तुजगत का उन्हें जो मर्म्मान्तिक अनुभव हुआ वह यत्र-तत्र उनकी किन्हीं रचनाओं में, विशेषतः आत्मवृत 'सरोज-स्मृति' में अभिव्यक्त हुआ।

निरालाजी में प्रचण्ड स्वाभिमान था। उनका स्वाभिमान युग के वैषम्य में विपन्न और निःसम्बल हो गया था। 'स्मृति' शीर्षक प्रगीत की इन पंक्तियों में उनकी स्थिति का पूर्वाभास मिलता है—

वायु-व्याकुल शतदल-सा हाय,
विकल रह जाता हूं निरुपाय।

स्वाभिमान के कारण उनमें भी एक महत्वाकांक्षा थी, सार्वजनिक और साहित्यिक प्रतिस्पर्द्धा थी। उन्हें ऐसा जान पड़ता था कि दोनों क्षेत्र उनकी अवहेलना करते हैं, उन्हें समुचित स्थान नहीं देते हैं। 'वनबेला' शीर्षक प्रगीत में उन्होंने स्वगत कहा है—'मैं भी होता यदि राजपुत्र—।' 'अनामिका' में 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' कहा है—

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं हूं वसन्त का अग्रदूत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण-समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।

निरालाजी में 'ईर्ष्या' नहीं, गुणग्राहकता थी, तभी तो सार्वजनिक क्षेत्र में नेहरू जी और साहित्यिक क्षेत्र में पन्त जी को वे बहुत-बहुत स्नेह करते थे।

निराला जी में इतनी प्रखर प्रतिभा थी कि बिना प्रतिस्पर्द्धा के भी अपनी गरिमा में अप्रतिम बने रह सकते थे, क्योंकि उनमें मौलिक वैशिष्ट्य था।

सामाजिक आसामंजस्य के कारण वे अपने को एकाकी और जीवन-शून्य अनुभव करने लगे थे। 'गीतिका' के एक गीत में उन्होंने उच्छ्वसित होकर कहा है—

मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा
स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या खिल सकेगा ?

'अनामिका' की कविता 'ठूंठ' में मानो उन्होंने अपनी ही परवर्ती स्थिति को प्रत्यक्ष देख लिया था—

'अब यह वसन्त से होता नहीं अधीर
पल्लवित झुकता नहीं यह धनुष-सा
कुसुम से काम के चलते नहीं हैं तीर'

दो-तीन वर्ष पहिले, वसन्तपंचमी के अवसर पर जब वे अचानक काशी आ गये थे तब उनके दर्शनार्थ मैं भी गया था। महीनों से उन्हें देखा नहीं था। उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चिंता जनक समाचार फैला हुआ था। यह जानने के लिए कि उनमें अब भी कितना तेज है, मैं उनके मुख को ध्यान से देखने लगा। उन्होंने कहा—क्या देखते हो, मुर्दा हूं मुर्दा। क्या सचमुच वे उस निर्जीव स्थिति में पहुंच गये थे जिसके लिए 'ठूंठ' में उन्होंने कहा है—

ठूंठ है यह आज।
गई इसकी कला,
गया है सकल साज।

कला तो उनमें आजीवन बनी रही, किन्तु साज-शृंगार बहुत पहिले ही छूट गया था। जीवन की भाराक्रान्तता में साज-शृंगार उन्हें बेगार जान पड़ने लगा था। जब कभी किसी विशेष अवसर पर वे सजते-सँवरते थे तो अपनी कला को कवि-व्यक्तित्व दे देते थे, उस समय कैसे सुशोभन जान पड़ते थे!

वास्तव में छायावाद के किसी भी कवि का जीवन सुखी तथा पल्लवित नहीं हुआ! यह क्यों ? युग के उन्नयन के लिए रोमैन्टिक कवियों का एक विशेष चित्रपट होता है, वह प्रचलित सामाजिक और आर्थिक रूढ़ियों में फिट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो पाता। अपनी चेतना को तिलांजलि देकर कोई भी रोमैन्टि कवि सांसारिक मनुष्यों की तरह स्वार्थ-पंकिल नहीं हो जाना चाहता। अपनी साधना के लिए व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का बलिदान कर देता है। 'युगवाणी' के शब्दों में उस युगस्रष्टा के लिए भी यही कहा जा सकता है—

हृदय रक्त अर्पित कर मधु को, अपर्ण श्री शाल !
तुमने जग में आज जला दी दिशि दिशि जीवन-ज्वाल।

प्रचलित सामाजिक और आर्थिक रूढ़ियों में किसी भी देश में जनसाधरण को भी जीवन कहाँ मिल पाता है! आत्मीयता के अभाव में संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं, गृही हो अथवा एकाकी, सब एक से ही तो जीवन्मृत हो गये हैं। उनका साज-शृंगार शवाच्छादन मात्र है।

प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की सजीव साधना कैसे की जा सकती है! निराला जी 'वनबेला' में इसे चित्रित कर गये हैं—

नाचतीं वृन्त पर तुम, ऊपर
होता जब उपल-प्रहार प्रखर।
अपनी कविता
तुम रहो एक मेरे उर में
अपनी छवि में शुचि संचरिता।"

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाजी की सौन्दर्य-साधना

डॉ॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

आज की कविता में क्षणवादी सौन्दर्य-साधना प्रचलित है। यह क्षणवाद हिन्दी के सभी प्रकार के काव्य में स्वीकृत नहीं है परन्तु एक विशेष कविसम्प्रदाय में वह अवश्य प्रिय है। क्षणवाद का जन्म विश्वयुद्ध जन्य परिस्थिति में योरोप में हुआ था : जब चारों ओर विनाश तांडव नृत्य कर रहा होता है अथवा जब विनाश की घोर आशंका रहती है तब "सनातन" सौन्दर्य सृष्टि की चिन्ता नहीं की जाती क्योंकि जो भी सुख या आनन्द के क्षण प्राप्त होते हैं, उन्हीं का महत्त्व होता है, उपन्यासों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। उपन्यासों के नायक युद्ध से किंचित अवकाश मिलने पर सुरा और सुन्दरी में इसलिए निमग्न होते हैं क्योंकि कल मृत्यु निश्चित है, यह वह जानते हैं, अतः जो अवशिष्ट "क्षण" हैं, उनका महत्त्व असंदिग्ध हो जाता है! इस क्षणवाद को युद्ध के बाद समाप्त हो जाना चाहिए था किन्तु तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका ने ही क्षणवाद को जीवित नहीं रखा अपितु इसलिए भी यह जीवित रहा क्योंकि क्षणवाद में एक क्षण को तीव्रतापूर्वक मुग्ध होकर सर्वव्यापी चिन्ताओं, आशंकाओं से निश्चिन्तता पूर्वक जीने या भोगने की प्रवृत्ति में एक रोमांस, एक नवीन आनन्द का अनुभव होता है। इन दोनों के अलावा क्षणवाद को जीवित रखने का एक तीसरा उपाय यह किया गया कि इस क्षणवाद की Theory of knowledge के आधार पर व्याख्या की गई कहा गया कि जो क्षणवाद नहीं है वह भी क्षणवाद है आर्थात् सब अनुभव किसी क्षण विशेष में ही होते हैं, कुमार-सम्भव या मेघदूत की धारणा कालिदास के मन में किसी एक क्षण में ही विद्युतवत् कौंध गई होगी, इसी तरह सीता के सौन्दर्य या राम के गौरव की अंतर्दृष्टि भी तुलसी के मन में किसी एक ही क्षण में सहसा जाग्रत हुई होगी और इसी तरह निराला की 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर' 'बादल', 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' या 'जुही की कली' में जो अंतर्दृष्टि और अनुभूति है, जो धारणा है वह भी किसी एक क्षण की ही सृष्टि है। इस तृतीय व्याख्या से क्षणवाद शाश्वत दर्शन दिखाई पड़ने लगा और जो इसे न माने, उसे पिछड़ा हुआ घोषित कर दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षणवाद के साथ ही 'लघुतावाद' का भी प्रचार हुआ, कहा गया कि 'महान' की साधना से तानाशाहों का जन्म होता है और ये तानाशाह ही समाजसुधार या सामाजिक क्रान्ति के नाम पर विश्व मानव का नाश कर रहे हैं और इसलिए सामान्य "लघुमानव" की उपेक्षा ही होती रही है अतः लघुमानव की लघु सामान्य भावनाओं और प्रतिक्रियाओं का चित्रण होना चाहिए। इस लघुतावाद से भी एक सौन्दर्य सिद्धान्त निकाला गया, वह यह कि लघु चित्र लघुभाव, लघुमानव ही वास्तविक है और जो वास्तविक है वही सुन्दर है क्योंकि वही मानवीय है !

निराला की सौन्दर्य-साधना उपर्युक्त भ्रमों का उद्घाटन करती है पुनः शाश्वत अर्थात् स्थायीसौन्दर्य और विराटमानव या महामानव की धारणा की प्रतिष्ठा करती है। निराला लघु के स्थान पर विराट के और क्षणक्षण में अनुभूत महत्वहीन अर्धसुन्दर या असुन्दर अनुभवों के स्थान पर स्थायी या सनातन अनुभूतियों के चित्रकार हैं, उनकी सौन्दर्य-साधना का यह पक्ष उन्हें "क्षणक्षण नवीन" बनाए रखता है।

जातियों और देशों के उत्थानपतन अथवा विश्व की समग्र उन्नति इस तथ्य में निहित है कि महान की उपासना हो, विराट की साधना हो, लघुता और क्षणवाद का अर्थ है कि हम "अपने" को इतना अधिक महत्व देने लगे हैं कि अन्य सभी प्रश्नों से कतराकर उनका सामना न करके अपने अहं में ही निमग्न रहने को हम समस्या का समाधान समझने लगे हैं, सामने जो भीषण दैत्य है उससे आँख मूँदकर अवशिष्ट क्षणों में हम आनन्द नहीं ले सकते जयद्रथ की अन्तिम रात की स्थिति में कौन आत्मनिमग्न होकर रह सकता है ?

इसलिए आज विश्व में कतिपय नवयुवकों की चेतना अमेरिका की 'बीटनिक चेतना' होती जा रही है, यह मानसिक दासता है, बाह्य जविन की कठोरताओं का सामना न करके अपने में बन्द हो रहने की स्थिति सचमुच दारुण है, निरालाजी की सौन्दर्य-साधना इस स्थिति में इस उक्त मानसिकरुणता के लिए उपचार के समान प्रतीत होती है—राष्ट्रीय पराधीनता के क्षणों में उन्होंने एक ऐसे सौन्दर्य-सिद्धान्त का आविष्कार किया था जो तब तक अवश्य उपयोगी और सुन्दर होगा जब तक विश्व में किसी भी प्रकार की दासता या व्याधि है :—

"साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में दिखाइ पड़ती है, इस तरह जाति के मुक्ति-प्रयास का पता चलता है – चित्रों की सृष्टि होती है, पर वहाँ उन तमाम चित्रों को अनादि और अनन्त सौन्दर्य में मिलाने की बड़ी चेष्टा रहती है— साहित्य में इस समय यही प्रयत्न जोर पकड़ता जा रहा है और यही मुक्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास के चिह्न भी हैं, अब लीलाम्बरी ज्योतिमूर्त्ति की सृष्टि कर चतुर साहित्यिक फिर उसे अनन्त नभमण्डल में लीन कर देते हैं……इस तरह चित्रों की सृष्टि असीम सौन्दर्य में पर्यवसित की जाती है और यही जाति के मस्तिष्क में विराट दृश्यों के समावेश के साथ ही साथ स्वतंत्रता की प्यास को भी प्रखरतर करते जा रहे हैं"

यहाँ रहस्यवाद का भ्रम हो सकता है, किन्तु यहाँ 'असीम' और 'विराट' प्रतीक हैं, मूल प्रश्न है विराट चित्रों की सृष्टि का और उसे अन्त में किसी विराटतर में लीन कर देने का जैसे कि निराला द्वारा तरंगों का वर्णन :—

किस अनन्त का नीला अंचल हिलाहिलाकर आती हो तुम—
सजी मण्डलाकार

सोह रहा है हरा क्षीण कटि में अम्बर शैवाल।
तिमिर तैर कर भुज मृणाल से सलिल काटती
आपस में तुम करती हो परिहास।

"नभ में नीले अंचल का हिलना" एक लघु चित्र नहीं प्रस्तुत करता है, एक विराट दृश्य उपस्थित करता है। अन्त में तरंगों के इस गतिमय विशाल दृश्य को असीम सागर में पर्यवसित करने का संकेत है। निराला ने इस विधि का सर्वाधिक प्रयोग किया है। राम की शक्ति-पूजा में भी यही विधि है। और इन विराट चित्रों से "जाति की मुक्ति के प्रयास" का पता चलता है। जहाँ कोमल चित्र हैं, वर्ण्य विषय लघु हैं वहाँ भी अन्त में उसे देशकालहीन विराट असीम में सम्पृक्त करने का प्रयत्न है जैसे "जुही की कली" में। "सन्ध्या सुन्दरी" में सन्ध्या का मनोरम चित्रण करने में उसे आकाश के विस्तृत नीलफलक से सम्पृक्त किया गया है इसलिए सन्ध्या में विराटता पृष्ठभूमि से झलकती रहती है, इन चित्रों के दर्शन से चित्त विकसित होता है उसकी परिधि व्यापक होती है और चेतना में महान के प्रति प्यास अनायास ही जागृत हो जाती है। "क्षणवादी" चित्र बचकाने प्रतीत होने लगते हैं जैसे कुश्ती में हारे और अपने पर ही खीझे हुए बच्चों के चित्र हों!

क्षणवादी रचनाओं में जो तीव्रता मिलती है इसे रोमाँटिक युगीन रचनाओं की तूफानी उद्दामता और विकट ऊष्मा से अलग समझना चाहिए। पराजित और आशंकित व्यक्ति भोग में जिस तीव्रता से लिप्त होता है क्षणभरके लिए वह तीव्रता व्यक्ति के आत्मा की महत्ता को व्यक्त नहीं करती किन्तु निराला जैसे रोमांटिकों में "जुही की कली" आदि में यौवन की जो उद्दामता मिलती है वह आशंकित व्यक्ति की पराजित तीव्रता नहीं है वह बंधनों के विरुद्ध घूर्णित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामानव की स्वभाविक प्यास है ऐसी प्यास जो तृप्ति की आकांक्षा को तो प्रकट करती है किन्तु उस तृप्ति से अपने गंतव्य के लिए वह प्रेरणा बटोरता है पराजय नहीं।

छायावादियों की "अबलामयता" पर प्रायः आक्षेप किया जाता है। किंतु यहाँ भी निराला ने देशकाल स्थित रमणी को व्यापक सूक्ष्म-सौंदर्य में लय करने और उससे प्रेरणा प्राप्त करने प्रयत्न किया है। प्रायः यह भुला दिया जाता है कि "स्थायीभाव" पर ध्यान केन्द्रित रखने से अन्य प्रतिकूल भावनाएं भी उस स्थायीमनोवृत्ति को पुष्ट करने लगती हैं, अर्थात् मनुष्य के अवधान में जब कोई महान लक्ष्य रहता है तो उसकी अन्य मानवीय वृत्तियाँ - रति, क्रोध, भय आदि भी उस मानव-अवधान-केन्द्र-स्थित मूल लक्ष्य की पुष्ट-कारक या सहायक बन जाती हैं, रोमांटिकों ने वस्तुतः "सौंदर्य" को जहाँ "साध्य" कहा है, वह भी इस कारण कि सौंदर्य की आराधना दासता, दीनता, विषमता और अन्य सभी प्रकार की विकृतियों के विरूद्ध मनुष्य भी "पूर्णता" के प्रति प्यास को प्रकट करती है। अतः निराला द्वारा अराध्या नारी क्षणवादियों द्वारा आराधित खंडित और 'अपूर्ण' नारी नहीं है अपितु वह नारी "ज्योतिः स्वरूपा" नारी है, "अरूप में भुवन मोहिनी ज्योतिः स्वरूपा नारी' अतः इस नारी को निराला ने वासना-कर्दम के रूप में न देखकर विकसित कमल के रूप में देखा है—

"साहित्य के एक पृष्ठ में एक विकच नारी की मूर्ति, तम के अतल प्रदेश में; मृणाल दण्ड को तरह, अपने शत शत दलों को संकुचित संपुटित लेकर बाहर आलोक के देश में अपनी "परिपूर्णता" के साथ खुल पड़ती है, जड़ों में प्राण संचरित हो जाते हैं।"

क्या छायावाद के बाद जड़ों में प्राण संचार करनेवाली किसी "सीता" (राम की शक्ति पूजा) अथवा "कामायनी" (प्रसाद) की सृष्टि हो सकी है? और अघोर क्षणवादी भी इस तथ्य से सहमत होगा कि वह इस उक्त भव्य घोर पवित्र नारी की मूर्ति की भी सृष्टि नहीं कर सका जो निराला ने की है या प्रसाद ने की है। कारण क्या है? कारण यह है कि कवि सौंदर्य के प्रति जो धारणा (Concept) रखता है, उसी प्रकार के सौंदर्य की सृष्टि वह कर सकता है क्योंकि सृष्टि धारणा के गर्भ से प्रस्फुटित होती है। यही कारण है कि आलोचक इन धारणाओं को इतना महत्व देते हैं, ये धारणाएँ तदनुरूप भावनाओं की सृष्टि करने में भी सफल होती हैं। किसी भी देश की भावना को देखकर हम कह सकते हैं कि इस देश की अमुक धारणाओं से ही अमुक भावनाओं को जन्म मिला है।

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला ने अपनी धारणाओं में तात्कालिक सामाजिक और राजनैतिक संकट से मुक्ति प्राप्त करने के लिये प्रेरणा प्राप्त करने पर सर्वत्र ध्यान दिया है, अतः छायावादियों को केवल "कला के लिये कला" के प्रयोगकर्ता के रूप में नहीं देखना चाहिये; उनकी सौंदर्य-साधना क्षणवाद की तरह कटी हुई पतंग की तरह आकाश में नहीं उड़ती, वह आकाश में उड़ती अवश्य है किन्तु छायावादी सौंदर्यसाधना कटी पतंग नहीं है उसकी डोरी धरती पर खड़े कवि के हाथ में है और वह डोरी काफी मजबूत भी है।

वस्तुतः किसी क्षण में कौंध जाने वाली साधारण अनुभूति कोई साधना नहीं है, साधना है, ऐसी काव्यवस्तु की सृष्टि जो रमणीय हो—अर्थात् क्षण क्षण नवीन प्रतीत हो। 'क्षण' की सृष्टि और "क्षण क्षण नवीन" सृष्टि – इन दोनों में अंतर है। क्षणवादी नवीनता के लोभ में अथवा आयामविस्तार के लोभ में यह भूल गया कि प्रत्येक साधारण या दैनिक व्यवहार सम्बन्धी अनुभव में उच्चकोटि के सौंदर्य की शक्ति नहीं होती। लघु को भी महान के सन्दर्भ में रखकर देखे जाने अथवा महान से लघु को सम्बद्ध कर देने से ही "क्षण क्षण" नवीन सौंदर्य की सृष्टि होती है। नागमती की दैनिक चर्या, उसके महान "विरहानुभव" और एकनिष्ठता के कारण जिस गौरवमयी नागमती की मूर्ति की सृष्टि होती है उसी की वजह से उसके साधारण "क्षण" हमें आकर्षक लगते हैं। किसी कवि का "स्टोव" के सम्मुख बैठकर उसकी आवाज सुनकर उस प्रभाव को (impression) ध्वनिमूलक शब्दों में चित्रित करना केवल इन्द्रिय-ग्रहण (sensation) तक ही सीमित होता है जबकि निराला जैसे कवियों की सौन्दर्यसाधना में इन्द्रिय जगत, मनोजगत तथा बौद्धिकजगत से विच्छिन्न रूप में कहीं नहीं मिलता। कहीं-कहीं क्षणवादी ऐन्द्रिय अनुभव को अपनी किसी सर्वथा निजी अनुभूति के साथ अवश्य सम्बद्ध करता है, अथवा किसी सर्वथा नवीन वस्तु को—वह किसी निजी अनुभूति के प्रतीक के रूप में देखता है किन्तु यहाँ चूँकि कवि की "निजता" अत्यधिक लघुताग्रस्त या निजतापीड़ित दिखाई पड़ती है अतः उससे उदात्त और व्यापक मानवतावादी भावनाओं की सृष्टि नहीं हो पाती, विकलांग सौन्दर्य का कारण यही है। इसके विपरीत निराला की निजी अनुभूति में भी एक व्यापकता रहती है। ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए 'हिमालय और सरिता' का जो विराट रूपक लिया गया है, उसमें "ब्रह्म और जीव" का सम्बन्ध सर्वथा अपरिचित अनुभव नहीं है, साधकों को छोड़कर सामान्य व्यक्ति प्रेयसी-प्रियतम-मधुरतम और चिरपरिचित सामाजिक सम्बन्ध की ही "तुम और मैं" में झलक पाकर पुलकित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो उठता है। अतः छायावाद में जो रहस्यवाद भी मिलता है, उसमें व्यापकता भी है, क्योंकि रहस्यवाद के नाम पर जो रचनाएँ मिलती हैं, उनमें वस्तुतः "ब्रह्म और आत्मा" के नाम पर लौकिक प्रेम का ही वर्णन होता है, तुलसीदास ने स्पष्ट कहा था कि ज्ञान को अज्ञान के बिना अर्थात् अलौकिक को लौकिक के बिना नहीं कहा जासकता—"ज्ञान कहै अज्ञान बिन सो गुरु तुलसीदास"! इस उक्ति को मथने पर परिणाम यही निकलता है कि रहस्यवादी कविताओं को जो हम कवियों का "निजी" लोक समझते हैं अथवा उन्हें "अलौकिक या अवास्तविक अनुभव" कहते हैं, वह सही नहीं है। अलौकिक रहस्यवाद में आनन्द और सौन्दर्य इसलिए आता है क्योंकि उसमें लौकिक अनुभवों का ही वर्णन होता है और सौन्दर्य का आधार सर्वदा लोक है और लौकिक अनुभव निजी नहीं, व्यापक और वास्तविक होते हैं। निराला का रहस्यवादी काव्य भी इसीलिए क्षणवादियों से अधिक व्यापक और वास्तविक है, इसके अतिरिक्त उसमें वह उदात्तता भी है जो कोरे इन्द्रियजगत के चितेरे क्षणवाद में नहीं मिलती। छायावादियों का रहस्यीकरण वस्तुतः एक सौन्दर्य विधि है, जिससे सूक्ष्म सौन्दर्य की सृष्टि होती है :—

चमकी तब तक तारा नवीन
द्युति नील-नील जिसमें विलीन
हो गई भारती रूप क्षीण महिमा अब
आभा भी क्रमशः हुई मन्द
निस्तब्ध व्योम, गति रहित छन्द।
आनन्द रहा, मिट गए द्वन्द्व, बन्धन सब
अपनी असीमता में, अवसित प्राणाशय!

अतः या तो निराला में रूप का वर्णन है अथवा सूक्ष्मीकरण के क्षणों में रूपक्षीण होने पर 'महिमा' जन्य आनन्द की सृष्टि होती है, "क्षण की उत्तेजना" नहीं!

जब-जब कवियों ने जबरदस्ती के बौद्धिक वाग्विलास को काव्य कहा है जैसाकि दरबारी काव्य में, तब अन्तस् प्रेरणा के अभाव में—काव्य श्री की हानि हुई है पुराने युग में अंतस् प्रेरणा की प्राप्ति के लिए कविगण समझते थे कि काव्य किसी अज्ञात शक्ति के अवतरण से आता है, एक प्रकार का भूतावेश इसके लिये आवश्यक है क्योंकि उस स्थिति में अनायास ही शब्द भाव और वैदग्ध्य की प्राप्ति हो जाती है, इसके लिए कवि सरस्वती की आराधना करते थे, और न जाने क्या क्या करते थे, वस्तुतः उस भावावेशी विशिष्ट मानसिक स्थिति का नाम ही देवता था। दैनिक जीवन के नीरस और जड़ कार्यकलाप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त कविस्थिति की स्पष्ट शत्रुता है अतः जड़ताग्रस्त चेतना की मुक्ति के लिए जाड्यापहा सरस्वती की आराधना या ध्यान किया जाता था। रहस्यवादी कवि देवतावाद के विरोधी थे परन्तु वह उस रहस्यमय सत्ता में रमकर उस भावुक स्थिति को प्राप्त करने लगे। छायावाद तक में यह प्रयत्न दिखाई पड़ता है :—

तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान—निराला

इसी प्रकार महादेवी का यह कथन कि वह वीणा भी हैं और रागिनी भी, उक्त कथन को पुष्ट करता है। प्रगतिवादी कवि इस उक्त मनोवैज्ञानिक सहायता से वंचित हो गए अर्थात् दार्शनिक दृष्टि से किसी देवता या ब्रह्म के खंडन में यह भी भुला दिया गया कि यह देवता एक मनोवैज्ञानिक सहारा भी था जो काव्य के लिए एक मस्ती एक inspiration का दान करता है। प्रगतिवादी कवियों के काव्य में प्रथम सोपान में, जो निषेधात्मक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, यानी केवल क्रोध का वर्णन वह इसी कमी के कारण है, काव्य में समूचा मानसिक जगत् स्पन्दित होना चाहिए और वहाँ वे स्तर स्पर्शित होने चाहिए जो कथा, नाटक आदि द्वारा स्पर्शित नहीं हो सकते क्योंकि उपन्यास में जीवन यथावत् चित्रण होगा, स्थूल जगत पर ही आप रहेंगे, बुद्धि का अधिक अंकुश होगा, संकेतों से काम न चलेगा, वर्णन करना होगा; स्पर्श अपर्याप्त होंगे—प्रहार करना होगा, बखिया उधेड़ना होगा, पर्दा फाश करना पड़ेगा किन्तु काव्य से भी उपन्यास का काम लिया गया और निराला की यह सीख भुला दी गई कि सौन्दर्य की सृष्टि के एक भावात्मक (positive) मानसिक स्थिति में—एक विशेष मूड में रमने की आवश्यकता है चाहे उसे आप सरस्वती वंदना से प्राप्त करें अथवा "जनवंदना" से अंततः पुराने देवताओं के स्थान पर "जनता" अथवा "भविष्य मंगल" भी एक धारणा ही है और उसके रूप का हम साक्षात्कार करके अंतस् प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रयोगवाद में निराला तथा अन्य छायावादियों की सौन्दय-साधना की और भी अधिक उपेक्षा हुई। कहा गया कि छायावादी झूठी दुनिया के झूठे जन्तु हैं, उनकी भाषा अवास्तविक, उनका रूप वर्णन अवास्तविक और उनकी धारणाएँ तो घोर अवास्तविक हैं, परम्परा से लाभ न उठाने का फल सम्मुख है। छायावाद के विराट चित्रों के सम्मुख लघु चित्रों का तर्क आया। उदात्त के स्थान पर विकृति को आराध्य बनाया गया। शिव के स्थान पर अशिव, सुन्दर के स्थान पर कुरूप, पवित्र पाचन के स्थान पर वीभत्स बदहज्मी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषासौष्ठव के स्थान पर हर प्रकार का असौष्ठव केवल इस आधार पर अपना लिया गया कि वैज्ञानिक युग में गद्य ही स्वाभाविक लगता है तथा नई भावनाओं को पद्य में नहीं कहा जा सकता और न सुष्ठु भाषा में उसे कहा जा सकता है! कई छायावादी और कई प्रगतिवादी छायावाद को अबतक का सर्वश्रेष्ठ काव्य मानते रहे किन्तु इन सबको 'आउट ऑफ डेट' या 'स्पेंट अप' कह कर इनका उपहास किया गया किन्तु इतिहास—साहित्य का इतिहास—बड़ा ही निर्मम पशु होता है। यह केवल परिणाम से ही किसो की जाँच करता है—किन्तु परिणाम में हमारे सम्मुख प्रकृति सम्बन्धी कुछ सुन्दर रचनाओं, कुछ व्यंग्यों और कुछ आकर्षक वक्तव्यों के अलावा जिस असौन्दर्य की सृष्टि हुई है, वह प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। कविता या तो भाषणों का रूप ले रही है या लघु होते होते पहेली बन रही है अथवा ध्वन्यर्थमूलक अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत करने में वह लग गई है। कारण है अपनी काव्यपरम्परा से सहसा कटकर अलग हो जाना और इसमें भी छायावाद की उपलब्धियों और सौन्दर्य-विधियों से लाभ उठाने की भीषण प्रतिज्ञा कर लेना किन्तु जादू तो उसे कहते हैं जो सर पर चढ़ कर बोले। निराला ने 'जुही की कली" में सन् १९१६ में जो मानवीकरण प्रस्तुत किया था उसका तात्पर्य यह था कि प्रकृति और मनुष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है और प्रकृति के सौन्दर्य को मानवीय सौन्दर्य पहनाकर और भी अधिक मोहक बनाया जा सकता है। यह सौन्दर्य-विधि इतनी प्रभावशाली बनी कि आज की नयी कविता में जहाँ जो भी मनोरम लगता है वहाँ आपको या तो 'मानवीकरण' मिलेगा या रूपक परम्परा अथवा उपमा परम्परा और नई उपमाओं को "बिम्ब" नाम देकर जब नई कविता के स्रष्टा-आचार्य घोषित करते हैं कि वे परम्परा के प्रति घोर विप्लवी हैं तब मन में आता है कि ऐसे आचार्यों को अर्धचन्द्र देकर यह कहा जाए आइए जरा परीक्षा तो करें, आप में जो कुछ भी जहाँ मनोरम है वह सब इसलिए मनोरम है कि उसमें 'परम्परागत सौन्दर्य' विधि का ही प्रयोग किया गया है और जहाँ-जहाँ नया कवि विप्लवी हुआ है, अर्थात् जहाँ जहाँ उसने मधुर-मधुर कोमल-कोमल के विरुद्ध जाने की झोंक में चाँदनी रात में गधों और कुत्तों का बच्चा जनती हुई शूकरी का, बदहज्मी की डकारों का, बेशर्मी से आँखें लड़ाती हुई लड़कियों का जूतों के फटे तले जैसे मन का अथवा ऐसे ही उस विद्रूपीकरण का प्रयत्न किया है जिसके प्रति जनता के मन में स्वाभाविक घृणा है वहाँ नई कविता का स्रष्टा बुरी तरह असफल हुआ है और यदि वहाँ सफल भी हुआ है, तो गद्यकार रूप में, "वक्तव्य बाज" के रूप में, कवि के रूप में नहीं। अतएव निराला के स्मरण का अर्थ है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी सौंदर्य साधना से लाभ उठाना, उनकी सामाजिक मंगलेच्छा से प्रेरित होना और उन सब "मूल्यों" के लिए संघर्ष करना जिनको निराला ने अपने काव्य और साहित्य में वाणी दी है जिनके लिए महाप्राण निराला क्षणक्षण जूझे। क्या महाकवि जनता के क्षण क्षण में कौंधने वाले देश का दारिद्रय, शासकों का अहंकार और अत्याचार की मूक वेदना, सामाजिक व्यवस्था का विषमता जन्म दाह तथा हिन्दी के प्रति उपेक्षा आदि भावों और अनुभूतियों की कल्पना हमारे "क्षणवादी" कवि नहीं कर सकते ? क्या हम ऐसी व्यवस्था के लिये संघर्ष नहीं करना चाहते जिसमें हमारे क्षणवादियों के 'क्षण' जिस दंशन और पीड़ा का, जिस अनास्था और कुंठा का अनुभव कर रहे हैं, उससे उन्हें सर्वदा के लिये मुक्ति मिल जाये ? निराला आज भी हमें ललकार रहा है :—

"जीवन की तरी खोल दे रे जग की उत्ताल तरंगों पर"

— — — —

"निरालाजी ने काव्य के विविध अंगों तथा भावनाओं को व्यक्त किया है। कला-पक्ष में वे स्वतंत्रता के प्रचारक हैं। उसी भांति काव्य-विषय के चयन में भी वे स्वतंत्रता के प्रतीक हैं। मानव-हृदय तथा प्रकृति-जगत के सरल और कठिन सभी प्रसंगों को उन्होंने अपनाया है। साहित्यिक-रूढ़ियों के वे शिकार नहीं हुए। मानव-जीवन में निरन्तर सोची जाने वाली वस्तुओं और विषयों पर भी उन्होंने कविता की है।"

—डॉ॰ भगीरथ मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावादी कवि निराला

प्रो० शालिग्राम उपाध्याय

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक से चतुर्थ दशक तक साहित्यिक युग निर्विवाद छायावाद का युग माना जाता है। उस समय एक ओर लोकमान्य तिलक, महामना मालवीयजी, विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी आदि की सेवाओं के फलस्वरूप भारत में राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक सुधार उग्रतर हो रहा था तो दूसरी ओर व्यक्ति स्वातंत्र्य और वक्तृ-स्वातन्त्र्य का भी आगमन हो रहा था। द्विवेदी-युगीन-साहित्य में रीतिकालीन संकुचित प्रेम व्यापक होकर समाज और राष्ट्र की ओर तो उन्मुख हुआ पर उसकी व्यापकता भी नये कवियों के लिये सीमित ही थी। पारंपरिक-सीमित-भावक्षेत्र और एक निश्चित भाव-प्रकाशन प्रकिया से नये कवि असंतुष्ट थे। वे अपने 'अहं' को व्यापक और विराट् बनाने में तन्मय और विश्ववाद का संवाद सुनाने के लिए आकुल थे। ये कवि जुष्ट उपमानों से रुष्ट थे, अतः अपने आप में मग्न और सुष्ठु उपमानों के आविष्कार में संलग्न थे। उन्होंने व्रज साहित्योपवन के तरुलता वितान वीरुधों की गणना कर ली थी। कविता व्रजांगना के वक्षस्थल की जाँच पड़ताल कर उसे संकुचित घोषित कर दिया था, साथ ही यह भी सूचित कर दिया था कि उसमें 'पूर्वी तथा पश्चिमी गोलार्द्ध, जल-स्थल, अनिल-आकाश, ज्योति अंधकार, वनपर्वत, नदी-घाटी, नहर-खाड़ी, द्वीप-उपनिवेश ; उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक का प्राकृतिक सौंदर्य नहीं समा सकता। कौन कहे, इस युग में आकर 'चिदानंद' ने अचित्-जड़ प्रकृति पर बाह्याभ्यान्तरिक उभयतः आक्रमण किया अथवा अचिर प्रकृति ने चिर-'चैतन्यानंद' को सर्वतो भावेन लुभा लिया। वह 'अहं' का विकास था अथवा व्यक्तित्व का प्रकाश। जो कुछ हो, छायावादी साहित्य गतागतानागतिक साहित्य नभो-मंडल में सर्वदा चन्द्रवत् चमकता रहेगा। यह भावाकुलता का युग था, जिसने अपने व्यक्तित्व के अनुकूल भाषा का दुकूल भी पहन लिया था। यह युग नवल भाव, अस्पृष्ट कल्पना, तालछन्द नव, रसविधान नव और अभिनवाभरण का युग था। इस नव नवलता की कोमलता के अमंद सौंदर्य पर अधिकतर छायावादी कविवर रीझ गए थे। लाली देखने वाले कबीर के समान ये कवि भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल-कोमल इतने कोमल हो गये कि कामिनियों की कोमलता उनमें समा गई। और वे स्वयं कोमलांगी बन गये। वैसे तो प्रायः सभी छायावादी कवियों ने नारी की ओर से भी कल्पनाएँ और भाव-व्यञ्जनाएँ कीं। कुछ स्वयं कवियत्रियां भी आ गईं जिनकी रचनाओं के साथ उन भाव-व्यञ्जनाओं को रहस्यवाद में रखा जाता है अथवा कवि निबद्धवक्तृ प्रौढोक्ति में उनको स्थान देकर उनका रसास्वाद किया जाता है। पर निराला का स्वभाव नारीत्व के अनुकूल नहीं था। कोमलता में भी परुष रुप उनका व्यक्तित्व सर्वदा सजग रहता था। प्रसाद से ईषद्‌न भावस्थैर्य रखते हुए भी भाव की विपुलता एवं व्यापकता एतदर्थ चित्तप्रकाशन विधि के वैविध्य तथा नवलता में निराला छायावादी कवियों में चक्रवर्ती हैं—सर्वश्रेष्ठ हैं।

निराला की परुषता के कुछ कारण हैं। 'पल्लव' की समीक्षा करते हुए कवित्त को उन्होंने जातीय-छन्द बताया और साथ ही यह भी बताया कि यह ऐसा छन्द है जिसे पुरुष, स्त्री और नपुंसक तीनों बनाया जा सकता है। आप लिखते हैं—'पंतजी ने कवित्त की लड़ी को १६ मात्राओं से जो अपने अनुकूल कर लिया वह स्त्री भेद में हो गया है। वह कभी पुरुष भेद में जा नहीं सकती, उसके स्त्रीत्व का कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। परन्तु कवित्त में यह बात नहीं। इस छन्द में एक ऐसी विशेषता है, जो संसार के किसी छन्द में न होगी। निर्गुण आत्मा की तरह यह पुरुष भी बनता है और स्त्री भी। यों पंत जी ने इसे नपुंसक सिद्ध कर दिया है।' संगीत में भी राग रागिनियों में पुरुष-स्त्री प्रधानता समझाते हुए निराला ने लिखा है—'अक्षर मात्रिक-स्वर प्रधान राग स्त्री-भेद में और व्यंजन प्रधान पुरुष-भेद में होंगे।' सारांश यह कि निराला ने कवित्त के स्त्री और पुरुष-भेद को पहचाना था और अपने स्वभाव के अनुकूल ही पुरुष-भेद का अभ्यास भी किया था। अत्यधिक अभ्यास करने के कारण निराला का काव्य स्वभावतः पौरुष या ओज प्रधान हो गया है। दूसरों को समझने के लिये भले ही भूरिपरिश्रम की आवश्यकता पड़े और किसी को उसे समझने के लिए दूसरा जन्म भी लेना पड़े, किन्तु अभ्यास, निपुणता और शक्ति के प्राबल्य से निराला की कविता पृथक् प्रयत्न साध्य नहीं। उसमें उनके व्यक्तित्व का स्वाभाविक प्रवाह है जो यौवन मद की धारा के समान अपने आप बह निकला है।

पदार्थ सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य के विभिन्न स्तरों का पता निराला को बहुत अधिक था। रति या प्रेम को विभिन्न लघुवृत्तियों से भी उनका निस्संदेह पर्याप्त परिचय था। उनकी सहृदयता का सागर जैसे अगाध था, उनकी बुद्धि की प्रखरता भी वैसे ही अपार थी। उनकी सहृदयता उन्हें चिन्तातुर बना देती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनका बुद्धिवैभव उनमें भावातिरेक जगा देता था। इसीलिये निराला को क्लिष्ट या बौद्धिक कवि कहनेवाले समालोचक भी अपनी मूक भावविह्वलता में ही उनकी वेदना को दो चार अक्षर-अक्षत-पुष्प चढ़ाये बिना नहीं बैठते।

छायावादी स्वच्छन्द कवि 'नवजीवन' और 'नव्यविराट' की कल्पना साकार करना चाहते थे। प्राचीनता से वे ऊब गये थे। उसकी शृंखला तड़तड़ा कर वे तोड़ना चाहते थे। प्रारंभ में कविता का उपहार मिलते ही दो चार भैरव के पद सुनाने की अकांक्षा रखते थे —

'अगर कभी देगी तू मुझको कविता का उपहार।
तो मैं भी तुझे सुनाऊँगा भैरव के पद दो-चार॥'

—'प्रलाप' से निराला

'प्रसाद' का मनु उस अतीत और उस सुख की चिन्ता करते-करते पागल हो जाता है, वह विस्मृति और अवसाद को बुलाने लगता है। संशय-अन्धकार पथ का भूला निराला भी अशांत है। वह कोई रसप्याला पीकर नस-नस में आनन्द सिंधु की धारा बहाना चाहता है जिससे—

'ढीले हो जायें ये सारे बन्धन,
होये सहज चेतना लुप्त—
भूल जाऊँ अपने को, कर दे मुझे अचेतन।'

—'प्रलाप'

कवि को सदियों का दारुण हाहाकर असह्य है। वह नूतन अनुराग संचित करना चाहता है वह छल कपट से दूर, दुर्बल-विश्वास से सूदूर रह, चतुर्दिक विश्वास ही विश्वास चाहता है। इसके लिये आगे कल्पनालोक में तो वह देखता ही है, पीछे की ओर भी देखता है। छायावादी प्रायः सभी कवियों ने कल्पनालोक का नौका-विहार किया है। नौका-विहार करते करते कवि 'नव' का विहार करने लगता है। 'प्रसाद' ने कहा 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे।' प्रसादजी कोलाहल की अवनी तज कर उस निर्जन में पहुँचना चाहते हैं—जहाँ सागर लहरी अम्बर के कानों में निश्छल और गहरी प्रेम कथा कहती है। वे उस आनंदभूमि पर पहुँचना चाहते हैं जिसके आगे राह नहीं। निराला भी द्वेष-विष जर्जर इस संसार से ऊब गये थे। पदार्थ का रचना अर्थ वे समझ गये थे। 'यहाँ पदार्थ वही जो रहे स्वार्थ से ही भरपूर।' उनका भी कल्पना-लोक कुछ ऐसा ही था, जहाँ वे जाना चाहते है।

हमे जाना है जग के पार।—

जहाँ नयनों से नयन मिले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव रस धार—
वहीं जाना इस जग के पार।

दूसरे को कस अन्तर तोल,
नहीं होता प्राणों का मोल,
वहाँ के बल केवल वे लोल
नयन दिखलाते निश्छल प्यार। हमें जाना० —

'परिमल'

जहाँ कामना के कुसुमों को काट-काट कर छींट बनानेवाले कीट नहीं रहते जहाँ कभी प्रेम की इंट नहीं खुलती। जहाँ हास अधरों को हिलाता और क्षुब्ध अधरों से मिलाता रहता है, जहाँ साँसो में प्रेम जिलाया जाता है और उर को उर का हार बनाया जाता है, जहाँ नयनों में केवल प्रात है, चन्द ज्योत्सना ही केवल गात है, जहाँ के पत्ते-पत्ते पर पुष्प पराग ही छाये रहते हैं। जहाँ संशय में प्राण नहीं डोलते ; न तो प्रेम में सदा मान ही रहता है। जहाँ ज्ञान में असार मोह नहीं रहता। यह है कवि का कल्पना लोक कवि को विभिन्न स्मृतियों में कभी-कभी अपनी बाल-स्मृतियाँ भी याद आ जाती है। उसे अपने सोने का संसार याद आता है। वहाँ सब कुछ सोने से ही बना है। वह एक अपरलोक है—

'रोम रोम में समाई जहाँ
चुम्बन की लालसा,
ज्योति नयन ज्योति से,
पलकों से पलक मिले
अधरों से अधर
कण्ठ कण्ठ से लगा हुआ,
बाहुओं से बाहु,
प्राण प्राणों में मिले हुए।'— 'स्मृति चुम्बन'—परिमल,

कभी-कभी अपनी आशाओं पर पानी फिरते देख वर्तमान से असंतुष्ट कवि को प्राचीन-वैभव की भी याद आ जाती है। वह अपने पिछले लोक में विचरने लगता है वह 'दिल्ली' का वैभव देखने लगता है, 'खंडहर' में बाल्मीकि-व्यास' देखने लगता है, 'यमुना के प्रति' आत्मीयता प्रदर्शित करता है। उससे पूछता है, वे प्राचीन—हमारे प्राचीन आदर्श कहाँ गए? 'राम की शक्ति पूजा' 'पंचवटी प्रसंग', 'महाराज शिवाजी का पत्र' में अपने प्राचीन वैभव को ही तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद किया गया है। नवीनता के प्रति आस्थावान् कवियों ने अपने संपूर्ण पुरातन को गर्हित नहीं समझा था। उनका 'चित्' भविष्य के कल्पनालोक में और भूत के सौंदर्य में भी आश्रय ढूँढ़ रहा था। कभी-कभी भूत के विलास पर उन कवियों को हँसी भी आती थी। इस विषय में 'प्रसाद' और 'निराला' का नाम समान रूप से लिया जा सकता है। गत विचारों को तोड़ने में अपने को सक्षम समझते हुए भी नवीनता का प्रेमी स्वच्छन्द कवि कभी-कभी उसे तोड़ नहीं पाता। स्वर्ण कनक को लेकर अपने घर जानेवाले भिक्षुक के समान जब कवि अपने जीवन की विमल प्रभा (सरोज) को उसकी नानीघर से निज-गृह-छाया तल में ले आया तो उसके विवाह के विषय में सोचता है,—

'ये कान्यकुब्ज कुल कुलाङ्गार ;
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल-नहीं, सुजल !'
फिर सोचा-मेरे पूर्वजगण
गुजरे जिस राह वही शोभन

—सरोज स्मृति

पूर्वजगण जिस राह गुजरे उसी राह को शोभन समझ कर कवि सरोज का विवाह एक कान्यकुब्ज नव युवक सत्साहित्यिक से कर देता है। कभी कभी सामाजिक उच्चावता की दुर्द्धर्ष दुरूहता से कवि आहत होता है और विधवा, भिक्षुक, तोड़ती पत्थर आदि लिखने लगता है।

'जुही की कली' निराला की प्रौढ़ छायावादी कृति मानी जाती है। उस में कविने जैसा चित्र उपस्थित किया है और उसका जैसा 'निर्वाह' किया है वैसा सुन्दर सांगोपांग चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ भी कवि का ओज उसका पौरुष शांत नहीं रह सका; यद्यपि नायक को 'निर्दय' बता कर कवित्व में स्वाभाविकता लाने का निराला ने सफल प्रयत्न किया है। स्नेह स्वप्न-मग्न अमल कोमल तनु तरुणी ; शिथिल पत्रांक की कोमल शैया पर सोई थी, उस बेचारी को प्रियतम के आगमन का पता कैसे चले? निद्रलस बंकिम विशाल नेत्रों को मूँदे रहने की मामूली कसूर से उसकी सुन्दर सुकुमार देह को इतना झकझोरना। ऊपर से उसके गोरे गोल कपोलों को भी मसल डालना !! इतनी निष्ठुरता क्यों? एक जगह 'विधवा' और 'भिक्षुक' की दीन दशा देख कहा था 'धन्य श्रेष्ठ मानव! और यहाँ यह नैष्ठुर्य! पर वह कोमलांगी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य है जो इस निष्ठुरता को वाञ्छित फल समझ नम्रमुखी हो हँसने लगती है। पता नहीं कितने दिनों के बाद सरसरित गहन गिरिकानन कुञ्ज लता पुँजों के दुर्गम मार्ग को पार करता हुआ उसका प्रियतम उसके पास आया था। उसको 'निर्दय' बना कर कवि ने अपना सारा पौरुष उसकों सौंप दिया। यह है निराला का व्यक्तित्व, कोमलता और कठोरता का समन्वय। 'वज्रादपि कठोराणि मृद्रुनि कुसुमादपि।' कालिदास ने भी एकत्र कहा था—'आश्रम मृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः' (यह आश्रम मृग है, मत मारो, मत मारो) और अपत्र—'तान कुर्वीथास्तुमुल करका वृष्टि पाता व कीर्णानी। (उन मृगों पर ओले बरसा कर उन्हें भगा देना।) क्योंकि ये आश्रम के नहीं हैं; दूसरे यक्ष के मित्र पर किसी का आक्रमण कालिदास को असह्य होगा, दूत अवध्य जो होता है। निराला की स्वकीया नायिका अपने प्रियतम का इस समय का सब कुछ सहन कर सकती है। निरालाजो स्वयं चंडी के उपासक भी तो थे।

'जुही की कली' निराला की प्रारम्भिक और प्रौढ रचना है जिसे कई पत्रिकाओं से संभवतः वापस आना पड़ा था। वह सर्वप्रथम संग्रह 'अनामिका' (१२३) में अन्य आठ कविताओं के साथ संग्रहीत थी। इस प्रथम 'अनामिका, की नौ कविताओं पर ध्यान देने के अनंतर कविवर बच्चन ने निराला को दो सुस्पष्ट भिन्न परंपराओं का सृजन करते हुए देखा है। एक समृद्ध, परिपक्व सुस्थिर, दूसरी निस्तेज कच्ची और प्रयोगात्मक। उसमें मुक्त-छन्द और छन्दोबद्ध तथा दोनों की मिश्रित शैलियाँ भी हैं। बाद में 'अनामिका' की अच्छी कविताएँ यथा—'आध्यात्म फल', 'माया', 'तुम और मैं', 'अधिवास', 'जुही की कली' और 'पंचवटी' परिमल में संग्रहीत हो गईं। और सन् '३७ की' आनामिका' में ५६ बिलकुल दूसरी कविताएँ आ गईं। इन कविताओं में 'प्रेयसी', सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति, खंडहर के प्रति, प्रेम के प्रति, प्रगल्भ प्रेम, क्या गाऊँ, प्रिया से, रेखा, तोड़ती पत्थर, वनबेला, सरोज-स्मृति और शक्ति पूजा आदि अच्छी अच्छी रचनाएँ आ गईं। इसमें रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द की रचनाओं का आश्रय लिया गया या अनुवाद भी किया गया।

निराला का 'परिमल' श्रेष्ठ छायावादी कृतियों में से एक है। इसमें उनकी सर्वश्रेष्ठ छायावादी रचनाओं का संग्रह है। कवि ने उसे तीन खंडों में विभाजित किया है। तृतीय खंड संपूर्ण छायावादी साहित्य में छन्द की दृष्टि से तो अपना स्थान रखता ही है भाव और कल्पना विलास की दृष्टि से भी अपनी महत्ता घोषित करता है।

जैसा कि ऊपर संकेतित है छायावाद में 'अचित्' में 'चित्' का विलास या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन उच्चकोटि का है। निराला को तरङ्ग-सुन्दरियाँ पता नहीं किस अनंत का नीला अंचल हिला हिला कर मंडलाकार सज कर आती हैं। वे एक ही राग में अपना स्वर मिला मिला कर उदार गीत गाती हैं। उनका रूप सौंदर्य है—

'सोह रहा है हरा क्षीण कटि में अम्बर शैवाल
गाती आप आप देती सुकुमार करों से ताल।
चंचल चरण बढ़ाती हो, किससे मिलने जाती हो।
तैर तिमिर-तल भुज-मृणाल से सलिल काटती
आपस में ही करती हो परिहास।'

नारी समूह का ऐसा सौंदर्य, मानवीकरण का ऐसा विशाल उदाहरण ऐसी प्राकृतिक छटा अन्यत्र कहाँ? निराला की सुन्दरियाँ केवल भुज मृणालवाली हो नहीं हैं, न तो प्रसाद की कामिनियों के समान झट असिका निकाली और पट आत्महत्या ही करनेवाली हैं। वे तो एक दूसरी का गला भी मरोर सकती हैं:—

"हो मरोरती गला शिला का कभी डाँटती,
कभी दिखाती जगती तल को त्रास।"—तरंगों के प्रति।

गतिमय प्रकृतिक सौन्दर्य के अन्य उदाहरण सान्ध्य सुन्दरी, वन वेला, शेफलिका आदि कविताओं में द्रष्टव्य हैं। मेघमय आसमान से परी-सी वह सान्ध्य सुन्दरी धीरे-धीरे उत्तर रही है। उसके घुंघराले काले बालों से गुँथा हुआ एक तारा हँस रहा है। मानो वह अपने हृदय की रानी का अभिषेक कर रहा है। वह सुन्दरी अलसता की लता सी है। कोमलता की तो मानो वह कली है। उसके नूपुरों में रुनझुन की झनकार नहीं केवल एक अव्यक्त चुप-चुप-चुप सा शब्द सब कहीं गूँज रहा है।

सर्वत्र—व्योम मंडल में जगती तल में—

सोती शांत सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्ष-स्थल में—
धीर-वीर-गंभीर-शिखर पर हिम-गिरि अटल अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात प्रलय घन गर्जन जलधि-प्रबल में—
क्षिति में-जल में-नभ में—अनिल-अनल में—
सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द सा चुप-चुप चुप।

यहाँ कवि ने न केवल प्राकृतिक चाक्षुष सौन्दर्य अपितु कार्णिक सौन्दर्य का भी उद्घाटन किया है "चुप चुप चुप" में क़ैसी शांति झलकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति में मानवी-करण और उसके शृंगार सौन्दर्य का वर्णन 'शेफलिका' में भी उच्च कोटि का है

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।"

यह है चिद्विलास। प्राकृतिक सौन्दर्य—जड़ प्रकृति के सौन्दर्यकी अपेक्षा मानवीय सौन्दर्य से निराला अधिक आकृष्ट हैं।

छायावाद में जड़ प्रकृति में चैतन्य हाव भाव लाये गये और प्रकृति की कोमलता और उसका सौन्दर्य नारी में लाकर क्षति पूर्ति की गई। छायावादी कवियों का मानवीय सौन्दर्य भी अपना महत्व रखता है। यह रावण की बहन शूर्पनखा का सौन्दर्य है,—विधाता ने जिसके दोनों नेत्रों में विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता भर दी है, मीन-मदन फँसाने की वंशी-सी जिसकी विचित्र नासा है, फूल-दल तुल्य कोमल गोल लाल कपोल हैं, सुन्दर चिबुक, बिजली सी हँसी, योजन-गन्ध पुष्प जैसा प्यारा मुख मंडल है, जिसके परिमल से पता नहीं कितने भौंरे खिंच कर आते हैं और उसका पराग दिङ्-मंडल में फैला जाते हैं! कपोत के समान कंठ—

"बाहु-वल्ली कर सरोज
उन्नत सरोज पीन—क्षीण कटि--
नितंब-भार—चरण सुकुमार—
गति मंद मंद,
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का
देवों—भोगियों की तो बात ही निराली है।"

जिसके पैरों पर बड़े बड़े वीर पड़ते हैं और हाथ जोड़ कर कृपा की भीख माँगते हैं, और वह सुन्दरी उन पर अवज्ञा की दृष्टि डाल अपना चन्द्रानन फेर लेती है, जब वह राम के सामने जाती है और नारियों के गुप्त धन उसके हृदय के संचित प्रेम को जब श्यामल सरोज कांति सहाज ही छीन लेती हैं। पश्चात्, जब स्वर्ण सिंहासन पर बैठाने की उसकी लालसा छिन्न-छिन्न कर दी जाती है, तो वह आत्म-हत्या नहीं करती, प्रसाद की कोमलांगी इसे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सह सकती थी। किंतु वह तो बदला लेने के लिए कालनागिनी सी घात में लग कर रुलाने की बात कहती है।

नारी सौंदर्य और उसके दिव्य भावों के अंकन में निराला को पंत से भी अधिक सफलता मिली है। निराला के संयम में अधिक तर स्वकीया का ही सौंदर्य है। यही संयत सौंदर्य-वर्णन उन्हें अपनी बेटी तक के सौंदर्य वर्णन के लिए प्रेरित करता है। विवाह के समय कलस का शुभजल पड़ते ही सरोज का सौंदर्य कैसा निखरता है? पुत्री पिता को देखकर मंद हसी हँसती है। मानो—

"होठों में बिजली फँसी स्पन्द
उर में भर झूली छवि सुन्दर
प्रिय की अशब्द शृंगार मुखर
तू खिली एक उच्छ्वास-संग
विश्वास स्तब्ध बँध अङ्ग अङ्ग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर थर थर।

और कवि देखता है कि वह उसके वसंत की प्रथम गीति है। स्वर्गीया प्रिया के संग राग भर कर जो उसने कविता में उच्छ्वसित धार शृंगार का गान किया था, वह मानो रति रूप प्राप्त कर रहा है। आकाश बदल कर मही बन गया है।

नारी रूप वर्णन में कवि ने अलक भार नयन-संसार नासिका कपोल, अधर ग्रीवा, उरोज या वक्षःस्थल पर अधिक ध्यान दिया है चरणों की गति या विविध हाव भावों पर भी कवि का ध्यान कभी कभी पहुँच जाता है। रूप-गन्ध, स्पर्श और शब्द गुणों पर कवि का ध्यान अधिक पहुँचता है। रस गुण की चर्चा कम होतो है। बाद में गर्म गर्म पकौड़ी की चर्चा हुई है। भिक्षुक को पूए न देकर वानरों को बाँटे गये हैं किंतु ऐसी रचनाएँ प्रगति वादी विचार धारा में आती है। निराला के नारी चित्रों में नम्रमुखी मुकुलित या अर्द्धनिमीलित मदिर लोचना उन्नत-उरोज वाली प्रौढ़ युवितियाँ अधिक हैं। या तो वे प्रियतम के विशाल वक्षःस्थल में जाती हुई दिखाई पड़ती हैं अथवा प्रियतम को अपने विशाल वक्ष-स्थल में आवद्ध करती हुई। इस प्रकार के चुंबनालिंगनों की निराला में कमी नहीं। गंध-स्पर्श का तो कहना ही नहीं। कवि ने इसी कारण 'परिमल का सृजन किया। ज्योति सुरभि, 'वही साँस में परिमल शीतल मन्द पवन से, गंध अधीर, सुरमि समीर भार, पलक परिमल के शीतल परिमल मधुलुब्ध मधुप करता गुंजार, की भरमार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जुही की कली' में नम्रमुखी हँसी खिली खेल रंग प्यारे संग। और वह—

सौंन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग,
किंतु नहीं चंचल प्रवाह—उद्दाम वेष—
संकुचित एक लज्जित गति वह प्रिय समीर के संग।
पंत की नवोढा के समान वह सत्वर सरकने वाली नहीं है।
उसके खिले कुसुम सम्भार
विटप के गर्वोन्नत वक्षस्थल पर सुकुमार.
मोतियों की मानो वह लड़ी
जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है।

वल सुहाग की रागी
भावमग्न कवि की वह एक मुखरता वर्जितवाही

सरलता ही से उसकी मनोरंजना होती नीरवता ही उसकी पूरी भाव व्यंजना करती। अगर चंचलता का उस पर कहीं प्रभाव दीखता है तो वह है अपने प्रियतम के आगे मृदु स्निग्ध हास रेखा में। उसमें कोई चाह नहीं है। विषय वासना तुच्छ, उसे कोई परवाह नहीं है। उसको साधना—केवल निज सरोज मुख पति को ताकना है। कवि की सुन्दरी के मदिर वे नयन दोनों हैं'।—और

"मौन मुखी कामिनी
मंद रेखा उन अधरों के हास की
हर्षित छिपाती है हरित निज वास में
नत मस्तक भोगती प्रियतम का संग सुख। कवि

एक 'जागृति में सुप्त थी, उसके जुड़े नयनों में स्वप्न विहग के समान बहु रंगी पंख खोले सो गया था। निद्रित सरोवर में जैसे क्षुब्ध कम्पन सो जाता है वैसे ही प्रिया के मौन अधरों में सुरा-स्वर सो गया था। यह है कवि का समर्थ निर्वाह'। कवि 'वन कुसुमों की शय्या' पर भी मदिर और अर्द्ध निमीलित लोचनों को देखता है।

इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली कैसी है—

'श्याम तन भर बँधा यौवन
नत नयन प्रिय कर्म रतमन।

हथौड़े से हाथ कुचलने के डर से नहीं स्वभाव से ही वह नतनयना है। कवि ने 'पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक' के द्वारा भिक्षुक का चित्र तो उपस्थित किया ही है। विधवा का कैसा प्रभावशाली चित्र अंकित किया है।—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन।'

यहाँ कवि ने अमूर्त उपमानों के द्वारा प्रभाव पूर्ण व्यंजना की है। 'जुही की कली' में नायक बहुत दूर से प्रिया के पास आया है। निराला की नायिका भी दुर्गम कंटकाकीर्ण पथों को पारकर प्रियतम के बन्द द्वार पर पहुँचती है।—

"बिछे हुये थे काँटे उन गलियों में
जिनसे मैं चलकर आई —
पैरों में छिद जाते जब
आह मार मैं तुम्हें याद करती तब
राह प्रीति की अपनी वही कंटकाकीर्ण,
अब मैं तै कर पाई।"—'अञ्जलि'

निराला का संयत पावन-प्रणय साधना माँगता है, उच्छ्लता नहीं।

"तप वियोग की चिर ज्वाला से
कितना उज्ज्वल हुआ हृदय यह
पिष्ट कठिन साधना शिला से
कितना पावन हुआ प्रणय यह।—"प्रिया के प्रति'

निराला जी ने इस प्रेमांकुर के लिये शुद्ध चित्तात्मा का क्षेत्र उर्वर बताया है। अनिमल चित्त का प्रेम पशुता की ओर खींचता है।—

"शुद्ध चित्तात्मा में उगता है प्रेमांकुर।
चित्त यदि निर्मल नहीं,
तो वह प्रेम व्यर्थ है—
पशुता की ओर वह खींचता मनुष्य को।,
—पञ्चवटी प्रसंग ४,

उन्होंने यह भी बताया है कि सच्चा प्रेम निष्कलंक कमल के समान ग्राह्य है। कवि कहता है—

"जो करे गन्ध मधु का वर्जन
वह नहीं भ्रमर।
मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय, हो श्वेत कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेद कर पङ्क
निकलता कमल जो मानव को
वह निष्कलङ्क।"

—सम्राट एडवर्ड अष्टम् के प्रति

उपर्युक्त उद्धरणों से प्राकृतिक सौंदर्य, मानवीय सौंदर्य, प्रणय सम्बन्धी विशेषताएँ, अप्रस्तुत विधान चित्रमयी भाषा और निराला की प्रतीक पद्धति का पता चलता है। शृंगारी और वेदनात्मक रचनाओं में निराला की चित्त द्रुति दिखाई पड़नी है। प्रसाद, पंत और महादेवी की रचनाओं में भी प्रायः ऐसी चित्त द्रुति दिखाई पड़ती है। किन्तु अन्य छायावादियों में निराला की चित्त दीप्ति के समान दीप्ति-मत्ता नहीं। निराला की गौड़ीय रीति छायावाद की शक्ति है। प्राण वायु के इतने उतार चढ़ाव का अभ्यास निराला को ही है। 'राम शक्ति-पूजा; छत्रपति शिवाजी का पत्र; बादल राग आदि कविताएँ निराला के व्यक्तित्व की परुषता और रुद्रवीर्यता द्योतित करने वाली हैं। नादव्यंजना का उदाहरण—

सरित तड़ित गति चकित पवन में
मन में विजन गहन कानन में
आनन आनन में रव घोर कठोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर।"

—'बादल राग'

तथा—"राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार बार आकाश विकल।"

—रामकी शक्ति पूजा

इन शब्दों से वैसा चित्र तो उपस्थित होता ही है तत्तत्वपदार्थों की ध्वनियाँ भी निकलती हुई प्रतीत होती हैं। यह है शब्द की पहचान।

निराला ने ओजोगुण के प्रकाशन में समास बहुला गौडीया रीति को आधार बनाया है, जिसमें ओजो व्यंजक वर्णों का व्यवहार किया जाता है; ओज के प्रकरण में नादव्यंजना का ऐसा सजग पारखी छायावादियों में अन्य नहीं। कवि जब क्रिया पद को वाक्य में पहले रख कर बहुत देर के बाद कर्त्ता या कर्म के द्वारा वाक्य समाप्त करता है तो लगता है वाणभट्ट की आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है और वह कादंबरी की पंक्तियाँ बोल रहा है। शायद अन्वय की अक्षमता के कारण समस्त पदों की सुदीर्घता से भयभीत किसी साहब ने प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'छू' जोड़ कर विच्छू झाड़ने का मंत्र बताया था। मुक्त छन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कवि ने प्रायः क्रिया से वाक्य प्रारंभ किया है। निराला अन्वयाविष्ट कवि हैं। जब अपनी क्लिष्ट पंक्तियों को श्रीमुख से सुनाने लगते थे तब बड़े बड़े अज्ञ भी जड़वत् निःसंज्ञ हो जाते थे। 'राम की शक्ति पूजा' में 'रवि हुआ अस्त:' से प्रारंभ कर १८ पंक्तियों के उत्थान पतन के बाद —'जानकी भीरु उर आशा भर—रावण संवरा।' पर साँस छोड़ी गई है। एक-एक पृष्ठ में मुश्किल से दो तीन पूर्ण विराम आ सके हैं। कभी-कभी इतने छोटे-छोटे वाक्य हो जाते हैं कि बस, क्रिया और कर्त्ता। यथा—'रवि हुआ अस्तः। लौटे युग दल, खिल गई सभा।' मुक्त छन्द में 'संवाद' बहुत ही प्रभाव शाली बने हैं। 'परिमल' की भूमि में मुक्त-छन्द और अतुकान्त की चर्चा करते हुए कवि ने बताया है कि "मुक्त-छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्तहो।' उसका समर्थक उसका प्रवाह है। वही उन छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम राहित्य, उसकी मुक्ति अपने विचारों की पुष्टि के लिए उन्होंने वेदों से भी उदाहरण दिये हैं। छायावाद में अपने मुक्त छन्दों के द्वारा निराला ने महान् क्रांति ला दी।

छायावादी कवि निराला ने एक ओर जहाँ छन्दों का बंधन तोड़ा-दूसरी ओर वहाँ ताल मात्राओं वाले संगीत को साहित्य के पास लाकर बिठा दिया। उधर संगीत में जो साहित्य भर दिया वह निराला जैसे महान गायक स्रष्टा कवि का हो कृतित्व है। इसीलिए 'गीतिका' पर लिखते हुए स्वयं प्रसादजी ने लिखा था—"उसके चित्रों को रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। उसका दार्शनिक पक्ष गंभीर और व्यंजना मूर्तिमती है।......केवल कोमलता हो काव्य का माप दंड नहीं है। निरालाजी ने नृम्ण और ओज सौंदर्य भावना और कोमल भावना का जो माधुर्यमय संकलन किया है, वह उनकी कविता में शक्ति साधना का उज्ज्वल परिचायक है।"

निराला ने हिंदी-काव्य कुसुम को जो 'परिमल' दिया है उसके मधु को प्राप्त कर लुब्ध गायक-भ्रमर 'गीतिका' के गीत गुनगुना कर अनवरत साहित्योपवन गुञ्जायमान करता रहेगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला के काव्य-रूप

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

निराला जी मूलतः प्रगीत कवि हैं, प्रगीत की भूमिका पर उन्होंने अनेकानेक प्रयोग किये हैं। भारतीय काव्य-परंपरा से अधिक आकृष्ट होने के कारण निराला जी ने प्राचीन पद-साहित्य की भूमिका पर बहुसंख्यक गीत लिखे हैं। इन समस्त गीतों की संख्या प्रायः ४०० है, जिनमें से कुछ पुस्तक रूप में अप्रकाशित हैं। इन गीतों में निराला जी ने क्रमागत गेयतत्व को प्रमुखता दी है, जिसके कारण उनके गीत राग और रागिनियों में बंधे गए हैं अथवा बांधे जा सकते हैं। वर्तमान समय के अन्यगीतकारों की तुलना में निरालाजी के गीत शास्त्रीयशैली-सम्मत और रसानुशायी हैं। आधुनिक गीतों में प्रायः वैयक्तिकता अधिक रहती है, निराला जी के गीत वस्तुमुखी और चित्रात्मक हैं। इस विशेषता के कारण हिन्दी काव्य में निराला के गीत एक अप्रतिम स्थान रखते हैं और उनकी तुलना की संतुलित गीत-सृष्टि आधुनिक हिन्दी में अधिक नहीं है। इन गीतों में शृंगार, करुण और शांत रसों की योजना है। यों तो विनय-भावना के गीत निरालाजी प्रारम्भ से ही लिखते रहे हैं, पर अपने जीवन के अंतिम दश वर्षों में उन्होंने प्रायः शांत और करुण रस के गीतों का ही प्रणयन किया है। उनके आरम्भिक गीतों में शृंगार की प्रमुखता है ; वे दो भूमिकाओं पर निर्मित हुए हैं पहली भूमिका प्राकृतिक सौंदर्य-निरुपणों की है और दूसरी मानवीय सौंदर्य-चित्रों की। प्रकृति-वर्णन के गीतों में निराला की पद्धति प्राकृतिक दृश्यों को मानवीय रूपाकारों में प्रस्तुत करने की है; जिससे शृंगार रस की निष्पत्ति में विशेष सहायता मिलती है। मानवीय सौंदर्य-गीत प्राकृतिक उपमानों की रमणीयता और मानव जीवन की सौन्दर्य-रेखाओं से अनुरंजित हैं ; निराला के गीतों में लघुता के साथ साथ एकतानता या समग्रता का गुण विशेष मात्रा में मिलता है। उनके चित्रों में पुनरावृत्तियों का अभाव है और गतिशील चित्रों का सुन्दर समाहार है। इस दृष्टि से महादेवी वर्मा और बच्चन के से उनकी पृथक्ता स्पष्ट दिखाई देती है। जब कि महादेवी और बचन के गीतों में प्रत्येक परवर्ती बंध पूर्ववर्ती बंध का अनुसरण करता दिखाई देता है, निराला के बंधों में इस प्रकार के अनुसरण या पुनरालेखन की प्रवृत्ति नहीं है। उनके सारे बंध मिलकर चित्र को पूर्ण बनाते हैं। इसी कारण निराला के गीतों में गतिशीलता का तत्व भी देखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतों के अतिरिक्त निराला की प्रगीत-सृष्टि को हम लघुप्रगीत और दीर्घ-प्रगीतों में विभाजित कर सकते हैं। 'जुही की कली'; 'विधवा', 'भिक्षुक' 'संध्या-सुन्दरी' जैसी रचनाएँ लघु प्रगीत की सीमा में आती हैं। इन लघु प्रगीतों में निराला जी का काव्य-सौन्दर्य सर्वाधिक प्रस्फुटित हुआ है। इनमें दृश्यांकन के साथ साथ भावालेखन का तत्व समाहित है। अतएव ये प्रगीत विशेष प्रभावक्षम और सुसम्पन्न बन सके हैं।

निरालाजी के दीर्घ प्रगीतों में उतना सुन्दर संगठन नहीं है – उदाहरण के लिए 'यमुना के प्रति' कविता में, जो दीर्घ प्रगीत की श्रेणी में आती है, बिखराव काफी बड़ी मात्रा में है। इसी प्रकार उनके अन्य दीर्घ प्रगीत या तो वर्णनात्मक हो गए हैं, जैसे 'सेवाग्रहण' अथवा उनकी अन्विति बाधित हो गई है। परन्तु इसके अपवाद भी मिलते हैं : जैसे 'सरोज स्मृति'। दीर्घ प्रगीत होते हुए भी यह अत्यन्त सुसमन्वित काव्य रचना है।

निराला के प्रगीतों की तीसरी धारा हास्य, व्यंग्य, विनोद और विद्रूप की है, जिसके अंतर्गत उनकी परवर्ती काल की कविताएँ आती हैं। इनमें 'कुकुरमुत्ता' 'खजोहरा' और 'स्फटिक शिला' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। अन्विति की दृष्टि से ये प्रगीत काफी समृद्ध कहे जा सकते हैं, परन्तु कल्पना छबियों के निर्माण में 'कुकुरमुत्ता' जितनी सफल रचना है, उतनी कदाचित् अन्य रचनाएं नहीं : इस तृतीय प्रकार की प्रगीत-सृष्टि में निराला जी की पदावली भी बहुत कुछ बदल गई है और वे हास्य और व्यंग्य की सृष्टि के लिए दैनिक प्रयोग की भाषा या बोलचाल के अधिक समीप आ गये हैं। जिस प्रकार के हल्के ये प्रगीत हैं, उन्हीं के अनुरूप इनकी भाषा है।

निराला ने अपने प्रगीतों में उर्दू की गजलों और बहरों की भी योजना की है। 'बेला' की समस्त रचनाएं उर्दू शैली की हैं : इन प्रगीतों में निराला ने उर्दू के चमत्कार को लाने की चेष्टा की है, परन्तु उर्दू-फारसी पर पूर्ण अधिकार न होने के कारण उन्हें टकसाली उर्दू शैली की काव्य-रचना करने में अधिक सफलता नहीं मिली। उर्दू शैली की इन गजलों के अतिरिक्त, निराला जी ने 'नये पत्ते' शीर्षक संग्रह में मुक्तछंद में भी उर्दू के प्रयोग किये हैं। ये रचनाएँ आकार में छोटी हैं। और अधिक संघटित बन सकी हैं। 'गरम पकौड़ी' 'रानी और कानी' 'महगू महग रहा' आदि इसी शैली के उदाहरण हैं।

इस प्रगीत-सृष्टि के अतिरिक्त निराला जी ने दो आख्यानक काव्य भी लिखे हैं। 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' दोनों ही आख्यानक रचनाएं हैं जो वीरगीतों की भूमिका पर लिखी गई हैं। यद्यपि इनमें आख्यानक की संस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, परन्तु वीरगीत या 'बैलैड' काव्य का प्रवाह और समग्रता इनमें पाई जाती है। सामान्यतः वीरगीत लोकजीवन में प्रचलित गीतों के आधार पर बनते हैं, अतएव उनकी भाषा में ग्रामीणता का पुट भी आता है, परन्तु निराला की आख्यानक रचनायें अतिशय संस्कृतनिष्ठ भाषा में प्रणीत हैं। इस कारण इनमें इतनी सरसता नहीं आ सकी है, जितना एक महाकाव्योचित औदात्य आया है।

इन आख्यानक सृष्टियों के अतिरिक्त निराला ने 'पंचवटी प्रसंग' नामक एक गीत-नाट्य भी प्रस्तुत किया था जो उनकी प्रारंभिक रचनाओं में से है। यह गीत-नाट्य अपने ढंग की अनुपम कृति है। इसमें प्रकृति के स्वच्छन्द परिवेश में राम, लक्ष्मण और सीता के चित्र बड़ी ही सुन्दर भूमिका पर उभारे गए हैं। स्वच्छंदतावाद का सच्चा साहित्यिक स्वरूप अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ 'पंचवटी प्रसंग' में देखा जा सकता है यद्यपि इसका प्रवाह और प्रवेग इसे संतुलित गीतनाट्य का स्वरूप प्रदान करने में बाधक हुए हैं। इसमें नाटकीयता कम, प्रगीतत्व अधिक है।

अब हम उनके इन विभिन्न काव्य-रूपों पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे।

(१) गीत—सबसे अधिक संख्या में निराला ने गीत लिखे हैं। उनमें छंदों, रागों, कल्पना-चित्रों और रसों का बड़ा वैविध्य है। इनके कुछ गीत तो विशुद्ध शृंगारिक हैं। 'परिमल' और 'गीतिका' में शृंगार रस के गीत हैं—मानवीय और प्राकृतिक शृंगार के! प्रकृति-वर्णनों में प्रकृति की मानवानुरूपता की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

'किसलय-वसना नव-वय लतिका
मिली मधुर प्रिय उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी—
पिक-स्वर नभ सरसाया।'

इसमें लता को नायिका और तरु को नायक कहा है। मानवीय शृंगार के गीतों में मिलन और विरह के चित्रों की प्रधानता है, उनमें प्राकृतिक पृष्ठभूमि सर्वत्र अपनाई गई है: इसी से ये गीत स्वस्थ, सशक्त शृंगार के प्रति रूप बन सके हैं, भावनागत दुर्बलता के नहीं। प्राचीन काल से शृंगार के असंख्य चित्र खींचे गए हैं परंतु उनके निर्माणात्मक भाव-भेदों पर समीक्षकों ने अधिक ध्यान नहीं दिया।

उदात्त शृंगार अपनी लौकिक भूमिका पर सबसे अधिक कालिदास में मिलता है। शृंगार धार्मिक या रहस्यावादी भूमिका पर भी लिखा गया है जैसे राधाकृष्ण का शृंगार। इसका सबसे सुन्दर स्वरूप सूरदास के पदों से प्रस्फुटित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें श्रृंगार आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच गया है। परम पुरुष कृष्ण और परम प्रकृति राधा का श्रृंगार अशेष भावात्मक गहराइयों का स्पर्श करता है। रीतिकालीन कवियों ने भी राधाकृष्ण के चित्र खीचे हैं, पर उनमें वह मनोरमता नहीं। सूरदास की राधा और कृष्ण की कल्पना अतिशय प्रौज्वल और मनोमयी है। कृष्ण के प्रति तथा राधा के प्रति सूर के आराध्य भाव का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उनके काव्य में व्याप्त है। आराध्यभाव के कारण उनका श्रृंगार तल्लीनता-कारी है। श्रृंगार के बाह्य पक्ष, आंगिक हाव-भाव को छोड़कर वे राधा कृष्ण की अभिन्नताजन्य श्रृंगार-भावना को रूपायित करते हैं। दूसरी परिशोधक वस्तु उस श्रृंगार की प्राकृतिक रूप-छटा है। वृन्दावन की रमणीय पृष्ठभूमि पर उनका श्रृंगार और भी निखर उठा है। गोपियां असंख्य हैं, उनकी प्रतिनिधि रूप राधा हैं। इससे सूरदास के काव्य में एक रहस्यमूलकता भी आ गई है विशेषकर रासलीला के प्रकरण में रहस्यात्मक वातावरण सुन्दर रूप में व्यक्त हुआ है। इस समय का श्रृंगार सामान्य लौकिक श्रृंगार से बहुत ऊंचा है। वह श्रृंगार के उदात्तीकरण या आध्यात्मीकरण का स्वरूप है। सूरदास कृष्ण के चरित्र में जो निःसंगता ले आये हैं, अनन्य प्रेमी होते हुए भी वे जिस अनासक्त भाव से गोपियों को छोड़कर मथुरा चले जाते हैं और फिर कभी लौटते नहीं, यह भी सूर की निगूढ़ प्रेमभावना का परिचायक है। सूरदास ने इस भास्वर संयोग वर्णन के साथ वियोग की मनोदशाओं का जो व्यापक चित्रण किया है, वह भी उनके श्रृंगार को गंभीर और परिशुद्ध बनाने में सहायक है। समस्त वियोग श्रृंगार की मर्मस्पर्शिता, मिलन की नैसर्गिक छवियों के साथ मिल कर, एक हो जाती है और 'सूरसागर' का नाम सार्थक हो जाता है, जिसमें गोपियों के मिलनोल्लास और वियोगाव्यथा का पूरा समुद्र ही निर्मित किया गया है। अन्त में उसमें मोहर लगाने के निमित्त 'भ्रमरगीत' की दार्शनिकता की छाप डाल दी गई है। सगुण-निर्गुण की भूमिका पर सगुण उपासना का पक्ष लेकर कृष्ण के दिव्य स्वरूप की बंदना की गई है। इन कारणों से सूर का श्रृंगार भक्ति भावापन्न माना जाता है, जिसमें लौकिक श्रृंगार अंकुश निरस्त कर दिये गये हैं।

तीसरे प्रकार का श्रृंगार जयदेव और विद्यापति जैसे कवियों का है, जिसमें राधा और कृष्ण के अनुराग-वर्णनों में संयोग पक्ष की बहुलता है, और श्रृंगार को विलास की सीमा पर पहुंचाया गया है। इस कारण कुछ समीक्षक इसे अपवाद योग्य और वर्जनीय मानते हैं। राधा-कृष्ण का आधार लेने पर भी वे इस अतिशयता को अक्षम्य कहते हैं। कुछ दूसरे समीक्षक इसे सच्ची भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उद्‌गार मानते हैं, लेकिन साहित्यिक भाव-भूमिका पर जयदेव और विद्यापति का श्रृंगार वासनात्मक स्तर से एकदम मुक्त नहीं है, फिर भी इनका वर्णन रीतिकालीन श्रृंगारिक वर्णनों से भिन्न है। इनमें प्रेम के अंतःपक्ष, उसके आत्मिक अखण्ड स्वरूप का चित्रण है जब कि रीतिकालीन कवियों की फुटकल रचनाओं में उस तरह के भाव नहीं हैं। भाषा के अप्रतिम माधुर्य और गेयता के गुणों से युक्त ये गीत अपनी श्रेणी अलग ही बनाते हैं।

सूफी कवियों का रहस्यवादी श्रृंगार है जिसमें नारी-सौन्दर्य और उसके प्रति पुरुष के रहस्यमय आकर्षण का आलेख है। सूफी कवियों ने उन्हें आध्यात्मिक भूमिका पर पहुँचाने का प्रयत्न किया है। आध्यात्मिक प्रेम के चित्रण में सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि प्रकृति के विराट स्वरूप के उपमानों का आधार लेकर उस श्रृंगार को रहस्यात्मक बनाया जाता है। पद्‌मावती के बाल झाड़ने पर स्वर्ग से भूमि तक अंधकार हो जाता है। प्रेम वर्णन में साधना-पक्ष से आत्म-परिहार कष्ट सहन और स्वार्थ विसर्जन तक की स्थितियां आती हैं। इनका श्रृंगार पुरुष पक्ष से आरम्भ होता है। वहां नारी उपास्या है और पुरुष उपासक है। पुरुष की प्रेम-साधना का विस्तृत वर्णन करना सूफियों के रहस्य-काव्य का आधारभूत तत्व है। इस तरह के प्रेम काव्यों में नायक के प्रेम-देवता की प्राप्ति के लिए महान उद्योगों का उल्लेख कर अन्त में रहस्यात्मक प्रेम की प्रतीति कराई जाती है।

रीतिकालीन कवियों के भी श्रृंगारिक चित्र हैं, इनमें खण्ड-चित्र रहा करते हैं। संचारीभाव और उद्दीपन आदि का प्रमुख रूप से आलेख रहता है जिसमें लौकिकता प्रधान हो जाती है और राधा-कृष्ण के नाम होते हुए भी प्रेम की तन्मयता चित्रित नहीं होती। नायिका-भेद की बहिरंग पद्धति को रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों ने पुष्ट किया। नायक-नायिकाओं के अनेकानेक भेदों का सहारा लेकर इन लोगों ने श्रृंगार रस को एकदम लौकिक बना दिया।

इस प्रकार श्रृंगार रस की विभिन्न भावभूमियों, रूपों और प्रकारों को देखकर हम छायावादी कवियों के श्रृंगार-वर्णनों पर आते हैं। प्रमुख छायावादी कवि प्रसाद जी हैं, जिनका नारी चित्रण कल्पना की शक्ति से दीप्त हो उठा है :

'और देखा वह सुन्दर दृश्य नयन का इन्द्रजाल अभिराम,
कुसुम-वैभव में लता समान, चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।'

प्राकृतिक उपमानों के सहयोग से, कल्पना के आधार पर, नारी-सौन्दर्य का यह चित्रण लौकिक भूमिका पर नहीं, बल्कि बहुत कुछ परिष्कृत काल्पनिक भूमिका पर है। पंत के नारी चित्रण में कोमलता और मृदुलता है। नारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति एक असीम सौन्दर्य की भावना है। इन कारणों से छायावादी कवियों के शृंगार-वर्णनों में कल्पनाजन्य सौन्दर्य की वायवीयता है। निराला के नारी-शृंगार वर्णन नारी की सौन्दर्य-गरिमा से आपूरित हैं और उन्होंने सीमा और असीम को एक में मिला दिया है। नारी के सीमित सौन्दर्य को असीम सौन्दर्य से एकाकार करके देखा है। यह निराला की शृंगारिक भावना की मूलभूत विशेषता है। जिस प्रकार की सहज प्रांजलता सूर की राधा और गोपियों में दिखाई देती है, उसी प्रकार निराला के नारी चित्रण में भी प्रांजलता है। यत्र तत्र वे विद्यापति, जयदेव के उद्दाम शृंगार के समीप भी पहुँच जाते हैं। 'नूपुर के सुर मन्द रहे, चरण जब न स्वच्छन्द रहे' में नारी के प्रगल्भ सौन्दर्य को दिखाया गया है परन्तु अधिकांश रूप से उनका सौन्दर्य-वर्णन प्रसन्न और सुसंयत दार्शनिकता से ओतप्रोत है।

आधुनिक अन्य गीतकारों की तुलना में निराला के गीत किसी सीमा तक प्राचीन परंपरा के अधिक समीप हैं। प्राचीन गीत रस की भूमिका पर लिखे गये हैं और राग-रागनियों में बंधे हुए हैं। निराला के गीत भी रस केन्द्रित हैं और उनमें भी रागरागनियों का सम्यक योग किया गया है। इस-दृष्टि से यहाँ आशय यह है कि वैयक्तिक मनोदशाओं को प्रधानता न देकर तटस्थ भावात्मक चित्रण की नियोजना की गई है। यदि किसी कवि ने आत्मपक्ष (वैयक्तिक पक्ष) को प्रमुखता दी है, तो उसके गीतों में सार्वजनिक गेय-काव्य के गुण कम आयेंगे। निराला के गीत सार्वजनिक उपयोग में आने लायक हैं, क्योंकि उन्होंने अपने गीतों में तटस्थता और वस्तुमुखता का पूर्ण उपयोग किया है। उनमें कहीं भी वैयक्तिक अन्तर्मुख पक्ष का लगाव नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि उनके अनेकानेक गीत सार्वजनिक अवसरों पर राष्ट्रीय गीतों के रूप में गाये जाते हैं। हिन्दी में अन्य किसी आधुनिक कवि के गीतों को यह गौरव इतनी मात्रा में प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि प्रायः अन्य सभी गीतकार वैयक्तिक मनोभावों के प्रकाशन में अधिक संलग्न रहे हैं। वे गीत रसात्मक न होकर अवसर विशेष की मनोंभावना के प्रकाशन के आधार हैं।

निराला के गीतों की एक अन्य विशेषता उनकी कल्पना की भास्वरता है। वे ऐसे चित्र देते हैं और ऐसे उपमानों से सज्जित करते हैं कि वे सहज ही सर्वजन ग्राह्य बन जाते हैं। उनकी कल्पना उनके भावों की अनुयायिनी है, इसी कारण उनके गीत अधिक सार्वजनिक भूमिका पर प्रतिष्ठित है।

निराला के गीतों में शब्दों का लेशमात्र भी अपव्यय नहीं है। अभिव्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्ति की दृष्टि से सभी सधे हुए गीत हैं। इसी कारण उनके गीतों के रसास्वाद में सघनता रहती है और बिखराहट का अंश नहीं रहता। शब्दों की इतनी अधिक मितव्ययिता किसी अन्य गीतकार में दिखाई नहीं देती : गीतकला की इस विशेषता को निरालाजी की अपनी साधना और अपना कौशल मानना होगा। अनेक गीतों में उन्होंने छोटी-छोटी सहज पदावली का भी प्रयोग किया है। यह सामाजिकता भी वास्तव में उनकी शाब्दिक मितव्ययिता का ही एक परिणाम है। जिन कवियों ने सामाजिक पदावली के इस पक्ष पर ध्यान नहीं दिया, उनके गीतों में उतनी स्वाभाविकता नहीं आ सकी है। इस सम्बन्ध में प्रसाद और महादेवी से भी निराला के गीत अधिक समृद्ध हैं। इन गीतों की भाषा खड़ीबोली का परिष्कृत स्वरूप है, जिसमें उन्हीं को दुरूहता दिखाई देती है जो अशिक्षित या अर्धशिक्षित हैं। निराला के गीतों में दुरूहता का आक्षेप ऐसे ही लोगों ने लगाया है जो सहित्यिक परम्परा से अपरिचित हैं। निराला के गीतों में संगीत की जो नियोजना है और संगीतिक शब्दावली का जो चयन है, वह उनके गीतों को सहज ही ग्राह्य और आस्वाद्य बना देता है। यह संगीतिक शब्द-चयन बिरले कवियों में पाया जाता है। जयदेव के पश्चात् भारतीय काव्य में ऐसी सश्लिष्ट संगीतमय शब्दचयन की प्रतिभा, निराला की समानता की, किसी अन्य कवि में प्राप्त नहीं होती।

बन्ध-योजना :

निराला के गीतों में आवश्यकता से अधिक बंध नहीं रहते। उन्होंने लम्बे गीत नहीं लिखे हैं। लम्बे गीत पाठ्य हो सकते हैं, लेकिन सार्वजनिक गेयता के लिए वे अनुपयोगी हैं। सूरदास और मीरा जैसे संगीत-शास्त्र के निपुण गायकों और गायिकाओं ने इसी कारण आठ या दस पंक्तियों के बंध ही अपने काव्य में रखे हैं। एक भावात्मक इकाई की पूर्ति का आधार उनको बनाया है और इतिवृत्तात्मकता से बचने का प्रयास किया है। निराला भी इस दिशा में उक्त सुप्रसिद्ध गायक कवियों के अनुयायी हैं। उनके अनुबंधों की एक अन्य विशेषता यह है कि वे गतिशील चित्रों का संयोजन करते हैं समग्र चित्र समाहित होकर एक पूर्णता की स्थिति ले आते हैं। निराला के गीतों में अनुबंधों का यह प्रयोग अत्यन्त आकर्षक है। जब कि महादेवी और बच्चन के गीत अधिकतर प्रथम अनुबन्ध को दूसरे, तीसरे और चौथे अनुबंधों में दुहराते, तिहराते हैं, तब निराला के गीतानुबंध इस पुनरुक्ति पद्धति से नितांत अछूते हैं। चित्र की यह समग्रता और अनुबंधों की यह गतिशीलता निराला के गीतों को अपूर्व स्वारस्य प्रदान करती है। निराला के प्रायः सभी गीतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अंतिम अनुबंध दार्शनिक हुआ करता है। दार्शनिक अनुबंधों से आशय यह है कि वे गीतों में आये हुए समस्त लौकिक चित्रों को एक उच्चतर आध्यात्मक भूमिका प्रदान कर देते हैं। ससीम का असीम में पर्यवसान हो जाता है। निराला के गीत इसी अर्थ में छायावादी या रहस्यवादी कहे जा सकते हैं, अन्यथा उनके गीत मूलतः रसवादी हैं। निराला जी ने अपने वक्तव्यों में इस बात का आग्रह किया है कि गीतों में एक पूर्णता होनी चाहिए और उनकी परिणति उच्चतर मानसिक भूमिका पर की जानी चाहिए। उन्होंने अपने इस वक्तव्य को अपने गीतो में चरित्रार्थ भी किया है। जहाँ एक ओर यह अंतिम अनुबंध समस्त गीत को एक दार्शनिक स्तर पर ले जाता है वहां दूसरी ओर यह गीतों के कलात्मक सौष्ठव-अन्विति या समाहार की प्रक्रिया को भी पूरा करता है।

निराला के गीतों के प्रकार और भेद :

(i) शृंगारिक गीत

निराला के गीत इतने वैविध्यपूर्ण हैं कि उन सब को संबद्ध करना आसान नहीं है फिर भी रस की भूमिका पर हम उन्हें शृंगार, करुण और शांतरस के गीत कह सकते हैं।

शृंगारिक गीतों में प्रकृति के शृंगारी चित्र और मानव शृंगार के चित्र समाहित किये गए हैं। इन शृंगारिक गीतों में संयोग और वियोग की अनेकानेक भावदशायें और रूपाकृतियां आई हैं। निराला में रूप-चित्रण की भी प्रवृत्ति पाई जाती है। रूप चित्रण से आशय नायिका के सौन्दर्य चित्रण से है। रीतिकालीन कवियों की भांति रूप चित्रण में निराला ने न तो अतिशयोक्तियों का सहारा लिया है और न नारी को अलंकारों से सज्जित और बोझिल बनाया है। अधिकांश छायावादी कवि वस्तुमुखी रूपचित्रण से दूर रहे हैं, सौन्दर्य की व्यंजना मात्र करते रहे हैं, परन्तु निराला के अनेक गीतों में नारी-आकृति और रूप का स्पष्ट आलेखन है जहाँ कहीं निरालाजी ने मिलन शृंगार का वर्णन किया है वहाँ वे स्वछन्दतावादी भूमि पर ही संस्थित रहे हैं। शारीरिक मिलन की अपेक्षा आत्मिक मिलन की रेखाएं अधिकतर प्रस्तुत की गई हैं। प्रकृति के सौंदर्य-चित्रण में भी निरालाजी उद्दीपन विभावों की पद्धति से बहुत दूर हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य की उनकी छबियां उत्तेजना और स्थूल आकर्षण की नहीं हैं, उल्लास और आनन्द की अभिव्यञ्जना करती हैं। इस प्रकार निराला के शृंगारिक गीत उच्चतर भावसंवेदन के आधार हैं।

(ii) विनय और प्रार्थना के गीत :

प्राकृतिक और मानवीय शृंगार के अतिरिक्त निरालाजी आरम्भ से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनय और प्रार्थना के गीत लिखते रहे हैं। अपने आरम्भिक विनय-गीतों में निरालाजी ने जीवन संघर्षों में अडिग रहने और विजय प्राप्त करने की याचना की है ; इसके साथ ही व्यक्ति की अहं भावना, उसके मानसिक विकारों के निवारण की प्रार्थना भी की है। इन गीतों से निराला की आदर्शोन्मुख प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है, जो उन्हें विवेकानन्द के विचारों और भारतीय अद्वैत-दर्शन की प्रेरणा से प्राप्त हुई हैं। अपने परवर्ती विनय गीतों में निराला अधिक आत्मोन्मुख हो गये हैं। उनमें संघर्ष और विजयाकांक्षा के स्थान पर करुण स्वरों की प्रधानता हो गई है। वर्तमान सांसारिक जीवन की विषमताएं और विकृतियाँ भी उनके परिवर्तीकाल के विनय-गीतों के वर्णय विषय हैं। जहां एक ओर इन गीतों में आत्मिक शांति और रोग निवारण की अकांक्षायें व्यक्त की गई है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक मानव समाज की स्वार्थपरता के प्रति ग्लानि के भी भाव अभिव्यक्त किये गए है। निराला के ये विनय-गीत अंशतः सूर और तुलसी के विनय गीतों के समकक्ष रखे जा सकते है, यद्यपि इनमें आत्म विगर्हणा के भाव नहीं है। उनकी साधना पारलौकिक नहीं है।

(iii) ऋतु गीत :

प्राकृतिक वर्णनों के अतिरिक्त निराला ने ऋतुगीत भी लिखे हैं। विशेष कर वसंत वर्षा और शरद कालीन सौंदर्य के प्रति उनकी भावना अधिक उन्मुख है। उनके आरंभिक ऋतुगीत उल्लासपूर्ण और स्वच्छ मानवीय संबन्धों की भूमिका पर लिखे गये हैं जब कि परवर्ती गीतों में प्रकृति के वस्तुमुखी सौंदर्य का अधिक सीधा-सादा और तथ्यपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। इन गीतों में उनकी भाषा भी दो प्रकार की है—आरंभिक गीत अधिक संस्कृत-निष्ठ हैं तथा निराला की सामासिक पदावली और पद-गंफन का परिचय देते हैं। परवर्ती गीतों में भाषा सरल, उक्ति कौशल प्रधान और भाव-व्यञ्जक हो गई है। इस प्रकार का भाषागत परिवर्तन निराला के आरम्भिक काव्य और उनके परवर्ती काव्य की प्रधान विभाजक-रेखा है। इन्हीं ऋतु गीतों में निराला के होली वर्णन संबन्धी गीत भी हैं, जिनमें लोकगीतों की प्रणाली अपनाई गई है। होली सम्बन्धी गीतों में निराला की शृंगारिक भावना अधिक मुखर है जो कि इस पर्व की प्रकृति के अनुरूप है।

(iv) राष्ट्रीय गीत :

कुछ थोड़ी संख्या में निरालाजी ने राष्ट्रीय गीतों का भी निर्माण किया है। जिनमें से 'भारति, जय विजय करे' गीत अत्यधिक प्रचलित है और देश के भिन्न-भिन्न भागों में राष्ट्रीय समारोहों में गाया जाता है। इस गीत को भारतीय राष्ट्र-गीतों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। राष्ट्रगीतों के अनुरूप राष्ट्रीय उत्कर्ष और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरव की भावना तथा उसके सौंदर्य और ऐश्वर्य का प्राचीन सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से आलेखन किया गया है। राष्ट्र गीतों के सभी मूलतत्व इन गीतों में प्राप्त होते है। राष्ट्रीय गीतों में निराला की दृष्टि केवल राष्ट्रीय जीवन के उत्कर्ष से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि राष्ट्र की अधोगति, उसकी भौतिक दरिद्रता, विषमता आदि के भी भाव व्यक्त किये गये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि निराला इस देश को केवल आध्यात्मिक भूमिका पर ही नहीं बल्कि सार्वत्रिक भूमिका पर उन्नति करते देखना चाहते थे। हिन्दी राष्ट्रीय गीतों में निराला की प्रणाली ही सबसे अधिक प्रातिनिधिक कही जा सकती है। अन्य गीतकारों के गीतों में सामूहिक गेयता नहीं आई। निरालाजी के राष्ट्रीय गीतों की पहली विशेषता उनकी गेयता है, वे सामाजिक अवसरों पर गेय है। उनके गीतों के आकार राष्ट्रगीत के अनुरूप हैं। 'भारत माता ग्राम वासिनी' की तरह लम्बी कविता राष्ट्रगीत नहीं हो सकती। राष्ट्रगीत के लिये आकार सीमित और प्रभाव एक-तान होना चाहिये। जो गीत राष्ट्रीय अवसाद और दैन्य को लेकर चलते हैं, वे राष्ट्रगीत नहीं बन सकते। उनमें विजय, उल्लास और सौंदर्य की झांकी आवश्यक है। एक अन्य विशेषता राष्ट्रीय प्रतीकों की योजना की है। भारत में गुलाब का पुष्प नहीं वरन् कमल का पुष्प राष्ट्रीय प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार ओंकार शब्द समस्त देश में एक ही भावोन्मेष का चिरपरिचित प्रतीक है। राष्ट्रगीत की योजना सामूहिक गायन के योग्य ही नहीं सामूहिक संवेदनों को जागृत करने में सक्षम भी होनी चाहिये। भाषा, छन्द ओजस्विता के परिचायक और संस्कृत-निष्ठ होने चाहिये। कवि के मानस में राष्ट्रमूर्ति के प्रति अटूट श्रद्धा का भाव आवश्यक है। निरालाजी के राष्ट्र-गीतों की संख्या कम है पर उनमें ये सब तत्व पाये जाते हैं। प्रसाद के 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' को, कल्पना-धिक्य और चिरस्वीकृत राष्ट्रीय प्रतीकों की बिरलता के कारण, राष्ट्र गीत के पद का अधिकारी नहीं माना गया, यद्यपि यह एक सुन्दर गीत है। पंतजी के 'भारत माता ग्राम वासिनी' में राष्ट्रीय दैन्य की व्यञ्जना है। यह समारोहों के योग्य गीत नहीं है।

(v) प्रगतिशील या सामाजिक गीत :

निराला के कुछ गीत वर्तमान सामाजिक विशृंखलता से सम्बन्धित हैं और समस्त राष्ट्र के उत्थान और समता का संकेत और आग्रह करते हैं। 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है, कैसा तन-मन का जोड़ा है' में मनुष्य संसार रूपी गाड़ी में बैल-घोड़े के समान जुते हुए चित्रित हैं। 'बैल और घोड़ा' का जोड़ा कैसा विलक्षण है। एक पीछे खींचेगा और दूसरा आगे दौड़ेगा। ऐसी अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक विड़म्बनाओं, वैषम्यों के रूप-चित्रण निराला के सामाजिक या प्रगतिशील गीतों में आए हैं।

(vi) प्रयोगात्मक गीत :

शृंगारिक, आत्मनिवेदनात्मक, ऋतुसम्बन्धी और राष्ट्रीय-सामाजिक गीतों के अतिरिक्त निरालाजी के कुछ गीत उर्दू की गजल शैली का आधार लेकर बने हैं। इनमें निराला ने कई प्रकार के प्रयोग किये हैं। इन्हें प्रयोगवादी गीत कह सकते हैं। बिना परिणाम को आत्मसात किये, बिना परम्परा का अनुसरण किये, नई अपरिचित लीक पर अपरिचित उपमान-उपमेयों को लेकर जो काव्य-रचना की जाती है, वह प्रयोगात्मक होती है। प्रयोग में भावात्मकता की न्यूनता और बाह्य विधान का अनगढ़पन भी होता है। कुछ प्रयोग सफल हो सकते हैं और कुछ असफल भी होते हैं। निराला के उर्दू शैली के गीतों के दो तीन प्रकार हैं। कुछ उर्दू-फारसी शैली की गजलों का उर्दू-फारसी शब्दावली में निर्माण किया गया है। निराला का इन भाषाओं पर पूर्ण अधिकार नहीं था इसलिये ये गीत सुव्यवस्थित नहीं हैं। उर्दू कवियों से तुलना करने पर इनका कच्चापन दिखलाई देता है। फिर भी एक बड़े कवि की कलम कुछ न कुछ चमत्कार दिखाती ही है। यद्यपि उनमें बड़े कवि को कला है, पर प्रौढ़ता नहीं है। कुछ गजलें संस्कृत शब्दावली को उर्दू के छन्दों में रखने की चेष्टा हैं। शब्दावली विशुद्ध हिन्दी-संस्कृत की है, छन्द केवल गजलों के लिये है। यह उनके उर्दू-फारसी के गीतों की दूसरी सीमा है जो हिन्दी संस्कृत शब्दावली की प्रमुखता लेकर रचे गए हैं। ये गीत भी उर्दू की गजलों का सम्पूर्ण सौंदर्य नहीं दिखा सके। कुछ मध्यवर्ती गीत हैं जिनमें सामान्य उर्दू और सामान्य हिन्दी के शब्दों का प्रयोग है। जैसे —

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन

इस तरह के गीतों में वे अधिक सफल हुए हैं। इससे यह सूचित होता है कि भाषा की प्रवृत्ति का ज्ञान और भाषा पर अधिकार सफल काव्य सृजन के आवश्यक उपादान हैं। जब तक भाषा की प्रकृति और परम्परा का ज्ञान नहीं होता, तब तक किसी भाषा में प्रयोग करना संशयास्पद ही होगा। संस्कृत पदावली को उर्दू छन्द-सांचे में रखने पर दोनों की प्रवृत्ति भिन्न होने के कारण सफलता आंशिक ही होगी। निराला की गजलों में साधारण हिन्दी-उर्दू का मिश्रण सफल है, क्योंकि भाषा पर अधिकार, भाषा की प्रवृत्ति की पहचान, मुहावरों की पहचान आदि वहाँ सहज ही उपलब्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. लघु प्रगीत : दीर्घप्रगीत—

निराला के आरम्भिक काल की रचनाओं में लघु प्रगीतों की एक अच्छी संख्या मिलती है। इस प्रकार की रचनाओं में निरालाजी ने भाव तत्व और रूप तत्व, भावव्यंजना और वस्तुअंकन दोनों का उत्तम संयोजन किया है। एक ओर कल्पना या रूपचित्र हैं और दूसरी ओर उन कल्पना चित्रों का भाव भी सुविन्यस्त है जैसे-'संध्या सुन्दरी' आदि में। इनमें कमी है न आधिक्य है। प्रगीत का जो उच्चतम और प्रातिमानिक स्वरूप है, उसकी पूरी संस्थिति इन प्रगीतों में मिलती है।

'यमुना के प्रति', 'शिवाजी का पत्र', 'स्मृति' 'वासंती', आदि उनके दीर्घ प्रगीत हैं। दीर्घ प्रगीतों में प्रायः वीर गीत का निर्माण होता है या शोक गीत का, क्योंकि वीरत्व और शोक के भाव दीर्घता को वहन कर सकते हैं। आख्यानक के अंशों को स्वीकार कर सकते हैं। इसीलिए दीर्घ प्रगीतों में वीरगीत के लक्षण रहा करते हैं। विशुद्ध रूप से शृंगारिक पदों में दीर्घ प्रगीत विन्यास तभी हो सकता है जब कवि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन विस्तार से कर रहा हो। इसमें एक उच्छ्वास मात्र नहीं रहता, बल्कि बहिर्जगत का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। दीर्घ प्रगीतों के लिए करुण, वीर आदि रस अधिक उपयोगी हैं। निरालाजी का दीर्घ-प्रगीत 'सरोज स्मृति' उत्तम शोकगीत है। 'यमुना के प्रति' स्मृतिमूलक भाव-गीत है, जो प्राचीन जीवन-सौंदर्य को प्रकाशित करने वाली बृहत्तर रचना है। जब तक किसी मनोभावना के उद्‌गार मात्र को छोड़कर किसी वस्तु का संपर्क नहीं होता, तब तक लम्बे प्रगीत सफल नहीं होते। विशुद्ध प्रगीत नवीन समीक्षकों के मत में छोटे आकार का ही होता है। अंतर के निगूढ संवेदन कवि के बड़े प्रगीतों में समाहित नहीं हो पाते, वे बहिर्मुखी होने लगते हैं, जिससे प्रगीत का सौंदर्य और मार्मिकता घटने लगती है। आधुनिक प्रगीत को मूल प्रवृत्ति यह है कि उसमें एक क्षण-विशेष की प्रतिक्रिया, एक स्वप्निल चित्र मात्र रहे। उन्हें लघु आकार में ही सफलता पूर्वक व्यक्त किया जा सकता है। दीर्घ और लघु प्रगीत का अंतर यही है। निराला का प्रसिद्ध प्रगीत 'बादल राग' खंडशः लिखा गया है। यद्यपि उनके लिखे छः 'बादल राग' हैं, शीर्षक एक ही है, पर उनका निर्माण पृथक पृथक हुआ है। ये एक एक लघु प्रगीत के रूप में आये हैं। जो 'बादल राग' को दीर्घ प्रगीत समझते हैं वे इसके साथ अन्याय करते और इसके वास्तविक प्रगीत-संवेदन से वंचित रह जाते हैं। 'जागो फिर एक बार' के भी दो खण्ड हैं, पहला शृंगारिक भावना का है और दूसरा वीर भावना का। दो भागों में विभक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने और दो समयों में लिखे जाने के कारण ये दोनों लघु प्रगीत हैं। 'सेवा ग्रहण' दीर्घ-प्रगीत है। इसमें आंशिक रूप से आख्यान भी आ गया है। दीर्घ-प्रगीत का झुकाव आख्यान और वर्णनात्मकता की ओर हो जाता है जब कि लघु-प्रगीत में आख्यान लेशमात्र भी नहीं रहता।

३. व्यंग्य प्रगीत :

'कुकुरमुत्ता', 'खजोहरा', 'स्फटिक शिला' को भी दीर्घ प्रगीत कह सकते हैं यद्यपि ये व्यंग्यात्मक हैं। व्यंग्यात्मक प्रगीतों की अलग ही विधा है जो प्रगीत के सामान्य स्वरूप से भिन्न है। 'कुकुरमुत्ता' को रस की दृष्टि से हास्य रस की रचना कहा जायगा। 'स्फटिक शिला' में रौद्र की प्रधानता है तथा 'खजोहरा' व्यंग्य मिश्रित हास्य रस की सृष्टि है। इस प्रकार के प्रगीत हिन्दी में कम लिखे गए हैं, इसलिए इनका रूप-विधान निर्धारित करना कुछ कठिन है। भारतीय काव्य-शास्त्र के विचार से काव्य का पर्यवसान किसी न किसी रस में हुआ करता है, इसलिए जब तक किसी रस की परिपुष्टि न हो तब तक किसी रचना को श्रेष्ठ काव्य कहना कठिन हो जायगा। जिन रचनाओं में रस की स्थिति गौण होती है, उनको भारती विचारणा के अनुसार गुणीभूत व्यंग्य काव्य कहते हैं। गुणीभूत काव्य का अर्थ है ऐसी रचना जिसमें रस की स्थिति गौण हो। इसे मध्यम काव्य भी कहते हैं। आधुनिक यथार्थवादी रचनाओं को, जिनमें रस की अपेक्षा वस्तु चित्रण की या व्यंग्यात्मकता की प्रधानता रहती है, गुणीभूत व्यंग्य कहा जा सकता है। इनमें किसी वस्तु का यथातथ्य चित्रण किया जाता है, सौन्दर्य और कुरूपता के चित्र साथ साथ रहते हैं। कुल मिलाकर वस्तुमत्ता का बोध होता है। इनमें रस की स्थिति गौण रहती है, क्योंकि रस के लिए किसी न किसी स्थायीभाव की आवश्यकता होती है। यदि स्थायीभाव का योग नहीं हुआ, तो रचनाएं रसात्मक नहीं होंगी। व्यंग्यात्मक काव्य में रस की स्थिति गौण होती है क्योंकि उसमें कोई सक्रिय स्थायीभाव नहीं रहता। केवल रौद्र या भयानक चित्र ही रहते हैं। व्यंग्यात्मक चित्र प्रायः रौद्र रस के होते हैं क्योंकि उनमें वृतियों की अनुकूलता नहीं होती, प्रतिकूलता होती है। कवि कुरूप, विडम्बनात्मक चित्र को चित्रित करता है, इसलिए सामान्य रीति से उसमें कवि की वृत्ति रमती नहीं। परंतु जब इन कुरूप दृश्य चित्रणों में कवि की वृत्ति भावात्मक गहराई में पहुंच जाती तब उनमें रसात्मकता आ जाती है श्रृंगार और करुण आदि अनुकूल रस कहे जा सकते हैं क्योंकि कवि की वृत्ति उनमें डूबी रहती है। कवि की वृत्ति जिन वस्तुओं के प्रति विशेष वर्जना करती है, ऐसी वृत्तियों का प्रकाशन रौद्र, भयानक या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीभत्स रस की सीमा में होता है। कभी कभी ये रस यथार्थ रूप से उन्मेषित नहीं हो पाते। पर कभी-कभी जब कवि का संवेदन तीक्ष्ण और गम्भीर होता है, तब इन यथार्थोन्मुख चित्रणों में भी रस की संस्थिति हो जाती है। व्यंग्यात्मक रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है कि ये प्रगीत की श्रेणी में आती ही नहीं, क्योंकि प्रगीत में कवि के कोमल भावों का, जिनमें उसकी अंतरंग वृत्ति रमती है, निर्देश होता है। व्यंग्यात्मक या हास्यमूलक काव्य में वर्णित वस्तु के प्रति कवि की आत्मीयता नहीं होती विरोध का भाव होता है। परन्तु भारतीय चिन्तना में रौद्र और भयानक भी रस माने गये हैं। युद्ध वर्णनों में वीर रस और रौद्र रस आता है। कवि यदि रौद्र भाव का अनुभव नहीं करता तो वह रसात्मक काव्य नहीं बना सकेगा। इसलिये यह मानना होगा कि जितने भी भाव हैं, वे प्रतिकूल संवेदन के हों या अनुकूल संवेदन के, कवि के मानस में अनुभूत होने चाहिये तभी काव्य की रचना हो सकती है। जहाँ-जहाँ कवि की अनुभूति रमी है और उसकी काव्य-रचना में जहाँ-जहाँ प्रेरणात्मक स्थायी भाव का योग है, वहाँ-वहाँ तो रसात्मक काव्य होगा ; परन्तु ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनमें कवि रमता नहीं है, तटस्थ होकर चित्रण करता है। ऐसे चित्रण गुणीभूत व्यंग्य की सीमा में आते हैं। प्रगीत काव्य भावों और रसों की प्रगाढ़ता का काव्य है। प्रगीत रचना उसे ही कहा जा सकता है जिसमें कवि की अनुभूति किसी मार्मिकप्रसंग, या मार्मिक मानस-प्रतिक्रिया को लेकर, व्यक्त हुई हो। जिन प्रगीतों में इस प्रकार का भावोन्मेष नहीं होता उन्हें प्रगीत की संज्ञा देना भी संभव नहीं है। भारतीय दृष्टि से बहुत से यथातथ्य चित्रण, और व्यंग्यात्मक उल्लेख रस की भूमि में नहीं आते, अतएव ऐसे वर्णनों को प्रगीत काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

पश्चिमी विचारणा में प्रगीतों का वर्गीकरण करते हुए सामाजिक प्रगीत (Vers de Societe) या व्यंग्यात्मक प्रगीत का भेद किया है। इस प्रगीत की चर्चा हडसन ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी आफ लिटरेचर' में की है। हडसन का उद्देश्य यह नहीं है कि प्रगीत के गुणों से रिक्त होने पर भी हम किसी रचना को, किसी व्यांग्यात्मक या सामाजिक कविता को प्रगीत कहने लगें। उसका आशय यही है कि प्रगीत या अंतरंग अनुभूति का तत्व तो उस रचना में होना ही चाहिये। किन्तु जिन रचनाओं में कवि की आत्मीयता या अंतरंग भाव-संवेदन का अभाव रहता है, उसका अपना व्यक्तित्व मुखर नहीं होता, तब तक प्रगीत या व्यंग्यात्मक प्रगीत का निर्माण नहीं हो सकता। विशुद्ध व्यंग्य और व्यंग्यात्मक प्रगीत कदाचित् दो भिन्न वस्तुएं हैं। विशुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्य में तटस्थता रह सकती है, या आक्रोश रह सकता है। कवि की अपनी मार्मिक संवेदना नहीं भी रह सकती। जब कभी व्यंग्य में कवि की वह मार्मिक संवेदना मुखरित हो सकेगी तभी वह व्यंग्यात्मक प्रगीत का निर्माण कर सकेगा। इस दृष्टि से देखने पर व्यंग्यात्मक प्रगीत के मूल में क्रोध या करुणा के भाव का होना आवश्यक है। इनमें भी करुणा या सहानुभूतिमूलक व्यंग्य ही प्रगीत काव्य के अधिक उपयुक्त है। किसी रचना को व्यंग्यात्मक प्रगीत मानने के पहले यह भी देखना पड़ेगा कि कवि की करुणा का संचार, जगत को कुरूप वस्तुओं और व्यवहारों के प्रति उसकी मार्मिक संवेदना का भाव प्रतिफलित हुआ है या नहीं। जब इस बात का प्रमाण मिल जाय कि वह रचना कवि के गहरे संवेदनों से निर्मित है, तभी हम उसे प्रगीत कह सकेंगे ; इसलिए 'कुकुरमुत्ता', 'खजोहरा' 'स्फटिक शिला' आदि रचनाएं अपने आप ही भिन्न कोटि की हो जाती हैं। इनकी तुलना 'सरोज स्मृति', 'शिवाजी का पत्र', जैसे वास्तविक भावापन्न काव्य से नहीं की जा सकती। इनकी अलग ही विधा होगी। जहाँ तक 'कुकुरमुत्ता' का सम्बन्ध है, उसमें व्यंग्य गौण है और हास्य की प्रधानता है। इसलिये इसे हास्य रस के प्रगीत में ले सकते हैं लेकिन 'स्फटिक शिला' और 'खजोहरा' आदि रचनाएं विशुद्ध व्यंग्यात्मक हैं। व्यंग्य का किसी रस विशेष से सीधा सम्बन्ध नहीं होता, व्यंग्य का कोई अपना स्थायीभाव नहीं होता। अतएव इन्हें किसी स्पष्ट प्रगीत श्रेणी में लेना संभव नहीं है। ये प्रगीत से भिन्न भावस्तर की कृतियाँ हैं। भारतीय विचारणा के अनुसार रसात्मक श्रेणी में न आने के कारण ये मध्यम कोटि की कवितायें हैं। इन्हें प्रगीत कहना 'प्रगीत' के वास्तविक स्वरूप और अर्थ की उपेक्षा करना है।

४. उर्दू शैली के प्रगीत :—उर्दू काव्य की परम्परा भिन्न प्रकार की है। गज़लें मुक्तक काव्य की श्रेणी में आती हैं। दो दो पंक्तियों में आशय पूरा हो जाता है जब एक ही भाव को कई मुक्तकों में बांधा जाता है और, जब उसका आदि से अन्त तक विकास होता है तब उसे नज्म (लिरिक) कहते हैं। चूंकी निरालाजी मूलतः प्रगीत कवि रहे हैं, इसलिए उनकी उर्दू शैली की गजलों में एक समाहित भाव की योजना मिलती है। गजल की दो पंक्तियों में चमत्कार-पूर्णता की जो परम्परा चल रही थी, उसे निरालाजी ने कुछ अंश तक बदलने का प्रयत्न किया है और गजलों को प्रगीतात्मक रूप दिया है। परन्तु गजलों में पूर्णतः प्रगीत का आना कठिन है क्योंकि उनमें उक्ति चमत्कार की विशेषता होती है। उर्दू गजल जब तक इस चमत्कार पक्ष का प्रयोग नहीं करती तब तक पूर्ण प्रभावोत्पादक नहीं होती। चमत्कार प्रगीत का विरोधी तत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला के पास समस्या थी कि गजलों के चमत्कार की रक्षा करें या प्रगीत को प्रतिष्ठा करें। इन दोनों आग्रहों को पूरा करने का प्रयत्न प्रायः निराला की इस शैली की रचनाओं में पाया जाता है। परन्तु परिणाम यह निकला है कि न तो गजल के परम्परागत चमत्कार-पक्ष और अतिशयोक्तियों का निर्वाह किया गया, न प्रगीत की समाहित भाव-योजना ही पूरी तरह उद्भावित हो सकी। उर्दू शैली के इन पद्यों को पूरे अर्थों में प्रगीत कहना संभव नहीं है। कुछ ही गजलों में निराला ने सफल प्रगीतात्मकता की सृष्टि की है। संस्कार से निराला जी प्रगीत की ओर उन्मुख हैं, परन्तु उर्दू परम्परा के आग्रह से भी वे पराङ्मुख नहीं हैं। अतः दोनों में से किसी में संपूर्ण सफलता बहुत कम अंश में मिल पाई है। निरालाजी के साथ इन उर्दू शैली की गजलों के प्रणयन में एक और कठिनाई थी। हिंदी में उर्दू शैली की इस काव्य शैली की कोई स्पष्ट परंपरा नहीं है। यद्यपि हिन्दी के अनेक कवियों ने उर्दू छंदों का प्रयोग किया है, परन्तु गजल को प्रामाणिक प्रतिष्ठा हिन्दी में हो सकी है, यह एक विवाद का विषय है। इतना तो स्पष्ट है कि उर्दू के इतिहास-लेखकों ने हिन्दी कवियों के इन गजल सम्बन्धी प्रयोगों पर कोई विचार नहीं किया है, और न स्थान दिया है। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार के प्रयोग किसी एक धारा में न होकर अनेक धाराओं में विभक्त दिखाई पड़ते हैं। पहली धारा तो केवल उर्दू छन्दों को स्वीकार कर सरल हिन्दी भाषा में उनका प्रयोग करने की है। इस शैली में हिन्दी के कवियों को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, लाला भगवानदीन और हरिऔध इस शैली के मुख्य प्रयोक्ता हैं।

दूसरी धारा है उर्दू छंदों को हिंदी के संस्कृत गर्भित साचें में ढालने की। निरालाजी ने अपने अधिकांश प्रयोग इस शैली के गीतों में किए हैं। इस प्रणाली से उर्दू गजलों का सौन्दर्य संस्कृत शब्दावली के माध्यम से निखर नहीं सका है।

तीसरी धारा वह है जिसमें उर्दू छंदों को हिंदी और उर्दू की मिश्रित शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। ऐसी रचनाओं में यदि सरल हिंदी और सरल उर्दू की एकात्मकता होती तो ये गजलें अधिक सफल हो सकती थीं, परन्तु निरालाजी ने इस प्रकार का प्रयत्न करते हुए भी क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का मोह एक दम छोड़ नहीं दिया है। सरल उर्दू शब्दों का बाहुल्य होते हुए भी दो चार कठिन संस्कृत शब्द आ ही जाते हैं।

चौथी धारा वह है जिसमें उर्दू के छंद उर्दू माध्यम से निर्मित किये गये हैं, परन्तु ऐसा करते हुए उर्दू भाषा पर जो अबाध अधिकार चाहिए इसका दावा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाजी नहीं कर सकते। फलतः उनके उर्दू भाषा प्रयोगों में वह टकसालीपन जो उर्दू कवियों की सामान्य विशेषता है, नहीं है। उर्दू के मुहावरे और उक्ति चमत्कार, उनकी अतिशयोक्तियां और ऊहात्मक प्रेम-व्यंजना हिंदी काव्य की पद्धति के अनुरूप नहीं है। एक के मुहावरे दूसरे में अच्छी तरह खपाये नहीं जा सकते। फिर भी इस चौथी धारा की गजलों में निरालाजी उर्दू का अपना चमत्कार ला सके हैं।

कुल मिलाकर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू शैली के ये प्रगीत निराला की प्रयोगात्मक अभिरुचि के ही परिचायक हैं। इनमें निराला की अपनी भावधारा और अपना शब्द विन्यास अधिकार पूर्वक प्रयुक्त नहीं हुआ है। इन्हें हम निराला का प्रयोग इसलिए कहते हैं कि इनमें प्रयोग से आगे बढ़कर सफल निर्माण की योग्यता आंशिक रूप से ही आ पाई है। यहां प्रयोग शब्द का अर्थ है अपरिनिष्ठित रचना आर्थात् ऐसी रचना जिसमें लेखक का व्यक्तित्व और काव्य कौशल स्वीकृत सीमा तक न पहुँचा हो।

इनकी अपेक्षा मुक्त-छंद में निराला जी ने उर्दू शैली का जो प्रयोग किया है, उर्दू शब्दावली की जो अधिकता बरती है वह अपेक्षाकृत अधिक सफल है। मुक्त-छंद में तुकों की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसमें सामान्य प्रवाह से काम चल जाता है और विशेषकर व्यंग्यात्मक रचनाओं के लिए भाषा का हल्कापन भी बाधक नहीं होता। इन कारणों से निराला के मुक्तछंद की उर्दू शैली की कविताएं अधिक सुन्दर बन पड़ी हैं। उदाहरणार्थ 'मास्कोडायलाग्स' 'महँगू महगा रहो', 'रानी और कानी, 'गर्म पकौड़ी' जैसी रचनाओं का नामोल्लेख किया जा सकता है। जब तक उर्दू भाषा पर संपूर्ण अधिकार न हो तब तक परिनिष्ठित उर्दू काव्य-योजना कठिन होती है। निरालाजी ने छंदों के बंधन को छोड़कर उर्दू शैली की मुक्तक रचनाओं में अधिक सफलता प्राप्त की है।

४. आख्यानक प्रगीत : विदेशी साहित्य में और भारतोय साहित्य में भी लोक-काव्यों की ऐसी परंपरा मिलती है जिसमें किसी वीर आख्यानक द्वारा किसी पौराणिक, ऐतिहासिक या अनैतिहासिक वीर चरित्र का उद्घाटन बड़ी मार्मिकता से किया गया है। ऐसी रचनाओं को अग्रेजी में, 'वैलेड पोइट्री' और हिन्दी में वीरगीत कहा जाता है इसी परंपरा में निरालाजी ने 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसे आख्यानक प्रगीतों का निर्माण किया है। सामान्यतः लोकभाषा से संबंधित होने के कारण और लोकजीवन की भूमिका पर लिखे जाने के कारण इन वीरगीतों का स्वरूप पूर्णतः साहित्यिक नहीं होता, बल्कि उनमें लोकछंद, लोकभाषा का पुट अधिकांशतः रहा करता है। परन्तु निरालाजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दोनों ही आख्यानक-प्रगीत विशेषतः साहित्यिक हैं। इनमें लोककाव्य को की इतनी ही भूमिका दिखाई देती है कि यत्र तत्र अलौकिक घटनाओं के वर्णन मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'राम की शक्तिपूजा' में हनुमान का ब्रह्मांड का नाश करने का प्रयास इसी प्रकार की अतिलौकिक कल्पना है जो लोककाव्य में प्रचुरता से मिलती है। इसी प्रकार लौकिक विश्वासों का एक स्वरूप आगे एक सौ आठ पुष्प चढ़ाने के प्रसंग में मिल जाता है। यह लोक-प्रचलित पौराणिक गाथाओं से लिया गया है। परन्तु इन थोड़े से प्रयोगों को छोड़कर निराला का शेष वर्णन और विशेषकर उनकी भाषा-योजना एकदम साहित्यिक है। इन दोनों प्रगीतों में लोककाव्य का माधुर्य कम मिलता है बल्कि अतिशय संस्कृत-निष्ठता के कारण ये कविताएं अंशतः क्लिष्ट और दुरूह भी हो गई हैं। इनमें लोक-माधुर्य के स्थान पर एक महाकाव्योचित औदात्य की योजना की गई है, जिसके कारण इन रचनाओं में लोकगीतों की या वीरगीतों की वास्तविक भावना-धारा और लोकग्राहिता नहीं आ पाई है। हम कह सकते हैं निराला के ये दोनों ही आख्यानक-गीत लोक-प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर अथवा पौराणिक भूमिका पर भले ही लिखे गए हैं, परन्तु इनका निर्माण लोक भूमिका को छोड़कर महाकाव्योचित स्तर पर पहुँच गया है। इन प्रगीतों के विषय में हिन्दी समीक्षकों में अनेक विरोधी मत पाये जाते हैं। कुछ संस्कृत निष्ठ आलोचकों की सम्मति में कवि की ये दोनों रचनाएं काव्य के क्षेत्र में उनकी सर्वोत्तम उपलब्धि मानी जाती हैं। कुछ अन्य आलोचकों के मत में ये अत्यन्त दुर्गम और दुरूह होने के कारण कृत्रिम रचना की श्रेणी में स्वीकार की जाती हैं। वास्तविकता कदाचित इन दोनों के मध्य में है। स्वाभाविकता की कमी के कारण ये कृतियां निराला की सर्वोत्तम काव्य-रचना नहीं कही जा सकेंगी और साथ ही केवल भाषा की क्लिष्टता के आधार पर कृत्रिम कहना भी सर्वथा संगत नहीं होगा। ये निराला के स्वतंत्र और बहुमूल्य प्रयोग हैं और इन्हें इसी दृष्टि से देखना और परखना समीचीन होगा।

प्रश्न हो सकता है कि लम्बे आख्यानों को जिनमें घटनासूत्र काफी स्पष्ट है और जिनमें आंशिक रूप से संधियों और कार्यावस्थाओं का सन्निवेश पाया जाता है, प्रगीत की श्रेणी में कैसे लिया जाय ? इस संबंध में हम कह सकते हैं कि वीर आख्यान और वीरगीतों की परंपराएं बहुत कुछ स्वतंत्र हैं। वीरगीतों में विस्तार हो सकता है और होता है, परन्तु उनके निर्माण में वर्णनात्मक पक्ष की अपेक्षा केन्द्रीय भावोन्मेष की प्रधानता रहती है। अन्विति का ऐसा स्वरूप रहता है कि आदि से अंत तक कविता में एक ही भावोत्थान का स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्भासित होता है। वीर-आख्यानक काव्य में इस प्रकार की केन्द्रीय अन्विति नहीं होती और पूरा काव्य कई स्वतंत्र खण्डों में विभाजित हो जाता है। समय की गति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वीर-आख्यानक की संधियां और कार्यावस्थाएं कथानक के भिन्न भिन्न स्थलों में आकर उसके स्पष्ट विकास का निर्देश करती हैं, परन्तु वीरगीतों में समग्रता का पक्ष प्रधान रहता है। उसका कथानक खंडों में विभाजित नहीं होता। घटनाएं भी प्रायः पृष्ठभूमि में रहती हैं और गीतों की कड़ी विभिन्न अनुच्छेदों में बंधी रहती है। वीरगीत अध्याय या सर्गों में बंधा नहीं रहता। एक ही केन्द्रीय घटना चित्रित होती है। जब कि वीराख्यान में घटनाओं की क्रमिक प्रगति और सर्गबद्ध विकास हुआ करता है। इसके अतिरिक्त कवि की प्रकृति भी वीरगीत और वीराख्यान की रचना में भिन्न प्रकार से संयोजित होती है। इन्हीं करणों से 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' को आख्यानक प्रगीत कहा गया है। उन्हें आख्यानक काव्य या खंडकाव्य नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि ये दोनों आख्यानक-प्रगीत प्रगीत के गुणों से सम्पन्न हैं, परन्तु इनमें वीरगीतों की सी गेयता उपलब्ध नहीं है। इनकी छन्दयोजना गीतात्मक नहीं है, परन्तु इस एक कमी के कारण इन रचनाओं को प्रगीत की श्रेणी से निष्कासित नहीं किया जा सकता। देश-विदेश में ऐसे अनेक वीरगीत मिलते हैं जिनकी गेयता अनिवार्य नहीं होती। ये पाठ्य रूप में स्वीकृत किये जाते हैं।

गीतिनाट्य-पंचवटी प्रसंग :—

'पंचवटी-प्रसंग' नामक निराला की एक आरंभिक रचना गीतिनाट्य के रूप में प्रस्तुत की गई है। गीतिनाट्य के अनेक भेद होते हैं। कुछ तो नृत्यमूलक गीतिनाट्य हुआ करते हैं जिनमें गेय अंश नृत्य के सहायक मात्र होते हैं ; कुछ विशुद्ध गायन के लिए निर्मित होते हैं और शेष कुछ भावनाट्य की मनोवैज्ञानिक प्रमुखता लिए रहते हैं। निराला का यह गीति-नाट्य बंगाल की रास लीलाओं की पद्धति पर रचा गया है। उन रास-लीलाओं में विभिन्न पात्र आते हैं और लम्बे लम्बे उद्गारों व्यक्त करते हैं। लम्बे उद्गारो के लिए गद्य उतना समीचीन माध्यम नहीं होता, इसलिए उन्हें पद्यात्मक रूप दिया जाता है। निराला को मुक्त-छन्द की प्रेरणा रास की इस लोक-नाट्य की प्रणाली से प्राप्त हुइ थी। 'पंचवटी प्रसंग' में मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है, जो पद्य होता हुआ भी गद्य के अधिक समीप है और संवादों के अधिक उपयुक्त है।

लोकनाट्य की पद्धति पर 'पञ्चवटी प्रसङ्ग' का प्रणयन होने के कारण इसका रंगमंच सीधा-साधा और अनलंकृत है। कहा जा सकता है कि यह प्राकृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच ही है। यहाँ किसी प्रकार की औपचारिकता का प्रयोग नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त इसकी नाट्यशैली भी लोकनाट्य की शैली है। इस शैली के सम्वाद भावात्मक होते हैं। न इनमें किसी प्रकार का चरित्र-चित्रण होता है और न सूक्ष्म मानसिक विवृत्तियां होती हैं। इनका उद्देश्य दर्शक-समाज में रस की प्रतीति कराना हुआ करता है। निरालाजी के 'पञ्चवटी प्रसङ्ग' में लोक-नाट्य की ही पद्धति अपनाई गई है, यद्यपि इसमें एक साहित्यिक उत्कर्ष भी लाया गया है। निराला जैसे कवि के लिये यह स्वाभाविक ही था कि वे लोक-नाट्य की शैली को साहित्यिक स्तर पर पहुँचाने का प्रयत्न करते। उनकी भाषा और उनका राम, सीता और लक्ष्मण को चरित्र रेखाओं को उद्भासित करने का प्रयत्न उनके इस नाटक को साहित्यिक स्तर पर लाने में समर्थ हुआ है। निराला का यह गीति नाट्य नाटक की अपेक्षा गीत अधिक है। इसमें स्वच्छन्दतावादी भावना धारा निर्व्याज रूप ने अपनी समस्त विशेषताओं के साथ प्रस्तुत हुई है। प्रकृति का परिवेश है, वीरों का परिवार है। राक्षसों और आततायियों का अपर पक्ष है जिसमें वीर चरित्रों की निर्भीकता साहस और शक्तिमत्ता प्रचुरता से प्रकाशित हो सकी है। ये सब लक्षण वीर गीतों के हैं और यद्यपि निराला जी ने उसे नाट्य संवादों के माध्यम से प्रकट किया है परन्तु उनकी मूल प्रकृति स्वच्छन्दतावादी वीर गीत की ही है।

इस प्रकार यद्यपि निरालाजी की समस्त काव्य-रचनाएं प्रगीत शैली में निर्मित हैं, परन्तु इस सीमा में उनके प्रयोगों को संख्या अपरिमित है। निराला की स्वच्छन्द प्रतिभा छोटी सीमाओं में रह भी नहीं सकती थी। प्रगीत के सभी रूपों का प्रयोग और प्रकाशन निरालाजी की कविताओं में उपलब्ध होता है। अनेकानेक प्रगीत रूपों का ही नहीं, विभिन्न भाषा-शैलियों का और असंख्य छंदयोजनाओं का प्रयोग निराला की बृहतर काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। रवीन्द्रनाथ से जब एक बार पूछा गया था कि उन्होंने कोई महाकाव्य क्यों नहीं लिखा, किसी बृहत् आख्यान का निर्माण क्यों नहीं किया, तो उन्होंने उतर दिया था कि मेरा महाकाव्य ही असंख्य टुकड़ो में बँट कर मेरी गीत सृष्टि में आकार ग्रहण कर सका है। कुछ युग ही ऐसे होते हैं जिनमें महान कवियों की प्रतिभा गीतमुखी हो जाती है। विशेषकर नवीन संस्कृति की किशोरावस्था में महाकाव्य की रचना नहीं हो पाती। उसके बदले लघु प्रगीतों में उस युग की समग्र चेतना प्रतिबिम्बित होती है। निराला का युग भी भारतीय संस्कृति के नव निर्माण की किशोरावस्था का युग था जिसमें बहिर्मुखता और समन्वित आदर्शों और जीवन-लक्ष्यों के स्थान पर नये स्वप्नों और नई आकांक्षाओं को स्वरूप दिया गया है। इस नवोन्मेष के अनुरूप ही निराला के काव्य-रूप निर्मित हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्त-काव्य-पुरुष निराला

डॉ० धनंजय वर्मा

निराला के सम्पूर्ण काव्य-व्यक्तित्व की यदि एक शब्द में अभिव्यञ्जना की जाय तो वह शब्द होगा—अन्तर्विरोध। लेकिन शायद किसी एक शब्द में निराला नहीं बंध सकेगा। जो काल की सीमाओं में नहीं बंधने का, वह एक शब्द की सीमा में कैसे बंधेगा? लेकिन यह सच है, और मैं अन्तर्विरोध को उसके सीमित अर्थ में प्रयुक्त करना नहीं चाहता। वह शब्द निखिल और असीम है और आगे आनेवाली पीढ़ियाँ यह पहचानेंगी कि इतना अन्तर्विरोध किसी एक ही व्यक्तित्व और काव्य के हिस्से में अभी तक कमी नहीं आया। क्या कोई भी एक ही वृत्त या केन्द्र है जिसको लेकर कहा जाय कि यह निराला है और यही निराला है? एक बिल्कुल स्थूल उदाहरण लेता हूं—

"विजनव-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्नमग्न अमल कोमल तनु तरुणी।"

'जुही की कली' का प्रणय भींगा मधु राग, और

'तुम हो महान,
तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन-भाव
कायरता, कामपरता
ब्रह्म हो तुम
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार
जागो फिर एक बार!"

या 'बादल राग' के मेघमन्द्र स्वर—

"ऐ निर्बन्ध!
अन्धतम अगम अनर्गल बादल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐ स्वच्छन्द!
मन्द चंचल समीर रथ पर उच्छृंखल
ऐ उद्दाम!
अपार कामनाओं के प्राण।
बाधा रहित विराट"
अथवा
"कण कण कर कंकण प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर उर लाज़
लौट रंकिणी"

के विपरीत—

"अबे सुन बे गुलाब!
भूल मत जो पाई खुशबू रंगों आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट"

और—

"किनारा वो हमसे किये जा रहे हैं
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं,
के बिल्कुल दूसरे छोर पर
भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिग्मण्डल;
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है उर्मिल जल निश्चलत्प्राण पर शतदल"

दूर क्यों जायँ, एक ही कविता लीजिये—'राम की शक्ति पूजा'।, एक रिद्म है—

"देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय संभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन।"

और उसी में एक बिल्कुल दूसरी रिद्म है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्रकर, वेग प्रखर,
शतशैल संवरणशील, नील नभ गर्जित-स्वर,
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह-भेद-कौशल समूह,
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह क्रुद्ध कपि विषम हूह,
विच्छुरित वह्नि-राजीवनयन-हत लक्ष्यवान
लोहित लोचन रावन मद-मोचन महीयान।'

आप कह सकते हैं कि यह तो विषयानुकूल भाषा की रचना है और रूप का वैविध्य यह है, लेकिन रूप का यह जो 'कन्ट्रास्ट' है, वह न केवल वस्तु के, वरन् काव्यात्मा (Poetic spirit) के 'कन्ट्रास्ट' का भी द्योतक है। 'परिमल' से लेकर 'अणिमा' की कुछ अतियथार्थवादी कविताएं और 'अर्चना', 'आराधना' का भक्ति-स्वर अपने आप में एक अन्तर्विरोध नहीं तो और क्या है? ऐसा लगता है कि निराला का प्रत्येक काव्य-चरण स्वयं अपने पिछले का विरोध है, लगता है कि निराला युग की सारी कविता के सारे अन्तर्विरोधी पक्षों का उद्घाटन करने के लिये ही काव्य-रचना कर गये, जैसे उन्होंने यह प्रमाणित करना चाहा हो कि इतना विविध इतना व्यापक और इतना विस्तारमय होता है काव्य। रिल्के की एक पंक्ति याद आती है :—

Time of a life-time life, that can extend
From contradictions into contradictions.

यह निराला के सम्पूर्ण काव्य व्यक्तित्व के साथ भी उतना ही सही है। वह अन्तर्विरोधों से उपजा और अन्तर्विरोधों में लीन हो गया। लेकिन हमें ध्यान देना होगा कि यह अन्तर्विरोध पूरे युग का है और निराला पूरे युग का प्रतीक है। वह यदि न्यूरॉटिक और विक्षिप्त था, (यद्यपि इस प्रसंग में मेरी धारणा भिन्न है[1] उनके व्यक्तित्व और मस्तिष्क की व्याख्या, विश्लेषण और निर्वचन के लिये एक दूसरे फ्रायड की जरूरत है क्योंकि वह एक दूसरा माईकेल एंजेलो है, शायद कुछ अधिक ही और निराला की समकालीन पीढ़ी उसका मूल्यांकन कर सकने में अक्षम सिद्ध हो चुकी है, हमारी पीढ़ी में उसके 'ताबूत तक को उठाने की शक्ति नहीं है,' (संदर्भः मुद्राराक्षस का एक पुराना लेख। एक प्रखर तेज-दीप्त प्रकाश को हम नजदीक से नहीं, सुदूर अन्तराल के बाद ग्रहण कर पाते हैं। कालिदास को समझने में सदियों लग गईं। रवीन्द्र के भावन के लिए कितने-कितने प्रयत्न हैं, तब निराला इसी सदी में कैसे समझा जा सकता है?) तो

---

१ देखिये मेरा प्रबन्ध : निराला काव्य और व्यक्तित्व पृ० ५७-६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका न्यूरासिस या विक्षिप्तता या आत्म-संघर्ष, व्यक्ति और समाज, कला और राजनीति, अर्थमूल्य और मानव-मूल्यों के संघर्ष का प्रतीक था। वह पूरे युग का प्रतीक था। लेकिन यह प्रतीक शब्द फिर धोखेबाज है। मैं कहूंगा, निराला पूरा युग था—सम्पूर्ण और समग्र। पूरे युग-संघर्ष को जिसने भोगा उसे वाणी दी और सार्थक किया।

काल की एक अनिश्चित धारणा में हम हैं और वह बदली है। पहले काल एक समय और अवधि (Period Duration) का नाम था और वह भ्रामक था। काल एक नैरन्तर्य है और वह इनफिनाइट है और निराला भी समय या अवधि नहीं है, वह इसी बदले हुए काल का नाम है, वह एक 'इनफिनिटी' है। दिक् काल की निरन्तरता की तरह उसका काव्य नैरन्तर्य है और उसके अन्तर्विरोध पृथक् पृथक् क्षणों के क्वाण्टाज़ में केन्द्रस्थ प्रभावों का वैविध्य और वैषम्य है। किसी भी एक ऐसे कवि की कल्पना ही दुरूह है जिसने अपने युग काल को उसके उतने सारे अन्तर्विरोधों में समग्र और पृथक् पृथक् भोगा, ग्रहण किया और उससे मुक्त हुआ हो। यह अपराजेय काव्य-पुरुष निराला के अपराजेय 'अहं' से ही संभव हो सका, यह अद्वैतवादी निराला से ही हो सका। वह अन्तर्विरोधों से निकलकर अन्तर्विरोधों में लीन हुआ, लेकिन एक मुक्त व्यापकता दे गया। अतः संपूर्ण निराला काव्य पूरे युग का काव्य इतिहास है जो युग के समस्त मूल्यों को प्रस्तुत करता है। काव्य की व्यापकता को मैं दो रूपों में देखता हूं —एक व्यापकता आरोपित होती है—सायास और दूसरी स्वप्रेरित स्वायत, एक प्रयत्नसाध्य होती है, दूसरी स्वभावगत, एक वस्तुपरक होती है दूसरी आत्मपरक। निराला की व्यापकता दूसरी श्रेणी की है। एक तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के बृहदाकार के बाद भी उनकी मूल भूमि में कोई अन्तर नहीं आया है। द्विवेदी युग से लेकर अब तक उनके विभिन्न प्रयोगों में भी उनका काव्य-व्यक्तित्व एक सा है। इस दृष्टि से व्यापकता वहां नहीं है। 'भारत-भारती' से लेकर आज तक रचना-बहुलता और प्रकार-बहुलता के साथ भी गुप्तजी का काव्य-व्यक्तित्व जहां का तहां है। महादेवी वर्मा के काव्य में भी विकास और विविधता नाम की कोई वस्तु नहीं है। वह आदि से अन्त अक एकतान, एक रस है। इसके विपरीत निराला-काव्य में वह व्यापकता मिलती है। उनके प्रत्येक विकास में यह व्यापकता है— 'परिमल' में ही जहां 'जुही की कली' का उन्मुक्त प्रेम-व्यापार है, वहीं 'तुम और मैं' का अद्वैतवादी दर्शन, 'बादल राग' और 'जागो फिर एक बार' का क्रान्तिघोष, 'यमुना के प्रति' की सांस्कृतिक चेतना, 'शिवाजी के पत्र' की राष्ट्रीयता, 'विधवा' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भिक्षुक' की प्रगतिशीलता, यह व्यापकता विषयों के वैविध्य वाली नहीं है, वह शैलियों का वैभिन्य भी नहीं है, वह काव्य-चेतना और काव्यात्मा की व्यापकता है जो नित नये मार्ग ढूंढ़ती है, आयाम ढूंढ़ती है, किसी 'बियाण्ड' की ओर ले जाती है जहां प्रत्येक नवीन शीघ्र ही अतिक्रमित हो जाता है। जो क्षण बीता, वह तो पुरातनता का अंग है और काल के निरन्तर प्रवाह में प्रत्येक आगामी क्षण नया होगा। निराला की प्रतिभा को प्राचीनता का बन्धन कभी नहीं स्वीकार हुआ। उसने अपने व्यतीत से ही विरोध किया। मुक्तछन्द के बाद गीत, उसके बाद 'कुकुरमुत्ता' 'बेला' और 'नये पत्ते' फिर वृहत् रचनाएं—'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' फिर 'अर्चना' और 'आराधना' के भक्ति-गीत। यदि यह सब हमारे सामने न हुआ होता, कहीं बीते मध्य युग में हुआ होता तो शायद हम भी आज अटकलें लगाते कि यह सब एक ही कवि का कार्य नहीं है, वरन् विभिन्न कवियों की प्रक्षिप्त सामग्री 'निराला' के नाम से जोड़ दी गई है, क्योंकि इतना अन्तर्विरोध एक ही कवि में संभव नहीं है। 'प्रसाद' की व्यापकता देखनी हो तो 'चित्राधार' से लेकर 'कामायनी' तक की काव्य-यात्रा करनी होगी। उन्होंने वृत्त छोड़े और सीमाएं बढ़ाई हैं। ऐसा नहीं है कि केवल 'चित्राधार' या 'काननकुसुम' या 'लहर' या 'कामायनी' तक में संपूर्ण प्रसाद का पूरा आख्यान मिल जाय। पन्त के साथ समस्या ही दूसरी है। 'पल्लव' से लेकर 'उत्तरा' और 'सौवर्ण' तक उनकी कविता में विविधता तो अवश्य है, लेकिन व्यापकता हम उसे नहीं कह सकते। 'ग्राम्या' अथवा 'युगवाणी' में उन्होंने एक नया रास्ता अपनाया और 'स्वर्ण किरण' अथवा 'स्वर्ण धूलि' में उनकी कविता ने पुनः एक पाट बदला। यह रास्ता बदलने और पाट बदलने की स्थिति व्यापकता कठिनता से कहलायेगी और फिर 'पल्लव' का काव्य-वैभव, वैसी शक्तिमत्ता, पन्त फिर कहां पा सके? लेकिन निराला के प्रत्येक चरण में उसी मूलभूत मौलिकता, शक्तिमत्ता, प्रांजलता और परिष्कार व्यापकता के दर्शन होते हैं। 'परिमल' के विषय में कह चुका हूं, 'गीतिका' 'अनामिका' या किसी भी संग्रह या चरण में वह देखी जा सकती है। रिल्के और रिम्बो में अन्तर्विरोध एक कैरक्टरिस्टिक है, इलियट, पाऊंड और आर्डेन में भी वह एक विशेषता है लेकिन निराला के अन्तर्विरोध,, कैरक्टरिस्टिक और एक विशेषता न हो कर उसकी व्यापकता के 'न्यूक्सी' हैं। वह उन्मुक्त और मोक्ष-प्राप्त है। इलियट ने 'एस्केप फ्राम पर्सनालिटी' का दर्शन भले दिया हो; पश्चिम में 'निगेशन आफ पर्सनालिटी' 'इम्पर्सनलाइजेशन' या 'डिपर्सनलाइजेशन' के काव्य-सिद्धान्त भले प्रचलित हुये हों, लेकिन काव्य में व्यक्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष की प्राप्ति वहां नहीं है, वे सब उसके लिये पूर्व के दर्शन, भारतीय साधना (गीता और वेदान्त) की ओर मुड़ रहे हैं। उनकी आधुनिक कविता 'क्वेस्ट फार फ्रीडम फ्राम द सेल्फ' है, जब कि निराला आदिमुक्त हैं। उनकी कविता मुक्ति की कविता है—छन्द में ही नहीं, आत्मा में भी। काल के निरन्तर प्रवाह में ज्यों एक क्षण की सत्ता है, जो समस्त अन्तर्विरोधों का 'फोक्स' है और एक दूसरे से भिन्न व पृथक् वैसे ही निराला की कविताएं उनके काव्य के एक एक क्षण हैं जिनका आपस में तात्कालिक दृष्टि से कोई तारतम्य और अनुक्रम भले न हो लेकिन वे ऐक निरन्तर काल-प्रवाह की ही तरह समस्त काव्य नैरन्तर्य का क्षणांश हैं। इसीलिये निराला युग-काल से इतने संपृक्त भी थे।

यों हम मैथलीशरण गुप्त से लेकर प्रसाद, पन्त और रवीन्द्र की कविता को भी युग की अभिव्यक्ति और प्रतिनिधि कहेंगे और वह है भी, लेकिन तब मैं कहूँगा कि यदि वे युग के अभिव्यञ्जक और प्रतिनिधि काव्य हैं तो निराला का काव्य युग-काल का 'एक्सप्रेशन' या 'रिप्रेजेण्टेशन' नहीं है, वह उसका 'मेनीफेस्टेशन' है और असीम का काव्य केवल 'मेनीफेस्टेशन' होगा – अभिव्यक्ति और प्रतिनिधित्व की लक्ष्मण रेखाओं से परे। मैंने अपने प्रबन्ध में निराला को स्वामी विवेकानन्द का काव्य संस्करण कहा है और मैं मानता हूं कि जिस प्रकार आधुनिक काल, भारत और उसकी आत्मा ने स्वामी विवेकानन्द में अपना 'मेनीफेस्टेशन' और 'रियलाइजेशन' किया और करेगा, उसी तरह निराला में आधुनिकयुग और काव्य ने अपना 'मेनीफेस्टेशन' और 'रियलाइजेशन' किया है। इसका बोध थोड़ी सी निर्लिप्ति के बाद हो जायगा। प्रसाद का काव्य, युग की 'फंण्टेसी' और 'मिथपरक' व्याख्या और सामाधान है। उनकी मधुचर्या सीमातीत है और इसीलिये वहाँ मेनीफैस्टेशन या रियलाइजेशन की निर्बाध, निर्विकल्प मुक्ति नहीं है और रवीन्द्र! .. यदि मुझे अतिरिक्त मोह का अपराधी न ठहराया जाय तो मैं कहना चाहूँगा कि रवीन्द्र निराला से व्यापक हो सकता है (क्योंकि रवीन्द्र की क्षितिज ब्यापी प्रतिभा का धनी कोई आधुनिक कलाकार नहीं हुआ—वे एक साथ ही उत्कृष्ट चित्रकार, संगीतकार, कवि, उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ, मानववादी हैं) लेकिन रवीन्द्र-काव्य निराला-काव्य से व्यापक नहीं है। यह बात मैं केवल काव्य के प्रसंग में कह रहा हूं और अपने उत्तरदायित्व से पूरी तरह परिचित हूं। रवीन्द्र का काव्य अति-समृद्ध भावात्मकता से सर्वत्र रंजित है और एक आत्यन्तिक अस्पष्ट मधुचर्या में विस्मरण भी वहाँ है। उस अनुरक्त रहस्यात्मकता में आत्मिक ओज की अपेक्षा भावाकुलता का रंग प्रगाढ़ है। सत्य की प्रखर और संघर्ष-प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहन अनुभूति की अपेक्षा उसमें मधुर-हृदय वेदना और सुवासित-निश्वास की व्यञ्जना अधिक है, जब कि निराला का काव्य दोनों घेरों को समान अधिका और शक्ति से छूता है। रवीन्द्र अपने स्थान और व्यक्तिगत परिवेश के कारण सत्य की वैसी प्रखर और संघर्ष प्रधान गहन अनुभूति न कर सकते थे क्योंकि उनके आगे इतने अन्तर्विरोध नहीं थे। उन्हें उनसे संघर्ष नहीं करना पड़ा इसीलिये निराला की तरह शक्ति का वह ऊर्जस्वी, दार्शनिक और अद्वैत-वादी स्वर वहाँ नहीं है। वहाँ धीमे-धीमे गाती हुई रहस्यात्मा के मधु-भीगे मदि गान हैं, वे युग-परिवेश में मुक्ति-आकांक्षी आत्मा की व्याकुलता भी हैं लेकिन निराला की तरह मुक्त और बाधारहित स्वतंत्र विराट आत्मा का दर्पस्फीत, गर्जन भरा अद्वैतवादी सन्यासी का सा फक्कड़ स्वर-औद्धित्य नहीं। इसीलिये भारतीय संस्कृति का अपेक्षाकृत उदात्त और पूर्ण आख्यान जितना निराला में मिलता है उतना रवीन्द्र के काव्य में नहीं।

एक-दो शब्द निराला के काव्य को समझने की दिशा में भी, —क्योंकि यहाँ भी उसकी रचना प्रक्रिया और निर्माण प्रकिया में एक अन्तर्विरोध है। रचना प्रक्रिया आन्तरिक होती है और निर्माण या 'स्ट्रक्चर' वाह्य ; और निराला अपनी रचना प्रक्रिया में जटिलता से सहजता की ओर आये हैं, काम्प्लेक्स से सिम्पल की ओर आत्म-मुक्ति की कविता वैसी हो होती है (अरविन्द और विवेकानन्द का काव्य प्रमाण है)—यही क्यों, प्रत्येक कविता ऐसी ही होती है शायद— गुत्थियों और उलझनों की अनुभूति का एक सहज सुलझाव। लेकिन जहाँ आधुनिक कवि (जिनमें इलियट, पाउंड, आडेन आदि को भी गिना जा सकता है) अपनी निर्माण प्रक्रिया में जटिलता और काम्प्लेक्सिटी या कण्ट्राडिक्शन्स से मुक्त नहीं हो पाया है ; वह काम्प्लेक्स को काम्प्लेक्स और कण्ट्राडिक्शन को कण्ट्रा- डिक्शन और द्वैष को द्वैष से ही समझता और समझाता है वहाँ निराला ऐसा नहीं करते। वे उनसे (काम्प्लेक्स, कण्ट्राडिक्शन या द्वैष से) मुक्त हो सके हैं। उनकी कविता की निर्माण प्रक्रिया में यह देखा जा सकता है। वह सहजता से जटिलता की ओर ले जाती है कि हम भी उससे मुक्त हो सकें। उसकी गति 'इन वर्ड' है जब कि दूसरों में सहजता होती ही नहीं। यह सहजता लेकिन ऐसी नहीं है जिसे आप सहल कह सकें। यह सहजता कठिनता की विरुद्धार्थी नहीं है, वह उद्दाम स्वातंत्र्य और मुक्ति की अपरिहार्यता है। उस सहजता में एक अनिवार्यता ही अधिक है, वरना कोई चाहे कि निराला की कविता को पी लिया जाय, 'इनहेल' किया जाय तो वह भ्रामक होगा। उनकी सारी कविता का स्वभाव एक नहीं है, वरन् प्रत्येक कविता का अपना स्वभाव और प्रकृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तवृत्त और निराला

डा० बच्चन सिंह

अनेक रूपात्मक साहित्य को आकार देने का दायित्व वस्तु पर निर्भर है। जिस प्रकार कुम्हार जीवन की आवश्यकताओं को देखते हुए घटादि को रूपाकार देता है उसी प्रकार साहित्यकार युगानुरूप जीवन चेतना को तदनुरूप रूपाकार में संकल्पित करता है। महाकाव्य, खंड-काव्य, प्रगीत के रूप और शिल्प के मूल में युग की गहरी माँग रही है। आधुनिक युग का गद्य नवीन आवश्यकताओं के फलस्वरूप आविर्भूत और विकसित हुआ है। मुक्तवृत्त एक खास ऐतिहासिक माँग के पूर्यर्थ ही हिंदी काव्य-परंपरा का अंग बना।

न तो यह फ्रांसीसी भाषा के 'वर्सलिब्रे' का अनुवाद है और न अंग्रेजी के फ्री-वर्स का। वर्स लिब्रे' के हूबहू अर्थ में 'फ्रीवर्स' का भी प्रयोग नहीं हुआ है, यद्यपि अंग्रेजी का 'फ्रीवर्स' फ्रेंच 'वर्स लिब्रे' से अनुप्रेरित अवश्य है। यह सच है कि 'फ्रीवर्स' के सम्बन्ध में पाउंड, पीट्स और डी० एच० लारेन्स ने लाफोर्ज और मेलार्मे की शब्दावली ही दुहराई है फिर भी अंग्रेजी की परंपरा फ्रांसीसी परम्परा से भिन्न है। जिस मुक्तवृत्त का प्रथम प्रयोग निराला ने हिंदी में किया वह बंगला से प्रेरणा संवलित अवश्य है पर उसकी परम्परा हिन्दी की है और बंगला से वह भिन्न है।

वस्तुतः मुक्तवृत्त छायावाद युग की मुक्ति-कामिता का प्रतीक है। वह युग पुरानी रूढ़ि-जर्जर शृंखलाओं को तोड़ फेंकने के लिए अतिशय व्यग्र हो उठा था। विदेशी परतंत्रता से मुक्ति पाने के लिए देश जेलों में बन्द हो रहा था; नए सांस्कृतिक आन्दोलनों के फल-स्वरूप धर्म और संस्कृति की रूढ़ियों के बन्ध तेजी से टूट रहे थे। द्विवेदी युग के सीमित काव्य-बन्ध इस युग के निबंध भावावेग को संभाल पाने में असमर्थ थे। पूंजीवादी व्यक्तिवाद अपनी स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल माध्यम की खोज में था। नियमों के मकड़ी जाल में उलझ जाने पर जीवन और साहित्य का उससे निकल पाना संभव नहीं है।

'परिमल' की भूमिका में निराला ने लिखा है--'वैदिक साहित्य काव्य में इस प्रकार की स्वच्छन्द सृष्टि को देखकर हम तत्कालीन मनुष्य स्वभाव की मुक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अंदाजा लगा लेते हैं। परवर्ती काल में ज्यों-ज्यों चित्र-प्रियता बढ़ती गई है, साहित्य में स्वच्छन्दता की जगह नियंत्रण तथा अनुशासन प्रबल होता गया है, यह जाति त्यों-त्यों कमजोर होती गई है। सहस्रों प्रकार के साहित्यिक बन्धनों से यह जाति स्वयं भी बंध गई, जैसे मकड़ी आप ही अपने जाल में बँध गई हो, जैसे फिर निकलने का एक ही उपाय रह गया हो कि उस जाल की उल्टी परिक्रमा कर वह अपने बाहर निकले। उस मकड़ी ने जितनी जटिलता दूसरे जीवों को फाँसने के लिए उस जाल में की थी वह उतने ही दृढ़ रूप से बंधा हुआ है। अब उसे अपनी मुक्ति के लिए उन तमाम बंधनों को पार करना होगा। यह हाल वर्तमान समय में हमारे काव्य-साहित्य का है। इस समय के और पराधीन काल के काव्यानुशासनों को देखकर हम जाति की मानसिक स्थिति को भी देख ले सकते हैं। अनुशासन के समुदाय चारों तरफ से उसे जकड़े हुए हैं, साहित्य के साथ-साथ राज्य, समाज, धर्म व्यवसाय, सभी कुछ पराधीन हो गए हैं।....नियम और अनुशासन भी सीमा के ही परिचायक होते हैं, और क्रमशः मनुष्य जाति को क्षुद्र से क्षुद्रतर तथा गुलाम कर देने वाले।'

'साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति-प्रयास का पता चलता है। धीरे धीरे चित्र-प्रियता छूटने लगती है। मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है। चित्रों की सृष्टि तो होती है पर वहीं उन तमाम चित्रों को अनादि और अनन्त सौन्दर्य में मिलाने की चेष्टा रहती है—साहित्य में इस समय यही प्रयत्न जोर पकड़ता जा रहा है और यही मुक्ति प्रयास के चिह्न भी हैं। .. और यही जाति के मस्तिष्क में विराट दृश्यों के समावेश के साथ ही-साथ स्वतंत्रता की फाँस को भी प्रखरतर करते जा रहे हैं।'

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर जो निष्कर्ष निकलते हैं वे हैं १—नियमों, के मकड़ी-जाल में फँस कर हमारा जातीय जीवन दुर्बल हो गया २—साहित्य की मुक्ति से जातीय जीवन की मुक्ति का ज्ञान होता है, ३—साहित्य की मुक्ति का प्रयास स्वतंत्रता की प्रखर प्यास से अनिवार्यतः संबद्ध है। इससे स्पष्ट है कि जिस ऐतिहासिक परिवेश में मुक्त-वृत्त आया वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रता का प्रबल आकांक्षी था और मुक्त-वृत्त अपने स्वतंत्र-कामी युग को मूर्त करने का एक संयत किंतु सहज प्रयास था।

यह मुक्त वृत्त परम्परा मुक्त-छन्द-बन्ध के विरुद्ध एक क्रांतिकारी कदम था। लेकिन फिर भी यह अपनी परम्परा के मेल में ही था। निराला ने इस तरह के छन्दों की एक लंबी परम्परा का उल्लेख 'परिमल' की भूमिका में ही किया है। निराला द्वारा खोजी गई परम्परा की शृंखला पर संदेह हो सकता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इससे कम से कम यह तो जाहिर है कि वे इसकी कड़ियों को अपनी परंपरा से जोड़ रहे थे। उनका कहना है—'हिन्दी में मुक्त-काव्य कवित्तछन्द की बुनियाद पर सफल हो सकता है। कारण, यह छन्द चिरकाल से इस जाति के कंठ का हार हो रहा है।' जातीय जीवन के लिए अपने प्रिय छंद को जातीय जीवन से जोड़ देना स्वाभाविक है इसलिए इस छन्द की प्रेरणा चाहे जहाँ से मिली हो यह हमारे जीवन का उपकारक ही है।

मुक्तवृत्त स्पष्ट है कि किसी अराजक मनोभाव से प्रेरित नहीं था। निराला के शब्दों में 'मुक्त-काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किंतु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।' स्वाधीन चेतना की व्याख्या अपेक्षित है। नए युग की करवट के साथ सचेत साहित्य भी करवट लेता है। युगीन आकांक्षाओं को वाणी देने के लिए उसे नये मुहावरे की आवश्यकता होती है। नया मुहावरा पुराने रूप-विन्यास में अपक्षस्थान सिद्ध होता है, क्योंकि वह एक विशेष प्रकार के काव्य शिल्प और शब्दावली के ही अनुकूल पड़ता है। इसलिए नये मुहावरे को नया रूपाकार लेना ही होता है। मुक्तवृत्त के पूर्व गति, यति आदि में कुछ परिवर्तन कर, अतुकांत छन्दों का प्रयोग कर, नये, मुहावरे को ग्रहण करने की चेष्टा की गई थी। लेकिन यह सब पर्याप्त नहीं सिद्ध हुआ।

निराला के मुक्त-छन्द का विश्लेषण करने के लिए उनकी एक छन्दों बद्ध रचना से मुक्त छन्द की तुलना आवश्यक है।

(१) ढल रहे थे मलिन-मुख रवि, दुख किरण'
पद्म मन पर थी, रहा अवसन्न वन,
देखती यह छबि खड़ी मैं, साथ वे
कह रहे थे हाथ में यह हाथ ले,

(२) एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किंतु क्या ?
योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता है, गीता हैं,
स्मरण करो बार-बार—
जागो फिर एक बार !

पहले दूसरे उदाहरण अर्थात् मुक्तवृत्त के शिल्प पर विचार करें। स्थान-स्थान पर तुकों का आग्रह आलंकारिक योजना इसे कुछ अर्थों में परम्परा प्राप्त छन्दोंबद्ध रचना के निकट ला देती है। 'योग्य जन जीता है' और 'पश्चिम की उक्ति नहीं' की तो मात्राएँ तक बराबर हैं। इसके चरण भी कहीं सम मात्रिक हैं तो कहीं विषम मात्रिक, कहीं अमात्रिक। इसे छन्दत्व के रंग से मुक्त नहीं माना जा सकता। फिर भी यह बंधन मुक्त है। छन्दत्व का रंग अपने आप आ गया है। पर पहले उदाहरण के चारों चरण समान मात्रा के हैं, चरणों का तुक मिलाना भी छन्द के लिए अनिवार्य है। किंतु छन्दोंवद्ध रचना और मुक्त-व्रत्त का भेदक तत्त्व यह नहीं है। इनके बीच की विभाजक रेखा लय द्वारा ही खींची जा सकती है। पहले उदाहरण की प्रत्येक पंक्ति अपने आप में स्थिर है और अर्थ देने में असमर्थ है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है वह स्वयं वाक्य नहीं बना पाती। पूरा वाक्य बनने पर ही अर्थ व्यक्त हो पाता है। कभी-कभी यह भी होता है कि पाठक को अपनी ओर से भी कुछ जोड़ना पड़ता है। वस्तुतः इसमें लय के दो स्तर होते हैं छन्दगतलय और वाक्यगतलय : लय का दूसरा स्तर अर्थ देता है और पहला उसे प्रभावपूर्ण बनाता है। मुक्तव्रत्त में एक ही लय होती है—वाक्यगत। इसमें पूरे वाक्य पर ही पूर्ण विराम होता है। एक वाक्य के भीतर वाक्यांश भी होते हैं। वे अपने आप में पूर्ण होकर भी वाक्य के उपकारक हो सकते हैं। मुहावरों की दृष्टि से भी साफ है कि दूसरा उदाहरण अधिक आधुनिक है।

मुक्तवृत्त का एक और उदाहरण लीजिए—

घेर अंग-अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की,
ज्योतिर्मयि लता-सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु-तन।

यह पहले मुक्तव्रत्त की तरह छन्द-गंध पूर्ण नहीं है। फिर भी यह गद्य की लय से भिन्न है। पर इधर नई कविता के सिलसिले में कुछ ऐसी रचनाएँ प्रकाशित हुई जो गद्य से भिन्न नहीं कही जा सकती। अज्ञेय की कुछ रचनाएँ भी इस तरह की मिल जायेंगी। इस तरह की रचनाओं के समर्थन में एक नया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिगूफा निकाला गया कि उनमें अर्थ की लय है। पर यह अर्थ की लय क्या है ? इस पर लोग बाग मौन हो गये, क्योंकि इसे स्पष्ट करने के लिये पश्चिम ने भी कोई नुस्खा नहीं पेश किया। नये कवियों ने कविता और गद्य को एक करने का श्रेय लूटने का अवसर भी हाथ से नहीं जाने दिया।

विचारणीय यह है कि निराला के मुक्तवृत्त और नई कविता के मुक्तवृत्त में कहाँ अन्तर आ गया है। निराला का मुक्तवृत्त जातीय जीवन से संबद्ध होने के कारण वैयक्तिक अभिव्यक्ति का साधन होने पर भी बराबर जातीय अभिव्यक्ति का साधन बना रहा। उनके एकतान व्यक्तित्व ने उसे व्यापक और निर्बंध जीवन के व्यक्तीकरण का उपकरण माना। आज के जिन खंडित व्यक्तित्वों के दर्शन मुक्तवृत्त में होते हैं वे नितांत वैयक्तिक हैं। इन्होंने निराला की भाँति इसे अपनी परम्परा के अनुकूल बनाने की कोशिश नहीं की है। बल्कि वे उसकी प्रेरणा विदेशों से प्राप्त करते रहे हैं। इसलिए उनमें से काफी रचनाओं में मुमूर्ष पश्चिमी जीवन की झाँकी मिलती है। निराला की रचनाओं को गर्वपूर्वक कहा जा सकता हैं कि ये मूर्द्धन्य भारतीय कवि की सिद्धियाँ हैं। नई कविता के सम्बन्ध में क्या यही कहा जा सकता है ?

इस सिलसिले में एक बात और उठाई जाती है कि यदि निराला को यह छन्द इतना प्रिय था तो उनकी प्रोढ़तम कृतियाँ—मुख्यतः 'राम की शक्तिपूजा' छन्दोबद्ध क्यों है ? पहली बात तो यह है कि वह कथात्मक है। उसके लिये वह बंध अनिवार्य था। दूसरी बात यह है कि उसकी प्रौढ़ता का बहुत कुछ श्रेय मुक्तवृत्त को देना होगा। 'राम की शक्तिपूजा' का असली रूप वही समझ सकेगा जिसने उसे स्वयं निराला के ओजपूर्ण स्वरों में सुना है। निराला की ऊर्जा का चमत्कार उनके मुक्तगीत या मुक्तवृत्त में ही संस्कृत हुआ है। 'राम की शक्ति पूजा' में जो औदात्य है वह बहुत कुछ श्रुति-बिंबों पर आधारित है, पढ़ने के ढंग पर निर्भर है। ध्वन्यात्मकता तथा पढ़ने के ढंग का अनिवार्य सम्बन्ध मुक्तवृत्त से है न कि छन्दोबद्ध रचनाओं से।

—:o:—

पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूंगा मैं,
अपने नव जीवन का अमृत सहर्ष सींच दूंगा मैं,
द्वार दिखा दूंगा फिर उनको
हैं मेरे वे जहाँ अनन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला की भक्ति-भावना

प्रो० गोविन्द प्रसाद शर्मा

भक्ति की पावन पयस्विनी का उत्स भी विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय के विशाल बन में खोज निकाला है। वेदत्रयी में भक्ति—ज्ञान एवं कर्म से समन्वित, मानव जीवन के चरम लक्ष्य की सिद्धि करती है। ज्ञान से लक्ष्य का बोध, कर्म से लक्ष्य की प्राप्ति तथा भक्ति से लक्ष्य में तन्मयता उपलब्ध होती है। इन तीनों का समन्वय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। समय के साथ-साथ ज्ञान और कर्म दबते चले गये और भक्ति उभरती गई। भागवत काल में हम भक्ति के दोनों पुत्र—ज्ञान ताथ वैराग्य को मुमूर्षदशा में देखते हैं। व्रज-वृन्दावन में आकर पुनः नवयौवन प्राप्त करके भक्ति ने भागवत काल से लेकर सत्रहवीं शती तक अगणित भावुक रसिकों को आकर्षित किया। समय के प्रवाह ने, औद्योगिक विकास ने, मस्तिष्क की प्रधानता से परिपूर्ण आधुनिक शिक्षा के प्रभाव ने भक्ति के कमनीय कलेवर को जर्जर कर दिया और आज तो वह पराजय, पलायन, दैन्य और नैराश्य का प्रतीक बनकर ही रह गई है।

बीसवीं सदी में कुछ अजीब सा लगने पर भी कुछ आधुनिक कवियों को भक्तों की कोटि में रखने का प्रयास किया जाता रहा है। राम भक्तों की परंपरा को गुप्तजी तक खींचकर लाया गया है, तो महादेवी को आधुनिक मीरा कहा गया है। गुप्तजी अपने आचार-विचारों से और महादेवी विरहवेदना की तीव्रता से इन पदों के योग्य हो सकते हैं। किन्तु 'निराला' और भक्ति ये दोनों ही ऊपरी तौर पर एक दूसरे के विपरीत ज्ञात होते हैं। 'भक्त' शब्द सुनते ही अनेक कारणों से एक ऐसे व्यक्तित्वका चित्र आँखों के सामने आ जाता है, जो सबकी सुननेवाला, सब कुछ सहनेवाला, रिरियाता-घिघियाता हुआ, आत्माभिमान शून्य नंगा या अधनंगा, छुआछूत से पीड़ित गिनीचुनी हड्डियों का ढाँचा मात्र हो। कहाँ यह और कहाँ अन्याय-अत्याचार के प्रति असहिष्णु, तेज, दर्प, आत्मगौरव एवं स्वाभिमान का साकार स्वरूप, शौकीन तबियत, मुसलमान की दूकान पर भी चाय अण्डे उड़ाने वाला, ग्रीक मूर्तियों का सजीव प्रतिरूप निराला !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यह विरोध ऊपरी है और कृत्रिम भी। भक्तों के जीवन चरित्र को ध्यान पूर्वक देखने से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। अपने इष्ट के समक्ष दैन्य की पराकाष्ठा प्रदर्शित करनेवाले भक्तगण संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति के सम्मुख नतशिर नहीं हुए। यहाँ तक कि अपनी उत्कटभक्ति और प्रबल प्रेम के भरोसे उन्होंने अपने आराध्य तक को खुली चुनौतियाँ दी हैं। प्रथम भेंट में "मो सम कौन कुटिल खल कामी" गाकर अपनी दीनता दिखाने पर सूरदास को फटकारते हुए श्रीवल्लभाचार्य ने कहा था "सूर है कै घिघियात काहे कों हैं; कछू हरिलीला बरनन करि।" सभी प्रकार के अन्याय और अत्याचारों का विरोध, जातिपाँति के भेदभाव की निन्दा और समाज तथा उपासना के क्षेत्र में उत्पन्न रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के उच्छेदन का प्रयास प्रायः सभी भक्तसाधकों ने अपने जीवन में किया। जड़ता और विघटन की ओर अग्रसर हिन्दू समाज में भक्ति आन्दोलन एक क्रान्ति थी और सभी भक्त किसी न किसी रूप में क्रान्तिकारी। निराला के व्यक्तित्व में भी ये सभी तत्त्व प्रारम्भ से ही विद्यमान थे।

'अर्चना' एवं 'आराधना' में मुखरित निराला की भक्तिभावना को कुछ समीक्षकों ने संघर्ष-श्रान्त जीवन की पराजय और निराशा से सम्बद्ध किया है। निराला के पूर्व जीवन और व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में यह कथन एकपक्षीय ही ज्ञात होता है। प्रथम तो निराला में यह भक्तिभावना जीवन की परिणति में—केवल अर्चना-अराधना के रचनाकाल में—ही नहीं प्राप्त होती, जिससे इसे संघर्ष श्रान्त जीवन की पराजय या निराशाप्रसूत समझा जाय। निराला के काव्य में प्रारम्भ से ही भक्ति के बीज विद्यमान रहे हैं। चैतन्य महाप्रभु से लेकर परमहंस रामकृष्ण की जन्म और लीलाभूमि बंगाल में शैशव-यौवन बितानेवाले निराला पर उस भावुक भूमि की भाव-भक्ति का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। यह भी विदित है कि निरालाजी ने तारुण्यकाल में हनुमानजी की मूर्ति के सामने महीनों 'रामचरितमानस' का पाठ किया था। अतः निराला के काव्य में भक्ति का स्वर प्रारम्भ से ही है। परिमल, गीतिका, बेला आदि के अनेक गीतों में इन्हें सुना जा सकता है। हो सकता है कि आयु के अनुरोध से ये अर्चना और आराधना में अधिक प्रखर और भावविगलित हो गये हों। दूसरे, निराला दार्शनिक—अद्वैत-वादी—हैं और अद्वैत का चरमपरिपाक वेदना विगलित भक्ति में ही होता है। महाअक्खड़ और हेकड़ कबीर को भी हम राम के विरह से व्याकुल होकर बिलखते, तड़पते और दैन्य की अन्तिम सीमा पर सिसकते देखते हैं। तो क्या हम उनमें भी जीवन संघर्ष की पराजय या निराशा खोजते हैं? तीसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की अपराह्णवेला में परमार्थ का चिन्तन करना भारतीय संस्कृति के अनुकूल है और यदि जीवन सन्ध्या की ओर अग्रसर, भारतीय संस्कृति के आराधक निराला ने परमार्थ-साधन का प्रयास किया भी है, तो कुछ अस्वाभाविक नहीं।

किसी साधारण से व्यक्ति के सामने जब हम शिष्टतावश कहते हैं कि 'अजी, मैं किस योग्य हूं' तो क्या हम वास्तव में आयोग्य या तुछ हो जाते हैं ? आत्म निवेदन के भाव विभोर क्षणों में सर्वशक्तिमान् प्रभु के समक्ष जब कोई भावुक भक्त अपने को कुटिल, खल, कामी, 'सब पतितन को नायक' या जीवन रण में पराजित, थका हुआ कहता है, तो इसका वास्तविक अर्थ क्या यही होता है? यह तो विनय एवं दैन्य-प्रदर्शन की एक परिपाटी मात्र है। अतः इसे इसी प्रकार ग्रहण करना चाहिये और इस भक्ति के आधार पर निराला के काव्य में नैराश्य अथवा पराजय के अन्वेषण की ज्यादती नहीं की जानी चाहिए।

निराला की भक्ति में किसी साम्प्रदायिक मत या वाद की खोज व्यर्थ होगी, किन्तु इतना निश्चित है कि यह उनके क्रान्तिकारी दृष्टिकोण की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति थी। निराला की भक्ति भावना का आधार अद्वैतवाद का ठोस दार्शनिक धरातल है। 'समन्वय' के सम्पादन काल में उन्होंने दर्शनशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। रामकृष्ण परमहंस की भावसाधना और विवेकानन्द का वेदान्ताद्वैत उनमें समन्वित हो गया। विवेकानन्द के दर्शन और विचारधारा को उन्होंने आत्मसात् कर लिया था। इसीलिए उनके इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं थी कि "मैंने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है। जब इस प्रकार की बात मेरे अन्दर से निकलती है, तो समझो यह विवेकानन्द बोल रहे हैं।"

परमहंस रामकृष्ण शाक्ताद्वयवाद के उच्चकोटि के सिद्ध पुरुष थे और वे धर्म को अनुभूति का विषय मानते थे। निराला के काव्य और व्यावहारिक जीवन दोनों में ही हम इस अद्वैतभावना का पूर्ण प्रतिफलन देखते हैं। एक ओर वे मातृशक्ति के अनन्य उपासक हैं। उनके राम तक शक्ति की पूजा करके विजय का वरदान प्राप्त करते हैं। दूसरी ओर परमहंस की सी भावतन्मयता की स्थिति उनके जीवन और गीतों में दृष्टिगोचर होती है। विवेकानन्द का अद्वैतवाद-वेदान्त भी अद्वय भावना पर आधारित है और निराला ने अनेक कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति की है। 'परिमल' के 'पंचवटी प्रसंग' में उन्होंने राम के मुख से स्पष्ट कहलवाया है—

द्वैतभाव ही है भ्रम।
नो भी प्रिये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रम के ही भीतर से
भ्रम के पार जाना है।

इस प्रकार दार्शनिक भावना के अनुरूप निराला को निर्गुणवादी सन्तों की परम्परा में रखा जा सकता है। सगुणभक्ति का प्रतिपादन करने वाले सभी आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत मूलक होते हुए भी द्वैत का पूर्णतः विसर्जन नहीं करते। यदि मुक्ति का अर्थ आराध्य में समाविष्ट हो जाना ही है तो वे इस मोक्ष या निर्वाण के इच्छुक नहीं। वे तो अपनी द्वैत की स्थिति बनाये रखकर युग-युग तक प्रभु के लीलावलोकन एवं प्रेमरस का आस्वादन करना चाहते हैं। "द्वैत कि बिनुअज्ञान" कहकर भी तुलसी 'पद न चहहुँ निरबान' की घोषणा करते हैं। भक्ति के समक्ष योग-ज्ञान और कर्म आदि की फजीहत सूर आदि प्रायः सभी सगुणोपासक साधकों का प्रिय विषय रहा है। किन्तु निराला इनमें कोई अन्तर नहीं समझते उनकी दृष्टि में—

"भक्ति-योग-कर्म-ज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।...
मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
सोच ली थी पहले ही।
इसीलिये द्वैतभाव-भावुकों में
भक्ति की भावना भरी—
प्रेम के पिपासुओं को
सेवाजन्य प्रेम का
जो अति ही पवित्र है,
उपदेश दिया।

(परिमल—पंचवटी प्रसंग)

चैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्री रूपगोस्वामी ने भक्ति को रसायत करके शास्त्रीय रूप प्रदान करने का महान् कार्य किया। उन्होंने अन्याभिलाषाशून्य ज्ञानकर्मादि से अनावृत एवं अनुकूलता पूर्वक कृष्णानुशीलन को उत्तमा भक्ति बताया। भक्ति को जीव की स्थायीवासना कहते हुए श्री रूपगोस्वामी ने नाट्यशास्त्र के आठरसों की भाँति उसके भी पाँच रसों का उल्लेख किया। नाट्य या साहित्य शास्त्र का अन्तिमरस शान्तरस है किन्तु भक्तिशास्त्र का वह प्रथम रस है और फिर क्रमशः दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल या मधुरस हैं। भौतिक जगत के रस आध्यात्मिक संसार के प्रतिबिम्ब हैं, किन्तु विलोम हैं। संसार में जो रतिभाव या शृंगार रस निम्नतम है भक्ति-भूमि में वही मधुर या उज्ज्वल रति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे निष्पन्न रस उच्चतम। संसार का उच्चतम रस—शान्त वहाँ अधस्तम है। जीव का प्रभु के साथ जिस रस में जितना अधिक सम्पर्क होगा वह उतना ही श्रेष्ठ होगा। शान्त में आराधक के साथ आराध्य का सम्बन्ध बहुत कम होता है और क्रमशः दास्य, सख्य, वात्सल्य में वह निरन्तर विवर्धित होता जाता है और तदनुसार उसकी श्रेष्ठता भी साधारण कोटि के साधक शान्त या दास्य तक रह जाते है, किन्तु उच्चकोटि के भक्त सख्य, वात्सल्य या मधुर भावों की भूमि में प्रवेश करते हैं और अपनी रुचि के अनुकूल रस का अवलम्बन करके आनन्द का आस्वादन करते हैं।

शान्तरति नामक स्थायीभाव से निष्पन्न शान्तभक्ति के विषयालम्बन विभु, परब्रह्म श्रीहरि हैं और आश्रय आत्माराम, तापस या शान्तिगण। श्रुति उपनिषदादि उद्दीपन हैं। निरहंकारितादि अनुभाव हैं। संचारी भाव हैं निर्वेद, धृति, स्मृति इत्यादि। पारोक्ष्य एवं साक्षात्कार—शान्तरस के दो भेद भी बताये गये हैं। इन सिद्धान्तों के अनुसार निराला के काव्य में शान्त-रस का प्रयोग प्रचुर परिमाण में प्राप्त होता है। अद्वैतवाद और वेदान्त-दर्शन से प्रभावित उसकी समस्त रचनाओं में शांत-भक्ति रस का परिपाक दृष्टिगोचर होता है। अर्चना (६, ७, २२, ६२ आदि) और आराधना (१२, १४, ४८, ५१ आदि) के अनेक गीतों को उदाहरण में प्रस्तुत किया जा सकता है।

श्रीरूपगोस्वामी ने दास्य भक्तिरस का स्थायीभाव 'प्रीति' बताया है। यह प्रीति दो प्रकार की होती है (१) संभ्रम प्रीति (२) और गौरव प्रीति। परम प्रभु में दास भाव से प्रेम संभ्रम प्रीति तथा परम गुरु, रक्षक पालक मानकर जो प्रेम होता है वह गौरव प्रीति कहलाती है जैसे प्रद्युम्न आदि की श्रीकृष्ण में या लक्ष्मण की राम में। हनूमान् की प्रीति संभ्रम प्रीति होगी। भक्तसंगति चरणरज, प्रसाद, स्मित आदि इसके उद्दीपन हैं। निष्ठा, मंत्री, अनुसरण इत्यादि अनुभाव एवं हर्ष, दैन्य प्रभृति इसमें संचारी भाव होते हैं।

निराला के काव्य में दास्य भक्तिरस के उपर्युक्त दोनों रूप दिखाई पड़ते हैं। अद्वयवाद के प्रभाव से उन्होंने समस्त सत्ता में एक अखण्ड आत्मा के दर्शन किये हैं और प्रकारान्तर से जीवमात्र की सेवा को परमात्मा की सेवा समझा है। भक्ति तथा मुक्ति की एकान्त कामना के साथ मानव-सेवा एवं विश्वप्रेम की भावना निराला के काव्य में सदा सहयोगिनी रही है। शक्ताद्वैत के प्रभाव से उनकी रचनाओं में मातृरूपा परमशक्ति के प्रति गौरव प्रीति का चरम निदर्शन लक्षित है। 'परिमल' के 'पंचवटी प्रसंग' में लक्ष्मण का पहला वाक्य यही है कि—"जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा ;" और इस सेवाव्रत का कारण है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है माता का आदेश यही,
माँ की प्रीति के लिये ही चुनता हूं सुमनदल
इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता—
जानने की इच्छा भी नहीं है कुछ
माता की चरण-रेणु मेरी परमशक्ति है—
माता की तृप्ति मेरे लिये अष्ट सिद्धियाँ—
माता के स्नेह शब्द मेरे सुख साधन हैं।

इसके उपरान्त 'माता' के विराट सर्वव्यापक विश्वरूप का वर्णन है और अन्त में माता के प्रति भक्ति की कामना। यही मूल भाव विभिन्न विवर्त्तों में निराला को अनेक रचनाओं में मुखरित हुआ है चाहे वह 'राम की शक्ति पूजा' या 'तुलसीदास' जैसे प्रबन्धात्मक काव्य हों चाहे भारती (भारत माता और सरस्वती) के प्रति गीत। परिमल से लेकर अर्चना-आराधना तक शक्ति का मातृरूप महाकवि के लिए वन्दनीय रहा है।

दास्यभक्ति रस के उद्दीपन भक्तसंगति, नामस्मरण आदि की कामना भी निराला के काव्य में मिलती है। उन्होंने कृष्ण और राम के सहस्र सहस्र नाम जपे और उच्चारित किये हैं। (आराधना, १२) शिव, विष्णु, राम और कृष्ण को समन्वित करके इन "शतविध नामानुबन्ध बांधव निराकार" का जयगान किया है। (आरा० ६४) सुसंगति की प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं—

दो सदा सत्संग मुझको,
अनृत से पीछा छुटे,
तन हो अमृत का रंग मुझको।

(अर्चना, २१)

तुम ही न हुए रखवाल
तो उसका कौन होगा?
फूली-फली तरु डाल
तो उसका कौन होगा?

(अर्चना, ४९) में निष्ठा का तथा

दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूं गहो साथ!

(अर्चना ७) में दैन्य का चित्रण मिलता है।

भक्ति के वात्सल्य और सख्य रसों का प्रयोग निराला की रचनाओं में नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति का अन्तिम एवं सर्व श्रेष्ठ रस मधु रस है। इसका दूसरा नाम उज्ज्वल रस भी है। शृंगाररस का ही दिव्य और वासनाशून्य रूप होने के कारण इसको संज्ञा उज्ज्वल रस है। कान्ताभाव से भगवद्भक्ति करनेवाले भक्तों के हृदयों की मधुर रति का परिपाक मधुर रस में होता है। इसकी समस्त सामग्री लौकिक शृंगार रस जैसी ही है। संसार के समस्त धर्मों के पहुँचे हुये भक्ति-साधकों ने अपनी रहस्यमयी मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति इसी रस के माध्यम से की है। उपनिषद् हों, पुराण हों या आधुनिक साहित्य; आलवारों के मधुर उद्गार हों, निर्गुनिए सन्तों की अटपटीवाणी हो या सगुणोपासकों के स्थूल या मांसलता युक्त प्रेमोद्गार, सबके मूल में है वही एक ही रस।

निराला के काव्य में इस मधुर रस के एक से बढकर एक उदाहरण मिलते हैं। कहीं अमूर्त के प्रति रहस्य भावनामय मधुर उक्तियाँ उनको सन्त साधकों की समकक्षता प्रदान करती हैं, तो कहीं अतीन्द्रियता के हलके स्पर्श से युक्त मानवीकृत माँसल वर्णन उनको सगुण भक्तों की कोटि में वैठा देते हैं। अद्वैत के मधुर भाव का "तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचलगति सुर सरिता" बीज प्रेमीगगन (परमात्मा) की वासक सज्जा "शेफालिका" (आत्मा) के रूप में परिणत हो उठता है और—

बन्द कञ्चुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव-पर्यङ्क पर सोती शेफालिके।
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।

(परिमल पृ० १९६)

आत्मसमर्पण के भावविभोर क्षणों में प्रेयसी की कामना यही है कि

तन-मन थक जाँय,
मृदु सुरभि सी समीर में,
बुद्धि बुद्धि में हो लीन,
मन में मन, जी जी में
एक अनुभव बहता रहे
उभय आत्माओं में।

(वही, पृ० २००)

गीतिका, की समीक्षा में निराला के पदों में भक्ति की पराकाष्ठा की प्राप्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है "प्रिय, यामिनी जागी" जैसे पदों में इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्रीराधा की ही अवतारणा हुई है।" वासना मुक्ति का संदेश लिये हुए यह गीत, सद्योजाग्रत् नायिका के भावाक्षिप्त चित्रण में, अद्वितीय है। "मौन रही हार" में प्रिय-पथ पर चलती अभिसारिका का अन्तर्द्वन्द्व पूर्ण और अन्त में आत्मसमर्पण युक्त बहुत ही सुन्दर चित्र हैं :—

शब्द सुना हो, तो अब लौट कहाँ जाऊँ ?
उन चरणों को छोड़, और शरणक हाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार—
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार।

(गीतिका, ६)

"नयनों के डोरे डाल गुलाल-भरे, खेली होली" में लोक-तत्त्व से भरपूर नायक-नायिका के होली मिलन का सरस स्वाभाविक वर्णन है, जो वैष्णव भक्त-कवियों के राधाकृष्ण की रसभरी होली की धमारों का स्मरण करा देता है। वातावरण की सजीव सृष्टि और वर्ण की चित्रोपमता दर्शनीय हैं—

प्रिय कर कठिन उरोज-परस कस कसक मसक गई चोली।
एक-वसन रह गई मन्द हँस अधर दशन अनबोली—
कली-सी काँटे की तोली। (गीतिका, ४१)

निराला ने ऐन्द्रिय तृप्ति के स्वाभाविक पथ को सर्वथा त्यागकर उसके दबाने-कुचलने का सन्देश नहीं दिया, बल्कि वैष्णव साधकों की भाँति सर्वत्र आनन्द का अन्वेषण करते हुये इन्द्रियों की परितृप्ति का पथ स्वीकार करते हुये उन्हें निम्नता से उठाकर उच्चता की ओर ले चलने का प्रयास किया है।

खोजने पर उनके काव्य में भक्त कवियों जैसी ऊपरी बातें भी मिल जायेंगी जैसे गेय पदों का प्रयोग प्रभु से अपनी माया का संहार करने की प्रार्थना—

भवसागर से पार करो हे!
गह्वर से उद्धार करो हे!
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर,
माया का संहार करो हे! (अर्चना, ७)

मन के भीतरी शत्रुओं से छुटकारे की विनय भी मिलती है—

मानव का मन शान्त करो हे!
काम, क्रोध, मद लोभ दंभ से,
जीवन को एकांत करो हे! (अर्चना, ४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तो और, वे नाम स्मरण आदि से भी उतने ही प्रभावित प्रतीत होते हैं—

कामरूप हरो काम,
जपूँ नाम, राम-राम। (अर्चना, ७)

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि निराला के काव्य में कामनामयी भक्ति, उसकी महिमा, शान्त, दास्य एवं शृंगार मयी मधुर भक्ति का आनन्द-दायी रूप और विश्वात्मवादी दृष्टिकोण, जितने सुन्दर रूप में मिलता है, उतना किसी भी आधुनिक कवि के साहित्य में नहीं। संगीत, स्वर, लय, गति एवं तन्मयता की दृष्टि से उनकी भक्ति पदावली सूर, तुलसी, मीरा आदि की शृंखला की अभिनव कड़ी है और शृंगार के उद्दाम आवेग तथा तीव्रता में उसे विद्यापति आदि के पद साहित्य की कोटि में सरलता से रखा जा सकता है।

—

वर्ण-चमत्कार !
एक एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार।
पद-पद चल बही भाव धारा;
निर्मल कल-कल में बंध गया विश्व सारा,
खुली मुक्ति बन्धन से बंधी फिर अपार—
वर्ण-चमत्कार !
शत-शत रंग खिला, मिला प्राण,
गूंजे गगनाङ्गण में ये अगण्य गान,
दिखी रूप की छवि झङ्कृत कर-स्वर-तार
वर्ण चमत्कार !

'निराला'

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राम की शक्ति-पूजा' का स्रोत

डा० कन्हैयालाल सहल

देवी भागवत में राम द्वारा देवी की उपासना के प्रसंग का सविस्तर वर्णन हुआ है। सीता-हरण से दुखी होकर एक बार राम जब प्रस्रवण पर्वत पर बैठे हुए थे, नारद ऋषि आकाश-मार्ग से उतर कर उनके पास आये और कहने लगे, "हे राघव! साधारण जनों की भाँति तुम इतने शोकातुर क्यों हो? रावण-वध का उपाय मैं तुम्हें बताता हूं। इस आश्विन महीने में तुम श्रद्धापूर्वक नव रात्र का अनुष्ठान करने में लग जाओ। हे राम! सुनो, वह देवी आद्या शक्ति है। सदा-सर्वदा विराजमान रहती है। उसकी कृपा से सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। आराधना करने पर दुःखों को दूर करना उसका स्वाभाविक गुण है।

"शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी।
सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी ॥२८॥"

(देवी भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय ३०)

नारद के निर्देशानुसार भगवान राम नौ दिनों तक उपवास करते हुए विधि-पूर्वक उक्त अनुष्ठान करने में संलग्न रहे। राम की उपासना से प्रसन्न होकर अष्टमी तिथि को आधी रात के समय भगवती प्रकट हुईं। पूजा होने के उपरान्त देवी सिंह पर बैठी हुई पधारीं और राम को विजय का वरदान देकर अन्तर्धान हो गई।

देवी भागवत के अतिरिक्त राम द्वारा भगवती की पूजा का वर्णन कालिका पुराण तथा कृत्तिवास की रामायण आदि में उपलब्ध होता है।

कालिका पुराण के अनुसार जगन्मयी महामाया ने आश्विन शुक्ल पक्ष में राम के हाथ से रावण का वध कराया था—

"व्यतीते सप्तमे रात्रे, नवम्यां रावणं ततः।
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ॥"

—(कालिका पुराण)

देवी भागवत में वर्णित राम के महामाया-पूजन तथा कृत्तिवासीय रामायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में प्राप्त शक्ति की उपासना के प्रसङ्गों में बड़ा अन्तर है। कृत्तिवास के अनुसार राम ने जगदम्बा की उपासना उस समय की जब रावण से उनका भीषण संग्राम हो रहा था। रावण रथारूढ़ था और राम विरथ थे। दैत्यराज क्रुद्ध होकर वानरों का संहार कर रहा था। यह देख कर इन्द्र ने मातलि के साथ अपना रथ भेजा और राम भी रथारूढ़ होकर रावण के साथ घोर युद्ध करने लगे। राक्षसराज ने युद्ध को भीषण रूप धारण करते देख देवी का स्तवन किया, जिससे प्रसन्न होकर देवी उनके रथ पर बैठ गईं। कृत्तिवास के ही मनोहर शब्दों में—

"असित वरणा काली कले दशानन।
रूपेर छटाय घटा तिमिर नाशन॥"
अलका-भलका उच्च कादम्बिनी रो।
ताहे श्यामा रूपे नील सौदामिनी वेशे
कर पद नखे शशि किरण प्रकाशे।
विम्ब फल तुलित अधरे मन्द हासे॥
शोक भय रावणेर गेल सेइ क्षणे।
हइल आह्लाद चित्त देवी दरशने॥"

देवी-दर्शन से रावण का शोक-भय उसी क्षण जाता रहा और उसका चित्त आह्लादित हो उठा। रावण के रथ पर देवी को देख कर राम एक साथ ही विस्मित एवं चिन्तित हो उठे। उन्हें लगा कि अब उनके द्वारा न रावण का संहार होगा और न वे सीता का उद्धार ही कर सकेंगे।

"आमा हेते नाइ हेल रावण-संहार।
जनकनंदिनी सीता ना हेल उद्धार॥"

राम की चिन्ता से व्यथित होकर इन्द्र ने ब्रह्मा से उपाय पूछा। ब्रह्मा ने इस संकट के समय राम को देवी-पूजन की सलाह दी। राम ने समुद्र-तट पर जा कर ब्रह्मा के निर्देशानुसार विधिवत देवी का अनुष्ठान किया, किन्तु फिर भी महामाया का साक्षात् दर्शन नहीं हो सका। इस पर विभीषण ने कहा कि देवी को तुष्ट करने का एक ही उपाय है और वह है एक सौ आठ नीलोत्पलों का समर्पण।

"कातर हइआ तवे कान विभीषण।
एक कर्म कर प्रभु निस्तार-कारन॥
तुषिते चंडीरे एइ करइ विधान।
अष्टोत्तर शत नीलोत्पल कर दान॥"

विभीषण से भी 'देवीदह' का पता लगा कर हनूमान १०८ नीलकमल ले आये। पुलकित होकर मंत्र-पाठ करते हुए राम क्रम-क्रम से एक-एक नीलोत्पल देवी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पित करने लगे। जब वे १०७ कमल समर्पित कर चुके, देवी ने उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से एक नीलोत्पल चुरा लिया।

"करिलेन छल बूझिते शकल,
देवी हरमनोहरा।
एक पद्मपतार करे अपहार,
परमेश्वरी परात्परा।"

ब्रह्मा ने हनूमान से एक और नीलोत्पल लाने के लिए कहा किन्तु देवीदह के सब कमल समाप्त हो गये थे। यह देख कर राम कातर हो उठे और साश्रु-नयन हो देवी का स्तवन करने लगे—

'हरे मा पार्वती, आमि दीन अति।
आपदे पड़े छि बड़।
सर्वदा चंचल, पद्मपत्र दल,
भये भीत जड़ सड़।
विपदे आमार, वांछा कि तोमार,
विडम्बना करा आर।
मम प्रति दया, कर गो अभया,
भवार्णवे कर पार॥"

(कृत्तिवास रामायण, लंका काण्ड)

किन्तु फिर भी देवी का साक्षात्कार न हुआ। सहसा राम के मन में विचार आया कि सब लोग मुझे नील कमलाक्ष कहते हैं, फिर क्यों न मैं अपना एक नेत्र-कमल देवी को अर्पित कर दूँ? अभी तो मेरे पास दो नेत्र-कमल शेष हैं। कृत्तिवास के ही शब्दों में—

भाविते-भाविते राम करिलेन मने,
नील कमलाक्ष मोरे बले सर्वजने।
युगल नयन मोर फुल्ल नीलोत्पल,
संकल्प करिब पूर्ण बुझि।

राम ने बाण से ज्यों ही अपना नेत्र निकालना चाहा, देवी ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया—

"चक्षु उपार्णते जान देवीर साक्षात्।
हेन काले कात्यायनी धरिलेन हाथ॥"

रावण की पराजय और राम की विजय का वरदान देकर देवी अन्तर्धान हो गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय ही देवी भागवत की कथा की अपेक्षा कृत्तिवास द्वारा आख्यान अधिक रोचक, सरस और काव्यात्मक है।

हिन्दी साहित्य में महाकवि निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' शीर्षक लम्बी रचना अत्यन्त प्रसिद्ध है। उक्त रचना के स्रोत के सम्बन्ध में कभी-कभी विवाद उपस्थित किया जाता है। सरस्वती के सितंबर १९६२ के अंक में श्रीमती कमला रतनम् का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक है "चौमुख दिवला बार धरूँगी चौबारे पर।" उक्त लेख का निम्नलिखित अंश, प्रसंगोपात्त होने के कारण, यहाँ उद्धरणीय है :—

"रामकृष्ण मिशन के स्वामी सारदानन्द की 'भारते शक्तिपूजा' में शक्ति-पूजा की आध्यात्मिक व्याख्या मिलेगी परन्तु उसके कर्मकांड की ओर कोई निर्देश नहीं है। पुष्पदंत के शिवमहिम्न स्तोत्र में पुष्पदन्त हरि के एक नेत्र-कमल को प्रणाम करता है जो भक्ति के उद्रेक के कारण चक्ररूप में परिवर्तित होकर तीनों लोकों की रक्षा के लिए निरन्तर जाग रहा है। जैसे पूजा करते करते राम को एक कमल कम पड़ा था, उसी प्रकार एक दिन हरि को भी शक्ति पूजा में सहस्रबलि में एक पुष्प कम पड़ गया था और उन्होंने बलि में अपनी आँख चढ़ा दी थी।

"हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो :
यदेकेन तस्मिन् निजमुदहरन् नेत्रकमलं
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
भयाणां रक्षायै त्रिपुरहर। जागर्ति जगताम्।"

कृत्तिवास-रामायण का काल १७ वीं शती से पूर्व का नहीं और पुष्पदंत को ११ वीं शती से बाद का नहीं माना जा सकता।"

ऊपर के उद्धरण से केवल यही सिद्ध होता है कि कृत्तिवास से भी पहले पुष्पदन्त कमल के बदले नेत्र-कमल अर्पित करने के प्रसंग का उल्लेख कर चुके थे किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि महाकवि निराला की 'राम की शक्ति पूजा, का प्रेरक स्रोत मात्र यही उक्त श्लोक है। बहुत संभव यही है कि कृत्तिवास की रामायण से ही निराला को अपनी सुप्रसिद्ध कविता लिखने की प्रेरणा मिली होगी। जब दुर्गा छिप कर पूजा का एक प्रिय इन्दीवर उठा कर ले गयी तो राम का मन सहसा चंचल हो गया किन्तु राम में पूर्व स्मृति जगी और

"यह है उपाय" कह उठे राम ज्यों मंद्रित घन
"कहती थीं माता मुझे सदा राजीव-नयन—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो नील कमल हैं शेष अभी यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"

कृत्तिवास की रामायण में भी उक्त प्रसंग का प्रायः इसी प्रकार उल्लेख हुआ है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। कृत्तिवास के राम कहते हैं कि मुझे सब लोग 'नील कमलाक्ष' कहते हैं जब कि निराला के राम की उक्ति है 'माता मुझे सदा राजीव-नयन कहा करती थी।' विवरण में कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों कृतियों का साम्य स्पष्ट है। किन्तु उसका अर्थ यह न समझा जाय कि निराला ने कृत्तिवास का अनुकरण - मात्र किया है। निराला की कृति बहुत ही उदात्त रचना है जिसकी ओजस्वी शैली और उदात्त गांभीर्य के समक्ष कृत्तिवास की रचना नहीं ठहर पाती किन्तु मूल कथानक के लिए, मेरी दृष्टि में, निराला कृत्तिवास के ऋणी हैं।

—:*:—

"निराला ×××

जीवन की समष्टि का महत्तर-रूप प्रकाश से समन्वित होकर अपने लक्ष्य का नवीन स्वरूप उद्‌घाटित करता है। संघर्ष के अतुलनीय महत्व को विकसित करते हुए, जीवन के अद्भुत साम्य का जो स्वरूप उद्‌भासित होता है, वह जीवन की यष्टि है। समष्टि और यष्टि के सोपान पर जीवन दृढ़ता, अटलता, गांभीर्य अनन्त तेज, आलोड़ित-मान के साथ समग्र-चेतना को अपने अडिग विश्वास, दृढ़-व्यक्तित्व, ज्ञातव्य-तथ्यों एवं काव्यगत नूतन-संदर्भों के रूप में, अद्वितीय पथ का निर्माण करता है। यह निर्माण हिन्दी-साहित्य में जिस रूप में आया, वह 'निराला' था।"

—प्रो० घनश्यामदास व्यास

९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास काव्य का एक मूल्याङ्कन

प्रो० मनोहर शर्मा

भारतीय प्रजा का इतिहास-बोध सदा से बड़ा उत्कट रहा है। परन्तु यहाँ व्यक्ति के जीवन के ऐतिहासिक घटना क्रम की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया जाकर उसके चारित्र्य को ही प्रधानता प्राप्त हुई है। यही कारण है कि भारत-वर्ष में बड़े मनीषियों एवं राजर्षियों के जीवन-क्रम के सम्बन्ध में भी केवल कुछ जनश्रुतियाँ ही मिलती हैं। परन्तु इन्हीं को जनता ने अपने जीवन का अंग बना कर अपने पूर्व-पुरुषों को सम्मान दे रखा है। ये जनश्रुतियां चारित्र्य की महिमा से गौरवमयी हैं।

महात्मा तुलसीदास के सम्बन्ध में भी अनेक जनुश्रुतियां प्रचलित हैं और उन में उनका चरित्र-गौरव व्याप्त है। उनके जीवन की एक सर्वाधिक लोक प्रचलित कहानी इस प्रकार है कि तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली के प्रेम में इतने लीन थे कि उसे कभी भी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। एक बार उसका भाई आया और तुलसीदास की अनुपस्थिति में वह अपनी बहिन को नैहर ले गया। जब तुलसीदास को पता चला तो वे सीधे अपनी ससुराल पहुँचे। उस समय उनकी पत्नी ने उन्हें इस प्रकार उद्बोधित किया—

अस्थि चर्ममय देह मम, जासों ऐसी प्रीति।
तैसी जो रघुवीर में, होत न कोउ भव भीति॥

महाकवि 'निराला' ने अपने 'तुलसीदास' नामक काव्य को इसी जनश्रुति पर आधारित किया है। ऊपर दिया हुआ छोटा सा छन्द भारत में इतना लोकप्रिय है कि महाकवि 'निराला' की वाणी में भी लगभग इसी रूप में यह अवतरित हो गया है—

"धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए!
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़ चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुलसीदास' काव्य की कथा महाकवि के जीवन का केवल एक प्रसंग है। परन्तु वस्तुतः महाकवि 'निराला' ने महाकवि तुलसीदास के समग्र साहित्य में उनके जिस अनुपम व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का साक्षात्कार किया है उसी का फल उनका 'तुलसीदास' काव्य है। इस काव्य में एक कवि की रचनाओं का दूसरे कवि की रचना में समष्टिगत प्रभाव परिलक्षित हुआ है। असल में कवि समान्य धरातल से ऊंचा उठ कर कविता गान करता है, अतः सामान्य जन के लिये उसकी वाणी के अभिप्राय को हृदयंगम कर लेना सरल नहीं होता है। यदि एक कवि विशेष रूप से विद्वान एवं चिन्तनशील है तो उसकी आत्मा के स्वर को समझना और भी कठिन है। किन्तु 'तुलसीदास' काव्य में एक महाकवि को दूसरे महाकवि ने पूरी तरह पहिचान लिया है। एक पद्य में इसका प्रसंगानुकूल 'दर्शन' भी प्रकट हुआ है—

युवकों में प्रमुख रत्न-चेतन,
समधीत-शास्त्र-काव्यालोचन
जो, तुलसीदास, वहीं ब्राह्मण-कुल-दीपक ;
आयत-दृग, पुष्ट-देह, गत-भय,
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा का मंद-स्मित परिचय, संस्मारक।

तुलसीदास के समय में भारतीय जनजीवन किस स्थिति को प्राप्त हो चुका था, काव्य के प्रारम्भ में इस सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रकाश डाला गया है। एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

लड़-लड़, जो रण-बांकुरे, समर,
हो शयित देश की पृथ्वी पर,
अक्षर, निर्जर, दुर्धर्ष अमर, जगतारण
भारत के उर के राजपूत,
उड़ गए आज वे देवदूत,
जो रहे शेष नृप-वेश सूत—बन्दीगण।

यह पद्य बड़ा अर्थ गम्भीर है। इसे पढ़ते समय अनेक प्राचीन एवं नवीन चित्र सामने आते है। राजस्थान के भी अनेक तत्कालीन कवियों ने इस परिस्थिति को अनुभव करके अपनी वाणी को प्रकाशित किया है। उनमें से दुरसा आढा के कुछ सोरठे देखिये, जिन में महाराणा प्रताप सिंह का माहात्म्य प्रकट करते हुए कवि ने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर घोर अँधार, ऊंधाणा हिन्दू अवर
जागै जग दातार, पोहरै राण-प्रतापसी ॥
जग जाडा जूझार, अकबर पग चांपै अधिप ।
गौ राखण गुंजार, पिंड में एक प्रतापसी ॥
अकबर कनैं अनेक, नम नम नीसरिया नृपति ।
अनमी रहियौ एक, पहुवी राण प्रतापसी ॥
(विड़द छिहत्तरी २५-२७)

ऐसे युग का भारतीय युवक तुलसीदास एक दिन अपनी मित्रमण्डली के साथ चित्रकूटगिरि की यात्रा पर जाता है। वहाँ की प्रकृति से उसके हृदय का योग मिलता है। कवि के लिये प्रकृति प्राणमयी ही नहीं, वह वाणीयुक्त भी होती है। कवि अपनी 'आँखों' से प्रकृति का संदेश सुनता है। उसका मौनालाप बड़ा गंभीर होता है। 'तुलसीदास' काव्य का इसी प्रसंग का एक पद्य द्रष्टव्य है—

तरु-तरु, वीरुध--वीरुध, तृण-तृण
जाने क्या हँसते मसृण मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लख कर ;
भर लेने को उर में अथाह,
बांहों में फैलाया उछाह ;
गिनते थे दिन, अब सफल-चाह पल रख कर ।

तुलसीदास काव्य में गहन चिन्तन की प्रधानता है। कवि तुलसीदास प्रकृति से प्राण जुड़ा कर उसका संदेश ग्रहण करता है और फिर गहन चिन्तन में लीन हो जाता है, जिसे नभोदेश की उड़ान के रूप में प्रकट किया गया है। ऐसी स्थिति में 'कवि-दर्शन' का रूप मनन करने योग्य है—

उस मानस ऊर्ध्व देश में भी,
ज्यों राहु-ग्रस्त आभा रवि की,
देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरती-सी—
भारत का सम्यक देशकाल :
खिंचता जैसे तम-शेष जाल,
खींचती, वृहत् से अन्तराल करती-सी ।

युवक कवि को गहन चिन्तन के फलस्वरूप जो प्रेरणा प्राप्त हुई, उसका ओजपूर्ण रूप भी द्रष्टव्य है—

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह रुद्ध द्वार का छाया तरु तरने को—
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार—
तोड़ने को विषम वज्रद्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।

कविहृदय का यह ओजपूर्ण चित्र बड़ा ही गहरा एवं भावपूर्ण है। साथ ही यह उसके सब प्रकार के सामर्थ्य का भी सूचक है। परन्तु इसी समय कवि के चिन्तन की मनोदशा में उसकी पत्नी की रूपमयी 'छबि' सामने प्रकट होती है—

उस क्षण, उस छाया के ऊपर,
नभ तम की-सी तारिका सुघर;
आ पड़ी, दृष्टि जीवन पर सुन्दरतम
प्रेयसी, प्राणसंगिनी, नाम
शुभ रत्नावली – सरोज-दाम
वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम।

भारतीय मनीषियों ने 'कामतत्व' पर गहरा विचार किया है और इस सम्बन्ध में अनेक मन्तव्य प्रकाशित हुए हैं। काम सृष्टि का बीजरूप है। उसी की प्रेरणा से समस्त क्रियाएँ संचालित होती हैं। परन्तु उसका एक रूप धर्म-विरुद्ध है और दूसरा रूप है, धर्माविरुद्ध। प्रथम रूप (धर्मविरुद्ध) वासनाओं का द्योतक है और वह भोग का प्रेरक है। दूसरा रूप (धर्माविरुद्ध) त्याग का प्रकाशक है। इन दोनों रूपों में स्वार्थ और परमार्थ का सा अन्तर है। भारतीय साहित्य में जहाँ कहीं नारी-निन्दा की चर्चा आई है, वह वस्तुतः वासनाओं की निन्दा है। तुलसीदास विषयक लोक-प्रचलित कथानक का भी यही सार संदेश है। 'तुलसीदास' काव्य में इसी संदेश को स्पष्ट किया गया है।

तुलसीदास चित्रकूटगिरि पर घूम कर अपने घर लौट आते हैं। वे अपनी पत्नी के प्रेम में इतने लीन हैं कि प्रकृति के समस्त रूपों में भी उसी की छवि का अवलोकन करते हैं। एक दिन उनकी पत्नी चुपचाप अपने भाई के साथ नैहर चली जाती है। तुलसीदास को अब अपना घर सर्वथा सूना लगता है—

यह नहीं आज गृह, छाया उर
गीति से प्रिया की मुखर, मधुर

यहाँ कवि के हृदय का वासनापूर्ण पत्नी प्रेम प्रकट हुआ है। जब तुलसीदास अपनी ससुराल के लिये प्रस्थान करते हैं तो मार्ग में उनको सर्वत्र उल्लास व्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। एकांत में जब पत्नी उनको उद्बोधित करती है तो क्षण भर में कवि की दुनिया बदल जाती है :—

जागा; जागा संस्कार प्रबल
रे गया काम तत्क्षण वह जल
देखा वामा न थी; अनल-प्रतिमा वह ;
इस ओर ज्ञान उस ओर ज्ञान,
हो गया भस्म वह प्रथम भान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।

रत्नावली का एक चित्र ऊपर दिया गया है। इस समय उसका दूसरा रूप प्रकट होता है। वह प्रकाश का मार्ग खोलती है। वह साक्षात् शारदा देवी है :—

देखा, शारद नील-वसना
हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि- रशना,
जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना वरदात्री
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री।

तुलसीदास अब फिर गहन चिन्तन में लीन होते हैं। इस स्थिति को 'कवि उठता हुआ चला ऊपर' कह कर प्रकट किया गया है। असल में यह 'काम का धर्माविरुद्ध रूप है। यही कारण है कि नारी को यहां शारदा का सम्माननीय पद दिया गया है। इस समय का उद्बोधन-गीत सुनिए :—

जागो,-जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल ;
बांधो, बांधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन ;
आती भारत की ज्योतिर्घन महिमाबल।

अपनी पत्नी रत्नावली से कवि तुलसीदास को जो 'प्रकाश' प्राप्त हुआ, उसके लिए आभार स्वीकार करते हुए वे सदा के लिए विदा हो जाते हैं :—

जगमग जीवन का अंत्य भाष—
''जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा उससे गृह के भीतर
देखूगा नहीं कभी फिर कर
लेता मैं, जो वर जीवन-भर बहने का।"

इस प्रसंग में 'जीवन भर बहने का वर' तुलसीदास ने लिया है। इस कथन में भारत के आर्षगीत 'चरैवेती चरैवेति' की ध्वनि गूंज रही है। यह भारतीय संस्कृति का अमृतगान हैं। तुलसीदास ने इसे अपने जीवन में उतार कर जन साधारण के सम्मुख 'रामराज्य को स्थापना का आदर्श प्रकाशमान किया है। यह भोग के ऊपर त्याग की विजय है। यह विभेद के स्थान पर एकता का संदेश है। इसमें समन्वय का स्वर बोल रहा है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह महाकवि 'निराला' के 'तुलसीदास' काव्य के भावपक्ष से ही सम्बन्धित है। परन्तु इस काव्य का कलापक्ष भी कम सुन्दर नहीं है। कवि की भाषाशैली का ओजगुण तो प्रसिद्ध ही है, साथ ही उनके शब्दों में अर्थ गाम्भीर्य भी असाधारण है। उनके एक एक शब्द के पीछे बड़ा ही गहरा तथा व्यापक अर्थ छिपा हुआ है। उस के प्रकाशन के लिए विशेष व्याख्या की आवश्यकता अनुभव हुए बिना नहीं रहती।

असल में यह रचना महाकवि 'निराला' की महाकवि तुलसीदास के प्रति श्रद्धा पूर्ण भेंट है। इस में तुलसीदास की यशोगाथा चिन्तन-प्रधान शैली में गाइ गई है। यह समीक्षा का एक विशेष रूप है। निराला के कवि-हृदय पर तुलसी-साहित्य का जो व्यापक प्रभाव पड़ा, वह उनके 'तुलसीदास' काव्य में प्रकट हुआ है। 'कलि कुटिल जीव उद्धार हित, बालमीक तुलसी भयो' जैसे वक्तव्य में भी किसी समय इसी प्रकार का प्रभाव प्रकाशित हुआ था। महाकवि 'निराला' ने अपने प्रभाव को नए दृष्टिकोण से और कुछ विस्तार देते हुए प्रकट किया है।

-:X:X:-

महाकवि निराला —

'वह झुका नहीं पर टूट गया,
हिन्दी का सूरज डूब गया।'

—श्री हर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुलसीदास' में प्रकृति और नारी

प्रो० दमयन्ती तालवार

निराला का 'तुलसीदास' छायावाद का प्रतिनिधि काव्य है, जिसमें प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण किया गया है, जिसमें मानव हृदय की विभिन्न स्थितियों का वर्णन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर किया गया है, जिसमें छायावादी काव्य कला का चरम परिष्कृत रूप मिलता है। निराला का 'तुलसीदास' रहस्यवाद का नवीन प्रबन्ध काव्य हैं जिसमें चिन्तन की प्रधानता है, दार्शनिकता की झलक है और आध्यात्मिकता का आभास है। निराला का तुलसीदास' इतिहास-ग्रन्थ है जिसमें युग का प्रतिबिम्ब है, संस्कृति के पतन व देश की परतन्त्रता का चित्र है, राष्ट्रीय चेतना का संकेत है। निराला का 'तलसीदास' प्रेम काव्य है, जिसमें तुलसी व रत्नावली के अगाध प्रेम की अप्रतिम कहानी है, जिसमें नारी मोह, उसके सौंदर्य के सम्मोहन एवं उसकी आकर्षण-शक्ति का चित्रण है। निराला का 'तुलसीदास' चरित-काव्य है, जिसमें महाकवि तुलसी के जीवन की गाथा है, उनके मानसिक संघर्ष की कहानी है।

संस्कृति के गायक निराला ने संस्कृति के उन्नायक तलसीदास को अपने इस ग्रन्थ का नायक बनाया है और उन्हीं के माध्यम से कवि ने अपने प्रकृति सम्बन्धी नवीन विचारों को प्रस्तत किया है। प्रकृति मानव की सहचरी है। एक ओर प्रकृति मानव की भावनाओं के अनुरूप अपने रूप को बदलती है तो दूसरी ओर प्रकृति के अनुरूप मानव भी अपनी भावनाओं को, अपने दृष्टिकोण को बदलता रहता है। प्रकृति का अंकुश मानव पर इतना घना है कि वह मानव को पथभ्रष्ट नहीं होने देती वरन् समय समय पर मानव को चेतावनी देकर सजग-सचेत करती रहती है।

निरालाजी ने अपने इस काव्य में पृष्ठभूमि के रूप में मध्यकालीन पतित समाज का वर्णन किया है। इस समय भारत पर मुसलमानों का राज्य था, देश कई छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था, चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य था। भारतीय सभ्यता अपने पवित्र रूप को त्यागकर मुसलमानी सभ्यता के रंग में रंग गई थी। भारत का सांस्कृतिक सूर्य अस्त हो चुका था। देश के सच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर स्वर्ग में चिर-निन्द्रा में सो गये थे। भारतीय अपने कर्त्तव्य को भूल गये थे। चारों ओर विलासिता की नदियां बह रही थीं। आसुरी-प्रवृतियाँ ताण्डव—कर रही थीं। आध्यात्मिक शक्तियाँ मायापाश में बन्धकर दुःख झेल रही थीं। वासना के साम्राज्य में मानव-चेतना लक्ष्य भ्रष्ट हो चुकी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य अपने अपने कार्यों को भूल गये थे। शूद्रों पर अत्याचार हो रहे थे। ऐसे समय में यदि कोई सजग सचेत सक्रिय था तो वह प्रकृति। देश की गिरती हुई अवस्था को देख कर प्रकृति पीड़ित हो उठती है। नदी का छल-छल-छल करता हुआ जल मानव को सचेत करता है. किन्तु मानव के ज्ञान-चक्षु उन्माद में बन्द थे। कूलोपल को भाँति मन्त्र मुग्ध होकर वह केवल कल-कल शब्द ही सुनता है। कवि ने यहां पर प्रकृति व मानव के शाश्वत सम्बन्ध की व्याख्या की है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है किन्तु निरालाजी की प्रकृति मुखरित होकर स्वयं अपने भावों को अभिव्यक्त करती है! उसकी अस्पष्ट वाणी को साधारण मानव समझ ही नहीं पाता है, किन्तु तुलसीदास ने उसकी वाणी को समझ लिया, क्योंकि उनके पूर्व संस्कार जागृत हो जाते हैं। विधाता द्वारा निर्मित इस सृष्टि में वेदना का प्राधान्य है। प्रकृति भी विधाता के इस अभिशाप मय वरदान से अछूती नहीं है। प्रकृति अपनी वेदना को प्रकट कहती हुई कवि तुलसीदास को सत्ता की खोज के लिए प्रेरित करती है। प्रकृति कहती है कि वेदना ने मेरे सौन्दर्य को नष्ट कर दिया है। मैं धूलि-धूसरित होकर निष्प्राण हो गई हूं। जड़ रवि मुझे निरन्तर जलाता रहता है। प्रबल ऋतुयें अपना रूप बदल बदल कर आती हैं और मुझ पर आतंक जमाती हैं। वर्षाऋतु आती है तो वह नदियों के जल को पंकमय कर देती है, किन्तु इस पंक को भी सूर्य नहीं देख सकता है, वह पंक को भी सुखा देता है। प्रकृति मानव को सन्देश देती है कि प्रवलजन इसी प्रकार दुर्बलों पर अत्याचार करते रहते हैं, और उन्हें बन्दी बनाये रखते हैं। किन्तु दुर्बलों को हतोत्साह न होना चाहिए, उन्हें अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। प्रकृति अपनी अवस्था का दिग्दर्शन कराती हुई सम्पूर्ण मानवता को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। वह मुक्त प्राणियों को मुक्ति के सुन्दर गीत गाने का आदेश देती है। प्रकृति की कामना है कि इन गीतों में त्याग की भावना होनी चाहिए. उर्ध्व ध्यान होना चाहिए, धारा के समान स्तव होना चाहिए।

तुलसी ने एक ओर प्रकृति के उच्च आदर्श को देखा, दूसरी ओर लक्ष्यहीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज को देखा और उन्होंने अपने पथ का चयन कर लिया। कवि सत्य की खोज में निकल पड़ता है। यहाँ प्रकृति कवि की पथ-प्रदर्शिका बन जाती है किन्तु रत्नावली का प्रेम-बन्धन उन्हें मुक्त नहीं होने देता, और उनके दृष्टिकोण को ही बदल देता है। रत्नावली की स्मृति आते ही तुलसी को प्रकृति एक नये ही रूप में दिखाई देने लगी। उन्हें प्रकृति में अपनी ही पत्नी की छवि दिखाई देती है। यहां पर कवि निराला ने प्रकृति का सुन्दर 'नारीकरण' किया है।

"यह श्री पावन, गृहिणी उदार,
गिरिवर उरोज, सरि पयोधार.
कर बन तरु ; फैला फल निहारती देती ;
सब जीवों पर है एक दृष्टि
तृण-तृण पर उसकी सुधा वृष्टि ;
प्रेयसी, बदलती वसन सृष्टि नव लेती।"

तुलसी को ऐसा प्रतीत होता है, कि प्रकृति के स्वर रत्नावली के हाथों से झंकृत स्वर हैं. प्रकृति का प्रभाव तुलसी पर इतना अधिक पड़ता है कि जब वे लौट कर घर आते हैं, तो उन्हें प्रेयसी के रूप में प्रकृति का ही रूप दिखाई देने लगता है। जहां कवि ने प्रकृति का नारीकरण किया है. वहीं कवि ने नारी का भी 'प्रकृतिकरण' किया है। प्रेयसी की नील अलकें आकाश हैं, मुख चन्द्रमा है आँखें उसका कलंक हैं। चन्द्र-मुख से चांदनी छिटक रही है। तुलसी का मन चकोर की तरह उस चन्द्र-मुख को निहारता रहता है। नारी मोह में बन्धे होने के कारण तुलसी को ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश की नीलम की बनी सीढ़ियों पर सन्ध्या की आभा धीरे-धीरे पैर धरते हुए चढ़ रही हो। यमुना मानो नर्तकी बन कर सुन्दर गीत गाती हुई नाच रही हो। रंग-बिरंगे फूलों को देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि पुष्प अपने सुखाधिक्य के कारण भयभीत हो रहे हैं कि कहीं उनके सुख का अन्त न हो जाये। पुष्पों ने तुलसी के हृदय में भी भय उद्दीप्त कर किया। वे भी अपने सुखाधिक्य से भयभीत होकर घर लौट जाते हैं। उनका भय सत्य में परिणत हो जाता है। उन्हें मिलता है सूना घर ! तुलसी को सूना आंगन हेमंत ऋतु के पाले से मारे हुए गंधविहीन कमल सदृश प्रतीत होता है, वह उस घर में रुक नहीं पाते प्रिया को लिवाने के लिये चल पड़ते हैं ! अब प्रकृति का नया ही रूप तुलसी के सम्मुख आता है। उन्हें प्रकृति आनन्द विभोर दिखाई देती है। डाल-डाल पिक कुहरित है हरित विटप सुमन माल से सुशोभित हैं। लतिकायें ताल-ताल पर सस्मित हिल रही हैं। मधु धीर समीर बह रही है, फूलों व लताओं में आलिंगन हो रहा है। सूर्य अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरणों से प्रकृति को कनक गात बना रहा है। तुलसी की मिलन भावना तीव्र हो जाती है। वे किसी तरह आनन्द पूरित प्रकृति को पार कर रत्नावली के निकट आते हैं। रत्नावली उन्हें कादम्बिनी के समान दिखाई देती है और उनका मयूरमन अपने पंख फैला कर नाच उठता है! किन्तु नारी-स्वाभिमान की साकार प्रतिमा रत्नावली बिजली सी गरज उठती है। तुलसी स्तब्ध रह गये। आकाश गतिहीन छन्द सा निस्पन्द हो गया, शून्य की सभी क्रियायें बन्द हो गई। जिस प्रकार सौरभ मुंदे दलों को खोलकर वह निकलती है, उसी प्रकार तुलसी की चेतना निर्बाध प्रवाहित होने लगती है। कवि जागृत अवस्था में आता है। इस जागृति का प्रभाव समस्त प्रकृति पर पड़ा। प्रकृति में नव जीवन आगया। जग का कानन मण्डल-पर्वत तल गूंज उठा। तुलसी अज्ञान के अन्धकार को पार कर ज्ञानालोक में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति निरन्तर कवि तुलसीदास के साथ रहती है, एवं उनके भावों के अनुरूप अपना रूप धारण करती है। वह मानव से भिन्न होकर उसी का एक अंग है। इतना ही नहीं निराला के इस महान ग्रन्थ को सफल बनाने का श्रेय भी प्रकृति को ही है! कथानक प्रकृति के आंचल को पकड़ कर ही आगे बढता है और प्रकृति उसको विकसित करने में पूर्ण सहयोग देती है।

'तुलसीदास' में निरालाजी की नारी-श्रद्धा अपने पूर्ण रूप में परिलक्षित होती है। निरालाजी ने नारी को शक्ति रूप में देखा है। प्रकृति द्वारा प्रेरित हो तुलसीदास सत्य की खोज में मग्न हो जाते हैं, जब वे सिद्धि के निकट पहुँचते हैं, उस समय उनके मार्ग में रत्नावली वाम हुई जैसे किसी पथिक के पथ में नदी पड़ जाती है। तुलसीदास भावनालोक से उतर कर स्थूल धरातल पर आकर खड़े हो जाते हैं। और उनको चारों ओर से घेर लेती है रत्नावली की छवि। कुसुम सदृश्य रत्नावली की छवि आकर्षण से पूर्ण है। तुलसी का मन-भ्रमर की भांति उसके चारों ओर मंडराने लगा। अन्त में रसपान करने के लिये जैसे ही भ्रमर मन छवि-कुसुम पर बैठता है वह अपनी पंखुड़ियों को बन्द कर लेता है। मन भीतर ही बन्ध जाता है, वह लक्ष्य तक न जा सका। नारी सौन्दर्य के सम्मोहन में बन्धे हुये तुलसीदास को प्रकृति भी नारी सौन्दर्य में बन्धी हुई दिखाई देती है।

"यह विश्व, सूर्य तारक-मंडल,
दिन, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष चपल ;
बंध गति-प्रकाश में बुद्ध सकल पूर्वा पर।"

किन्तु यह सौन्दर्य-बन्धन अति आवश्यक है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बन्ध के बिना, कह कहाँ प्रगति ?'

नारी ज्ञान का साकार रूप है। वह नवीन भावों को जन्म देनेवाली है। रत्नावली भी तुलसी में नव नव रंगीन भावों को जन्म देती है —

'मृत्तिका एक, कर सार-ग्रहण
खुलते रहते बहुवर्ण सुमन,
त्यों रत्नावली-हार में बंध मन चमका
पाकर नयनों की ज्योति प्रखर
ज्यों रविकर से श्यामल जलधर
बहु वर्णों के भावों से भर कर दमका।'

नारी पुरुष का आनन्द है। वह अपने अक्षय धन से निरन्तर पुरुष की सहायता करती है। पुरुष को सन्मार्ग पर लाने के लिये वह यष्टि है। वह श्रद्धा की समष्टि है। प्रिय के जीवन में सरसता प्रदान करने की शक्ति उसी में है—

"प्रिय के जड़ युग कूलों को भर
बहती ज्यों स्वर्गंगा सस्वर।'

कुटुम्ब की मर्यादा व पुरुष की मर्यादा का भार भी नारी के कन्धों पर है पुरुष मर्यादा के बन्धन को तोड़ने वाला है और नारी उस बन्धन की रक्षा करने वाली है। रत्नावली का भाई जब कहता है —

'हम बिना तुम्हारे आए घर, गांव की दृष्टि से गए उतर"—उस समय रत्नावली का हृदय कम्पित हो जाता है. मर्यादा-गर्भित धर्म जागृत हो जाता है। वह कहती है—"मैं साथ तुम्हारे, करो तोष।" रत्नावली के समक्ष सीता का आदर्श है। पृथ्वी से सीता 'सदोष' निकली थी, परन्तु अपनी मर्यादा की रक्षा करती वह उसी में समा गई थी। रत्नावली भी मर्यादा की रक्षा के लिए तुलसी-दास से बिना पूछे ही भाई के साथ चली जाती है।

नारी गृह-लक्ष्मी है, वह घर की शोभा है, श्री है। वह घर का जीवन है आनन्द है। रत्नावली के जाने के पश्चात् घर का रूप ही बदल जाता है—

"अपहृत श्री, सुख-स्नेह का सद्म
निः सुरभि, हत, हेमन्त पद्म।

रत्नावली मर्यादा को सुरक्षित रखने वाली नारी है। वासना के जाल में बन्धे हुए तुलसी नारी की मर्यादा को न समझ सके। तुलसी के जीवन का सुख, शान्ति, आनन्द, गति, ज्ञान सभी रत्नावलीके साथ ही मानों चले गये हों। तुलसी इस वियोग को न झेल सके। नारी की आकर्षण-शक्ति उन्हे खींच कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससुराल तक ले जाती है, किन्तु तुलसी को देख कर रत्नावली अपने को सम्भाल न सकी। एक ओर नारी की मर्यादा दूसरी ओर कुल की मर्यादा दोनों ने मानों रत्नावली को झकझोर दिया ; वह अपना अपमान न सह सकी वह अपनी ही दृष्टि में गिर जाती है। वह अपने को द्रौपदी समझने लगी, जिसका चीर हरण दुःशासन कर रहा है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम को स्मरण करती है।

नारी हृदय कमल के समान कोमल है और बज्र के समान कठोर भी है। रत्नावली का वह हृदय जो प्रिय का पूर्णचन्द्र सा मुख देख कर समुद्र की भांति हिलोरें लेने लगता था, आज विपरीत दिशा में बहने लगा। नारी के पास केवल कोमलता ही नहीं है, केवल रूप ही नहीं है, उसके पास हैं दृढ़ कठोर हृदय भी। पुरुप केवल नारी के रूप को देख सकता है, उसके हृदय को नहीं। तुलसीदास ने अब तक रत्नावली के रूप को ही देखा था। वे नहीं जानते थे यह बाह्य रूप धोखा है, जीवन की छलना है। क्रोधाग्नि में जलती हुई रत्नावली ने अपने रूप को त्याग दिया, वह योगिनी के समान जागी, चपला की भांति चमकी। वह अबला अब बल की महिमा बन कर बोल उठी—

"धिक ! धाये तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं काम के सूत कहलाये।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़ चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।"

इसे सुनते ही वासना का अन्धकार विलीन हो गया। अज्ञान का परदा फट गया। ज्ञानालोक फैल गया। तुलसी को नारी का दिव्य रूप निखाई देने लगा। तुलसी को अपने कर्तव्य का बोध हुआ। वह सच्चे मार्ग पर आगए और निकल पड़े मर्यादा पुरुषोत्तम राम की खोज में। वे अब भक्त बन गए। तुलसी ने राम को अपने मानस में उतारा, और मन के भावों को अभिव्यक्त करके 'रामचरित मानस' का निर्माण किया। राम के साथ साथ तुलसी भी जन-जन के मानस पर आसीन हो गये किन्तु इसका श्रेय किसको है ? निःसंदेह हमें कहना पड़ता है – 'रत्नावली को।'

निरालाजी ने अपने 'तुलसीदास' ग्रन्थ में यह बता दिया है कि वह नारी जिसका सौम्य रूप ज्ञान को उद्दीप्त करता है, जिसका सुन्दर रूप आनन्द को उद्दीप्त करता है, जिसका शान्त रूप सुखद भावनाओं को उद्दीप्त करता है, जिसका मधुर रूप प्रेम को उद्दीप्त करता है, वही नारी रौद्र रूप भी धारण कर सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और उसका रौद्र रूप पुरुष की वासना का संहार करता है।

वह नारी जो रीति कालीन कवियों के लिये शृंगार का आलम्बन थी, वासना पूर्ति का माध्यम थी, कुण्ठित भावनाओं को अभिव्यक्त करने का साधन थी, कवि निराला के सम्मुख सरस्वती का रूप धारण करके ज्ञान फैलाती है; दुर्गा का रूप धारण करके शक्ति प्रदान करती है और लक्ष्मी का रूप धारण करके श्री वृद्धि करती है। वह अबला नहीं, सबला है, वह मायाविनी नहीं, माया के जाल को तोड़नेवाली है। वह मोह का संसार नहीं है वह त्याग की तपोभूमि है।

अतः हम देखते हैं कि निरालाजी ने नारी को महत्ता देकर पुरुष वर्ग को सचेत किया। और 'तुलसीदास' में उनका यह उद्देश्य पूर्ण रूप से प्रतिफलित हुआ है।

—:—

"निरालाजी छायावादी कवि कहे जाते हैं। उनका छायावाद कहाँ है? मुक्त छन्दों में उनका दार्शनिक छायावाद 'विराटसत्ता' और 'शाश्वत ज्योति' के रूप में व्यक्त हुआ है।……दूसरा पहलू है—'जड़' जीव जगत में सर्वत्र उसी शाश्वत ज्योति का प्रकाश देखना। यदि वह दार्शनिक छायावाद है तो इसे उसका प्रयोग समझना चाहिए। उसमें एक ज्योति है, इसमें अनेक खंड चित्र उसी एक ज्योति से ज्योतित दिखाये गये हैं। यही निरालाजी का निर्वाह है।"

—आ० नन्ददुलारे वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला काव्य में प्रतीक-विधान

प्रो० सिन्दूर विरिक

जब अभिधा कवि के भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होती है तब वह प्रतीकों का आश्रय लेता है। प्रतीकों का आश्रय पा कवि की भावनायें मुखरित हो उठती हैं। प्रतीकों के उचित उपयोग से वह अपने हृदय में उठती भाव लहरियों को रूप देने का प्रयास करता है। और प्रतीकों को अनुभूति प्रदान करने की क्षमता कवि की तीव्र संवेदनशीलता पर निर्भर है। प्रतीकों का चुनाव कवि के अनुभवों पर और उसकी सौन्दर्य-भावना पर निर्भर करता है। यूँ तो मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है पर कुछ प्रतीक परम्परागत होते हैं, जो हमारी संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ सार्वभौम। तिरंगा झंडा यदि हमारे राष्ट्र की एकता और गौरव का प्रतीक है तो सिंह वीरता का, श्वेत रंग सौम्यता का विश्व विख्यात प्रतीक हैं। "जो जिज्ञासाएँ सनातन हैं उनका निराकरण करने वाले प्रतीक भी सनातन हो जाते हैं।"[१] किन्तु समय के अनुरूप नये नये प्रतीकों का भी निर्माण होता रहता है। हिन्दी साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही किया जाता था, जिसका स्वरूप हमें सिद्ध जैन, बौद्ध एवं संत-साहित्य में देखने को मिलता है। साधनागत विचारों की अभिव्यक्ति के लिए वे लोग प्रतीकों का प्रयोग करते थे, जो रहस्यात्मक ही होते थे।

आज के छायावादी एवं प्रयोगवादी काव्य में भी प्रतीकों की परम्परा अक्षुण्ण है, पर उसके रूप में परिवर्तन स्पष्ट हैं। आज प्रतीकों का जिस रूप में प्रयोग होता है वह अंग्रेजी के Symbolism का रूपान्तर है, जिसे जार्जवेली ने Symbolic Extrication कहा है, जहाँ कवि प्रतीकों के आश्रय से अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। प्रतीकों के माध्यम से भावनाओं की अभिव्यक्ति सशक्त हो जाती है। "प्रतीकों का लक्ष्य भावात्मक संवेदना की तीव्रता है। काव्य के प्रतीक भाव के चित्रों का पुनरूत्सर्जन करते हैं, और उस भाव

१ अज्ञेय की आत्मनेपद—पृष्ठ ४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रेषण में सहायता करते हैं।"[1] प्रतीकों के प्रयोग से कवि मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का चित्र अंकित करने में समर्थ होता है। चित्रात्मकता प्रतीकों का विशेष गुण है। प्रतीक विधान का उत्कृष्ट रूप हमें छायावादी काव्य में देखने को मिलता है। छायावादी काव्य में प्रतीक-विधान का विशेष महत्व है, अथवा यों कहना अधिक उचित होगा कि प्रतीकात्मकता छायावाद का प्रमुख अंग है। छायावादी काव्य की सौन्दर्यभावना का स्तर साधारण नहीं। इसीलिए उसका प्रतीक विधान विशिष्ठ है। प्रतीक विधान का उत्कृष्ट रूप प्रसाद काव्य में दृष्टव्य है। उनकी कामायनी का प्रतीक विधान विश्व साहित्य में बेजोड़ है। महाकाव्य की रचना न करने पर भी निराला को हम इस क्षेत्र में विस्मृत नहीं कर सकते। प्रतीकों का उत्कृष्ट रूप निराला काव्य में अपनी मौलिकता में अद्वितीय हैं। निराला की लेखनी ने जीवन के हर पक्ष को छूने की चेष्टा की है। छायावादी काव्य का उत्कृष्ट रूप जहाँ एक ओर मिलता है, तो कुकुरमुत्ता, बेला जैसी प्रयोगवादी रचनाओं में उनका जनवादी स्वर भी मुखरित हो उठा है। यदि एक ओर प्रतीकों के उपयोग द्वारा दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है तो दूसरी ओर समाज पर कड़े व्यंग्य और प्रहार भी किये हैं। प्रत्येक विचार की अभिव्यक्ति में इनके प्रतीक सार्थक हैं।

निराला के प्रकृति-प्रतीक द्वारा आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट रूप हमें उनकी प्रारम्भिक रचना 'जूही की कली' में मिलता है। प्रेमी-प्रेमिका के रूप में मलयपवन-कली के स्वस्थ प्रेम का चित्रण किया है। जिसे हम प्रकृति का सुन्दर चित्र भी कह सकते हैं। किन्तु जब मर्मज्ञ हृदय गहरे पैठने का प्रयत्न करता है तो कवि की प्रतोक योजना उसे अनायास ही मुग्ध कर लेती है। 'कली' और 'मलय' लौकिकता का आवरण उतार अलौकिक रूप धारण कर लेते हैं। मायापाश में बंधी व्याकुल आत्मा (कली) परमात्मा (मलय) की सहानुभूति एवं दया से माया के बन्धन से मुक्त हो उसमें लीन हो आनन्द का अनुभव करती है।

हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग।

इन पंक्तियों में आत्मतल्लीनता का भाव मिलता है, और यह आत्मतल्लीनता कबीर की तल्लीनता एवं प्रसाद के आनन्द से कम नहीं। कली की सुप्त अवस्था आत्मा की सुप्तावस्था है और मिलन के पश्चात आत्मा की जागृति की अवस्था

१ धनंजय वर्मा—निराला कृत्तित्व और व्यक्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चित्र है। इसी प्रकार शेफालिका में भी माया ग्रस्त (कंचुकी बन्द) जीवात्मा (शेफालिका) परमात्मा के चुम्बन (शिशिर-के-बिन्दु-चुम्बन) का स्पर्श पा, सांसारिक शृंखलाओं से मुक्त हो परमसत्ता को प्राप्त होती है। 'जागृति में सुप्ति थी' में भी जागरण क्लान्ति का एवं स्वप्न आनन्द का प्रतीक माना जा सकता है।

'लाज से सुहाग का
मान से प्रगल्भ प्रिय-प्रणय निवेदन का
मन्द हास मृदु वह'

इन पंक्तियों में जीवात्मा की ब्रह्म-लीनता और आध्यात्मिकता की ओर उन्मुखता का संकेत मिलता है।

'हेर उर-पट फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग के तागी।'

'प्रिय यामिनी जागी' की उपर्युक्त पंक्तियां मन की कामनाओं की मुक्ति एवं जागृति की पवित्रता की प्रतीक हैं।

प्रकृति के अनोखे चित्रों में बादलों पर निरालाजी की अनेक कवितायें हैं, जो निराला साहित्य में विशेष महत्व रखती हैं। वर्षा एवं बादलों का सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण ही नहीं किया वरन् अनेक प्रतीकों के रूप में भी बादलों का उपयोग किया है।

'तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।'

समीर के सागर पर तैरता हुआ 'बादल' अस्थिर सुख पर दुःख की छाया' का प्रतीक है। ग्रीष्म से दग्ध संसार के हृदय पर विप्लव का प्रतीक यही बादल है, तो कहीं यह युद्ध की आकांक्षाओं से भरी नाव का प्रतीक है। अन्धकार के आंगन में खेलने वाला शिशु भी वही है। वह चंचल बालक भी है, जो किरण के सहारे आकाश पर चढ़ जाता है। बादल कहीं समुद्र का आँसू है, तो कहीं सूर्य का चुना हुआ फूल भी। बादल में युग का व्यक्तित्व प्रतीकों में मुखरित हो उठा है। ये बादल कवि की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रुद्ध कोश है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी

१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतंक-अंग पर काँप रहे हैं
धनी,वज्रगर्जन से बादल
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण-बाहु है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर।
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र है उसका आधार,
ऐ जीवन के पारावार।

जिनका कोष रुद्ध और तोष क्षुब्ध है, वे विप्लव का भैरव नाद सुनकर, अंगना-अंग से लिपटे हुए भी आंतक से काँप उठते हैं, पर शीर्ण शरीर और जीर्ण बाहु वाला किसान उसका आवाहन करता है। जन-संघर्ष की ओर निराला का संकेत अद्वितीय है।

निराला के प्रतीकों की विशिष्टता यही है कि कवि सदैव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति पर बल देता है। चित्रात्मकता प्रतीकों का सहज गुण है किन्तु चित्रण को प्रधानता न देकर, भावनाओं की सबल अभिव्यक्ति पर ही निरालाजी का ध्यान केन्द्रित रहा है। महादेवी एवं सुमित्रानन्दन पंत की 'संध्या सुन्दरी' यदि चित्रात्मकता में अद्वितीय है तो निराला की 'संध्या सुन्दरी' भावाभिव्यक्ति में।

निरालाजी के सम्बोधन गीत अधिक उदात् एवं प्रेरणात्मक हैं। 'यमुना के प्रति' 'प्रपात के प्रति' 'प्रिया के प्रति' 'तरंगों के प्रति' 'जलद के प्रति' आदि अनेक सम्बोधन गींत अपने प्रतीक अर्थ में भी अद्वितीय हैं। 'यमुना के प्रति' अतीत गौरव का प्रतीक है। अलंकृत प्रतीकात्मकता के साथ-साथ इसमें सांस्कृतिक पीठिका पर बुद्धि और भावना का सुन्दर समन्वय हुआ है। रीतिकालीन शृङ्गारिकता से मुक्त यमुना का उदात् स्वरूप देखने को मिलता है। 'प्रपात के प्रति' में गतिशील प्रपात चेतन का, जंगम पर्वत जड़ का प्रतीक माना जा सकता है।

समझ जाते हो उस जड़ का सारा ज्ञान
फूट पड़ती है ओठो पर तब मृदु मुस्कान।

यहाँ जड़ चेतन के संघर्ष में चेतन की जड़ पर विजय घोषणा है। 'खँडहर के प्रति' भी अतीत के गौरव का प्रतीक है। भारतीय सांस्कृतिक गौरव की विस्मृति में खण्डहर के आँसू मानों कवि की वेदना के प्रतीक हैं।

निराला ने अपने आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति में भी प्रतीकों का आश्रय लिया है। आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक होता है। रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अभिधा में नहीं बंधती, उसे आत्मसात या प्रेषित करने के लिये प्रतीकों का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है। निराला की रहस्यवादी रचनाओं पर विवेकानन्द के दर्शन का प्रभाव है। मातृ रूप में इष्टदेवी की कल्पना भी उन्हीं की देन है। 'देवी तुम्हें क्या दूँ' में श्यामा क्रान्ति की प्रतीक है। अद्वैतवादी दर्शन से प्रभावित कविता "तुम और मैं" में 'मैं' आत्मा का और 'तुम' परमात्मा का प्रतीक है। आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध अनेक रूपों में इसमें व्यक्त हुआ है। 'अनामिका' की 'प्रेयसी' अद्वैतवादी दर्शन से अनुप्राणित है जिसमें प्रेम का उद्दाम प्रवाह भी है। इस कविता में प्रेम की भावना का पूर्ण विकास हुआ है। 'प्रेयसी' आत्मा का प्रतीक है, जो मायापाश से पंकिल होकर देह कलुषित करती है।

उतर कर पर्वत से निर्झरी भूमि पर
पंकिल हुई; सलिल देह कलुषित हुआ।

पर्वत वह देश है जहाँ से आत्मा विलग हुई है, लेकिन 'जागा देह ज्ञान फिर याद गेह की हुई' में स्पष्ट ही उस गेह की ओर रहस्यात्मक संकेत है जहाँ आत्मा मायापाश से मुक्त हो जाती है।

प्रतीकों की सुन्दर योजना हमें निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास' में देखने को मिलती है। इन रचनाओं की प्रतीक योजना महाकाव्योचित है। चित्रण के साथ साथ भावाभिव्यक्ति अपूर्व बन पड़ी है। भाव-व्यंजना ही इनके प्रतीकों का प्रधान लक्ष्य रहा है, चित्रात्मकता तो स्वतः ही आ गई है।

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार;

'राम की शक्ति पूजा' में राम निराशा में डूबे अपने दल के साथ अपने शिविर को लौटे हैं। आकाश से लेकर पृथ्वी तक का विराट चित्र भी राम की निराशा का प्रतीक है। जटा-मुकुट खुल कर पीठ पर बाहुओं और वक्ष पर इस प्रकार फैल गया है जैसे पर्वत पर रात्रि का अन्धकार फैल गया है और निराश मन पूर्व स्मृतियों में समस्या का समाधान खोजता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मानसिक द्वन्द पर व्यक्तित्व की विजय का प्रतीक है। जो कवि के जीवन का भी सत्य है।

'राम की शक्ति पूजा' में शक्ति के स्वरूप की विराट कल्पना साहित्य में बेजोड़ है। विवेकानन्द की कल्पना को कवि निराला ने काव्यात्मकता प्रदान की जो संसार साहित्य की अमूल्य निधि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देखो, बन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शोभित-शत-हरित-गुल्म तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना है इसकी मकरन्द-बिन्दु
गरजता-चरण-प्रान्त पर सिंह वह नहीं सिन्धु।

पर्वत के रूप में शक्ति की कल्पना की गई है, और उसके चरणों पर गरजता हुआ समुद्र सिंह गर्जन का प्रतीक है। दसों दिशायें सिंह वाहिनी शक्ति के दस हाथ हैं। ऐसा विराट स्वरूप शक्ति का है।

प्रतीकों का लक्ष्य उन भावों की व्यंजना करना है जो साधारणतयः व्यक्त नहीं किये जा सकते। निराला के प्रतीकों की सब से बड़ी विशेषता यही है कि वे सूक्ष्म सें सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में भी सफल रहे हैं। 'तुलसीदास' का प्रतीक विधान भावाभिव्यंजना में अधिक चमत्कारिक है।

'तुलसीदास' का प्रारम्भ और अन्त प्रतीकार्य में ही होता है।

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिड मंडल

से 'तुलसीदास' काव्य प्रारम्भ हो—

'प्राची-दिगंत उर में पुष्कल रवि रेखा' पर आकर समाप्त होता है। प्रतीक अर्थ में ये भारतीय सांस्कृतिक सूर्य के पतन और उत्थान का ही व्योरा है। प्रतीकों का चरम विकसित रूप हमें तुलसी और रत्नावली के रूप में मिलता है, जो साधारण पात्र न रह कर प्रतीकात्मक बन गये हैं। दोनों पात्र क्रियाशून्य होते हुये भी परिवर्तनशील हैं। इनके मानवीय सहज गुणों का चित्रण बहुत कम हुआ है। उनमें होने वाले मानसिक एवं आध्यात्मिक परिवर्तनों ने उन्हें प्रतीकात्मक बना दिया है। "रत्नावली में उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक ह्रास का प्रतीक बन जाती है...रत्नावली के शब्दों में तुलसीदास को नहीं वरन् साहित्य और संस्कृति की समस्त रीति कालीन परम्परा को धिक्कारा गया हैं। उसके योगिनी रूप में मध्य कालीन नारी का नयिका-भेद वाला रूप जल कर भस्म हो गया है[1]।" रत्नावली मानवीय पात्र न होकर अनला प्रतिमा का प्रतीकार्थ बन जाती है।

दूर, दूरतर, दूरतम, शेष
कर रहा पार मन नभो देश,
सजता सुवेश, फिर फिर सुवेश जीवन पर,

1 डा० राम विलास शर्मा—निराला पृष्ठ १८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

> छोड़ता रंग, फिर फिर सँवार
> उड़ती तरंग ऊपर अपार
> संध्या-ज्योतिः ज्यों सुविस्तार अंबरतर।

"यहाँ उर्ध्वगामी क्रिया का वर्णन है, साथ ही संध्या के अवसर पर आकाश में उठनी हुई सूर्य की लालिमा का प्रतीक लेकर संस्कार की तहों को छोड़ते हुये ऊपर उठने के भावों की व्यंजना की गई है। आकाश में अनेकानेक चित्र उभरते मिटते हैं और पश्चिम की लाली आकाश पर ऊपर उठनी हुई ढापती जाती है। यह प्रतीक मन के संस्कार परतों को छोड़ विस्तार में जाने के भाव को कुशलता से व्यंजित कर रहा है।" (डा. ध. वर्मा) 'तुलसीदास' काव्य का कथानक प्रवन्ध वक्रता के कारण प्रतीकात्मक बन गया है, जो हिन्दी साहित्य में वे बेजोड़ है।

इनकी रचनाओं में एक और स्वर जो मुखरित हुआ है, वह है सामाजिक चेतना का स्वर। इस प्रकार की रचनाओं में हम प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का रूप देखते हैं। इन रचनाओं में भी प्रतीकों की अपूर्व छटा मिलती है। "निरालाजी की प्रायः सभी कवितायें अन्ततोगत्वा प्रतीकात्मक हो जाती हैं। निरालाजी जिसे कविता की परिणति कहा करते थे, वह प्रतीक योजना की अन्तिम मरोड़ ही है।" अन्तिम पंक्तियों में प्रतीकार्थ स्पष्ट हो जाता है। 'पत्थर तोड़ती' आदि रचनायें इसी प्रकार की हैं जिन के अन्त में जाकर प्रतीकार्थ स्पष्ट हो जाता है।

'कुकुरमुत्ता' एवं 'नये पत्त' एक ही धरातल की जनवादी रचनायें हैं। 'कुकुरमुत्ता' में कवि के प्रगतिशील विचारों का यथार्थ चित्रण है, जिसमें व्यंग्य प्रधानता है। समाज के विविध पक्षों पर कटु एवं कठोर व्यंग्य किया है, और उसके लिए प्रतीकों का आश्रय लिया है। 'कुकुरमुत्ता' में सामाजिक व्यंग्य मुखुर हो उठा है। गुलाब उच्चवर्ग का एवं कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का प्रतीक है। गुलाब को देखकर कुकुरमुत्ता कहता है—

> खून खींच खाद का तूने अशिष्ट
> डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिष्ट।

कुकुरमुत्ता यहाँ शोषकों के विरुद्ध शोषितों की ललकार का प्रतीक है। गुलाब को कैपिटलिस्ट बता साम्राज्यवादी वर्ग का प्रतीक ठहराया है। गुलाब के बहाने पूंजीपतियों को हेय ठहरा सर्वहारा को श्रेष्ठना प्रदान की है। कुकुरमुत्ता उन साम्यवादी नेताओं का भी प्रतीक है जो अपने समर्थन में वेदों से लेकर आज तक की ज्ञानराशि को अपने चश्मे से देखते हैं......नवाब साहब का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुकुरमुत्ता के प्रति आकस्मिक प्रेम उस उच्चवर्ग के बौद्धिक विलास का प्रतीक है जो हवा के साथ रुख बदलने का अवसरवादी दृष्टिकोण रखते हैं। 'ठूँठ' का वृद्ध विहंग समाजवादी नेता का प्रतीक है। 'घोड़े के पेट में बहुतों को आना पड़ा' में युद्ध के समय साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी शोषण का प्रतीक है। इनकी 'गरम पकौड़ी' भी नये विचारों एवं नई अवस्था का प्रतीक है। नये विचारों की ओर सहज आकर्षण गरम पकौड़ी के लोभ से कम नहीं। गरम पकौड़ी से जीभ का जल जाना, नये विचारों के ग्रहण में बौद्धिकता के अभाव का ही प्रतीक है।

भावनाओं की तीव्रता को व्यक्त करने की जो सक्षमता निराला के प्रतीकों में है वही इनकी सफलता का मूलाधार है। प्रतीक निराला काव्य में सत्यान्वेषण का सबल साधन रहा है, जो हिन्दी छायावादी काव्य में अद्वितीय है।

———

सच है :

यह सच हैं
तुमने जो दिया दान-दान वह,
हिन्दी के हित का अभिमान वह,
जनता का जन-ताका ज्ञान वह,
सच्चा कल्याण वह अथच है—
यह सच है !
बार-बार हार-हार मैं गया
खोजा जो हार क्षार में नया
उड़ी धूल तन सारा भर गया
नहीं फूल, जीवन अविकच है—
यह सच है !

'निराला'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला के मात्रिक मुक्त छन्द

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल

['आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना' प्रवन्ध के चतुर्थ अध्याय में मुक्त छन्दां का शास्त्रीय अध्ययन विस्तार से उपस्थित किया गया है। उसमें पृष्ठ-भूमि रूप में मुक्तछन्द के इतिहास और विकास का भी निरूपण है। इस वर्ष 'रसवन्ती' के निराला विशेषाङ्क में 'निराला के अक्षर-मात्रिम मुक्तछन्द निबन्ध में निरालाजी की कविताओं का विस्तृन विशद निरूपण, पंक्तिशः व्यावहारिक लया-ख्यान के साथ, प्रकाशित हो चुका है, और प्रस्तुत निबन्ध को उसी का परिपूरक मानकर पढ़ना चाहिये। यहाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्देश आवृत्तिमात्र होगा, अतः लेखक बिना भूमिका के 'मात्रिक मुक्तछन्द' का निरूपण करना इष्ट मानता है।]

मात्रिक पर्व

हिन्दी के समस्त निश्चित मात्रिक छन्दों और मात्रिक मुक्त छन्दों के अध्य-यन से यह निष्कर्ष निकला है कि मात्रिक छन्दों में केवल पाँच पर्वों का प्रयोग होता है। इसे यों भी कह सकते हैं, कि हिन्दी-मात्रिकों की अधिकतम केवल पाँच लयें हैं, और इन्हीं के आधार पर समस्त मात्रिक छन्दोविधान निर्मित है। ये पर्व हैं (१) पञ्चक (२) षष्ठक (३) सप्तक (४) अष्टक और (५) नवक। (त्रिक पर्व षष्ठम और चतुःपर्व अष्टक में सन्निहित है) नवक पर्व का किसी कवि ने प्रयोग नहीं किया है, केवल शास्त्रीय परिपूर्णता और नव्य संभावना-निर्देश के विचार से प्रस्तुत लेखक ने दो उदाहरण प्रस्तुत किये थे (आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० ४६९, ४७०)। पंचमात्रिक पर्व का प्रयोग हिन्दी के निश्चित छन्दों में प्रचुर हुआ है, पर मुक्त छन्दों में नहीं हुआ। उर्दू में सरदार जाफ़री ने मुक्त छन्दों में इस पर्व का अच्छा प्रयोग किया है ('नयी दुनियाँ को सलाम' में । रगणावृत्ति रूप में 'अनूप शर्मा ने 'विराट संग्राम' कविता में इस पर्व का प्रयोग किया है, पर मात्रिक मुक्त छन्दों में, हिन्दी में यह प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं हुआ। निरालाजी ने अपने मुक्त छन्दों में केवल षष्ठक, सप्तक और अष्टक पर्वों का प्रयोग किया है। षष्ठक मात्रिक पर्व का प्रयोग वे अक्षर मात्रिक मुक्त छन्दों में करते हैं, इसका शुद्ध मात्रिक प्रयोग उनके अनुकूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पड़ा। षष्ठक का शुद्ध रूप औदात्य और ओज को वहन करने में असमर्थ है, क्योंकि शुद्ध षष्ठकावृति से गीतात्मक कोमलता आ जाती है। परिमल के 'पारस बदला' और गीतिका के छठे, सातवें, पैंसठवें, अड़सठवें, तिहत्तरवें, छिहत्तरवें, अठत्तरवें, चौरासीवें, सत्तासिवें, इक्यानवें, सात्तानवें गीत में षष्ठक का प्रयोग हुआ है।

निरालाजी ने सप्तक का प्रयोग भी मुक्त मात्रिक छन्दों में नहीं किया है, परिमल के प्रथम गीत 'मौन' (पृ० २९) में सप्तक पर्व का प्रयोग हुआ है। जिसमें आंशिक मुक्ति विद्यमान है। लयाख्यान इस प्रकार है :—

पं०	पृ० २९, परिमल	
१	७+३+	पादान्तर
२	+४+७+५+	,,
३	+२+७+५+	,,
४	+२+७+३+	,,
५	७+३+	पादान्तर
६	+४+७+५+	,,
७	+२+७+५+	,,
८	+२+७+३+	,,
९	७+३+	पादान्तर
१०	+४+७+५+	,,
११	+२+७+५+	,,
१२	+२+७+३+	,

निवेदन (पृ० ३२,) शेष (पृ० ४०) के पल्लव के दोनों छन्द एवं गीतिका के दूसरे बारहवें, बाईसवें, तेंनालीसवें, पैतालीसवें, सैतालीसवें, उनसठवें, नवासिवें गीतों में सप्तक पर्व का प्रयोग हुआ है। प्रयोगवादियों ने इस पर्व का प्रयोग मुक्तछन्दों में प्रचुर किया है। सप्तक पर्व में गीतात्मक कोमलता अधिक है, अतः शायद यह पर्व निरालाजी के मात्रिक मुक्त छन्दों के अनुकूल नहीं पड़ा। निराला जी ने। अष्टक पर्व का विस्तृत और सफल प्रयोग किया है और इस पर्व के विषय में यहाँ विस्तार से लिखा जायेगा। 'परिमल' के द्वितीय खण्ड (पृ० ११७ से १८८ तक) की इकनीसों कविताओं में अष्टक मात्रिक पर्व प्रयुक्त हुआ है, और यही रचनाएँ मात्रिक मुक्त छन्दों के अन्तर्गत आती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टक पर्व के प्रयुक्त चरण

समप्रवाही अष्टक पर्व ४+४, २+४+२ ; ४+२+२ ; २+२+४ और ३+३+२ मात्राओं के योग से बनता है, यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है। समारोहक अष्टक ५+३+ (ऽऽ।ऽ।) एवं ४+४ ऽ,।ऽ।) के योग से बनता है और इसकी लय सम-प्रवाही अष्टक से भिन्न है। समारोहक अष्टक का निपात विषमात्मक होता है, और इसका प्रयोग 'शक्तिपूजा' के अन्तिम अष्टक और सामान्यतया प्रथम और द्वितीय अष्टक में भी हुआ है —

अनिमेष राम/विश्वजिद्दिव्य/शरभङ्ग भाव/
विद्धाङ्ग बद्ध/कोदण्ड मुष्टि/खर रुधिर स्राव/

समारोहक अष्टक शृंगार छन्द में भी प्रयुक्त होता है। समप्रवाही और समारोहक अष्टक का प्रयोग एक साथ नहीं होता है क्योंकि दोनों की लयें भिन्न हैं। निराला जी ने लय-परिवर्त्तन और नव्यता के लिए कई स्थानों पर सम-प्रवाही अष्टक के बीच कई चरणों में एक साथ समारोहक अष्टक का प्रयोग किया है, (जैसे बादल राग ३, पृ० १७९ की प्रथम ६ पंक्तियाँ, बादल राग ६, पृ० १८८, अन्तिम ६ पंक्तियाँ, सिर्फ एक उन्माद. पृ० १६९, ३. ४, ५, ६, ७, ८ पंक्तियाँ (दूसरी पंक्ति प्रथम से मिलकर समप्रवाही लय बनाती है) बहू, पृ० १६२ ; ३, ४, ५ पंक्तियाँ, पर, ऐसे अपवाद बहुत थोड़े हैं। यदि समप्रवाही के साथ एक दो ही समारोहक अष्टक आते, तो प्रवाह भंग होता, पर, कई चरणों के आने से निश्चित भिन्न लय-प्रवाह आ जाता है, और परिवर्त्तन खट-कता नहीं है।

लय-सिद्धान्त की दृष्टि से आद्योपान्त मूलतः एक लय रखने के लिए एक ही अष्टक पर्व के भेदों का प्रयोग वाञ्छित है, और निरालाजी ने, बहुत थोड़े अपवादस्थलों को छोड़कर, सर्वत्र ऐसा ही किया है।

निम्नलिखित समप्रवाही अष्टक के चरणों का समायोजन एक साथ हुआ है :

(१) ४ मात्राएँ
(२) ४+३ मात्राएँ अन्त, ऽ।
(३) ८ मात्राएँ
(४) ८+२ अत्यल्प प्रयोग)
(५) ८+३ अन्त ऽ। (दोहे का द्वितीय चरण)
(६) ८+४ अन्त ऽऽ या ।।ऽ या ऽ।। (सारक छन्द)
(७) ८+६ अन्त ऽऽ+ऽ या ऽ।,।ऽ (ताटंक चरण, उत्तरार्द्ध) या हाकलि)
(८) ८+४+३ अन्त ऽ। (चौपई छन्द,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) ८ + ८ मत्तसमक
(१०) ८ + ८ + २ (अत्यल्प प्रयोग) (सिन्धुजा छन्द)
(११) ८ + ८ + ३ अन्त ऽ। (तमाल छन्द)
(१२) ८ + ८ + ४ अन्त ऽऽ, ऽ।। या ऽ।। (योग छन्द)
(१३) ८ + ८ + ६ अन्त ऽऽ, ऽ।। या ऽ।। (रास छन्द)
(१४) ८ + ८ + ४ + ३ अन्त ऽ। (निश्चिल छन्द)
(१५) ८ + ८ + ८ (त्र्यष्टक, रोलापरिवार)
(१६) ८ + ८ + ८ + २ (अल्प प्रयोग) (विष्णुपद)
(१७) ८ + ८ + ८ + ३ अन्त ऽ। सरसी छन्द)
(१८) ८ + ८ + ८ + ४ अन्त ऽऽ, ।।ऽ या ऽ।। (सार छन्द)
(१९ ८ + ८ + ८ + ६ ऽऽ, ।।ऽ या ऽ।। (ताटंक छन्द)
(२०) ८ + ८ + ८+७ अन्त ऽ। वीर छन्द)
(२१) ८+८+८+८ अन्त ऽऽ, ।।ऽ या ऽ।। (मत्तसवाई)

ये इक्कीसों प्रकार के चरण समात्मक अष्टक परिवार के हैं, अतः इनके योग-विनियोग में एक ही लय रहती है, और प्रत्यक्षतः आकार या विस्तार-भेद होने पर भी मूल लय में परिवर्त्तन नहीं होता है ।

पादान्तर-प्रवाह

समप्रवाही अष्टकावर्त्तक चरणों में विराम वहीं आता है, जहाँ पर्वांश आता है, और उसकी पूरक मात्राएँ आगामी चरण के आरम्भ में नहीं होतीं। यदि आगामी चरण का आरम्भ अष्टक से होता है तो उसके पूर्ववर्त्ती चरण में निपात या विराम की स्थिति होगी। यदि पूर्ववर्त्ती चरण के अन्त में विषम निपात या गुरु लघु होंगे, तो विश्वास या विराम अधिक होगा, और यदि चरणान्त में सममात्राएँ होंगी, तो विराम अपेक्षाकृत न्यून समय का होगा। यदि पूर्ववर्त्ती चरण में अष्टक की अखण्ड आवृति हुई है, और आगामी चरण अष्टक से ही आरम्भ होता है, तो भी पूर्व चरण पादान्तर प्रवाही होगा। ऐसे पादान्तर (प्रवाहों में अन्त्यानुप्रास या तुक के आयोजन से विराम की स्थिति उत्पन्न की जाती है, अन्यथा लय धारा एक ही चलती है और श्रोता को चरणान्त का अनुभव नहीं होता मुद्रित पुस्तक के पाठक को भले ही हो। यदि चरणान्त में गुरु-लघु हो और उसके आगे के चरण में आरम्भ में उन तीन मात्राओं को अष्टक रूप देने के लिए पाँच मात्राएँ (३+२ मात्राओं के योग से) हों, तो प्रवाह अखण्डित रहेगा, और पादान्तर प्रवाह हो जायेगा, जैसे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसृति-गति उत्/साह,	८+३+	८+	मात्राएँ
कभी दुख/दाह,	+३+२+३	+८+	,,
कभी जल/निधि-जल विपुल अ/थाह,	+३+२+८+३+x	+८+८+	,,
कभी क्री/डारत सात प्र/भञ्जन,	+३+२+८+४	+८+८+४	,,

(बादलराग ५, पृ० १८४, परिमल)

यहाँ अन्त्यानुप्रासों से चरण की सत्ता स्थिर हुई है, अन्यथा इन चरणों को एक चरण के रूप में निरन्तर पढ़ा जा सकता है।

यदि चरणान्त में गुरुलघु हैं, और उसके आगे के चरण में ३+२ मात्राएँ आरंभ में हैं. तो पादान्तर होगा, पर, यदि दो बार तीन तीन मात्राएँ आती हैं, तो पादान्तर नहीं होगा, क्योंकि दो बार आयी हुई तीन-तीन मात्राएँ आगे की दो मात्राओं के योग से स्वयं अष्टक पर्व बना लेंगी और नवीन चरणारंभ की सृष्टि करेंगी।

चरणारम्भ

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि समप्रवाही अष्टक ३ + ३ + २ मात्राओं के योग से बनेगा और २ + ३ + ३ के योग से नहीं बनेगा, अतः, जहाँ चरणारम्भ तगण ऽऽ। या ।।ऽ से होता है. वहाँ दो मात्राओ के बाद समप्रवाही अष्टक आरंभ होता है और प्रारंभिक दो मात्राएँ किसी कल्पित अष्टक की अन्तिम दो मात्राओं के रूप में गृहीत होती हैं। स्पष्ट है कि समप्रवाही अष्टक परिवार का कोई छन्द तगण या उसके मात्रिक विस्तार से आरम्भ नहीं हो सकता, इसी हेतु रवीन्द्रनाथ रचित भारतीय राष्ट्रगीत की प्रथम पंक्ति सदोष है —
'पं/जाब सिन्धु गुज/रात मराठा/द्राविड़ उत्कल/बंगा' सार छन्द का चरण है, पर, इसमें १६, १२ के स्थान पर १८, १२ मात्राएँ हो गईं, जबकी अगले सभी चरणों में १६, १२ मात्राएँ हैं, जैसे 'विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा, उच्छल जलधि तरंगा।' संगीत की खींच-तान में चरण बैठ जाता है, पर, छन्दःशास्त्र में सोने की तौल चलती है। प्रसंगतः, यह बात कह दी गयी, अन्यथा 'राष्ट्रगीत' तो वेद-मंत्र की तरह आर्ष है, गंगा की धारा की तरह पावन और प्रणम्य है।

महाकवि निराला ने भी, थोड़े स्थानों पर ऐसे प्रयोग किये हैं, पर, मुक्त छन्द में ऐसे प्रयोगों को चिन्त्य नहीं माना जायेगा, इष्ट भले ही न माना जाये। पर्वाख्यान की दृष्टि से ऐसे चरणों को २+८+ रूप में अंकित किया गया है जैसे :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) सौंदर्य सरोवर की वह एक तरङ्ग। (बहू, परिमल, पृ० १६०)
२+८+८+३ मात्राएँ

(२) वह नव वसन्त की किसलय कोमल लता। (बहू, परिमल, पृ० १६०)
२+८+८+३ मात्राएँ

(३) वह है सुहाग की रानी। (बहू, परिमल, पृ० १६१)
२+८+४ मात्राएँ

(४) तो थी वह प्रियतम के आगे मृदु स्निग्ध हास्य की रेखा। (बहू, परिमल पृ० १६१) २+८+८+८+४ मात्राएँ

(५) वह एक और प्यारा मुख वह कितना सुख। (शरत्पूर्णिमा की विदाई, पृ० १४०, परिमल) २+८+८+४ मात्राएँ

(६) मेरे सुहाग शृंगार! (अञ्जलि, परिमल, पृ० १४१) २+८+३ मात्राएँ

(७) यह नहीं प्यार का मेरे, २+८+४ मात्राएँ
कोई अमूल्य उपहार। २+८+८+३ | अञ्जलि, परिमल, पृ० १४१)

(८) पर नहीं जानती, अगर सुमन-मन-मध्य (अञ्जलि, परिमल, पृ० १४२)
२+८+८+८+३ मात्राएँ

(९) या नन्दन-वन के पारिजात दल लेकर, २+८+८+४ मात्राएँ
तुम गूंथ रहे हो और किसी का हार? २+८+८+३ मात्राएँ
(अञ्जलि, परिमल, १४२)

(१०) यों करते हो परिहार। (पृ० १४२) २+८+३ मात्राएँ
× - ×
मृदु गन्धपरागों से उसके तुम कर दो। (पृ० १४३) २+८+८+४

ऐसे दो चरण 'आवाहन' में, दो चरण 'वनकुसुमों की शय्या' में दो चरण 'धारा' में पांच चरण 'कविता' में, तीन चरण 'भिक्षुक' में, तीन चरण संध्या-सुन्दरी में, हैं और 'बादलराग' की समस्त ६ कविताओं में एक भी ऐसा अपवाद चरण नहीं है।

अष्टक पर्व का समप्रवाही रूप ३+३+२ मात्राओं के योग से बनता है, अतः यह संयोजन ध्रुव रूप में एक पर्व का निर्माण करता है और इसके पूर्व आठ मात्राओं का पर्व माना जायेगा, यदि १० मात्राएँ समप्रवाही हों। पर्व की इस ध्रुवता के कारण पर्वाख्यान ५+८+८ रूप में भी किया गया है, क्योंकि लय की दृष्टि से प्रारंभ से अष्टक मानना संभव नहीं था जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए । ५+८+८+४ मात्राएँ
(२) भूख से सूख ओंठ जब जाते । (भिक्षुक, पृ० १३३) ५+८+४ मात्राएँ
(३) सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह । ५+८+८+४ मात्राएँ
(४) नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा । ५+८+८+४ मात्राएँ
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप । ५+८+८+३
(सन्ध्या-सुन्दरी, पृ० १३६)
(५) सुनी भी मेरी मेरी करुण पुकार ? जरा कुछ बोलो ५+८+८+४ मात्राएँ
(६) भैरवी भेरी तेरी झंझा । ५+८+४ मात्राएँ (अञ्जलि, पृ० १४१)
(आवाहन, पृ० १५०)

पूर्णक या चरणान्तक

लय चरणान्त और लिखित चरणान्त में स्पष्ट अन्तर होता है। लिखित चरणान्त के बाद सर्वत्र विराम वाञ्छित नहीं है, क्योंकि चरणान्तों में 'पादान्तर प्रवाह' भी आता है। जहाँ चरण में निश्चित और अनिवार्य विराम आता है, उसे 'पूर्णक' कहते हैं।

जहाँ चरणान्त और पर्वान्त एक साथ आते हैं, वहाँ अल्प पूर्णक होता है, यदि अगले चरण का प्रथम पर्व अखण्ड है और समप्रवाही से आरम्भ होता है। यदि अगले चरण का आरंभ पर्वांश से होता है, तो पिछले चरण के अन्त में पर्वान्त होने पर भी 'अल्प पूर्णक' न होकर 'पूर्णक' होगा।

यदि किसी चरण के अन्त में पर्वांश है, अर्थात् पर्व की २, ३, ४, ५, ६ या ७ मात्राएँ ही हैं और अगला चरण सम्पूर्ण समप्रवाही अष्टक से आरम्भ होता है, तो वहाँ अनिवार्यतः 'पूर्णक' होगा। क्योंकि, उस स्थिति में उस चरण का अधूरा अन्तिम पर्व, अगले चरण के प्रथम पूर्ण पर्व से मिल नहीं सकता है। चरणान्त में पूर्ण पर्व हो, और अगले चरण के आदि में भी पूर्ण पर्व हो, तो दोनों लयें मिल जाती हैं और पूर्व चरण में 'अल्प पूर्णक' ही होता है। वहाँ पाठक रुकने के लिए बहुत विवश नहीं है। चरणान्त में पर्वांश आने पर पाठक रुकने के लिए विवश हैं, क्योंकि अगले चरण का आरंभ पूर्ण समप्रवाही अष्टक से होता है, यदि अगले चरण के आरम्भ में पिछले चरणान्त पर्व की शेष पूरक मात्राएँ होंगी तो 'पादान्तर प्रवाह' बन जायेगा और पाठक यदि चाहे, तो लिखित चरणान्त होने पर भी, वहाँ 'अल्प पूर्णक' भी न आने दे।

सौ/न्दर्य सरोवर/की वह एक त/रङ्ग	२+८+८+३	पूर्णक
किन्तु नहीं चं/चल प्रवाह उ/द्दाम वेग	८+८+६+	पादान्तर प्रवाह
सं/कुचित एक ल/ज्जित गति है वह/	+२+८+८+	अल्प पूर्णक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रिय समीर के/वश + ८ + ३ पूर्णक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परिमल, बहू, पृ० १६०)

प्रथम चरण के अन्त में पर्वांश तीन मात्राओं का है, अगले चरण में शेष पाँच मात्राएँ नहीं मिल रही हैं, क्योंकि वह पूर्ण अष्टक पर्व से आरम्भ होता है, अतः प्रथम चरण के अन्त में 'पूर्णक' आ गया है और वहाँ रुकना अनिवार्य है। दूसरे चरण के अन्त में पर्वांश की ६ मात्राएँ हैं और तीसरे चरण के आरंभ में पूरक दो मात्राएँ प्राप्त हैं, अतः ६ + २ से अष्टक पर्व पूरा हो गया और दूसरे चरण के अन्त में 'पादान्तर प्रवाह' आ गया। तीसरे चरण के अन्त में चरणान्त और पर्वान्त एक साथ आता है, अतः 'अल्पपूर्णक' हुआ और यदि पाठक चाहें, तो नहीं भी रुक सकते हैं। चौथे चरण के अन्त में फिर पर्वांश की तीन मात्राएँ हैं, और आगे के चरण में ५ पूरक मात्राएँ प्राप्त नहीं है, अतः चौथे चरण के अन्त में 'पूर्णक' आया है, अर्थात् रुकना अनिवार्य है।

चरणान्त के पर्वांश से निर्मित 'पूर्णक' दो प्रकार का होता है—

(१) सममात्रिक (२) विषममात्रिक ; विषममात्रिक पूर्णक, सममात्रिक पूर्णक की अपेक्षा अधिक सबल और स्थायी होता है।

गूथे तप्त अश्रुओं के मैं, ने कितने ही/हार, १६ + ८ + ३ (पूर्णक)
बैठी हुई पुरातन स्मृति की/मलिन गोद पर/प्रियतम ! १६ + ८ + ४ (पूर्णक
रुद्धद्वार पर रक्खे थे मैं/ने कितने ही/बार, ८ + ८ + ८ + ३ (पूर्णक)
अपने वे उप/हार कृपा के/लिए तुम्हारी/अनुपम ! ८ + ८ + ८ + ४ (पूर्णक)

(परिमल, विफलवासना, पृ० १६३)

इसके प्रथम तृतीय चरणों के अन्त में विषममात्रिक पर्वांश हैं, अतः इन चरणों के अन्त में दूसरे चौथे चरणों की अपेक्षा अधिक रुकना पड़ता है क्योंकि द्वितीय-चतुर्थ चरणों के अन्त के पर्वांश सममात्रिक हैं।

अध्ययन

(क) पर्व-परिमल द्वितीय खण्ड की समस्त इकतीसों कविताओं में मात्रिक मुक्तछन्द विद्यमान हैं जिसमें समप्रवाही अष्टमात्रिक पर्व या लयाधार का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक चरण में इस पर्व की आवृत्ति होती है। अधिकतम तीन आवृत्तियाँ हुई हैं और बाद में पर्वांश आया है, पर्वांश में ४ और ४ मात्राएँ अधिक आयी हैं और ऐसे चरण क्रमशः सरसी १६, ११ अन्त ऽ। और सार (१६, १२ अन्त सम का रूप धारण करते है) जहाँ दो आवृत्तियों के बाद पर्वांश की तीन या चार मात्राएँ आई हैं, वहाँ तमाल (१९ मात्राएँ ८ + ८ + ऽ। और योग (२० मात्राएँ = ८ + ८ + ४ अन्त सम) का चरण निर्मित होता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ एक आवृत्ति के बाद तीन या चार मात्राओं का पर्वांश आया है वहाँ 'अहीर' और 'सारक' का चरण बनता है। जहाँ पर्वांश रहित एक बार अष्टक का प्रयोग होता है वहाँ अखण्ड या 'मुक्ति छन्द' होना है दो बार अष्टक के प्रयोग में मत्रसमक पादाकुलक, चौपाई या उनका भेद होता है, तीन बार अष्टक के प्रयोग में रोला का चरण बनता है। इस प्रकार सामान्यतया ८, ११ १२, १६, १९, २० २४, २७, २८ मात्राओं के चरणों का प्रयोग प्रचुर हुआ है, हाकलि (१०=८+६ मात्राएँ), चौपाई (८+४+ऽ।=१५ मात्राएँ)' रास (८+८+६ अन्त सम) राधिका (२+८+१२ मात्राएँ, अन्त सम) और निश्चल ८+८+४+ऽ।=२३ मात्राएँ विष्णुपद (८+८+८+२ अन्त सम) का प्रयोग अपेक्षाकृत न्यून है। इतना स्पष्ट है कि उन्हीं छन्दों के २ चरणों का समिश्रण हुआ है, जिनमें समप्रवाही अष्टक पर्व का प्रयोग होता है। ९, १३, १७, २१, २५, २९ मात्राओं के चरण अष्टक पर्व के प्रवाह को भंग करते हैं अतः इन मात्राओं के चरणों का प्रयोग नहीं हुआ है। गिनती की दृष्टि से इतनी मात्राओं का चरण वहीं प्राप्त होगा जहाँ दो मात्राओं के बाद 'समप्रवाही अष्टक' आरंभ होता है, जैसे—

(१) शशि/किरणों की सी/वह प्यारी मुस/कान (उसकी स्मृति, १२२)।
२+८+८+३=२१ मा०

(२ षड़/ऋतुओंका शृंगार। (विधवा पृ० १२६) २+८+३ (ऽ।)=१३ मा०

(३) वह/कविता ही थी/और साज था/उसका बस शृं/गार (कविता पृ० १३१) २+८+८+८+३ २९ मा०

९, १७, २५ मात्राओं का एक भी चरण प्राप्त नहीं है। पर, अपवादतः इन मात्राओं के चरण प्रयुक्त भी हो सकते थे। इन अपवादों का न आना स्तुत्य ही है।

कई स्थानों पर अष्टक पर्व (३+३+२) की अन्तिन ५ मात्राओं से ही चरण आरम्भ हुआ है और पाठ में तीन मात्रा काल व्यय को हुंकार या आवेग से पूरा किया है. इससे पाठ में ओजवृद्धि होती है, जैसे—

जो कि अबल हा/थों का एक स हारा। (३+) ५+८+४ मा०
(और) लक्ष्य जी/वन का प्यारा/वह ध्रुव तारा॥ (३+) ५+८+८ मा०
(विधवा पृ० १२७)

कुल १७ चरणों में ऐसे अपवाद हैं। इस गणना में उन पंचकारम्भों को छोड़ दिया गया है जो पूर्ववर्त्ती चरण की अन्तिम ३ मात्राओं के योग से एक पूर्ण पर्व का निर्माण करके पादान्तर के द्वारा अष्टक लय को अखण्ड रखते हैं।

(२) पर्वापवाद—कई स्थलों पर समप्रवाही के स्थान पर समारोहक अष्टक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग किया है, जिनकी संख्या छब्बीस है। पर, चूँकि इसमें भी समारोहक अष्टक का आवर्त्तन होता है अतः लयधारा बनी रहती है, वह थोड़ा भिन्न भले ही है। सरल शब्दों में यों कहिये कि चौपाई के साथ शृंगार और रोला के साथ 'शक्तिपूजा' छन्द के चरणों का प्रयोग खप जाता है। यह भेद निर्देश शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से किया गया है, सामान्य पाठक को इस परिवर्त्तन का आभास भी नहीं होता है, जिसका कारण दोनों पर्व भेदों का सामीप्य है।

दूसरा अपवाद अष्टक पर्व के स्थान पर सप्तक पर्व का प्रयोग है जो केवल एक ही स्थान पर (विधवा पृ० १२७-१२८) कविता की अन्तिम ६ पंक्तियां) हुआ है। चूँकि इन ६ पंक्तियों में सप्तक पर्वावर्त्तन होता है, अतः लयधारा अखण्ड रहती है, पर, इसे शास्त्रीय दृष्टि से किंचित्‌चिन्त्य मानना पड़ेगा, दोष भले ही न हो। ऐसा पर्व भेद अन्यत्र कहीं भी नहीं हुआ है।

(३) पादान्तर प्रवाह—एक चरण के अष्टक के अन्तिम पर्वांश और आगामी चरणों के आरम्भिक पर्वांश से एक अष्टक पर्व प्रायः बना है, ऐसे स्थल पर लय धारा अखण्ड रहती है, यद्यपि देखने में दोनों चरण पृथक् एवं भिन्न विस्तार के प्रतीत होते हैं। लय की दृष्टि से दोनों हो (या अधिक) चरण एक ही अखण्ड प्रवाही लम्बे चरण के अङ्ग है। दो एक अपवाद चरणों को छोड़कर यह पादान्तर दो प्रकार का है (१) ३+५ मात्राओं का योग—जहाँ चरणान्त का गुरु-लघु (ऽ।) अगले चरण की ५ (३+२) आरम्भिक मात्राओं से मिलता है। इसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। (२) ६+२ मात्राओं का योग—जहाँ चरणान्त की ६ मात्राएँ अगले चरण की दो मात्राओं के योग से अष्टक पर्व बनाती हैं। इसका प्रयोग, अपेक्षाकृत्य न्यून है और यह पादान्तर समात्मक होने के कारण पहले प्रकार के पादान्तर से कम सबल होता है।

पादान्तर प्रयोगों ने स्वच्छन्दता के कारण उत्पन्न होने वाले संभावित चरण-पार्थक्य को न्यून करके छान्दसिक लयात्मकता में योग दिया है।

(४) अन्तर्यति-चरणान्त विरामों के अतिरिक्त अष्टक पर्व की प्रकृति के अनुसार अन्तर्यतियों का प्रयोग हुआ है। सरसी (८+८, ८+३) सार (८+८,८+४) में छन्द-सन्तुलन के लिये १६ मात्राओं पर यति आती है, इसका निर्वाह मुक्त छन्द में हुआ है :—

(१) कर तल पल्लव-दल से निर्जनव/न के सभी तमाल ;
निर्झर के झर-झर-स्वर में तू/सरगम मुझे सुना माँ।

(आवाहन, पृ० १५१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर, ऐसे अपवाद बहुत हैं, जहाँ इस नियम को नहीं माना गया है, इससे लय धारा खंडित नहीं होती यद्यपि लयात्मक सौष्ठव में न्यूनता आती है।

(५) अन्त्यानुप्रास—निश्चित छन्दों में 'अन्त्यानुप्रास' छन्द का संगीत सौष्ठव बढ़ाता है, लय-निपात को सहज शब्दालंकार देता है; श्रोता को संभावित लय-निपात का सुख मिलता है और छन्द की इकाई का ग्रथन हो जाता है। निराला जी ने इन लाभों से मुक्त-छन्द को वंचित नहीं होने दिया और चरण-विस्तार होने पर भी 'अन्त्यानुप्रास' रक्खा। कहीं-कहीं ८, ९ चरणों के विस्तार तक एक ही अन्त्यानुप्रास योजना की गयी है, जैसे पृ० १२७ विधवा के दसवें, ग्यारहवें चौदहवें और अठारहवें चरण-निपात में एक ही अन्त्यानुप्रास है। युग्मक और त्रिक अन्त्यानुप्रासों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। इससे पाठक और श्रोता को निश्चित छन्द की रमणीयता का आनन्द मिलता है और मुक्त-छन्द का वैचित्र्य न्यून हो जाता है। यह अलंकार-सज्जा मुक्त-छन्द में अनिवार्य नहीं थी, पर निरालाजी ने कुछ अपने संस्कारों के कारण कुछ श्रोताओं की तुष्टि के लिए और कुछ यह दिखाने के लिए कि मुक्त-छन्दों में शब्द-शिल्प का अभाव नहीं होता है, अन्त्यानुप्रासों का प्रचुर प्रयोग किया है। संगीत माधुर्य की रक्षा के लिए ऐसी कविताओं में अर्थालंकारों से अधिक शब्दालंकारों का प्रयोग किया गया है, ताकि कोई यह न कह सके कि मुक्त-छन्दों में, निश्चित छन्दों की तुलना में, किसी तत्त्व की कमी है। इस प्रत्यक्ष 'काव्य-कला-कौशल' में विरोधियों से 'आत्म-रक्षण' की भावना सदा क्रिया-शील रही है।

निष्कर्ष

निरालाजी के संस्कारों में 'समात्मक अष्टक' पर्व और उस परिवार के छन्द ही सर्वाधिक व्याप्त हैं। अष्टक में भी 'समारोहक अष्टक' के संस्कार बहुत क्षीण है। 'शक्ति-पूजा' छन्द की मूल लय 'समारोहक अष्टक' की है और उस छन्द के विषय में उनकी ऐसी ही कल्पना थी भी, पर, उनके संस्कारों में 'समात्मक अष्टक' के छन्द ऐसे गहरे व्याप्त थे कि 'राम की शक्ति-पूजा' कविता में लगभग आधे चरणों में 'समारोहक अष्टकों' के स्थान पर 'समप्रवाही अष्टकों' का प्रयोग हुआ है। शायद, अतिशय भक्त इस निष्कर्ष से खिन्न और निराश हों कि निरालाजी अपने ही कल्पित' एवं आविष्कृत' छन्द की शुद्धता की रक्षा करने में असमर्थ रहे—

(१) समारोहक अष्टक—'विद्धाङ्ग-बद्ध कोदण्ड-मुष्टि/खर रुधिर स्राव'।

(१२वीं पंक्ती, अपरा पृ० ३७)

११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) समात्मक अष्टक—'लौटे युग दल/ राक्षस-पद-दल/पृथ्वी टलमल'।
(पहली पंक्ति, अपरा, पृ० ३८)

निरालाजी के संस्कारों में सप्तक परिवार के छन्द परिव्याप्त नहीं हैं। 'परिमल' के प्रथम खण्ड की केवल ६ कविताओं (मौन, निवेदन, शेष (केवल पीयूष वर्ष-चरण) नयन, माया, आध्यात्म-फल) में और द्वितीय खण्ड में 'विधवा' की अन्तिम ६ पंक्तियों में 'सप्तक पर्व' का प्रयोग हुआ है। 'गीतिका' के १०१ गीतों में केवल सात गीतों में (२, १२ २२, ४३, ४५, ४७, ५९, ६२ संख्या के गीत 'सप्तक पर्व' का प्रयोग हुआ है। सप्तक पर्व के ये अल्प प्रयोग प्रयत्न-जन्य हैं, संस्कार-जन्य नहीं। निरालाजी अष्टक प्रयोग में जिस 'परिपूर्णता' को प्राप्त करते हैं, वह परिपूर्णता सप्तक-प्रयोग में नहीं है इस कथन से तो सभी सहमत होंगे।

चूँकि, निरालाजी में संस्कारतः सप्तक-लय की व्याप्ति नहीं है, अतः मुक्त छन्दों के क्षेत्र में हम बहुत बड़ी छन्द राशि से वंचित हो गये हैं। निरालाजी जो छन्दो-वैविध्य दे गये हैं, उस पर सभी को गर्व है, पर, वह क्या दे सकते थे, जो नहीं दे सके और नहीं दे गये, इस कल्पित-हानि की वेदना सामान्य पाठकों और साहित्यिकों को नहीं हो सकती।

सप्तक में केवल विषमारंभी (ऽ।ऽऽ) सप्तक का प्रयोग करते हैं, समारंभी सप्तक (ऽऽ।ऽ) का नहीं, शायद 'भारत-भारती' 'और जयद्रथवध' का 'रम कर और जम कर' अध्ययन नहीं किया था।

षष्ठक मात्रिक पर्व का प्रयोग वे अक्षर-मात्रिक छन्दों में ही करते हैं, शुद्ध रूप में नहीं, (परिमल के तृतीय खण्ड के लयाख्यान देखिये, महाकवि निराला, व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० ३३९-३६०) 'अणिमा' में स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज (पृ० ६८-९०) कविता अक्षर-मात्रिक है, पर उसमें अक्षरात्मकता गौण और षाण्मात्रिकता प्रमुख है, अतः इस दृष्टि से उसे मात्रिक मुक्तछन्द कहा जा सकता है, पर उन्होंने शुद्ध षाण्मात्रिक पर्व का प्रयोग मुक्त छन्दों में नहीं किया है।

पंचक पर्व (रगणात्मक ऽ।ऽ) ओज के अनुकूल है और निरालाजी मात्रिक मुक्त छन्दों में इसका प्रयोग करके बहुत सफलता पा सकते थे, और इससे मात्रिक मुक्त छन्द का शास्त्र विकसित और विस्तृत होता। पर इधर उनकी दृष्टि नहीं गयी उर्दू में सरदार जाफ़री के रगणात्मक पंचमात्रिक मुक्त छन्दों को देखकर, हमें यह अभाव हिन्दी में अखरता है, निराला जी इस दिशा में भी हमें बहुत कुछ दे सकते थे। 'परिमल' में एक भी कविता पंचक पर्व की नहीं है, 'गीतिका' में ५ गीत (९, १८, ५३, ६३, ७० संख्या) पंचपार्वक है, पर इन गीतों को देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लगता हैं उन्होंने इस पर्व को संगीत से ग्रहण किया है, छन्द शास्त्र से नहीं, क्योंकि रगण, यगण और तगण का मिश्रण बराबर मिलता है। ये तो अभावात्मक निष्कर्ष हुए। भावात्मक निष्कर्ष क्या हैं?

निरालाजी ने मात्रिक स्वच्छन्द छन्दों में केवल एक अष्टक पर्व का प्रयोग किया है, और उसके सभी आयामों को परिपूर्णता प्रदान की है। सोचने पर भी कल्पना सामने नहीं आती कि किस दिशा में इस पर्व के प्रयोग का विकास सम्भव है। यह असाधारण उपलब्धि है। इससे मात्रिक छन्दःशास्त्र तो समृद्ध हुआ ही है, अन्य मात्रिक पर्वों के ऐसे ही विस्तृत प्रयोगों की संभावनाएँ प्रत्यक्ष हो गयी हैं, और इसीलिए अभावात्मक निष्कर्ष भी प्रस्तुत किये गये हैं। नयी दिशा में नवीन मार्ग से नवीन गन्तव्य पर पहुँचना कठिन है, फिर उस पर चलना और नये मार्ग निकालना सरल हो जाता है। निरालाजी ने अपने पौरुष से 'सरगमत्था' शिखर पर मुक्त छन्द का झंडा गाड़ दिया, उस शिखर तक मुक्तछन्द की सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रतिष्ठित करना बाद में आने वालों का काम है।

निरालाजी के 'समप्रवाही' 'अष्टक' के प्रयोग के आदर्श पर नवक, सप्तक, षष्ठक, पञ्चक के विभिन्न भेदों को लयादर्श मानकर योग-विनियोग से कितने प्रकार के नवीन छन्दों का निर्माण संभव है, और इनसे कितने विशाल काव्य की रचना हो सकती है; कितना विस्तृत स्वच्छन्द छन्दः शास्त्र विकसित हो सकता है; इसकी कल्पना, सिन्धु की भाँति लहराती आ रही है। यदि प्रस्तुत लेखक एक हज़ार पृष्ठों की कविताओं में मुक्तछन्दों का प्रयोग करे, और पाँच सौ पृष्ठों में मुक्त छन्दों का शास्त्र निर्मित करे, तो हिन्दी-पाठकों के सामने वह कल्पना आंशिक रूप में प्रत्यक्ष हो सकती है। इस कार्य को अनेक कवि एक साथ भी कर सकते हैं। निरालाजी के बाद मुक्त छन्दों में सप्तक और अष्टक पर्व का प्रयोग हुआ है, पर किसी कवि ने पूर्ण आयामों में उनका विस्तार और वैविध्य नहीं उपस्थित किया है। पूर्ण सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मुक्तछन्दों का प्रयोग करने वाले महाकवि, मेरे द्वारा प्रतिपादित मुक्तछन्द के शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करें, इसमें उनकी प्रतिभा का अपमान नहीं है, अपितु इससे उन्हें नयी दिशाएँ सरलता से प्रत्यक्ष हो सकेंगी अन्यथा भय यह है कि ये लोग भी निराला जी की भाँति एक ही पर्व के सीमित प्रयोग में सारी शक्ति व्यय कर देंगे, और अभिव्यक्ति के माध्यमों की सीमाओं में, उनके विषय और उपलब्धियाँ सीमित ही रहेंगी।

इस बात से सभी सहमत होंगे कि निरालाजी समस्त परवर्त्ती मुक्तछन्द के हिंदी कवियों को प्रकाशस्तभं की भाँति मार्ग-दर्शन कराते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग कवि श्री निराला की अलंकार-योजना

डाक्टर श्यामसुन्दरलाल दीक्षि

हिंदी में अलंकार-सम्प्रदाय के नाम से कोई विशिष्ट वर्ग नहीं है। संस्कृ के आचार्यों ने इस दिशा में अपने अभिमत प्रस्तुत करते हुए विभिन्न विच प्रकट किये हैं। भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में अलंकारों पर भी विचार विम किया है और उनकी संख्या केवल चार ही स्वीकार की है, उपमा, रूपक, यम तथा दीपक। पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने तो रस और ध्वनि के साथ अलंका को भी सम्मिलित कर लिया है। बात भी कुछ ऐसी ही है कि काव्य में अलं कारों का अपना महत्व है क्योंकि अलंकार उत्कृष्टता के प्रमुख साधन हैं। कु लोगों ने उनको काव्य का सर्वस्व भी माना है।

हमारी विनम्र सम्मति में अलंकारों का कार्य सौन्दर्य की वृद्धि करना है महाकवि तुलसीदासजी ने लिखा है :

"सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छबि गृह दीपशिखा जनु बरई॥"

यदि काव्य स्वयं ही सुन्दर है तो उसे अलंकृत करने की विशेष आवश्यक ही क्या है? यहां यह प्रश्न सहज रूप से उठाया जा सकता है। इसके उत्त में हमारा निवेदन है कि सरस और सहृदय कवि अपने काव्य की साजसज्जा तथा शब्दों की परिचर्या शिशुवत् करता है और जिस प्रकार से आकर्षक शि को छोटे छोटे वस्त्राभूषणों के माध्यम से शृंगारित करके तथा उस सौन्दर्य से अपनी अन्तरात्मा की अनादि अतृप्ति को शांत करते हैं, उसी प्रकार काव्य में अलंकारों के द्वारा ओज, प्रसाद और माधुर्य को समाविष्ट किया जाता है। यही परिचर्या की भावना है जहाँ भक्तजन भगवान की मूर्ति को भी अलंकृ करते हैं और उस छबि पर बलिहारी जाते हैं। हमारी उसी रागात्मक बलिहा होने वाली प्रवृत्ति का ही परिणाम काव्य को अलंकृत करने की प्रेरणा प्रदा करता है।

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य वामन का कहना है कि काव्य की शोभा को उत्पन्न करने वाले गुण हैं और उसकी वृद्धि अलंकारों के कारण होती है।

युग-प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल की मान्यता है कि कथन की विशेषता को अलंकार कहते हैं, और यह विशेषता कभी-कभी वर्ण विन्यास में परिलक्षित होती है, कभी शब्द और अर्थ की क्रीड़ा में, कभी वाक्य के बांकपन में तो कभी प्रस्तुत-अप्रस्तुत के सादृश्य सम्बन्ध में और दूरी की कल्पना में। इन्हीं विचारों के आधार पर अनेक अलंकारों की उद्भावना की गई है। उनका कथन है कि "अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु-योजना के रूप में हो (जैसे उपमा, उत्प्रेक्षा आदि में) चाहे वाक्य-वक्रता के रूप में, (जैसे अप्रस्तुत-प्रशंसा , परिसंख्या, व्याजस्तुति विरोध इत्यादि में) चाहे वर्ण-विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में) लाये जाते हैं वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष के साधन के लिए ही।"

इस विचार को वर्तमान विद्वत्जनों ने सादर स्वीकृत किया है और अलंकार को वर्णन की भिन्न भिन्न प्रणालियाँ ही माना है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि वस्तुओं, व्यापारों आदि का वर्णन रसों और भावों के अन्तर्गत ही आएगा। इनको यह कहना अनुचित है कि वे अलंकार के अलंकार हैं। रसवत् आदि भी इसी विचारानुसार अलंकार नहीं हैं।

श्री जयशंकरप्रसाद जी ने अलंकार अथवा कथन-चमत्कार का महत्व भाव पर ही आधारित किया है। अनुभूति की तीव्रता, तन्मयता और आनन्द की मात्रा के अनुसार ही कथन का सौष्ठव भी होता है। अलंकार, अभिव्यंजना वक्रोक्ति, ध्वनि आदि का समावेश भावानुभूति के अनुपात से ही रहता है। इस प्रकार भावों की सामंजस्य स्थापना ही अलंकारों का कार्य है।

श्री सुमित्रानन्दन जी पन्त ने लिखा है कि 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव भाव हैं। जहां भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहां भावों की उदारता शब्दों की कृपण जड़ता में बंध कर सेनापति के 'दाता और सूम' की तरह 'इकसार' हो जाती है।'

और अलंकार जहां साधन न होकर साध्य हो जाते हैं, वहीं अराजकता का जन्म हो जाता है क्योंकि कविता अलंकारों से भाराक्रान्त होकर भावहीन हो जाती है और उसका वह स्वाभाविक सौंदर्य बिखर जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज कवि जगत् में अलंकारों के प्रति जो एक घृणा की भावना है, उसके मूल में नवीनतम मान्यताओं की अनभिज्ञता ही प्रधान है। केशव आदि चमत्कारिक कवियों की रचनाओं से ऊब जाने वाले कवियों ने नवीन की ओर अपने आप को अभिमुख नहीं किया है अन्यथा वे देखेंगे कि वे जाने अनजाने स्वयं अलंकारों की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

हम भी यह मानते हैं कि कविता में अलंकारों का प्राधान्य नहीं होना चाहिए और प्राधान्य से हमारा तात्पर्य भरमार है, उन्हीं शब्दों में जिनमें विहारी ने कहा है :

"सूधे पाँय न धरि सकति, महि सोभा के भार।
भूषण भार सम्हारि हैं किमि ए तन सुकुमार॥

कविता का क्षेत्र असीम है और उसी के साथ-साथ अभिव्यक्ति का ढंग भी बहुत विस्तृत है। संभावना इस बात की भी है कि वर्णन की ऐसी नवीनतम प्रणालियां भी हो सकती हैं, जो अभी तक अनुसन्धानित न हुई हों। भाव जब उमड़ कर आते हैं और उस प्रेरणा से कथन में जो स्वाभाविक आकर्षण होता है, उसमें आने वाले अलंकार स्वाभाविक भी होते हैं और यथार्थ भी।

वर्णन के चमत्कारिक ढंग को अलंकार मानते हुए श्री लक्ष्मीनारायणसिंह जी सुधांशु ने लिखा है कि जिस अलंकार-विधान में कल्पना की सहायता नहीं रहती, उसमें अलंकार मानने या न मानने का दुराग्रह नहीं होना चाहिए। भाव की महत्ता स्वतन्त्र रहने में ही है। कभी-कभी उसे अपनी स्थिति को तीव्र रूप में प्रकट करने के लिए कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है, यहीं उसमें अलंकारत्व मिलता है। स्मरण, भ्रम, सन्देह, विषाद, तिरस्कार आदि हृदय की वृत्तियां हैं। इनमें अलंकार मानना उनके प्रकृतरूप का निरादर करना है।

तात्पर्य यह है कि अलंकार का कार्य है वर्णन के प्रभाव को गतिशील प्रभावी, तथा आकर्षक बनाना। संक्षेप में वर्तमान का आलोचक और कवि उस रूप में अलंकारों को न तो मानता ही है और न उस परम्परा में उनको ग्रहण करता हुआ चलता है, जैसी कि प्राचीन परिपाटी है।

निरालाजी को छायावादी कलाकार माना जाता रहा है। सर्वोपरि वे स्वच्छन्दता-प्रिय कवि कहे गए हैं। हम जान बूझ कर स्वतन्त्रता के स्थान पर स्वच्छन्दता शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। 'निरंकुश' होने का अधिकार तो प्रत्येक कवि को है परन्तु निराला स्वच्छन्द होने के कारण ही 'निराला' है। उन्होंने इसी प्रवृत्ति का आधार ग्रहण करके नवीन छन्दों और नवीन गीतों की उद्भावना की है। निरालाजी मानते हैं कि कविता एक अत्यन्त सूक्ष्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला है। उसके चित्र सम्पूर्ण होने चाहिए और गंभीर अर्थ भी होना आवश्यक है। यद्यपि कुछ समीक्षकों ने निरालाजी को बुद्धि-प्रधान कवि माना है परन्तु वे स्वयं कविता में भाव का ही प्राधान्य मानते हैं। वे उपदेश देने का काम कवि का कर्तृत्व नहीं मानते। "मेरे गीत और कला" शीर्षक निबन्ध में निरालाजी ने प्रकाश डालते हुए लिखा है कि :—'सूक्तियाँ, उपदेश, मैंने बहुत कम लिखे हैं, प्रायः नहीं। केवल चित्रण किया है। उपदेश को मैं कवि की कमजोरी मानता हूँ।'

वे कला के प्राचीन रूप को आवश्यक नहीं मानते परन्तु वह जितना भी नवीन का परिधान पहन सके उतना उसे सुसज्जित करना चाहिए, यह उनका मत रहा है।

निरालाजी की अलंकार-योजना नवीन प्रणाली और नई अभिव्यक्ति के साथ उत्फुल्ल होती दिखाई देती है। उनका भाव-वर्णन इतना चमत्कारिक होता है कि अलंकार अनिमन्त्रित चले आते हैं परन्तु अनियन्त्रित नहीं। यह उनकी विशेषता है।

पौर्वात्य और पाश्चात्य के समन्वयकारियों ने वर्तमान काल में तीन ही अलंकारों को स्वीकार किया है। वे हैं मानवीकरण (Personification) विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet) और ध्वन्यर्थ व्यंजना (onomatopoeia)। यह एक वास्तविकता है कि निरालाजी के काव्य में ध्वन्यर्थ व्यंजना की प्रधानता रही है परन्तु उन्होंने मानवीकरण का प्रयोग भी बहुत जम कर किया है।

ध्वन्यर्थ व्यंजना के द्वारा काव्य में संगीतात्मकता की अभिवृद्धि होती है। इस गेयता के कारण माधुर्य का आस्वादन संभव हो जाता है। साथ ही चित्रमयता, नाद-व्यंजकता और भाव व्यंजकता भी आ जाती है। रीतिकाल में महाकवि देव के काव्य में भी ऐसे सफल प्रयोग मिलते हैं।

> झहरि झहरि झीनी बूंदनि परति मानो
> घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में।

आचार्य मम्मट ने चित्रकाव्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए निम्न श्लोक लिखा है : स्वच्छन्दोंच्छल दच्छ कच्छ कुहरच्छाते तराम्बुच्छटा

> सूर्च्छन्ओइ महर्षि हर्ष विहितः स्नानाहि कालायवः
> मिथाद्युद्यद्दुदारदुर्दरदरी दीर्घा दरिद्र द्रुम
> द्रोहीद्रेक महोर्मि मेदुरमदा मन्दाकिनी मन्दताम्॥

निराला ने राम की शक्ति-पूजा, सन्ध्या-सुन्दरी, शरदपूर्णिमा की विदाई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुही की कली, तुम और मैं, सरोज स्मृति, बन-बेला, यमुना के प्रति, नाचे उस पर श्यामा, आवाहन आदि अनेकों गीतों में इसका सफल प्रयोग किया है। एक उदाहरण लीजिए :

शतघूर्णावर्त, तरंग भंग, उठते पहाड़,
जल राशि राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़।

*　　　　*

पहुँचा एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।
रावण महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार।

विशिष्ट अन्धकार का शिष्ट चित्र उपस्थित करते हुए निरालाजी ने लिखा है :

उत्ताल तरंगाघात प्रलय घन गर्जन जलधि प्रबल में
क्षिति में, जल में, नभ में, अनिल अनल में
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप-चुप।　　　　(सन्ध्या सुन्दरी)

निराला भाव-प्रधान कवि भी है और वर्ण-प्रधान भी, यही कारण है कि उनका काव्य पुरुष-काव्य कहा जाता है।

मानवीकरण की प्रवृत्ति कोई नवीन भावना नहीं है। साहित्य में इसका प्रचलन बहुत देर से होता चला आ रहा है। यह बात दूसरी है कि वर्तमान-काल में उसके सौन्दर्य में काफी अभिवृद्धि हो गई है। महाकवि भवभूति ने तो अपने हाथ का ही मानवीकरण कर दिया है :

रे हस्त दहिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातके विसृख शूद्रमुनो कृपाणम्
रामस्य गात्रमसि दुर्वह गर्भ खिन्ना
सीता निवासन पटो : करुणा कुतस्ते।

निराला की सुप्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' इसका प्रत्यक्ष और सुन्दर उदाहरण है जहां उन्होंने कली के माध्यम से नायिका का वर्णन उपस्थित किया है :—

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेहस्वप्न मग्न
अमल कोमल-तनु-तरुणी, जुही की कली
दृग बन्द किये शिथिल पत्रांक में।

'शेफालिका' में भी इसी प्रकार मानवीकरण का आश्रय लिया गया है। विशेषण-विपर्यय में विशेष्य के गुण का विशेषण पर आरोप होता है। इसके अन्तर्गत एक ऐसे विशेषण की आधारपृष्ठिका ग्रहण की जाती है जिसमें विशेष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः आलोप ही रहता है। विशेषण के द्वारा हो वह अरूप का चित्र मूर्तमान हो जाता है :

धरा के खिन्न दिवस के दाह
विदाई के अनिमेष नयन

दो ही पंक्तियों के द्वारा कलात्मक बोध और चरित्रांकन जितनी सफलता से हो सका है वह अन्य प्रणाली से सुलभ नहीं है।

साधारण रूप से यदि हम कहना चाहें तो इन नवीन अलंकारों को अनुप्रास रूपक और उपमा के धरातल पर रख सकते हैं।

आकर्षक उदाहरण रूपक का भी प्रस्तुत है :

जागो फिर एक बार
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोल रही द्वार।
यामिनी जागी
अलस-पंकज-दृग, अरुण-मुख
तरुण-अनुरागी।

कहा जाता है कि 'उपमा कालिदासस्य' परन्तु निरालाजी के काव्य में तो उपमालंकार जितना आकर्षण भरता है वह उनकी वाणी को चमत्कार के साथ ही साथ विचार के परिष्कार से भी पूर्ण कर देता है।

आंखें अलियों सी
किस मधु की गलियों में फंसी

*

मृदु सुरभि-सी समीर में
बुद्धि-बुद्धि में हो लीन

*

मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी

साधकों, समीक्षकों और साहित्यकों ने निरालाजी के काव्य का विविध प्रणालियों से अध्ययन किया है परन्तु अलंकारिक दृष्टिकोण से उनका अनुसन्धान अशेष है। यह अतिसंक्षिप्त निबन्ध एक बिन्दु के समान, इस आशा और विश्वास के साथ कि कोई न कोई निराला के काव्य-सिन्धु से रत्नराशि प्राप्त करने की चेष्टा कर सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परिक्रमा'—लेखक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सजिल्द, मूल्य ४ रुपये।

पुस्तक को पढ़ कर एक श्लोक संस्कारतः स्फूर्त हो उठा—

'काव्येषु दुर्ग्रहोप्यर्थः स्वदते कवि सुक्तिषु।
हृद्यं करगतं रत्नं दारुणं फणि-मूर्द्धनि !!

संयोगेन मैं कर्मणा कवि हूं, स्वाद लिया है इस कृति का, क्योंकि शांतिप्रिय जी में एक अन्तर्सारवर्ती काव्य है लेकिन वह काव्य-चारुत्व कहीं-कहीं फणिधर की मणि सा ज्योतिमान तो है पर करगत नहीं हो पाता। 'अथातो काव्य जिज्ञासा'। रससिद्ध पौरुषदत्त कवि कालिदास-त्रयी की परिक्रमा। शांतिप्रिय जी ने (पृष्ठ ३४-५२) मेघदूत के स्वीय श्लोक संकलन की व्याख्या को मल्लिनाथसूरि की 'संजीवनी' टीका के आधार पर संगुफित किया है, किन्तु उन श्लोकों के भाव सौंदर्य की विशिष्टतम भंगियां कहीं कहीं उन्होंने अपहित ही रहने दी हैं। उदाहरणार्थ पृष्ठ, ५'·· वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।' [पूर्वमेघ, १०] की व्याख्या में 'वाम' शब्द को नजर अन्दाज कर गए हैं कदाचित्। वर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसंज्ञिता खगाः। मृगा वा वामगा हृष्टा सैन्यसम्पद्वल प्रदाः॥' भरतमल्लिक ने कहा है। 'चातक' की भी रसात्मक व्याख्या अपेक्षित थी। दूसरी बात यह कि 'मेघदूत का वर्णन स्थूल है, यह ग़लत है। गेटे ने कहा था— 'मेघतदू मेघ-संदेश वाहक के संग भला कौन नहीं अपने आत्मा की भगिनी को भेजेगा !' ['श्रोएदर' कृत 'इण्डिएन्ज़ लितारेतुर उण्ड कल्तुर' में उद्धृत,]।

यह है स्पष्ट पारदर्शी अन्तर्सारदर्शी दृष्टिकोण जिसे गेटे चीन्ह गया था।

'ऋतुसंहार और कुमार संभव' निबन्ध के अन्तिम तीन पृष्ठ उपादेय हैं, पाठ्य हैं। रवीन्द्रनाथ वाला लेख सात्यन्तालङ्कारिक भावनाभार-मयी छायावादी चम्पूमयी शैली में लिखा गया है, यह मनोज्ञ है परन्तु विवादास्पद। रवीन्द्रनाथ के अन्नमय कोश के वाङ्मय में द्विवेदी जी की पैठ है पर प्राणमय, विज्ञानमय कोश में नहीं। रवीन्द्रनाथ 'मोहाशक्त' नहीं थे। (पृष्ठ १२६ 'सुख सौहार्द से मोहाशक्त') रवीन्द्र तो 'चरैवेति' के प्रतीक थे। 'वर्षशैले' कविता की स्प्रिट है उनकी परिक्रमा में शैली है, चम्पूमयी भाषा है, लालित्य है, सात्त्विक, नातिधिक्य है।

'कुसुम कुमार कवि पन्त' पर तीनों लेख पढ़ गया, उनमें संश्लेषणात्मकता है, पाठ्य हैं। (२) शून्य मन्दिर की प्रतिमा, शीर्षक लेख महादेवी पर संस्मरण है और नितराँ सुन्दर है। 'करुणा भरे घन की चातकी, महादेवी की प्रवृत्ति पर आलोक संपात पड़ता है, वे मुखर हो उठती हैं। यह लेख भाया। (३) 'वह अदृश्य चेतना, अत्यन्त कारुणिक श्रद्धापूर्ण संस्मरण है, अपनी स्वर्गीया भगिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति उनकी यह आस्था अत्यन्त मोहक है। यह संस्मरण हृदय द्रावक है।

पुस्तक-'समर्पण' भी महाप्राण 'निराला' और क्रांतिकुमार 'नवीन' जी को है, उनके अभिशप्त, अभावग्रस्त जीवन से जो कुछ अमृत मिला है उसका आकलन, मूल्यांकन हमें करना है। दोनों ही नीलकण्ठ थे, हिन्दी-काव्य मंथन के देवासुर संग्राम के, यह समर्पण बड़ा काव्य-मय है।

---

२. 'का'—प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी (प्रा०) लि० आगरा
अनुवादक—श्री चित्तरंजन दास ; मूल्य—चार रुपये

'का' श्री कन्हूचरण महान्ति के उड़िया उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर है। मूल उपन्यास का मूल्यांकन साहित्य अकादमी द्वारा हो चुका है, अतः अपनी ओर से और कुछ कहना बाहुल्य मात्र होगा। उपन्यास की विषयवस्तु निराली है सौतिया डाह नहीं, सौतिया प्रेम। बात अत्यन्त अस्त्राभाविक सी लगती है, पर कथासूत्र को जिस दक्षता के साथ ग्रथित किया गया है उसमें अस्वाभाविकता का लेशमात्र भान नहीं हो पाता। ललिता और नन्दिका की जोड़ी अनुपम है, सुनन्द और अभया भी अपने अपने स्थान सुप्रतिष्ठित हैं। इन चारों को एक चतुष्कोण के चार बिन्दु मान लें तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध का निर्वाह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पट भूमिका पर होता हुआ दिखाई पड़ेगा। पात्रों के अंतर्द्वन्द के चित्रण में गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है। नारी की आशा आकांक्षाओं की, त्याग और सेवाओं की यह करुण कथा वास्तव में मर्मस्पर्शी है। लेखक ने चरित्र-निर्माण में, असाधारण सफलता प्राप्त की है, 'सा' के हृदय-समुद्र का उद्वेलन और व्यवहार क्षेत्र में उसका आत्म-संयम जिस कौशल से निबाहा है वह हृदय और बुद्धि का असाधारण गुंफन है।

जहाँ तक अनुवाद के स्तर का प्रश्न है वहाँ एक ही बात कहने के लिए रह जाती है कि अनुवादक ने हिन्दी भाषा की प्रकृति की ओर कुछ कम ध्यान दिया है। फलतः स्थान स्थान पर कुछएक शब्द तथा उनके प्रयोग कानों में या आँखों में ही कहिए कुछ खटकते हैं। जैसे—"डाक पड़ता है, दिव्य सुन्दर ; चोल के समान ललिता बाहर छूट गई ; उसको और क्या भावना ; दवा खाती है, बाहर की तरफ देखना ही सार है—कुछ ऐसे उदाहरण हैं। अभिमान, बन्धु, संसार, हिंसा, राग, भावना आदि तत्सम शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, हिन्दी में साधारणतः उनके लिए मान, मित्र, गृहस्थी, ईर्ष्या, क्रोध तथा चिन्ता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कतिपय शब्दों को छोड़ कर अनुवाद सफल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका—निराला-अंक (१)

विषय		पृष्ठ
१. महाप्राण निराला के प्रति	डा० हरीश	१
२. महाप्राण निराला	डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'	३
३. भुवन मोहिनी आत्मा	डा० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	५
४. महाकवि निराला	डा० पुत्तूलाल शुक्ल	१३
५. अनगढ़ व्यक्तित्व	डा० बाला प्रसाद मिश्र	२२
६. निराला का मानसिक विक्षेप	श्री रमेश चन्द्र मेहरा	२४
७. अपराजेय निराला	डा० लक्ष्मीनारायण दुबे	३६
८. निराला	डा० रामविलास शर्मा	४१
९. निरालाजी : जीवन और काव्य	श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी	५७
१०. निरालाजी की सौन्दर्य-साधना	डा० विश्वम्वर नाथ उपाध्याय	६२
११. छायावादी कवि निराला	प्रो० शालिग्राम उपाध्याय	७१
१२. निराला के काव्य-रूप	आ० नन्ददुलारे बाजपेयी	८४
१३. मुक्त-काव्य पुरुष निराला	डा० धनंजय वर्मा	१०४
१४. मुक्त-वृत्त और निराला	डा० बच्चन सिंह	१११
१५. निराला की भक्ति-भावना	प्रो० गोविन्द प्रसाद शर्मा	११६
१६. 'राम की शक्ति-पूजा'	डा० कन्हैयालाल सहल	१२५
१७. 'तुलसीदास'	प्रो० मनोहर शर्मा	१३०
१८. 'तुलसीदास' में 'प्रकृति और नारी'	प्रो० दमयन्ती तालवार	१३६
१९. निराला का प्रतीक-विधान	प्रो० सिन्दूर विरिक	१४३
२०. मात्रिक मुक्तक छन्द	डा० पुत्तू लाल शुक्ल	१५१
२१. अलंकार-योजना	डा० श्याम सुन्दर लाल दीक्षित	१६४
२२. कसौटी पर—परिक्रमा	श्री राकेश	१७०
'का'	प्रो० सरस्वती सरकार	१७३
२३. परिषद प्रगति—		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत पंचमी १९६२ से वसंत पंचमी १९६३

वसंत पंचमी १९६२—परिषद ने अपने १८ वें वर्ष में प्रवेश किया। अपने स्थापना दिवस के साथ ही अपने संस्थापक स्व० आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के जन्म दिवस की पुण्य-स्मृति में अपनी विनीत श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उक्त आयोजन की अध्यक्षता की स्वामी श्री सोमेश्वरा नन्दजी भारती ने। प्रज्ञा-देवी सरस्वती के अवतरण पर प्रवचन करते हुए उन्होंने बताया कि भारतीय पर्वों का उद्देश्य प्रेय और श्रेय का सम्मिश्रण रहा है! प्रेय मार्ग की यमुना और श्रेय मार्ग की गंगा का संगम पर्वों में होता है। मदन-पूजन एवं वाणी-वन्दना का एक ही दिन होना इसी तथ्य की पुष्टि है।

श्री अक्षय चन्द शर्मा ने अपने भाषण में सरस्वती के विविध रूपों पर प्रकाश डाला। श्री अनन्त मिश्र ने परिषद का हिन्दी सेवाओं का विवरण देते हुए आचार्य सुकुल के प्रति अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की। प्रो० निर्मल तालवार ने वार्षिक विवरण पढ़ते हुए आचार्य सुकुल के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। स्थानीय कवियों ने भी अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। कुमारी निवेदिता घोष एवं कुमारी मीना घोष ने सरस्वती वन्दना प्रस्तुत की।

८ मई १९६२ को महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की जन्मवार्षिकी का पुण्य अनुष्ठान भव्य आयोजन द्वारा सम्मन्न हुआ। आयोजन की अध्यक्षता श्री अनन्त मिश्र ने की। महाकवि के राष्ट्रीय, मानवीय एवं साहित्यक अनुदानों पर विविध प्रवचन हुए।

११ मई १९६२ को सूर जयन्ती का आयोजन हुआ; उत्सव की अध्यक्षता श्री विंध्याचल राय ने की। सूर के पदों का गायन निवेदिता घोष एवं वन्दना सरकार ने किया। सूर की देन हिन्दी और भारतीय साहित्य को ही नहीं वरन् विश्व साहित्य को है। वात्सल्य रस के विविध रूप जिस सूक्ष्मता व्यापकता और सरसता से सूर ने वर्णित किये हैं वे विश्व साहित्य में बेजोड़ है।

२५ मई १९६२ स्व. आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल की पुण्य-तिथि की स्मृति में श्रद्धांजलि-सभा का आयोजन डा० श्याम सुन्दर लाल दीक्षित के सभापतित्व में किया गया। परिषद की ओर से प्रो० निर्मल तालवार ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० आचार्य सुकुल को श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री बच्चू प्रसाद सिंह एवं डा० दीक्षित ने भी भावपूर्ण श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। अन्त में स्थानीय कवियों की गोष्ठी हुई जिसमें श्री हर्ष, श्री नारायण दम्माणी, श्री राम विशाल त्रिपाठी, श्री अमर, श्री शंकर लाल माहेश्वरी, श्री दोपनारायण मिठौलियां, श्री मानस कुमार आदि ने भाग लिया।

७ अगस्त १९६२ को तुलसी जयन्ती-पर्व महाबोधि सोसाइटी हॉल में मनाया गया। इस महोत्सव का उद्घाटन करते हुए बंगाल के विधि-मंत्री श्री ईश्वर दासजी जालान ने कहा कि भारत के चरित्र-निर्माण में राम चरित मानस का सबसे अधिक योग है। तुलसी जयन्ती के प्रमुख वक्ता बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद के अध्यक्ष श्री भुवनेश्वर प्रसाद जी मिश्र "माधव" ने 'तुलसी की भक्ति भावना' एवं 'विश्व को तुलसी के शाश्वत संदेश' का मार्मिक विवेचन किया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमारजी ने कहा कि तुलसी एक तीर्थ है जहाँ से गांधीजी ने भारत-भक्ति, साहस व प्रेरणा प्राप्त की है। श्रीमती इन्दु पालिकर, श्री माधव इंगड़े, श्रीमती रजनी जोगड़ेकर, श्रीमती सरोज जैन के तुलसी पद गायन के उपरान्त, आयोजन के अध्यक्ष हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने अपने अध्यक्षीय भाषण में तुलसी के शाश्वत और सबल अनुदान पर विद्वत्तापूर्ण भाषण देते हुए कहा कि तुलसी ने हमें कविता ही नहीं दी, भक्ति की सहज प्रणाली ही नहीं दी वरन् तुलसी ने हमें 'राम' दिया। यह राम भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। इन्हीं के द्वारा भारतीय जीवन को तुलसी ने अमरत्व प्रदान किया

२३ दिसम्बर १९६२—चीन ने हमारे देश के उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश पर आक्रमण कर भारतीय-आत्मा को ललकारा। प्रत्येक भारतीय का धर्म है इस समय सुरक्षा में योग देना। परिषद ने अपना योग उद्‌बोधन आयोजन 'युध्यस्व-भारत' के रूप में हिंदी हाई स्कूल हॉल में प्रस्तुत किया श्री दिनकर की प्रसिद्ध कविता 'मेरे नगपति मेरे विशाल' के आधार पर हिमालय वंदना महाजागरण के मध्य भारतीय अभिमान का प्रतीक हिमालय समाधिस्थ क्यों? नगाधिराज की तपस्या ही नहीं शंकर की समाधि भी टूटती है। ताण्डव की पावन बेला ; ताल ताल पर गति का महाघोष! प्रलय हुंकार! हमारा शृंगीनाद और आततायियों का विनाश चिह्न!

'भारतीय-आत्मा की प्रसिद्ध राष्ट्रीय कविता 'एक फूल की चाह' पर गीति-नाट्य हुआ। सुरबाला का आभरण ; प्रेयसि-प्रियतम का अभिसार, सम्राटों की समाधि, देव-मन्दिर की प्रतिमा—पुष्प को आकृष्ट करने में असमर्थ रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरण की महाबेला में उसकी चाह है—राष्ट्र पर प्राणोत्सर्ग करने वारे वीरों के पथ को अलंकृत करने की।

श्री जगदीश माथुर का राष्ट्रीय एकांकी 'भोर का तारा' प्रस्तुत किया गया। अतीत की गौरव-गाथा का एक भव्य चित्र। गुप्त-साम्राज्य के दिनों में एक बार और इस देश के सुप्त चैतन्य को कुछ आततायियों ने ललकारा था और उस समय भी देवतात्मा नगाधिराज हिमालय को कुछ दैत्य दानवों ने रौंदना आरम्भ किया था। तब, सैनिक और श्रमिक ही नहीं कवि और कलाकार भी देश सम्मान की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये थे। कवि भूल गया था श्रृंगार की स्वप्निल साज सज्जा को और उसकी वाणी से उमड़ पड़ा था वीर और रौद्र।

'युध्यस्व भारत' आयोजन में कलकत्ते की अनेक प्रमुख शिक्षण-संस्थाओं—[(१) कलकत्ता वि० वि०, (२) जादवपुर वि० वि०, (३) लॉरेटो कालेज-(४) श्री शिक्षायतन कालेज, (५) प्रेसिडेन्सी कालेज, (६) रानी बिड़ला कालेज]—की छात्राओं ने भाग लिया। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। उक्त आयोजन को सफल बनाने में सुश्री उषा जैन ने अथक परिश्रम किया; परिषद् उन्हें धन्यवाद देती है। प्रतिरक्षा-आयोजन में जिन सहृदय सदस्यों ने आर्थिक योग दिया है, उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

प्रतिरक्षा प्रयत्नों में भावात्मक सहयोग के अतिरिक्त परिषद् के सदस्यों ने आर्थिक योग भी दिया है। २००१ रुपये की राशि बंगाल के मुख्य मंत्री माननीय श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन को भेंट की है।

भारत के सीमान्त प्रदेशों में अपने प्राणों को उत्सर्ग करने वाले वीरों के प्रति अपनी सहज श्रद्धाञ्जलि को अभिव्यक्त करने के लिये ही परिषद ने अपना नव-प्रकाशन 'अनुदान' उन्हें समर्पित किया है।

राष्ट्री-यपुस्तकालय ने जवानों के लिए पुस्तकों की मांग की। परिषद् ने ६६ पुस्तकें भेंट की हैं। विश्वास है प्रतिरक्षा प्रयत्नों में परिषद के सदस्य एवं शुभचिन्तक योग देंगे।

सन् १९६२ में परिषद को हिन्दी के अनेक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों एवं कवियों का स्वागत करने का सुअवसर मिला। समय-समय पर साहित्य-गोष्ठियां एवं काव्य-गोष्ठियां होती रही हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० रामकुमार वर्मा, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री अगरचन्दजी नाहटा। डा० रामविलास शर्मा, श्री मती शचीरानी गुर्टू, श्रीमती रजनी पणिकर, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्री भारतभूषण अग्रवाल, डा० बिन्दु अग्रवाल, प्रो० सत्यप्रकाश जोशी, श्री हरीश भादानी, प्रो० राकेश, श्री शैलेन्द्र गोयल, सेठ गोविन्ददासजी आदि परिषद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साहित्य मन्दिर में आए और उन्होंने अर्चना में पुष्प अर्पित किये। तथा स्व० आचार्य सुकुल के प्रति अपने श्रद्धाभाव व्यक्त किये।

व्याख्यान-माला के कार्य-क्रम भी समय-समय पर होते रहे हैं,—कलाओं का वर्गीकरण, अस्तित्ववाद, हिन्दी के प्राचीन साहित्य की उपलब्धि के साधन, साहित्य, और राजनीति, आधुनिक हिन्दी साहित्य को गति विधि, स्वाधीनता के बाद हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां, राष्ट्र भाषा का स्वरूप आदि विषय पर स्थानीय एवं बाहर से आनेवाले विद्वानों के भाषण हुए।

शोक प्रकाशन—राजर्षि टण्डन, डा. बी. सी. राय, आचार्य शिवपूजन सहाय के निधन पर शोक सभाएँ हुई एवं दिवंगत आत्माओं की शान्ति के लिए प्रार्थना की गई।

पुस्तकालय एवं वाचनालय का उपयोग विविध कालेजों एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएं बाराबर करते हैं।

पश्चिम बंग सरकार के अफिसरों की सुविधा के लिये विभागीय हिन्दी की मौखिक एवं लिखित पढ़ाई की व्यवस्था परिषद द्वारा की जाती है। अनेक विद्यार्थी लाभ उठाते हैं।

परिषद् प्रकाशन १९६२

स्वर्गीय ठाकुर जगमोहन सिंह की अप्राप्य पुस्तकें—प्रेम रत्नाकर; श्री ३ पण्डित रामलोचन प्रसाद त्रिपाठी का जीवन वृत्तान्त, एवं ॐकार चन्द्रिका प्रकाशित की गई। 'ठाकुर जगमोहन सिंह ग्रन्थावली' योजना के अन्तर्गत उक्त पुस्तकों का प्रकाशन हुआ।

बंगला के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय साहित्यकार श्री वनफूलजी की ३५ कहानियों का संग्रह 'अनुदान' के नाम से प्रकाशित किया। अनुवादक हैं श्री श्रीगोपाल माहेश्वरी। यह पुस्तक सीमान्त प्रदेशों की रक्षा में रत भारत के वीर जवानों को समर्पित है। 'गद्य गरिमा' - निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुआ केरल विश्व विद्यालय बी. ए. परीक्षा के लिये स्वीकृत।

वसंत पंचमी १९६३—परिषद अपने १९ वें वर्ष में आज प्रवेश कर रही है। इस मंगल वेला में विद्वानों से आशीर्वाद एवं सहयोग की कामना करती है। अपने संस्थापक आचार्य सुकुल की पुण्य स्मृति में 'जनभारती' का 'निराला अंक' समर्पित करती है।'

वसंत पंचमी — ३० जनवरी १९६२ 'मंत्री'

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद् का नवीन प्रकाशन

अनुदान

(उच्चकोटि का कहानी-संग्रह)

मूल लेखक--वनफूल

अनुवादक— श्रीगोपाल माहेश्वरी 'प्रताप'

देश के गौरव

★

स्वतन्त्रता के रक्षक

★

सीमान्त-प्रदेशों के सजग-प्रहरी

★

अजेय 'जवानों' को

उक्त कहानी-संग्रह समर्पित है।

मूल्य :—रु० ३.००

जनभारती

वार्षिक—५.०० एक प्रति—१.२५

निराला-अंक ३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार-पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून १८५६
के अन्तर्गत "जनभारती" नामक समाचार-पत्र से संबन्धित स्वामि
तथा अन्य बातों का ब्योरा (प्रपत्र—४)

१.	प्रकाशन का स्थान	...बंगीय हिन्दी परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२
२.	प्रकाशन की अवर्तिता	...त्रैमासिक
३.	मुद्रक का नाम	.. श्री लालबहादुर सिंह
	राष्ट्रीयता	....भारतीय
	पता	....बं० हि० परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट कलकत्ता-१२
४.	प्रकाशक का नाम	.. श्री लालबहादुर सिंह
	राष्ट्रीयता	....भारतीय
	पता	....बं० हि० परिषद् ; बंकिम चटर्जी स्ट्रीट कलकत्ता-१२
५.	सम्पादक का नाम	...डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
	राष्ट्रीयता	.. भारतीय
	पता	.. बं० हि० परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट कलकत्ता-१२
६.	अन्य साझीदार	. बंगीय हिन्दी परिषद्, (एक मात्र स्वामी) १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

मैं, लालबहादुर सिंह, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सही हैं।

लालबहादुर सिंह
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

३० जनवरी, १९६३

श्री लालबहादुर सिंह द्वारा स्वस्तिक मुद्रणालय २७।१ बी, कार्नवालिस स्ट्रीट, से मुद्रित एवं बंगीय हिन्दी परिषद, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२ से प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76301

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशीलन एवं वैज्ञानिक समीक्षासामग्री से युक्त त्रैमासिक

जनभारती

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

निराला-अंक

(भाग २)

जय जन भारती

बंगीय हिन्दी परिषद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष ११ अंक १ संवत् २०२०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

आद्य-सम्पादक

स्व० आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

सम्पादक — डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

स० सम्पादिका — प्रो० निर्मल तालवार

सम्पादक मण्डल :

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी
पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
डा० भगीरथ मिश्र
डा० विनय मोहन शर्मा
डा० नगेन्द्र
डा० इन्द्रनाथ मदान
प्रो० ए० चन्द्रहासन
श्री अक्षय चन्द्र शर्मा
डा० पुत्तूलाल शुक्ल
प्रो० एस० आर० नायडू
डा० कन्हैयालाल सहल
डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी

परिषद् के दो नए प्रकाशन :—

(१) **अनंग** (महाकाव्य)—डा० पुत्तूलाल शुक्ल 'चन्द्राकर'

(२) **अनुदान** (कहानी संग्रह) श्री वनफूल

जनभारती का हिमालय विशेषांक—

(प्रेस में)

जनभारती

वार्षिक—५.००   एक प्रति—१.२५

निराला-अंक भाग-१, ३.००   निराला अंक भाग-२—१.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका

१. अजर निराला अमर निराला	श्री राकेश	१
२. महाप्राण निराला	श्री रामप्रीत उपाध्याय	२
३. स्मृति-चिह्न	श्री अवस्थी	४
४. यमुना के प्रति : व्याख्या और समीक्षा	प्रो० निर्मल तालवार	७
५. कलकत्ते में पत्रकार निराला	श्री रामप्रीत उपाध्याय	१४
६. रवीन्द्र और निराला की जातीय एवं राष्ट्रीय भावना	श्री अवध प्रसाद वाजपेयी	२०
७. निराला व्यक्ति और कवि	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	२८
८. गीतिका के तीन गीत	प्रो० निर्मल तालवार	३२
९. कुछ नवीन	सह-सम्पादिका	३९
१०. निराला साहित्य	श्री कृष्णाचार्य	४२
११. निराला का व्यक्तित्व	डा० दिवाकर झा	५०
१२. प्रगतिवाद और निराला	श्री लाल बहादुर सिंह	५२
१३. महाकवि निराला और रहस्यवाद	श्री पवन कुमार एम. ए.	५८
१४. महाप्राण निराला	श्री अनन्त मिश्र	६३

१५. कसौटी पर :—

१. धरती है बलिदान की

२. बिहार की महिलाएँ

३. रणमत सिंह

४. डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

(व्यक्तित्व और कृतित्व)

५. अनुदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की अपूरणीय क्षति

जन्म और मृत्यु सृष्टि की अविरल गति है। सृष्टि के आरंभ से ही दुर्दान्त काल मानव को अपने निर्मम प्रहार का शिकार बनाता आ रहा है। उसके इस निष्ठुर नियम में व्यवधान डालना मानव की शक्ति और सीमा के बाहर है। फिर भी उसकी विनाशक शक्ति भौतिकता तक ही सीमित है। मानव की अक्षय-कीर्ति को ध्वस्त करने में वह सर्वथा असमर्थ है। महान आत्माएं अपने भौतिक शरीर को त्यागकर भी अमरत्व प्राप्त करती हैं।

काल के नृसंश प्रहार ने विगत तीन चार महीनों में हिन्दी साहित्य के पांच स्तभों को ध्वस्त करने का दुस्साहस किया है। आ० शिवपूजन सहाय का हमारे बीच से उठ जाना कटु सत्य है। हिन्दी साहित्य आज उन्हें खोकर पूर्ण शोक ग्रस्त है। विशेष कर परिषद को आचार्य शिवपूजन सहाय की मृत्यु से अपार क्षति हुई है। विगत पन्द्रह वर्षों से वे परिषद के स्थायी सदस्य थे और सर्वतो भावेन परिषद की सहायता और सेवा में सहायक रहे। सहाय जी के बाद हिन्दी के ख्याति-लब्ध कवि और लेखक श्री सियाराम शरण गुप्त का देहावसान हो गया। गाँधी-वादी दर्शन से प्रभावित सत्य और अहिंसा के तत्वों से पूर्ण उनका साहित्य हिन्दी साहित्य को अमर देन है। आज हिन्दी संसार इन्हें खोकर अपने को दीन समझ रहा है।

विगत एक सप्ताह के मध्य और तीन विभूतियाँ हमारे मध्य से उठ गईं। बाबू गुलाब राय, महापंडित राहुल सांकृत्यायन और गोपाल सिंह नेपाली। बाबू गुलाब राय परिषद के स्थायी सदस्य और परम हितैषी थे। इनकी मृत्यु से हिन्दी साहित्य और परिषद दोनों की अपार क्षति हुई है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के देहावसान से तो हिन्दी ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अपरिमित क्षति हुई है। श्री गोपाल सिंह नेपाली को खोकर आधुनिक हिन्दी कविता अपने एक महान गीतकार से वंचित हो गई है।

परिषद परिवार हिन्दी की इन महान विभूतियों को खोकर अत्यन्त शोक संतप्त है और उनकी दिवंगत आत्माओं की शान्ति के लिए प्रार्थना करता है। साथ ही उनके शोक संतप्त परिवार के प्रति अपनी संवेदना प्रेषित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

निराला-अंक

भाग— २

वर्ष ११ | अंक १ | संवत् २०२०

अजर निराला अमर निराला

प्रो० विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

काव्य-गगन के सूर्यकांत हे!
अभिवादन लो विनत हमारा!!
हुई सुवासित यश-'परिमल' से—
'अलका' की मनहर फुलवारी,
'आराधना' सुमन अर्पित है—
'गीतगुंज' के सफल पुजारी,
शब्द-अर्थ के अनुपम साधक,
गीतों के 'निरुपम' आराधक ;
चेतनता के वर सुशांत हे!
अभिवादन लो विनत हमारा!!

'सुधा', 'माधुरी', 'मतवाला' को —
जिसने जीवन दान दिया था,
'प्रभावती' वाणी को जिसने—
गंधसिक्त कविमान किया था ;
उसी सिद्ध को मौन समर्पित,
सजल 'गीतिका' साध-समर्चित ;
संघर्षों के प्रण प्रशांत हे!
अभिवादन लो विनत हमारा!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्राण की काव्य-ज्योति से—
कण-कण उद्भासित उजियाला,
अपराजेय, शक्ति-संजीवन,
अजर निराला अमर निराला ;
आहत मर्म अनाहत धीरज,
जगत चूमता पावन-पदरज ;
मानवता के अखिल प्रांत हे !
अभिवादन लो विनत हमारा !!

———

महाप्राण निराला

श्री रामप्रीत उपाध्याय

हे दलित त्राण, हे पतित प्राण
हे महाप्राण, तुझको प्रणाम—
हे मुक्तछंद के अग्रदूत
हे मानवता के प्रखर दूत
तेरी महिमा अर्चित चर्चित
तुम हो ब्राह्मी के शुभ सपूत
तुम चिर सुन्दर तुम चिर ललाम
हे महाप्राण तुझको प्रणाम— १

बंधन रुढ़ियों के महाकाल
तुम हो नेता जनगण विशाल
हे सघन निशा के तरुण सूर्य
तुमने काटा है महाजाल
तुम शांति अहिंसा परमधाम
हे महाप्राण तुझको प्रणाम— २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम धरती पर पैगम्बर हो
तुम दलितों के तनमनधन हो
परहित गरल निगलनेवाले
इस युग के भोले शंकर हो
तुम दमन नीति के हो विराम
हे महाप्राण तुझको प्रणाम— ३

तुम बढ़े जिधर नायक बनकर
चल पड़ी गिरा अनुचर बनकर
चल पड़े कोटि पद सत पथ पर
रत हो निज धर्म कर्म व्रत पर
तुम अजर अमर तुम कोटि नाम
हे महाप्राण तुझको प्रणाम— ४

तुम युगवाणी तुम युग उदार
तुम युग स्रष्टा तुम युग विहार
तुम द्रोह क्रान्ति की मधुर मूर्त्ति
तुम जग जीवन के सुफल चार
तुम प्रबल उपासक शक्ति राम
हे महाप्राण शत शत प्रणाम— ५

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृति-चिह्न

श्री 'अवस्थी'

लखनऊ में बड़े भाई साहब के साथ रहा करता था, निराला जी के प्रथम दर्शन यहीं हुए थे। उस समय मैं दस साल का बालक मात्र ही था निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व से सर्वथा अनभिज्ञ। प्रथम दर्शन में कवि के विशाल शरीर तथा घने लम्बे बालों ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया था। निराला जी से पहले तो बहुत भय लगा था पर जब उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उस लोहे की काठी की कोमल आत्मा के दर्शन हुये। कुछ दिनों बाद तो इतने निकट आ गया था कि जो कार्य दूसरे नहीं कर सकते थे वह मुझसे कराया जाता था। कारण मेरी बात जहाँ तक मुझे याद है निराला जी ने कभी टाली नहीं थी। कहीं जाने के लिये मनाना हो या किसी साहित्यिक वादविवाद में जो यहाँ तक बढ़ गया हो कि आपस में बात भी न हो रही हो तो संदेशवाहक का कार्य मुझे ही करना पड़ता था। जहाँ तक मेरा अनुमान है निराला जी की विशेष कृपा का पात्र होने के मुख्य कारण यह थे कि मैं बचपन से ही हृष्ट-पुष्ट तथा कुश्ती का शौकीन था तथा उस उम्र में, कानवैन्ट में न पढ़ने पर भी, अंग्रेजी बोल लेता था। साहित्यिकों के बीच में रहने से कविता में रुचि होना स्वाभाविक ही था। निराला जी को स्वयं भी कुश्ती का काफी शौक था और अक्सर वे मुझे मकान के सीमेंट के फर्श पर ही दाँव सिखाया करते थे। कभी कभी तो बताते बताते वे दांव लगा भी देते थे, फलस्वरूप मेरी कुहनियाँ तथा घुटने लहू लुहान हो जाते थे पर न तो मैं ही दाँव सीखने में चूकता था न वे ही कभी यह सोचते थे कि दुबारा भी इसके चोट लग सकती है। कुश्ती के गुरू की सेवा में पैर दबा-कर किया करता था। एक दिन मैं पैर दबा रहा था तो पूछने लगे 'तुम्हें कौन सी मिठाई अच्छी लगती है' मैंने कहा 'गुलाब जामुन'। सुनकर चुप हो गये। मैं भी पैर दबाते दबाते थक गया था, एक दम से उठे और कहने लगे "कहूं जायेव ना हम अबही आईत हैं।" आदेश के अनुसार मैं कहीं नहीं गया। थोड़ी देर में निराला जी लौटे, हाथ में एक बड़ा भारी दोना था। समझ में नहीं आया माजरा क्या है। वे टेबिल पर दोना रख कर बोले "इ सब तुम्हरी खातिन है।" पत्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठा कर देखा तो दो चार नहीं उसमें कम से कम ५० गुलाब जामुनें थी। कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई, आदेश के अनुसार खाना शुरु किया। चार पाँच के बाद गाड़ी आगे नहीं बढ़ी। मजबूरन कहना पड़ा अब तो यह अच्छे नहीं लगते है। निराला जी को दूसरों को खिलाने का बड़ा शौक़ था। लखनऊ का दशहरी आम प्रसिद्ध है। मौसम में हम लोगों के लिए प्रायः रोज ही लाते थे। एक दिन पैसे न होने के कारण नहीं ला सके। कोई प्रेमी उनसे मिलने आये थे, बात कर रहे थे कि इतने में आम वाला निकला। बात बीच में ही छोड़ कर आम वाले को बुलाया, दो ढेरी आम लिए, आये हुए सज्जन की ओर मुखातिब होकर बोले 'जरा ५) दीजियेगा' रुपये लेकर आम वाले को दे दिये। बाकी पैसे उन्हें वापस कर हम लोगों से आम ले जाने के लिए कहा। यह उस समय की बात है जब कि वे शरीर व मन से स्वस्थ थे। उनकी अस्वस्थता तथा आर्थिक संकट उनकी महमानदारी को नहीं रोक सके। एक बार जब वे बीमार थे और डलमऊ में रह रहे थे मैं, भाई साहब तथा कुछ अन्य शुभचिन्तकों के साथ उन्हें देखने गया। घर पहुँचने पर देखा खाट पर पड़े हैं। पैर छूने पर आँखें खोली, आशीर्वाद दिया, पूछा "आय गयेव" सहसा उठकर बैठ गये बोले "बैठो हम अबही आईत है" हमलोग समझे किसी शंका समाधान के लिये गये होंगे। करीब आधे घंटे बाद देखा दूर पर निराला जी चले आ रहे हैं। शरीर पर एक तहमद के सिवाय कोई वस्त्र नहीं है, बगल में एक लकड़ी दबाये हाथ में एक मिठाई का दोना लिये चले आ रहे हैं। (डलमऊ में बन्दर बहुत हैं) हम लोगों की मिठाई खाने की जरा सो भी इच्छा नहीं थी पर उनके आदेश को न टाल सके। उस दिन शरीर काफी अस्वस्थ होने पर भी वे हम लोगों को डलमऊ के दर्शनीय स्थान—गंगा का तट, किला ("प्रभावती" का किला) आदि दिखाने ले गये। संध्या में मंदिर में हरमोनियम पर उन्होंने कुछ गीत भी गाये। अतिथि सत्कार का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है!

सन १९४२ की बात है, मेरे बड़े भाई की शादी की बारात बनारस गई थी। निरालाजी भी बराती थे। बारात लौटने के समय हम लोगों को लखनऊ आने के लिये एक पार्सल गाड़ी मिली। इसमें ज्यादा डिब्बे माल के थे और थोड़े सवारियों के लिए। रात का समय था, उन दिनों गाड़ियों में बत्ती नहीं होती थी। बनारस में हमलोग गाड़ी खाली होने के कारण सब फैल पसर कर बैठ गये थे, कुछ लोग सो भी गये थे। निरालाजी भी एक नीचे की बेंच पर चादर ओढ़े सो रहे थे। आधी रात के बाद एक स्टेशन पर काफी लोग डब्बे में घुस आये। कुछ लोग तो उठ कर बैठ गये पर निरालाजी गहरी निद्रा में होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण नहीं उठे। उन लोगों में से एक सज्जन को निरालाजी का सोना बहुत नागवार लगा, काफी लम्बा भाषण भी दिया। लोगों ने समझाया, आप इन्हें सोने दीजिये यहाँ बैठ जायें। कुछ नया खून था, अधिकार के लिये लड़ना तर्क संगत समझ उन्होंने निरालाजी को हिलाया, पर निद्रा मग्न, वह नहीं उठे। उसे बहुत बुरा लगा और कुछ कटु वाक्य कहते हुए उन्होंने चादर खींच ली, निरालाजी उठ कर बैठ गये, अंधकार होने के कारण कोई किसी को देख नहीं पा रहा था निरालाजी ने जरा गम्भीर स्वर में कहा "क्या चाहता है", पड़ोस में बैठे एक बाराती ने यह सोचा पहले इसके, कि बात बढ़े अच्छा हो दोनों एक दूसरे के दर्शन करलें। जेब से दियासलाई निकाल कर उन्होंने उसे जलाया। जो सज्जन अभी तक आग बबूला हो रहे थे, कवि के उस स्वरूप को देखकर डर के मारे बोल भी न सके, निरालाजी के विक्षिप्त केश, लाल नेत्र तथा भीमकाय शरीर को देखकर उस व्यक्ति ने सोचा कि भूत प्रेत सुने तो थे पर देखे आज ही। दियासलाई की लीला समाप्त हो चुकी थी निरालाजी पुनः निद्रा मग्न हो गये थे। केवल वे सज्जन उस डब्बे में नहीं थे पता लगा कि अभी अभी जहाँ गाड़ी रुकी थी वहीं वह उतर गये थे। पता नहीं उनका स्टेशन था या आगे इस गाड़ी से न जाने का निश्चय कर, वे वहीं उतर गये थे।

निरालाजी के साथ इतने निकट रहने पर स्वाभाविक ही था मेरे पास उनका दिया कोई चिह्न हो। बात पुरानी है, उन दिनों हमलोग संध्या को मकान के सामने वाली गली में जिस का फर्स इटों का था, कबड्डी खेला करते थे। निरालाजी भी आये थे। उन्हें भी जोश आया, कबड्डी खेलने उतर पड़े। वे मेरे प्रतिद्वन्दी पक्ष में खेल रहे थे। मैं कबड्डी बोलने गया, निरालाजी को छूकर भाग आया। पाल हम लोग जीते। दूसरी बार फिर मैं गया निराला जी अकेले ही दूसरे पाले में थे, मैं निश्चय कर के गया था कि छू कर आऊँगा और उधर उन्होंने तय कर लिया था अबकी इसको पकड़ कर ही छोड़ूंगा, जरा सा लड़का बार बार छू कर चला जता है। पाले में गया, निरालाजी ने मौका पाकर बाज की तरह मेरे ऊपर झपटा मारा पर में भी कम न था फुर्ती से उनके हाथों से निकल पड़ा। उन्होंने फिर पकड़ने को कोशिश की पर मैं निकल कर सांस टूटने के पहले अपने पाले में आ गया। इस क्रिया में उनके नाखूनों ने मेरे सीने पर दो घाव कर दिये। घाव ठीक हो गये पर चिह्न आज भी है, मेरे हृदय के निकट, जो निराला बाल-प्रेमी की याद दिलाते हैं।

मैं कितना सौभाग्यशाली था, और कितना महान था वह दिन जिस दिन उन्होंने मुझे यह चिह्न दिया था। × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यमुना के प्रति' : व्याख्या और समीक्षा

(रचना काल—१९२२)

प्रो० निर्मल तालवार

द्वापर-युग की श्यामा यमुना--जिसके साथ भारतीय पुराण, इतिहास और साहित्य की अमर और शाश्वत प्रेमकथा सम्बद्ध है—आज भी कल-कल स्वर में गाती हुई विद्यमान है। वह गा रही है क्या उसी प्रेम की कहानी? अथवा—

"बता, बता अपने अतीत के

क्या तू भी गाती है गान?—गान के स्वर तो संभवतः समझ में आते हैं पर शब्द पकड़ में नहीं आते। उन स्वरों में 'स्व' और 'पर' की, वर्तमान और अतीत की सीमाएं टूट गई हैं और उनमें कालातीत शाश्वतता आ गई है। प्लेटो ने कला को अपने महानतम रूप में form without matter इसी अर्थ में स्वीकार किया है—निरपेक्ष, निर्लिप्त और शाश्वत सौन्दर्य। जिसमें अर्थ है पर सीमाबद्ध नहीं, जिसमें ध्वनि है पर बंधी हुई नहीं। यमुना के गान का सौन्दर्य ऐसा ही असीम और मुक्त है।

यमुना की स्वप्निल आंखों में--आंखों की पल्लव-छाया में—यौवन की माया-सा मोहन का ध्यान स्पष्ट है। कवि-मन उन्हें (आँखों को) देखता है वैसे ही जैसे गन्ध-लुब्ध मुग्ध-हृदय मधुप-बाल कुसुमों की सुषमा को बार बार देखता हो। ऐसा है लावण्य यमुना की आँखों का—वे आँखें भाव-शून्य नहीं हैं, केवल सुन्दर ही नहीं है, वे रसवत्ता से पूर्ण हैं, स्वयं भरी हुई हैं और दूसरों को मुग्ध भी करती हैं—सहसा राधा की, मोहन के सम्मोहन में डूबी हुई, आंखों का बिम्ब यमुना में साकार हो उठता है।

यमुना की लहरों पर प्रतीक्षा में लीन पथिक-प्रिया की आकुल-व्याकुल तान मुखरित हो उठी है। पर क्या वह प्रतीक्षा पूर्ण हुई? नहीं! न वंशी वट; न नटनागर!! और श्याम-विरह में विभ्रान्त गोपियां आँसुओं में खो गइं। यमुना ने देखा था राधा और कृष्ण का अपने तट पर मिलन; यमुना ने देखी थी गोपियों के साथ कृष्ण की आनन्दमयी लीला—तभी तो वह समझ रही है विरह विधुरा गोपियों का अवसाद और राधा की तीव्र वेदना। इसी लिए तो उसकी लहरों पर आकुल-तान है। लहरें प्रतिबिम्ब है; बिम्ब हैं गोपियों के अधर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुना का स्वर मन्द होना नहीं जानता ; उसका संगीत अपनी मधुरता में भी अक्षुण्य रहता है। पर साथ ही वह वर्तमान का स्वर नहीं है। यहीं कवि ने तादात्म्य अनुभव किया है यमुना के साथ। याद है उसे भी अपने अतीत की आनन्दमयी घड़ियाँ। वह वर्तमान में अतीत की मधुरता खोजता है, वही यमुना भी करती है —

"निर्निमेष नैनों में छाया किस विस्मृति-मदिरा का राग,
जो अब तक पुलकित-पलकों से छलक रहा यह मृदुल सुहाग?

वह अतीत कवि का ही नहीं, यमुना का ही नहीं, केवल राधा का ही नहीं संभवतः सृष्टिमात्र का है। यहीं महाकवि निराला की प्रतीक-योजना स्पष्ट हो जाती है। यमुना प्रतीक है चिरन्तन प्रेमी-हृदय का। वह शाश्वत है। काल का आवरण उसके बिम्ब को धूमिल करने में असमर्थ है। 'अलस-प्रेयसी-सी प्रिय की शिथिल सेज' के पास अतीत के गूढ़-विलास की कहानी ही यमुना की अगणित असंख्य लोल लहरियां दोहरा रही हैं। ताल-ताल के कम्पन में अतीत के ही गान भास्वर हो रहे हैं। उस सृष्टि-गत अतीत से ही मिलने के लिए क्या यमुना की नयन-धारा नहीं बढ़ रही है? —

किस अतीत-सागर संगम को बहते खोल हृदय के द्वार,
बोहित के हित सरल अनिल-से नयन-सलिल के स्रोत अपार?

अतीत विस्मृति से किसी की स्मिति, किसी का प्यार और किसी का मादक राग स्पन्दित और रोमांचित हो जाता है। अभिसार-निशा की उत्सुकता मूर्त हो उठती है और साथ ही युग युग का सामाजिक कठोर वातावरण प्रेम की मूर्ति को घेर लेता है। लोकमर्यादा ने राधा के प्रेम पर आघात किया था और मीरा के प्रेम पर भी! वह चित्र भी यमुना के वक्षःस्थल पर उभर आता है—

"किन नियमों के निर्मम बन्ध जग की संसृति का परिहास
कर, बन जाते करुणा क्रन्दन?—कह, वे किसके पाश?"

यह रहस्य जगत का ही है—कलियों की मुद्रित पलकों में अधीर गन्ध का सिसकना, पल्लव-दृग-नीर का ढुलकना जगत के रहस्य का ही उद्घाटना करता है। कवि का प्रेम—प्रेम दर्शन भी यहाँ स्पष्ट हो गया है। मानव के आनन्द का प्रधान केन्द्र है प्रेम। प्रेम शाश्वत और चिरन्तन है, कालातीत है; निर्मम बन्धों के बाद भी उसकी गति अबाध है। यमुना इसी प्रेम की चारणी है। न जाने प्रेम के कितने संदर्भ उसकी लहरों में समाये हैं, न जाने कितनी प्रेम गाथाएं उसकी उर्मिल-लहरें निरन्तर गाती हैं। समीर का लघु-स्पर्श भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके वक्षःस्थल के सुप्त-गान को छेड़ने में समर्थ है। प्रेम ने यमुना में ही आश्रय और आधार पाया है, तभी तो कवि प्रश्न करता है—

उमड़ चला है वह किस तट पर
क्षुब्ध प्रेम का पारावार ?
किसकी विकच वीचि-चितवन पर
अब होता निर्भय अभिसार ?

और जिनके 'क्षुब्ध-प्रेम' को आधार नहीं मिला, जो ऊधो से यही कहती रहीं—'अँखियां हरि दरसन की भूखी' अथवा 'हम तौ कान्ह-केलि की भूखी'—उनको भी यमुना से ही सहानुभूति मिली। यमुना से उनकी दशा छिपी नहीं है—बाट जोहती प्रेमिकाओं को, उनके भटकते मृग-दृगों को, और मरु-मरीचिका में विभ्रान्त, आकाश में खोई उदास दृष्टि को यमुना ने देखा है। उनकी 'विगलित विफल वासनाओं से क्रन्दन-मलिन पुलिन का रोर' श्रव्य है। यमुना का सरस प्रवाह उसी ओर बह गया है और इसी प्रवाह के साथ प्रेयसी के नयनों का मनोहर स्वप्न, उसके हृदय सरोवर का इन्दीवर, निस्सीम व्योम का चन्द्र, राका की निर्मल छवि, प्राची का गौरव रवि और कवि का उत्साह—सभी उसी अतीत में खो गये हैं। अतः संयोग के संदर्भ ही नहीं वियोग के भी अनेक रूप कालिन्दी की श्यामल लहरों में छिपे हुए हैं। श्याम-वर्ण में उभरते चित्रों को देख कवि का मन विकल हो उठता है—उसकी प्रिया उसे पुकार रही है—यह भाव उसे अस्थिर कर देता है—

"खींच रहा है मेरा मन वह किस अतीत का इंगित मौन,
इस प्रसुप्ति से जगा रही जो बता, प्रिया-सी है वह कौन ?" और

'प्रिया-सी' के साथ ही कवि की प्रिया-से लिपटी हुई अनेक अनेक स्मृतियां जाग उठीं - 'वह सहसा सजीव कम्पन-द्रुत, सुरभि समीर, अधीर वितान ; वह सहसा स्तम्मित वक्षःस्थल ; वह कटाक्ष-चंचल-यौवन-मन ; वह निष्पलक सहज चितवन पर प्रिय का, अचल अटल विश्वास' आदि न जाने कितने चित्र सजग हो उठे ! और मूर्त हो उठी प्रेम की प्रतिमा - "वह स्वरूप-मध्याह्न-तृषा का

प्रचुर आदि-रस, वह विस्तार,
सफल प्रेम का जीवन के वह
दुस्तर सर-सागर का पार !—वह अतीत

नहीं रहा ! कवि विकल होकर यमुना से, यमुना की अनेक प्रेम कहानियों से पूछता है—कहां यहां अस्थिर तृष्णा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहता अब वह स्रोत अजान ?

× × ×

कहाँ कहाँ अधिकृत अधरों पर

उठता वह संगीत अबाध ? - पर क्या उसका ही अतीत खो गया है ? नहीं ! नहीं !! प्रतिध्वनि गूंज उठती है—राधा का अतीत भी खो गया, सूर के रूप बाग खो गए और यमुना ने जिन प्रेम-गाथाओं को गाया है वे सब अतीत का अंग बन गईं। कवि का अचल मन भी गिरि के मन की तरह द्रवित हो उठा—और गिरि-उर के संताप गल-गल कर बहने लगे—यमुना के तटों से अटक रहे थे, सिर पटक कर प्रलाप कर रहे थे—अब वे भी सागर की ओर बह गए। और

'फिर फिर फिर भी ताक रहे हैं,

कोरों में निज नयन मरोर'—गिरि के विषाद भी बह गए। यमुना के सूने तट पर,

'एक रागिनी रह जाती जो
तेरे तट पर मौन उदास
स्मृति-सी भग्न भवन की, मन को
दे जाती अति क्षीण प्रकाश।'

कवि को सृष्टि के अतीत एवं अपने अतीत के साथ साथ सहसा ध्यान आता है क्या यमुना अपने अतीत का भी गान गाती है ? पर तादात्म्य का सफल रूप यही है जहाँ यमुना का अतीत और कवि का अतीत अपनी सीमित सीमाओं से मुक्त हो कर अभिन्न हो गए हैं।

इस भाँति छायावाद के प्रमुख कवि निराला की कविता 'यमुना के प्रति' अपने शिल्प-विधान में, अपने भाव में, अपने रूप में और अपने रस में अद्वितीय है। यह कविता कल्पना, प्रतीक और चित्र-पद्धति की दृष्टि से छायावाद की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में गिनी जाती है—चाहिये भी। यमुना को वस्तुतः कवि ने एक प्रतीक के रूप में ही ग्रहण किया है जो अपनी मूलतः निरपेक्ष पर तत्वतः काल प्रवाह की उस सापेक्ष स्थिति का द्योतक है जिसकी ओर प्रारम्भ में प्लेटो के form without matter के द्वारा संकेत किया है। यमुना अपने द्वितीय प्रतीक अर्थ में 'रोमांटिक मेलंकली' की द्योतक है जो संताप और वेदना के साथ काल के अखण्ड प्रवाह में अतीत-वर्तमान दोनों को अपनी लहरों में आयत करती हुई जीवन की सम्पूर्णता के साथ अनागत भविष्य की ओर बढ़ती जाती है। काव्य में जिसे आचार्य शुक्ल ने 'संश्लिष्ट योजना' और आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य शास्त्रीय समीक्षा में 'गेस्टाल्ट' मनोविज्ञान में जिसे 'समग्र कल्पना' कहा है यमुना उस समग्र कल्पना के कारण अपने 'सनातन रूप' की सृष्टि करती है। प्रतीक निर्माण में कवि की अन्तर्दृष्टि दो प्रकार का विधान करती आई है — प्रथम तात्कालिक और द्वितीय सनातन। यमुना की सनातनता उसकी सारभौ-मिकता में विद्यमान है जहाँ वह प्रेम की शाश्वत तरंगवाहिनी है. अपरिमेय आकुल-व्याकुल, सुरभि-निश्वास सम्पन्न असंख्य भावोर्मियों की मंजूषा।

निराला यहाँ पर विषय विशेष से आबद्ध होकर भी विषय की विशेषता तक ही बंधे नहीं रहते। यही कारण है कि जीवन के अतल-तल से उठकर यमुना उसकी सम्पूर्ण परिधि में समा जाती है और यही काव्यगत समग्र-कल्पना का स्वरूप है। समग्र-कल्पना की उत्कृष्टता भाव संकलन में निहित है। यह संकलन सुनि-र्धारित और सुनियोजित होना चाहिये। कवि कल्पना-व्यापार द्वारा अपने समस्त भावों को एक तारतम्य देता है. इसी से छायावादियों ने कल्पना को अत्यधिक महत्व दिया और उसे प्राणशक्ति माना। भावों का यह केवल मात्र प्रदर्शन न रह कर संश्लिष्ट और सुनियोजित अभिव्यंजना बन जाता है। इसी नाते काव्य रचना के इस क्षण को कवियों ने अपनी भाषा में 'परिपूर्ण' (पल्लव — पंत) कहा है, जहाँ वह देश, काल और वस्तु की संकीर्ण सीमा से ऊपर उठकर संज्ञातीत, काला-तीत और देशातीत हो जाता है, एवं उसका चिन्तन और भाव-बोध आंशिक न रहकर अखण्डता प्राप्त कर लेता है। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' अपनी इस समग्र-कल्पना शक्ति और संश्लिष्ट-योजना के लिए सुविख्यात है। कवि उर्वशी को एक सत्ता के रूप में नहीं परन्तु मूलतः एक इकाई के रूप में चित्रित करता है।[1] निराला की यमुना भी यही विशिष्टता रखती है। निसर्गतः एक के बाद एक उठते हुए भाव कवि को केवल विभोर ही नहीं करते परन्तु उसके समक्ष एक चित्र भी उप-स्थित करते हैं और जलप्रपात की भांति कलकल करते हुए वे आगे बढ़ते जाते हैं। और कवि यमुना की विषय—विशेषता (Particularity of object) से ऊपर उठ कर एक अतीन्द्रीय पर सनातन-सृष्टि करने में सफल होता है। और

(१) द्रष्टव्य – उर्वशी · छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धु-माझे तरङ्गेर दल,
शस्य शीर्षे शिहरिया कांपि उठे धरार अञ्चल,
तव स्तनहार हते नभ स्तले खसि पड़े तारा —
अकस्मात् पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्म हारा,
नाचे रक्त धारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूंकी कवि का रूप विधान सापेक्ष अर्थात् विषय और वस्तु में साधार होने के कारण दुरूहता और अप्रेषणीयता से बच जाता है।

काव्य में प्रतीक सृष्टि प्रायः तीन प्रकार की होती है। (१) वाचक मूलक जिसमें कवि सादृश्य से औपम्य निर्धारित करता हुआ प्रतीक ग्रहण करता है। सांझ का पीलापन हृदय की निराशा या जीवन के दुःख का प्रतीक बन कर अभिव्यक्त हुआ है।

(२) **धर्म मूलक**—जहां गुण या प्रकृति साम्य से कवि प्रतीक ग्रहण करता है। महादेवी की कविता 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' इसी का उदाहरण है।

(३) **अर्थ मूलक**—जहां कवि प्रस्तुत अर्थ को छोड़कर उसके सांकेतिक अर्थ को ही अपनाता है। यही साहित्य में सर्व-श्रेष्ठ प्रतीक विधान गिना गया है।

छायावाद में—लहर, इच्छा का; सरोवर या समुद्र, हृदय या मन का; झरना, गति और प्रवाह का; संध्या, विषाद का; उषा, हर्ष या उल्लास का; तथा क्षितिज, समीपता पर अप्राप्य का प्रतीक है। यमुना अपने सांकेतिक अर्थबोध में अनवरत कर्म-सम्पन्न एक अप्रतिहत क्रिया है जिसके अन्तराल में कवि भूत और वर्तमान को स्पष्ट कर देता है—मिलन, विरह, उल्लास, विलास, अभिसार, प्रतीक्षा, शोक, विषाद सब कुछ जैसे शतशत रूपों में मूर्त होकर हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। सांकेतिक अर्थबोध की शक्ति मानसिक-सत्य (Mental Reality) में विद्यमान रहती है, दृश्यमान-सत्य (Visual Reality) में नहीं। 'यमुना के प्रति' कविता अतएव मानसिक सत्य को लेकर चलती है दृश्यमान सत्य को लेकर नहीं। अनेक आलोचकों ने छायावाद-काव्य को मानसिक सत्य के कारण दुरूह और अस्पष्ट बताया है, कारण उसमें सहजता एवं प्रेषणीयता के अभाव में कवि-कर्म केवल भावात्मक ऊहापोह मात्र रह जाता है। परन्तु यमुना के प्रति कविता में यह दोष किंचित मात्र भी नहीं है, कारण, अपने रूप-विधान में वह एक 'भाव कथात्मक काव्य' है, जिसे प्राचीन शास्त्र की दृष्टि से निबन्ध काव्य का एक आधुनिक संशोधन स्वीकार कर सकते हैं। भाव-कथात्मक काव्य का प्राण भावबन्ध होता है, 'यमुना के प्रति' कविता अथ से इति तक भाव में बंधी है। वह भावना-जन्य न होकर भाव-जन्य है। इस भाव-कथा की विशेषता उसका बिम्ब-विधान है, केवल उसका शब्द विधान नहीं। भाषा के अलंकरण के साथ साथ हिन्दी के छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता भाव-अलंकरण रही है। भाषा का अलंकरण शैलीगत होता है—पद्धति मूलक; पर भाव का अलंकरण विषय की अंतरंग विशेषता और नवीन चिन्तन-पद्धति प्रस्तुत करता है। मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि भाषा के अलंकरण के अंग हैं। भाव का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकरण कल्पना, प्रतीक और चित्र पद्धति द्वारा समझा जा सकता है। छाया-वादी कवियों की सारी प्रेरणाओं का मूल स्रोत और आधार है प्रकृति। प्रकृति उनके लिए सर्वस्व नहीं है पर प्रकृति के बिना उनके भाव निराधार-से हो जाते हैं। इस नाते इन कवियों की काव्य परिधि का केन्द्र बिन्दु प्रकृति ही है. पर प्रकृति-चित्रण की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ इन कवियों ने अपने व्यक्तित्व और वैशिष्ट्य से अपनाई हैं। भावों का अलंकरण प्रकृति चित्रण की वह विशेषता है जो सभी कवियों में परिलक्षित है. पर भावों के अलंकरण की पद्धतियाँ भिन्न हैं। निराला ने 'यमुना के प्रति' कविता में कल्पना की विशिष्टता और प्रकृति-चित्रण की नवीन पद्धति का अनुसरण किया है जो प्रसाद, पंत और महादेवी के परिपेक्ष्य में उनकी विशेषताओं को स्पष्ट करती है। निराला का प्रकृति-चित्रण प्रसाद को भांति तटस्थ और तात्विक; पंत की भांति मूर्त सौंदर्य विधायक और पूरक या सहचारी (associative); एवं महादेवी की भांति आत्म-परक एवं आरोप-प्रत्यारोप मूलक न होकर चेतन-अचेतन संश्लिष्ट तादात्म्य मूलक है। जुही की कली हो या बेला, बादल हो या वसन्त-बयार, निराला सदैव ही अपने प्रकृति-चित्रण में संश्लिष्ट और तादात्म्य मूलक रहे। यमुना चेतन और अचेतन दोनों है, वह साक्षी भी है और साक्षात भी, सापेक्ष, पर निरपेक्ष भो। वह है—जीवन को मूल वृत्ति का प्रमाण और उसकी परिचायिका, काल की अबाध संगति में एक भाव-बोध। तादात्म्य और संश्लिष्ट प्रकृति चित्रण विषाद की असत्योक्ति या अतिशयोक्ति से बच जाता है और उसके वर्णन की स्वाभाविकता सुनिर्दिष्ट और सुप्रवाहित रहती है। वह सृष्टि ही नहीं उस सृष्टि की व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। 'यमुना के प्रति' कविता में इसी तादात्म्य वृत्ति का स्वरूप परिलक्षित है।

अतः 'यमुना के प्रति' कविता की सारभूत विशेषताएँ हैं—अर्थमूलक प्रतीक विधान, समग्र कल्पना, मानसिक सत्य, भाव-कथात्मक काव्य, विशिष्ट कल्पना, प्रकृति-चित्रण की तादात्म्य पद्धति और संश्लिष्ट चित्रयोजना के साथ प्राकृत निरूपण। इसकी तुलना किसी भी श्रेष्ठतम कविता से की जा सकती है। यह कविता अपने शिल्पविधान में, अपने भाव में, अपने रूप में और अपने रस में अद्वितीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते में पत्रकार निराला

श्री रामप्रीत उपाध्याय एम. ए. साहित्यरत्न

घर से रूठकर भागने वाले अथवा धनोपार्जन के उद्देश्य से प्रयाण करने वाले व्यक्ति अपने घर से पूर्व को ओर ही भागते हैं। वे अपने अशान्त मन को शान्ति प्रदान करने के लिये पूरबी बयार की ही शरण लेते हैं। पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी भी इसके अपवाद न थे। वे भी कई बार इस उद्देश्य से प्रोत्साहित होकर कलकत्ता महानगरी में पधार चुके थे। पर इस बार वे ऐसे वैसे नहीं आये थे। इस बार वे 'समन्वय' के निमंत्रण पर आये थे। 'समन्वय' और 'उद्‌बोधन' नामक पत्र का प्रकाशन श्री रामकृष्ण मिशन की देखरेख में होता था। जब रामकृष्ण मिशनवालों ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से 'समन्वय' प्रकाशन के लिये एक वेदान्ती की मांग की तब आ० द्विवेदीजी ने पूरे हिन्दी साहित्य संसार में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी को ही चुना और उनसे अनुरोध किया कि वे स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित 'समन्वय' पत्र में कार्य करने के लिये चले जायँ। भला पं० त्रिपाठी इस स्नेह सिक्त आदेश को कैसे ठुकरा सकते थे। वे पूर्व की ओर चल पड़े। यह घटना सं० १९७८ की है।

कलकत्ते में उन दिनों इनके गाँव के बहुत से लोग रहते थे जिनमें श्री रामचन्द्र अवस्थी उर्फ मन्ना बाबू प्रमुख थे। मन्नाबाबू की उन दिनों बड़ाबाजार में तूती बोलती थी। तुलापट्टी ९० नं० में मन्नाबाबू की एक बड़ी कपड़े की दुकान थी जो बहुत प्रसिद्ध थी। मन्ना बाबू ३०, अपर चितपुर में रहते थे जहाँ पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी का बहुधा आना जाना होता था। मन्ना बाबू आज भी जीवित हैं पर इनका कर्मक्षेत्र अब कलकत्ता का बड़ाबाजार न हो कर बजबज हो गया है। मन्नाबाबू निरालाजी के युवाकाल के मित्र हैं। दोनों आदमी प्रायः साथ ही घूमा करते थे। दोनों ही पान भाँग और संगीत के शौकीन थे। पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी को जब भी 'समन्वय' कार्यालय से फुर्सत मिलती, वे मन्ना बाबू के पास आ धमकते और फिर दोनों मित्र अपने अपने कामों से मुक्ति पाकर विशाल नगरी में जाकर कहीं मन बहलाते अथवा हुगली तट की ओर घूमने चले जाते। यह एक प्रकार से उन लोगों का दैनिक कार्यक्रम हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री मन्नाबाबू को देखकर मैं फूला नहीं समाया। उन्होंने बड़े प्यार से मुझे चाय पिलायी और निराला की रामकहानी सुनाई। मैं देखता था कि निराला की बातें करते समय उनके नेत्रों में कभी कभी आँसुओं के कण आ जाते थे। मन्ना बाबू ने बतलाया 'उन दिनों लोग उनकी कविताओं का पसंद नहीं करते थे। निरालाजी मौका पाते ही गुनगुनाया करते थे। उनकी पत्नी मर चुकी थी। संभवतः वे इसी गम को भुलाने के लिये भाँग और तम्बाकू का आश्रय लेते थे। वे गाना सुनने और कुश्ती लड़ते देखने के बड़े शौकीन थे। उन्होंने मेरे साथ कई बार यात्राएँ भी की पर भागलपुर की यात्रा विशेष रूपेण उल्लेखनीय है क्योंकि इस बार वे मेरे साथ अधिक दिनों तक रहे थे।' इस तरह मन्ना बावू से घंटों बातचीत कर मैं कलकत्ता लौट आया।

कलकत्ता नगरी ही निरालाजी की प्रथम साहित्यिक कर्मभूमि रही है। उन्होंने इस बार अपना अधिक समय कलकत्ता में बिताया। संवत् १९७८ से लेकर संवत् १९८८ तक निरालाजी मुख्य रूप से कलकत्ता में ही रहे। इस बीच में उन्होंने अनेक पत्रों को अपनाया और ठुकराया। अब नीचे हम उन से संबधित पत्रों पर विचार करेंगें। निरालाजी से सम्बन्धित कलकत्ता के पाँच प्रमुख पत्र हैं -(१) समन्वय (२) मतवाला (३) रंगीला (४, सरोज (५) मौजी।

समन्वय—

यह एक प्रकार से एक अध्यात्मिक पत्र था और इस में श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द आदि के प्रवचन छपते थे। इस पत्र का श्रीगणेश संवत् १९७८ में हुआ था। वह रामकृष्ण मिशन वालों द्वारा प्रकाशित होता था तथा श्री महादेव प्रसादजी सेठ के बालकृष्ण नामक प्रेस में छपता था। उन दिनों 'समन्वय' कार्यालय २८ नं० कालेज स्ट्रीट मारकेट में स्थित था। समन्वय के सम्पादक के रूप में निरालाजी का नाम यद्यपि नहीं जाता था फिर भी समस्त कार्यों को निरालाजी ही सम्पादित करते थे। निरालाजी की रचनाएँ प्रायः समन्वय में ही छपा करती थी। समन्वय की जितनी प्रतियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं, उनके आधार पर निराला की रचनाएँ निम्नलिखित है।

समन्वय वर्ष ६ अंक ८ में निरालाजी का 'विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास' निबंध छपा था।

वर्ष ६ अंक १० में निराला का श्री स्वामी सारदानन्दजी महाराज से वार्तालाप' निबंध प्रकाशित हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ७ अंक ९ में निरालाजी का 'युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' निबन्ध प्रकाशित हुआ था।

वर्ष ८ अंक २ में इनका 'वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द' निबन्ध छपा था। वर्ष ८ अंक ४ में इनकी 'प्रभाती' नामक प्रसिद्ध कविता छपी थी जिसका कुछ भाग नीचे दिया जाता है प्रभाती

'प्रिय मुद्रित दृग खोलो।
गत स्वप्न निशा का तिमिर जाल
नव किरणों से धो लो
मुद्रित दृग खोलो।'

इसी अंक में इनका पुनः 'युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण' नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ था। वर्ष ८ अंक ८ में इनकी एक अनुदित कविता प्रकाशित हुई थी। कविता का शीर्षक था—'सागर के वक्ष पर।' इसके मूल लेखक स्वामी विवेकानन्द तथा अनुवादक निरालाजी। कविता का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

'नील आकाश में बहते हैं मेघदल
श्वेत कृष्ण बहुरंग
तारतम्य उन में तारल्य का दीखता
पीत भानु मांगता है विदा
जलद राग छटा दिखलाते।'

इस प्रकार निरालाजी की अनेक अन्य रचनाएँ समन्वय के पन्नों में छिपी हुई हैं। पर खेद है कि वे उपलब्ध नहीं हैं। इस तरह निरालाजी का संबंध समन्वय से करीब ८-९ वर्ष रहा।

मतवाला—

'मतवाला' सप्ताहिक का श्रीगणेश संवत् १९८० में हुआ था—समन्वय के दो वर्ष बाद। इसके सम्पादक स्वर्गीय महादेव प्रसादजी सेठ थे। इनका अपना बालकृष्ण नामक प्रेस था जहाँ से वे मतवाला को प्रकाशित तथा मुद्रित किया करते थे। पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी से सेठजी की भेंट इसी प्रेस में हुई थी, जब वे 'समन्वय' के मुद्रण के लिये यहाँ आते थे। श्री सेठजी एक सच्चे जौहरी थे। वे अपनी नजरों से ही भाँप लेते थे कि यह असली हीरा है अथवा नकली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाजी के व्यक्तित्व को अगर किसीने पहिचाना तो सेठ जी ने ही। उन्होंने इनके रूप को समझा, बढ़ाया और अपना 'मतवाला' निकालकर हिन्दी साहित्य में अमर कर दिया। निरालाजी भी इनका आभार मानते थे। उन्होंने अपनी 'अनामिका' नामक पुस्तक में श्री सेठजी की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि 'यदि सेठजी न होते तो निराला भी न आया होता।' सेठजी ने अपने पत्र में निरालाजी को उस समय स्थान दिया जब कि उनकी कविताएँ अन्य पत्रिकाओं से अप्रकाशित ही लौट आती थीं और उनकी कोई पूछ नहीं होती थी। श्री सेठजी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने निराला की मुक्त छन्द की रचनाएँ पसन्द की थीं श्री सेठजी की ही शीतल छाया में कविवर श्री सूर्यकान्तजी पनपे और पुष्पित-पल्लवित हुए। इनका 'निराला' नामकरण 'मतवाला' में आने पर ही हुआ।

'मतवाला' संवत् १९८० वर्ष १ का ऐसा कोई अंक नही जिसके मुख पृष्ठ पर निराला की कविता न हो। इस वर्ष में कुल ५० अंक निकले और उन सभी अंकों के मुखपृष्ठों पर इनकी कविताएँ छपीं। इनकी कविताओं का क्रम निम्न प्रकार से है—रक्षाबन्धन, गये रूप पहचान, दिव्य प्रकाश, नयन, चुम्बन, उसकी स्मृति में, कविप्रिया, भारत की विधवा, अब पहचाना, उसपार, भिक्षुक, संध्यासुन्दरी, शरदपूर्णिमा की विदाई में, खंडहर के प्रति, प्रार्थना, जुही की कली, धारा, आह्वान, वनकुसुमों की शय्या, प्रलाप, रास्ते के मुरझाये हुए फूल से, तटपर, शंकिता, यही निराला, स्वप्न में, वीणा वादिनी, हमारी बहु, विफल वासना, प्रिया से, प्रगल्भ प्रेम, गा अपने संगीत, ज्येष्ठ, खोज और उपहार, क्यों हंसती हो, कहाँ देश है, तरंगों से, क्या हूं, गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को (अनुवाद), प्रपात के प्रति, प्रथमप्रभात, सिर्फ एक उन्माद, जागी, संतप्त, भरदेते हो, आदान प्रदान, कष्ट, नाचे उस पर श्यामा, दिल्ली, यमुने, बादल राग आदि।

'मतवाला' के दूसरे तीसरे वर्षों के अंकों में निराला की एकाध रचनाएँ हैं पर बाद वाले अंकों में तो निराला की एक भी रचना नहीं है। कारण महादेव प्रसादजी सेठ कलकत्ता से मिर्जापुर चले गये थे और वहीं से 'मतवाला' का सम्पादन करते थे। यह पत्र भी ८, ९ वर्ष जी कर मर गया। इस पत्र की अवधि भले ही कम हो पर इसने निराला को अमर बना दिया।

रंगीला—

इस पत्र का प्रकाशन संभवतः संवत १९८८ और ८९ के बीच में हुआ था। इसके सम्पादक निराला जी थे। इस पत्र का कार्यालय कलाकार स्ट्रीट में था जो

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब बिजली घर के रूप में परिणत हो गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसके केवल तीन ही अंक निकले। इस पत्र का प्रकाशन कुल ७, ८ अंकों तक ही हुआ। बाद में यह अर्थाभाव के कारण बन्द हो गया। इसके दो तीन अंक तो निरालाजी की ही संरक्षता में निकले थे। इसके बाद वाले अंक संभवत श्री शिवशेखर द्विवेदी (निरालाजी के दामाद) तथा रामकुमार शर्मा की देखरेख में प्रकाशित हुए थे। श्री रामकुमार शर्मा बाँदा जिले के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और कलाकार स्ट्रीट, में इनकी कोयले की दूकान थी। धनाभाव एवं निरालाजी की अनुपस्थिति के कारण यह पत्र आगे न प्रकाशित हो सका। यह एक साप्ताहिक पत्र था। इसमें हास्य व्यंग एवं आलोचना साहित्य की प्रधानता रहती थी।

सरोज –

इस पत्र का श्रीगणेश संवत १९८५ में हुआ था। इसके सम्पादक श्री नवजादिक लाल श्रीवास्तव थे। इसके स्वत्वाधिकारी श्री कनक प्रसाद चौधुरी थे। इस पत्र का पता था – सरोज साहित्य सदन, १५१ मछुआ बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। इस पत्र में निरालाजी की कुछ कविताएँ एवं निबन्ध हैं।

संवत् १९८५, पुष्प १, दल १ में 'सरोज के प्रति' नामक शीर्षक से निरालाजी की एक कविता है जो निम्नप्रकार से है—'सरोज के प्रति'

श्यामल कूलों में सुखदुख में
बहते सदा ही प्राण
उर्मि संध्यातोद्धत अप्रतिहत
उज्ज्वल अछोर-चिर निर्मल सागर की ओर।
.... साधना के पास ही मिलते
असीम से।

इसी वर्ष दूसरे दल में निरालाजी की नारी के सौन्दर्य पर लिखी गई कविता का एक नमूना देखिये। ऊपर एक सुन्दर रमणी का चित्र है और नीचे निरालाजी की कविता—

'अगणित लहरों पर यौवन की तिरती हो
क्यों उतावली हो, समीर सी फिरती हो
चञ्चल अलकों में पाया है किसने अमर विराम
अपलक आँखों पर छाया है किसका मौन महान।'

इसी वर्ष के दूसरे दल में निरालाजी का १० पृष्ठों का एक सुन्दर निबन्ध भा है जिसका नाम है—'सौन्दर्य वर्णन और कवि कौशल।' इस प्रकार दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन वर्षों के बाद सरोज पत्र भी काल के कराल गाल में कवलित हो गया। श्री नवजादिक लालजी निरालाजी को बहुत मानते थे। सम्भवतः उन्होंने निरालाजी की सुपुत्री 'सरोज' के नाम पर ही सरोज पत्र का प्रकाशन आरंभ किया था।

मौजी—यह पत्र पं० शिवशेखर द्विवेदीजी के मतानुसार हरिसन रोड और चित्तरंजन एवेन्यू के मोड़ के आस पास से निकलता था। इसका श्रीगणेश संवत् १९८३ के आस पास हुआ था। श्री राजनारायण चतुर्वेदी 'आजाद', हरेकृष्ण-जौहरी, महादेव सिंह शर्मा और नारायण प्रसाद बेताब आदि इस पत्र से सम्बन्धित थे। इसकी प्रतियों के आभाव में यह कहना कठिन है कि इसके मुख्य सम्पादक कौन थे। इस पत्र में निरालाजी की एवं उनके मतवाला' की आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। यह भी एक व्यंगात्मक पत्र था। इसकी भो आयु केवल एक ही वर्ष की थी।

उपसंहार :—निरालाजी इस महानगर में संवत् १९७८ से लेकर संवत् १९८८ तक रहे और उनका विशेष संबन्ध इन्ही पत्र पत्रिकाओं से था। इनके कलकत्ता के साहित्यिक मित्रों में श्री महादेव प्रसाद जी सेठ, श्री नवजादिक लाल श्रीवास्तव तथा श्री मन्नाबाबू का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इस नगर में निरालाजी एक पत्रकार के रूप में विशेष रूपेण प्रसिद्ध थे। इनकी प्रतिभा से इस नगर के सभी पत्र प्रतिभासित हुए हैं। २५ वर्ष की आयु में निरालाजी कलकत्ता पधारे थे और यहीं उन्होंने १० वर्ष तक रहकर अपने साहित्यिक जीवन की नींव डाली थी।

———

निराला—

"कांटों में खिलता हुआ गुलाब, बादलों में चमकती हुई बिजली, बासन्ती बयार से झूमती हुई वनस्पति, कोलाहल भरा सिन्धु तट, जेठ की दोपहरी में तपता हुआ रेगिस्तान, किरण-करों से जागने वाला सूरजमुखी, किसी गोल गुम्बद की गूंज, युग पीड़ा का करुणा-पूरित दीर्घ उच्छ्वास—कुल मिलाकर निराला—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।"

प्रो०—देवेन्द्र 'दीपक'
रींवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्र और निराला की जातीय एवं राष्ट्रीय भावना*

श्री अवध प्रसाद वाजपेयी

टैगोर के 'जन गण मन अधिनायक' से पूर्व 'वन्दे मातरम्' से भारतीय संस्कृति में देशात्मबोधक भावना के अंकुर फूटे थे। परन्तु बंकिम की परिकल्पना में रवीन्द्रनाथ के 'जन गण मन' के लिये परिवेश संकीर्ण था। रवीन्द्रनाथ को आधुनिक भारतीय-संस्कृति का मंत्रद्रष्टा ऋषि मानने में दो मत नहीं हो सकते, क्योंकि उन्होंने समय की प्रगतिशीलता को देख कर भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय भावना को बड़ी ही विदग्धता से समावेश किया था। राममोहन राय एवं बंकिमचन्द्र के नवमानव धर्म में भारतीय संस्कृति के जिस प्रवाह का चित्रण किया गया था, वह एकांगी होकर पृथक् पृथक् धाराओं में बह निकला था। यद्यपि रवीन्द्र ने इन दोनों युगप्रवर्तक मनीषियों के प्रति श्रद्धा प्रकट की है, तथापि उनकी सूक्ष्म भाव-कल्पना में अपनी संस्कृति के चारों पुरुषार्थों को युग की मान्यताओं के समकक्ष प्रस्तुत करके एक ओर भारतीय संस्कृति का आधुनिक युग में पौरोहित्य किया तो दूसरी ओर राष्ट्रीय भावना को जन जन के हृदय प्रदेश में प्रतिष्ठित करके जन-गण मन के अधिनायकत्व में समत्व का योग किया। गुरुदेव के मन की प्रवृत्ति एवं प्रकृति अहर्निश तपोवन एवं आश्रमों के होम धेनुओं के खुरों की पवित्र धूलि की वन्दना करती रही, और साथ ही भारत के अजिर में व्यास के भावों के प्रति पूर्ण निष्ठा रख कर 'भारत भूजयो वरम्' के स्वर में स्वर मिलाकर समस्त भावना ग्रन्थियों की जटिलता एवं कुटिलता का उन्मोचन कर देती है—

> हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थ जागो रे धीरे
> एइ भारतेर महा मानवेर सागर तीरे।

कवि अपने चित्त को निखिल भारत की नाड़ी मण्डल का स्पन्दन समझ कर सम्बोधित करता है कि उद्वेग से आन्दोलन सफलीभूत नहीं होते, अतएव पुण्यतीर्थ की गहराई में प्रशान्त चित्त से प्रविष्ट होना श्रेयस्कर है। प्रति-

---

*यह लेख श्री वाजपेयी के एम. ए. के शोध-निबन्ध "कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और महाप्राण निराला के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन" का अंश है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियात्मकता से उद्वेग बढ़ जाता है किन्तु स्थायीभाव 'राष्ट्रीय भावना' पर घातक प्रभाव पड़ जाता है। इसीलिये प्रत्येक कदम धीरता, गंम्भीरता एवं जागरूकता के साथ उठना भारत के भाग्य के निमित्त महामहिम है। प्रत्येक भारतवासी को अपनी धधकती होमाग्नि के भीतर दुःख की रक्तशिखा को भी देखना पड़ेगा। जयदेव के केशव ने सदय होकर बुद्धावतार में पशुघात के होमानल की ज्वाला देखी थी। टैगोर के प्राणों में भारत की महा ओंकार ध्वनि 'स्वाहा स्वाहा' के तार स्वर से अनुरणित हो रही थी, और साथ ही हवन के हुताशन की शोणित सनी हवि चैन नहीं लेने देती थी, क्योंकि जयदेव इस समस्या को उठाकर केशवकेलि के रहस्य से अवगुंठित कर चुके थे। मरमी एवं दरदी होकर उत्तरदायित्व निभाना काँटों की सेज से भी बढ़कर चुभनशील है, फिर भी टैगोर ने यज्ञमंडप में धधकती रक्त शिखा को देख कर अनुताप करते हुए भगवान बुद्ध की शरण नहीं मांगी। उन्हें भारत भाग्य विधाता के शरण्य पर पूरा विश्वास है। अतएव वे 'भारततीर्थ' के महामानव की अन्तरात्मा का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करते हुए कहते हैं कि दुःसह व्यथा का अवसान हो जाय। 'क्या मेरे प्राण पुनः विशाल हृदय की भावविभूति से अज्ञानता के अन्धकार को छिन्नभिन्न करने में समर्थ हो सकेंगे? यदि संभव हो तो फिर भारततीर्थ का अभिषेक करने के लिए सभी देश विदेश के तीर्थयात्रियों का आवाहन करो और अपनी उदारवाणी से गद्‌गद् होकर सबका आलिंगन करो।'

टैगोर की सांस्कृतिक चेतना भरपूर प्रवेग के साथ राष्ट्रीय भावना को विश्वजनीन शान्ति एवं सार्वजनीन मैत्री के समकक्ष पहुंचा देती है। इसमें अपने इष्ट के लिए दूसरे के अनिष्ट की किंचित मात्र भी संभावना नहीं है। इसतरह उनकी राष्ट्रीय भावना विश्व बन्धुत्व का मार्ग प्रदर्शित करती है।

निराला को भी टैगोर की तरह राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा देने वाले तपोवन के आश्रम हैं। कवि उन्हें शान्ति के निबिड़ नीड़ एवं मलयज सुवास से स्वच्छ पावन प्रकृति की विभूति का प्रांगण मानता है। उन्हें अपने भारत की पुण्य रेणुधूरित धरती से बड़ा प्यार है। अतएव वह अपने अतीत की कल्पना में 'स्वाहा' की अपेक्षा 'सो ऽहम्' शांतस्वर में 'तत्वमसि' का महाज्ञान प्राप्त करता है। रवीन्द्रनाथ में 'स्वाहा' 'यज्ञ' और 'सो ऽहम्' 'वेदान्त' का सामञ्जस्य है। परन्तु निराला के 'मैं और तुम' का कार्य-कारण-भाव 'सो ऽहम' और 'तत्वमसि' से भेद में अभेद का समन्वय करके राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ करने के लिए आह्वान करता है। प्रजातन्त्र की शक्ति वज्रसुकठिन राजशक्ति को सिंहासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से खींच कर धूल में मिला दे क्यों कि 'तुम और मैं' के बीच साम्राज्य का अन्तराल नहीं रहना चाहिये। नेह नानास्ति किंचन —

"सोचो तुम
उठती जब नग्न तलवार है स्वतन्त्रता की,
कितने ही भावों से
याद दिला घोर दुःख दारुण परतंत्रता का,
फूंकती स्वतंत्रता निज मंत्र से,
जब व्याकुल कान,
कौन वह सुमेरू
रेणु रेणु जो न हो जाय।"

'शिवाजी के पत्र' के रूप में निराला की राष्ट्रीयता भूषण की गुरुगर्जना को पुनः जागृत करती है। परन्तु इस पत्र में जो जातीय भावना व्यक्त की गयी है, वह केवल मध्यकालीन मुगल इतिहास की घटना विशेष तक ही सीमित नहीं है। प्रत्युत उसमें शाश्वत भारतीय संस्कृति की जागरूकता का निदर्शन है और साथ ही साम्राज्यवादियों की भोगवासनाओं के प्रति गणतन्त्र के स्वातंत्र्य की ललकार है। कवि निराला के दृगपति शिवाजी को पूर्ण विश्वास है कि—

आएगी भाल पर
भारत की गई ज्योति
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायेंगे।

कवि भारत के क्षात्रधर्म को दासता के बन्धन से मुक्त करने के लिए चेतावनी देता है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन और कृतित्व से भारत की सोई हुई राष्ट्रीयता जाग उठी थी। रामकृष्ण मिशन के 'समन्वय' पत्र का सम्पादन करते हुए निराला भी उससे निरन्तर प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। फलतः पवित्र भारत भूमि के 'जागरण' के स्तवन गान में उनकी भारती प्रबुद्ध होकर कहती है कि अनेकता में एकता का भाव प्रत्येक क्षेत्र में 'भेद समर नाशक' है। परन्तु यदि दुष्टों की दुरभिसंधि विनाश का बीज बो रही हो, तो तुम उस पर वज्र बनकर टूट पड़ना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ लो—

शत्रुओं के खून से
धो सके गर एक भी तुम माँ का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी आशा और आकांक्षा से निराला भारत के इतिहास का अन्तर्दर्शन करते हुए राष्ट्रीय भावना जागृत करते हैं।

रवीन्द्रनाथ राष्ट्रीय भावना को विश्व मैत्री की ओर उन्मुख करते हैं। निराला भारत के भग्नावशेषों को पुरातत्व वेत्ता की दृष्टि से केवल संग्रहमात्र नहीं करते, प्रत्युत उस विनाश कांड को देख देखकर तमतमा उठते हैं। उनका रक्त बर्बरों की काली करतूतों पर लीपापोती नहीं करता, प्रत्युत आततायियों के कुकृत्यों को उंगली उठाउठा कर गणतंत्र के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस तरह उनका मन विद्रोह की ज्वाला जलाने के लिए हर क्षेत्र में 'बादल राग' गाने लगता है। भारतीय संस्कृति का अनन्य प्रेमी कवि राष्ट्रीय भावना के अन्तर्गत जातीय जागरण का उच्छ्वास भरने लगता है। टैगोर प्रत्येक वस्तु से सुन्दर का आविष्कार करते थे, निराला प्रत्येक वस्तु के कार्य-कारण पर विचार करके न्याय की आवाज़ बुलन्द किए बग़ैर रह नहीं सकते थे। टैगोर प्रेम की योग्यता से, हर जाति एवं हर धर्म से समझौता कर सकते थे, परन्तु निराला किसी भी कीमत पर अपनी राष्ट्रीयता एवं सांस्कृति चेतना को बिकने नहीं देना चाहते थे। यदि हिन्दी संसार कहीं समय से निराला के इस भाव को बढ़ावा देता, तो भूषण की विछिन्न शृंखला की आधुनिक युग के साथ कवि कड़ी जोड़ कर राष्ट्रीय भावना के विविध रूपों में शहीदों के विजय स्तम्भों पर उत्कीर्ण कर देता। हिन्दी जगत के लिए निराला की राष्ट्रीय भावना एक ज्वलन्त इतिहास है जिसके लिखने में कवि के हृदय का रक्त उबल कर अगणित स्रोतों में बह निकला है।

टैगोर 'शाहजहां' के प्रति प्रेम और करुणा से अथवा भावातिरेक की गलदश्रु भावुकता से सहानुभूति प्रकट करते हैं। वे काल के कपोल पर ढुलके हुए एक बिन्दु नयनजल को देख कर प्रेम और करुणा की प्रतिच्छवि मानस पटल पर अंकित कर लेते हैं। यह विश्व कवि के हृदय की विशालता है। टैगोर के 'शाहजहां' भारतेश्वर एवं सम्राट कवि हैं और उनका ताजमहल स्थापत्य का सरताज है। परन्तु 'शाहजहां' का राज्याभिषेक भारत, ईरान, अरब, मक्का-मदीना के पुण्यतीर्थों के जल से नहीं हुआ था, और होता भी कैसे? यह तो 'काफिरों' का सा अनुष्ठान हो जाता, अतएव सगे-संबंधियों के नाते रिस्तेदारों की रक्त-सरिता से उसका अभिषेक किया गया था। फलतः मयूर-सिंहासन 'तख्तेताऊस' के हीरे जवाहिरात खून पी पी कर चमक उठे थे। और ताजमहल की शुभ्रता रक्त की धारा में ही संगमर्मर की तरह पथराकर रह गई थी। उसी रक्तबीज की संतान औरंगजेब के अत्याचारों की गाथा 'भारत तीर्थ' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भग्नावशेष तथा जन्मभूमि पर खड़ी अरबों की पाक दामन मस्जिदें कह रही हैं। महाप्राण निराला ने उत्तर प्रदेश से लेकर देवगिरि और नव द्वीप से लेकर माउन्ट आबू तक के भारत-तीर्थों के हृदयों की धड़कनें सुनी थीं। ब्रह्मपुत्र और सिन्धु के तटों पर चतुरंग चमूसंग विचरण करने वाले जवानों को विद्रोह करने के लिए ललकारा था —

जागो फिर एक बार
मृत्युंजय व्योमकेश के समान

निराला की दृष्टि में गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों का समाधिमंदिर भारत धारित्री को जगाता रहेगा। सिख, राजपूत, मराठों के 'दुर्जय संग्राम रागें' हिन्द राष्ट्र के प्राणों की गीता बनकर भारत की राष्ट्रीयता को सदैव उद्बुद्ध करते रहेंगे क्योंकि—

'ब्रह्म हो तुम
पद रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्वभार'— (परिमल)

'जागो फिर एक बार' में निराला गुरु गोविन्दसिंह के 'सत श्री अकाल' की शंखध्वनि को 'वन्देमातरम्' एवं 'जनगणमन अधिनायक' की तरह महामहिम समझते हैं। यह उनको साम्प्रदायिकता का उद्गार नहीं है, प्रत्युत भारततीर्थ के समाधि मन्दिरों एवं भग्नावशेषों को देख कर साम्राज्यवादियों के कुचक्रों को सदैव के लिए कुचल डालने का अभियान है। कवि को विश्वास है कि भारत-भूमि का कण-कण मंत्रद्रष्टा ऋषियों के महामंत्र से फूंका हुआ अमोघ आग्नेय अस्त्र है। उसके संचरण से कण-कण में मानवता, राष्ट्रीयता एवं विश्वीयता स्वतः सचेष्ट हो जायेगी। भारतधात्री देवता है, उसके मुख मंडल की एक भी वक्र रेखा विप्लव की महाकालिका बनने की क्षमता रखती है। इसलिए कवि भूगोल और खगोल के मध्य ऊर्ध्वबाहु सन्यासी की तरह गुरु गंभीर घोष करता हुआ कहता है —

विजय विश्व में नव जीवन भर
उतरो अपने रथ से भारत।

भारत सदैव अपने पराए की भेदबुद्धि भुलाकर अभेद भाव से धारण और पोषण करता रहा है। 'बादल राग' में निराला भारत की उसी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति की ऊर्जस्विता को पृथ्वी पर अवतीर्ण करना चाहते हैं। निराला और टैगोर में यहीं से पार्थक्य हो जाता है।

इस प्रवृत्ति के प्रेरणास्रोत न तो राममोहन राय की विविध धर्मों की सम्पृक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्यतायें हैं जो टैगोर को सर्वाधिक पृष्ठभूमि के रूप में प्राप्त हुई थीं और न दयानन्द सरस्वती की वेदों को प्रकृति घोषित करके परवर्ती सम्पूर्ण विकास के प्रति प्रतिक्रियायें हैं, जिनसे प्रभावित होने की निराला के लिये बहुत कुछ संभावना थी। इस दिशा में बंगला साहित्य काफी आगे बढ़ चुका था, क्यों कि बंकिम ने राममोहन राय की मान्यताओं का स्वस्थ चित्त से चिन्तन करके पूर्व और पश्चिम के मध्य अपने भारत की आध्यात्मिकता को पश्चिम की भौतिकता के समकक्ष पूर्ण आत्मगौरव एवं सम्पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कार्यान्वित किया था। आर्य समाज अब तक विकास को विकृति समझकर विशुद्ध प्रकृति की दुहाई दे रहा था। जब कि ब्रह्म समाज केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में पश्चिम की सफल चुनौती का सामना करता हुआ भारत की विशुद्ध वैदिक प्रकृति को पश्चिमी-करण के समकक्ष अधिकाधिक प्रस्तुत करके कृतकार्य हो रहा था। टैगोर ने भारत की उस प्रकृति को ब्रह्म समाज से समझने की आवश्यकता का अनुभव किया। फलतः उन्होंने भारत तीर्थ की छन्दों में वन्दना करते हुए लिखा था—

'पश्चिम आज खुलियाछे द्वार, सेथा होते सबे आने उपहार
दिबे आर निबे, मिलाबे मिलिबे, जाबे ना फिरे,
एइ भारतेर महामानवेर सागर तीरे।'

भारत तीर्थ में आर्य-अनार्य, द्राविड़, चीन, शक, हूण, मोगल, पठान प्रभृति महामानव के विराट रूप में लीन हो गए हैं। आज भी पश्चिम का द्वार हमारे यातायात के लिये खुला हुआ है। वहाँ से सभी उपहार लाते हैं। इस प्रकार के सम्मेलन से आदान-प्रदान चलता रहेगा, कोई भारत तीर्थ से हताश होकर विमुख नहीं लौटने पाएगा! इतना होते हुए भी जब राजनैतिक आन्दोलनों से देश की दशा शोचनीय हो गई तब कवि टैगोर ने राष्ट्र-विरोधी नीति से क्षुब्ध होकर स्वदेशी समाज की स्थापना की थी। इस प्रकार कवि ने शिक्षा, साहित्य, कला एवं संगीत से राष्ट्रीय भावना का प्रसार किया। अतएव उन्होंने उस महती भाव साधना के स्रोत में मानवता के जिस आदर्श की प्रतिष्ठा की थी वह विश्वजनीन, जाति वर्ण-विहीन भारतीय संस्कृति का मानदण्ड सिद्ध हुई। हिन्दू विश्वविद्यालय में वक्तृता देते समय उन्होंने कहा भी था 'इस विश्वधर्मा को हमने हिन्दू चित्त से चिन्तन किया है। तथा उसे हिन्दू चित्त से ग्रहण किया है।' कालान्तर में उन्होंने अपनी इस मूल प्रवृत्ति को 'जीवन-देवता' की भाव साधना के आधार पर दार्शनिक रूपों में प्रतिफलित भी किया परन्तु उनकी विश्वजनीन मैत्री भारतीय आध्यात्मवाद एवं राष्ट्रीय भावना से महिमान्वित रही है। इसके एक नहीं अनेक प्रमाण उनकी काव्य की पंक्तियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उद्धृत करके दिये जा सकते हैं। क्यों कि उनकी मूल प्रवृत्ति विशेष रूप से कविताओं एवं लघुकथाओं में अभिव्यक्त हुई है।

निराला के समक्ष केशवचन्द्र सेन का ब्रह्म-समाज एक छोर पर खड़ा था और दूसरे छोर पर दयानन्द सरस्वती का आर्य-समाज पश्चिमीकरण का खण्डन और 'सत्यार्थ-प्रकाश' का मंडन करने में बद्ध-परिकर था। निराला की प्रकृति इन दोनों से त्राण पाने के लिए छटपटाती थी; क्योंकि मन पर तुलसी के राम-चरित मानस के महत् आदर्श आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव के सुदृढ़ संस्कार बना चुके थे। भारत के और निराला के सौभाग्य से ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज के बीच सनातन धर्म के उद्धारक भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस का अवतार हुआ। संसार में रहकर उस परमहंस ने दुग्ध रूपी सारवस्तु 'सच्चिदानन्द' ग्रहण करली और असार वस्तु त्याग दी। तुलसी इसकी भविष्यवाणी कर गए थे—'संत हंस पय गुन गहहिं, परिहर वारि विकार।'

निराला अपने 'तुलसीदास' में अतीत की तुलसी और रत्नावली संबंधी कथा के आधार पर अपने देश की निष्ठा को बार-बार जगाते हैं। जिसे अपने देश की संस्कृति से प्यार नहीं होता उसे देश की राष्ट्रीयता से भी कोई सरोकार नहीं होता। अतएव उन्होंने तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा, गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी के आदर्शों की छत्र छाया में पल्लवित होने वाली स्वदेश भक्ति का पूर्ण रूपेण चित्रण किया है। रामकृष्ण मिशन से निराला की इस भावना में सर्वाधिक विकास हुआ।

तुलसी को श्रीराम मिल गए थे और स्वामी विवेकानन्द को श्री रामकृष्ण परमहंस मिल गए थे। तुलसी और विवेकानन्द की दिव्य दृष्टि ने भारतीय जीवन-दृष्टि, भारतीय-संस्कृति एवं भारतीय-राष्ट्रनीति का पर्यवेक्षण किया था। इस दृष्टि में दिव्यता श्री राम और श्री रामकृष्ण परमहंस की थी, जिसका पूंजी-भूत प्रकाश धर्म, दर्शन, राष्ट्रनीति एवं विश्व मैत्री के रूप में प्रस्फुटित हुआ। महाप्राण निराला इन्हीं भावों की खोज में चातक के स्वरों से पुकार रहे थे—

महामंत्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूंका हुआ,
'तुम हो महान् , तुम सदा महान्'
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, यह दीन भाव,
ब्रह्म हो तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार,
जागो फिर एक बार ।

भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर स्थित निराला की यह राष्ट्रीय भावना कितनी विराट एवं आत्मगौरव से परिपूर्ण है। यह हो सकता है कि आधुनिक राजनीति के रंग मंच पर से राष्ट्रीय भावना के स्वर तरह तरह के भाव बदल कर अन्तर्राष्ट्रीय जगत को खुश करने के लिए अथवा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बुलन्द किए जाएं, परन्तु भारत तीर्थ की वास्तविक राष्ट्रीय भावना का उन्मेष करने वाले बंकिमचन्द्र; विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, मैथिलीशरण गुप्त,जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ही है। इन कवियों की सरस्वती से भारत की संस्कृति और भारत की राष्ट्रीय भावना देश और विदेश में परब्रह्म की विराट शक्ति सी परिव्याप्त हो रही है।

———

प्रसाद और निराला

रंगीला के कुल कितने अंक निकले यह ज्ञात नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार उसके आठ अंक निकले थे और कुछ के अनुसार उसके केवल तीन अंक निकले। इसी 'रंगीला' के प्रथम अंक के मुख-पृष्ठ पर प्रसाद की 'बीतो विभावरी जाग री' कविता छपी थी। 'इन्दु' और 'जागरण' के बाहर प्रसाद अपनी कविता बहुत कम भेजते थे। किन्तु 'रंगीला' में उनकी कविता छपी. जो इस बात का प्रमाण है कि 'निराला' व 'प्रसाद' के सम्बन्ध कितने घनिष्ठ थे। इसका दूसरा प्रमाण है प्रसाद का 'गीतिका' की भूमिका लिखना।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला : व्यक्ति और कवि

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

सुस्निग्ध, सजीला, खराद पर उतारा हुआ, शाण पर चढ़ाया हुआ, साँचे में ढाला हुआ, लम्बे डील-डौल का शरीर, अत्यन्त चुम्बक भरी आँखों में तेज, वाणी में गर्जन, व्यक्तित्व में दीप्ति और ओज, ईर्ष्या करने योग्य सरल किन्तु अक्खड़ प्रकृति, सबकी समष्टि विधाता ने निराला में सजा कर हमें दी थी— इसलिये कि उस वन्दनीय मूर्ति को हाथों-हाथ उठाकर मनुष्य की पहुँच के परे, ऊंचे द्यौसको सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके, चंवर डुलावें, उसकी आरती उतारें, अर्चना करें। पर हमलोग ऐसे अज्ञ और अभागे निकले कि उसे हमलोगों ने पागल कह कर अपने से दूर रक्खा, उसकी छाया से भी दूर भागने का प्रयत्न किया। यह थी हमारी कृतज्ञता उस व्यक्ति के प्रति, जिसे पैसा नहीं चाहिये था; जिसने जीवन भर पैसे को ठीकरा समझा! वह चाहता था ममता, स्नेह, आदर और सम्मान, जो उसका अधिकार था और हमारा कर्तव्य था, पर हम अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सके और वह देवदूत हम लोगो की क्षुद्रता और 'हीनता पर व्यंग्य करता हुआ हम लोगो के बीच से उठ गया और संभवतः तब हमलोगों ने उसका महत्व समझा—

> वो आज आए हैं तुर्बत पे फ़ातेहा पढ़ने ।
> सवाब लूटते हैं खाक में मिला के मुझे ॥

निरालाजी का स्वभाव बच्चों का सा था, उन बच्चों का सा, जिनके सम्बन्ध में परियों की कहानी में कहा जाता है कि वे परीक्षा लेने आते हैं और फिर सहसा लुप्त हो जाते हैं। उनकी अल्हड़पन से भरी हुई मस्ती इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था। ऐसा नहीं कि उन्हें पहचाननेवाले लोग न रहे हों। कलकत्ते में जब 'मतवाला' पत्र प्रकाशित हुआ जिसका संचालन श्री महादेव प्रसाद सेठ करते थे —उसमें संयोग से मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, आचार्य श्री शिवपूजन सहाय, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसे एकसे एक धुरन्धर गुणियों का संग्रह किया गया। ये सभी अपने-अपने में अकेले, अनोखे, अप्रतिम और अद्वितीय थे। मुंशी नवजादिक लाल तो साधक तपस्वी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल कलम स्त्रुकूसे महा सरस्वती की उपासना कर रहे थे। दूसरे साधु पुरुष थे आचार्य शिवपूजन सहाय—शान्त, सौम्य, सद्वृत्त, सात्विक और परम विनीत। किन्तु ठीक इनके विपरीत थे उग्रजी, वाणी में, लेखनी में, स्वभाव में, सब में उग्र प्रवाह लिए हुए, ऐसा उग्र प्रवाह, जिसमें बड़े बड़े वृक्ष खरपात सब बहे चले जाते थे, परन्तु सबसे निराले थे निरालाजी। कोमलता और प्रखरता, सौम्यता और तेजस्विता सब प्रकार के विरोधों से युक्त स्नेह योग्य व्यक्ति थे जो छैले बन कर भी निकलते थे, तहमद बाँधकर भी और नंगे बदन भी। और इतना ही क्यों, जिन अगणित रूपों में उन्हें देखा गया उन सभी रूपों में वे फबते थे, शोभन लगते। श्री महादेव प्रसादजी ने उनको सेवा भी उसी प्रकार की जैसे बुलबुल पाली जाती है, बड़े नाज़ से, बड़े चावसे, बड़ी उदारता और विशाल हृदयता से। वे निरालाजी के जूते पोंछकर रखते थे और जब निरालाजी अपनी मोहक लटें सँवार और लटकाकर रेशमी कुर्त्ता और चुन्नटदार धोती पहन कर हाथ में छड़ी लिए बाहर जाने के लिए निकलते तो सेठ महादेव प्रसाद उनकी जेब में पाँच-दस रुपये भी डाल देते थे और कभी कोई ऐसा अवसर नहीं आने देते थे कि निरालाजी को कभी किसी प्रकार की असुविधा हो। पैसे और कपड़े का निरालाजी को कोई व्यक्तिगत मोह नहीं था। वे बढ़िया से बढ़िया पहनना चाहते थे, जानते भी थे पर यदि कोई दीन मार्ग में मिल गया बढ़िया शाल, रेशमी दुलाई, अतलसका कुर्त्ता सब उतार कर देने में उन्हें तनिक भी देर नहीं लगती थी। किसी वस्तु के साथ उन्हें लिप्तता नहीं थी और न किस की मां ने इतना दूध पिलाया था कि निरालाजी से जिज्ञासा भी कर दे कि वह शाल, वह दुलाई, वह कमीज कहाँ गई। यही दशा जेब में पड़े हुए रुपयों की भी थी। उनके आगे जिसने हाथ फैला दिया उसे वे अपनी जेब की समस्त विभूति निःस्पृह और निःसंकोच होकर दे डालने में दो बार नहीं सोचते थे। वह उनके स्वभाव का अंग था।

यदि कोई राजनीतिक नेता कोई पागलपन का कार्य करता है तो वह सिद्धान्त कहलाता है और जब वही काम अन्य लोग करने लगते हैं तब वह पागलपन कहलाता है। इस युग में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों का अधिक आदर हुआ और इतना हुआ कि अत्यन्त प्रौढ़ रचना करनेवाले निराला जैसे कवि की भी उपेक्षा हुई, उनका उचित सम्मान न हो पाया। निराला के मन में यह स्वाभाविक ग्रन्थि बन गई और उस ग्रन्थि के कारण निरालाजी के मन में अंग्रेजी बोलने, अंग्रेजी में भूमिका और पत्र लिखने की तरंग उत्पन्न हुई और वह वर्षों बनी रही। ऐसी तरंगे प्रायः सभी लोगों के जीवन में उठा ही करती हैं किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग उनको पागल नहीं कहते, पर निराला को सब पागल कहने लगे। अच्छे डील-डौल के ढले हुए शरीर वाले होने पर भी लोगों ने उनकी वपुष्मत्ता का आदर नहीं किया, उनके कसरती शरीर का मूल्यांकन नहीं किया, इसलिये स्वभावतः उनके मन में यह भावना उठी कि मेरे इस गुण का कोई गाहक नहीं। यही कारण है कि जब वे तरंग में आते थे तो कह बैठते थे मैंने अमुक को पछाड़ा, अमुक सिंह को मार गिराया आदि। उनके मानस-पौरुष की वागभिव्यक्ति को लोग उन्मत्त प्रलाप कहने लगे। उन्होंने संगीत की साधना की थी, स्वर, लय, राग, ताल में, गीत और वाद्य की सिद्धि की थी किन्तु धोबी, गोंड़ कुम्हारों की बस्ती में हाथियों के उस व्यापारी को किसी ने पूछा नहीं इसलिए जब वह कविता के गीत कभी स्वर भरकर बाजे के साथ गाने भी लगते थे तो लोग समझते थे कि वे सनक गए हैं। प्रयाग की एक विशिष्ट प्रसिद्ध महिलाके प्रति प्रशंसापूर्ण स्निग्ध भाव से यदि वे कभी प्रसंग या अप्रसंगवश कुछ कह बैठते तो लोग समझते उनका माथा गरम हो गया है? क्या हम सब लोग इस प्रकार का पागलपन नही करते या नहीं कर चुके हैं। हाँ अन्तर इतना ही है कि वह खुलकर डंकेकी चोट पर कहता था, हम मन के चोर हो कर मन ही मन या लुक छिप कर या गुपचुप करते रहे हैं।

निराला की विश्वव्यापी उदारता, मित्रों के प्रति उनकी आत्मीयता, उनकी पर-दुःख-कातरता, आतिथ्य-सत्कार सेवा-भावना इतनी उदात्त है कि संसार भरके बिड़ला, डालमिया, फोर्डसेरौकफेलर सब फूः हैं जैसे हिमालयके सामने कोई दीमकों की बाबियां हों। पुराने सम्राटों ने अपने जीवनमें दो-चार विश्वजित् यज्ञ करके सर्वस्वदान करके मृण्मय पात्र हाथमें लेकर नाम कमा लिया किन्तु निरालाजी ने नित्य विश्वजित् यज्ञ किया। नित्य सर्वस्वदान किया और विचित्र बात यह है कि कभी मृण्मय पात्र हाथमें नहीं लिया। दधीचि और कर्णकी जिस दानशीलता की बादरायण व्यासने भूरिभूरि प्रशंसा की है उन्हींकी वरिष्ठ परम्परामें निरालाकी भी श्लाघ्य गणना की जा सकती है।

निरालाजी कवि थे। पर वैसे नहीं जो 'जैसी बहे बयार' के अनुसार तुक गढ़ते हुए रामाय-स्वस्ति और रावणाय-स्वस्ति करते रहते हैं, अपनी प्रशंसा के पुल बान्धते हैं, अपने गुर्गों द्वारा प्रचार कराते हैं, समाचार-पत्रों में स्वयं लेख लिख कर दूसरों के नामसे छपवाते हैं। उनकी कवितामें भूकम्प की गड़गड़ाहट थी जो गम्भीर निद्रा में मग्न व्यक्ति को भी उठकर, जागकर उस भूकम्पका अनुभव करने को विवश किया करती थी। राजशेखरने अपनी काव्य मीमांसामें लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकस्य तिष्ठति कवेर्गृह एव काव्यमन्यस्य गच्छति सुहृद्भवनानि यावत्।
न्यस्या विदग्धवदनेषु पदानि शश्वत्कस्यापि संचरति विश्वकुतूहलीव।

(एक ऐसे अकुशल कवि होते हैं जिनकी रचना उनके घर में ही पड़ी-पड़ी सड़ जाती है और उसका तनिक भी प्रचार नहीं हो पाता। दूसरे प्रकारके वे कवि होते हैं जिनकी रचना मित्र-मण्डली तक रह जाती है। किन्तु सर्वोत्कृष्ट वे हैं जिनके काव्यों के पद चतुर लोगों के मुख में निरन्तर विराजते रहते हैं)। निराला ऐसा ही कवि था जिसके हृदयमें स्वाभाविक करुणा, स्वरमें पौरुष-भरा दर्प, स्वभावमें तेजस्विता का वर्चस्व, प्रखर आत्माभिमान और ललकार, जिसने झुकना नहीं सीखा, रुकना नहीं सीखा, जो पग बढ़ाता, डग बढ़ाता, धक्के देता आगे बढ़ता चला गया, जिसे पढ़ने-सुनने को विवश होना पड़ा ---

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्।

वे जब कन्धे उचकाकर, सिर हिलाकर, लटें झुलाकर अपने प्रलम्ब बाहुओं को फैलाकर, उङ्गलियों को नचाते हुए वारिद-गम्भीर निर्घोष में कविता पढ़ने लगते थे तो स्तब्धता छा जाती थी, सब आंखें उसी ओर एकटक बन्ध जाती थीं।

निराला ने जहां 'तुम तुंग हिमालय शृङ्ग' लिखा, 'मिर्ज़ा राजा जयसिंह के नाम शिवाजी का पत्र' लिखा और 'जागो' में राष्ट्र को उद्बोधित किया वह हमारे राष्ट्र की अक्षय सम्पत्ति है जिसे सुनकर कापुरुषके दुर्बल हाथ भी मूछोंपर पहुंच जाते हैं। अनेक कवि सम्मेलनों में मैंने निराला का यह रूप देखा है— गर्व के साथ कि ऐसा प्रतिभाशाली कवि हमारे देशमें, हमारे युगमें जन्मा है और आज यही कसक मनमें रह गई है –

नैननमें जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करौं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गीतिका'* के तीन गीत

प्रो० निर्मल तालवार

शब्द-ब्रह्म को दार्शनिकों ने सृष्टि का उत्स माना है। यही शब्द-ब्रह्म ओंकार-नाद है। यह नाद अनाहत रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। निरुपाधिक रूप में यह नाद प्रणव या ओंकार है और उपाधियुक्त रूप में सप्त-स्वरों में विभाजित वर्ण। समस्त स्वरों और शब्दों का मूल कारण यही है।[1] इससे उद्भूत 'गीत सृष्टि शाश्वत है।' यह सृष्टि है, अतः यह सृजनशील है। यह लोकोत्तर है, आनन्द है। और यह गीत जगत के आनन्द का प्रजनक और प्रफलक भी है। इसी रूप में वह कला के अन्तर्गत आता है। कला सौन्दर्य की साधना है और सौन्दर्य कलात्मक सिद्धि का साधन !! स्वर के माध्यम से सौंदर्य की साधना, रूप और रस की सृष्टि ही गीत अथवा संगीत है। यह निरन्तर विकासशील है और इसकी यह विकसनशीलता, यह प्रवहमानता ही चरम आनन्द की अंतिम परिणति और एकान्विति है; जिसमें परम सत्य, सौन्दर्य और शिव उभयात्मक रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसी नाते भारतीय आचार्यों ने संगीत, काव्य और चित्र को पश्चिमी 'कला' के अन्तर्गत न रखकर विद्या के अन्तर्गत गिना है।

* 'गीतिका' निरालाजी की १९३६ में प्रकाशित १०१ गीतों की पुस्तक है। यह पुस्तक उन्हें अति प्रिय थी। इसे उन्होंने सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया-प्रकृति—श्रीमंती मनोहरा देवी – को समर्पित किया है। अन्तिम रोग से ग्रस्त अवस्था में भी प्रसादजी ने 'गीतिका' की प्रशंसा में कुछ पंक्तिया लिख कर 'गीतिका' के महत्व को प्रतिपादित किया है। एक महा कवि ने दूसरे महाकवि की रचनाओं को समझा है और सराहा है। स्वयं निराला ने 'गीतिका' की भूमिका लिखी है, पुस्तक के प्रयोजन को स्पष्ट किया है जो कवि के संगीत-प्रेम और संगीत-ज्ञान की परिचायक है। पर आलोचक की आलोचना के बिना कृति का मूल्यांकन पूर्ण नहीं हो सकता। अतः 'गीतिका' को भूमिका ही में समर्थ आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उसकी संक्षिप्त समीक्षा की है।

प्रसाद, निराला और आचार्य वाजपेयी जिस कृति में एक साथ दृष्टि गोचर हों, वह निःसन्देह हिन्दी की अद्वितीय कृति होने का गौरव प्राप्त करती है। पर इसका मूल्यांकन अबतक नहीं हुआ है, अपेक्षा है किसी ऐसे आचार्य की जो संगीतज्ञ, कवि और आचार्य एक साथ हों; वही इसकी सही समीक्षा कर सकता है।

(१) देखिये—हिन्दी साहित्य कोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण और स्वर-विधान केवल आनन्द की अभिव्यक्ति ही न होकर साधना राज्य के गूढ़तम रहस्य को भी अपने सिद्धांत से स्पष्ट करते हैं—अपनी अंतिम चरम सिद्धि में काव्य और संगीत पृथक् न रह कर संपृक्त हो जाते हैं—कवि संगीतज्ञ बन जाता है और संगीतज्ञ कवि। काव्य और संगीत दोनों ही अमूर्त, अपार्थिव और अलौकिक सृष्टि के सूत्र बन जाते हैं। काव्य और संगीत के पारस्परिक संबंध का यही रहस्य है। इसमें 'अनेकानेक अन्वेषण' होते रहते हैं और हर युग अपनी मांग की पूर्ति करने में समर्थ होता है। 'समय के भाव और रूप को समझ कर' राग और रागिनियां, तानें और ताल के बन्धन बनें। काल और देश के अनुसार गीत-सृष्टि के रूप में भी परिवर्तन होते गए।

महाकवि निराला ने विधिवत् संगीत का ज्ञान प्राप्त किया था। उनकी रुचि इस कला में थी। लय और ताल की गति के प्रभाव से वे पूर्ण परिचित थे। और साथ ही वे खड़ी-बोली में गीतों की कमी भी जानते थे। कबीर, मीरा, सूर और तुलसी के गीत 'आधुनिकों की रुचि के अनुकूल नहीं रहे थे।' समय के साथ साथ भारतीय संगीत-कला पर विदेशी प्रभाव पड़ते रहे हैं। 'मुसलमानों के शासनकाल में एक नये ढंग की अदायगी देश में प्रचलित हुई।' अंगरेजी संगीत भी अंगरेजों के साथ भारत में आया। इसका अधिक प्रभाव बंगाल पर पड़ा। बंगाल में आधुनिक काल में दो महत्वपूर्ण संगीत-कोटियां प्रचलित हुईं—(१) डी. एल. राय का स्वर—यह अंगरेजी ढंग से निर्मित है पर उसे भारतीयता का रूप दिया गया है। (२) रवीन्द्र संगीत—स्वरमैत्री के विचार से यह और साफ़ अंगरेजीपन लिए हुए है। अदायगी अंगरेजी है पर ये गीत बंधे हुए हैं भिन्न भिन्न रागिनियों में ही।

निरालाजी ने हिन्दी की संत-पदावली और वैष्णव-पदावली को, मध्यकालीन गजलों को, बंगाल के अंगरेजी संगीत-बोध को भली प्रकार समझ लिया था। विद्यापति, चण्डीदास और गोविन्द दास के गीतों से भी वे पूर्णतः परिचित थे। उड़िया के उच्चकोटि के कवियों के गीतों से भी वे भिज्ञ थे। 'गीत-गोविन्द' की 'रस-प्रधान कोमल-कान्त पदावली' से वे प्रभावित थे। संगीत के इस ज्ञान और प्रभाव ने कवि निराला में संगीत के प्रति नए संस्कार तैयार किए। हिन्दी में आधुनिक युगानुकूल गीतों का उन्होंने अभाव देखा। वे लिखते हैं—"इन संस्कारों के फल स्वरूप हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों मुझे खटकने लगे।... मुझे ऐसा मालूम देने लगा कि खड़ी-बोली की संस्कृति जब तक संसार की अच्छी-अच्छी सौन्दर्य भावनाओं से युक्त न होगी, वह समर्थ

३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होगी। उसकी सम्पूर्ण प्राचीनता जीर्ण है। अतः संगीत-कला के ज्ञाता निराला ने नई गीत-सृष्टि का संकल्प किया। उसी का परिणाम है 'गीतिका'।

'गीतिका' नाम से ही संगीत का बोध होता है। 'गीतिका' शब्द का मूल आधार है 'गीत' अथवा 'गीति'। गीत की प्राचीनता का अनुमान इसी से लग जाता है कि भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में इसका विवेचन किया है। वैयाकरणों ने भी इसके लक्षण स्पष्ट किए हैं। अमरकोशकार ने 'गीतं गानमिते समे' और आचार्य हेमचन्द्र ने 'गीतं शाब्दित गानयो द्वारा गीत की गेयात्मकता के महत्व को प्रतिपादित किया है। जयदेव का 'गीतगोविन्द' अपनी गेयता में असाधारण और अद्वितीय है। भारतीय साहित्य शास्त्र में ही नहीं, पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में भी गीत को वही महत्व प्राप्त है। अरस्तू ने काव्य की तीन कोटियों में 'सांग' को स्वीकार किया है। इसीका सामान्य नाम था 'लिरिक।' आज भी काव्य में 'लिरिक' का महत्व पाश्चात्य साहित्य में बहुत है।

निरालाजी ने 'गीतिका' द्वारा हिन्दी साहित्य को सुन्दर गीत दिए हैं। उनकी ही भाषा में—"मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लाञ्छन लगता है, उससे भी बचने का प्रयास किया है। दो-एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दःशास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए हैं। साथ-साथ उनके व्यक्तीकरण में एक कला है.........। वे उस रूप में हिन्दी के न थे, इतना मैं लिख देता हूं। जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल प्रायः सभी प्रचलित हैं। प्राचीन ढंग रहने पर भी वे नवीन कण्ठ से नया रंग पैदा करेंगी।......मैं खड़ी-बोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूं, वह ब्रजभाषा में नहीं।" 'गीतिका' के गीत जीवन की प्रतिष्ठा से निसन्देह पूर्ण हैं। मगर उनके स्वर आज मूक हैं। निराला ने गीतिका की भूमिका में ही लिखा है कि "गीतों की स्वर-लिपि मैं स्वयं करना चाहता था, पर कुछ ऐसी परिस्थिति मेरी रही कि सब तरफ से अभाव ही अभाव का सामना मुझे करना पड़ा। एक अच्छे हारमोनियम की गुंजाइश भी मेरे लिये नहीं हुई। मेरी सरस्वती संगीत में भी मुक्त रहना चाहती हैं, सोचकर मैं चुप हो गया।"—निराला चुप होगये, निराला के साथ उनकी स्वर लिपि भी मूक हो गई। और हिन्दी काव्य व संगीत बंगला के 'रवीन्द्र-संगीत' की भांति "निराला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत" प्राप्त नहीं कर सके। एक महान संगीतज्ञ अपने स्वरों को हारमोनियम के अभाव में व्यक्त नहीं कर सका, यह दुर्भाग्य उसका नहीं, संगीत-कला का है।

निराला के गीत सुनने का सौभाग्य श्री मैथिलीशरण गुप्त, डा० रामविलास शर्मा, श्री रायकृष्णदासजी, श्री दुलारेलाल भार्गव एवं आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को मिला है। 'निराला-संगीत' के साक्षी हैं ये लोग। प्रसादजी ने निराला के कवि को ही नहीं गीतकार को भी समझा था। प्रसादजी ने लिखा है—"निराला जी हिन्दी-कविता की नवीन धारा के कवि हैं और साथ ही भारती-मन्दिर के गायक भी हैं। उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, झनेरी की-सी एक ही मीठी तान नहीं, अपितु उनकी 'गीतिका' में सब स्वरों का समारोह है।" गीतिका के गीतों के प्रति वाजपेयीजी ने लिखा है—"गेय पदों की शाब्दिक सुघरता, संक्षेप में विस्तृत आशय की अभिव्यक्ति, सुन्दर परिसमाप्ति और प्रकाश निरालाजी के काव्य को दर्शन-द्वारा उपलब्ध हुए।...सौन्दर्य की प्रतिमाएं निरालाजी ने व्यक्तिगत जीवनानुभव से संघटित की हैं।...गति के साथ आनन्द और विवेक के साथ भी आनन्द मिला हुआ है। दोनों के संयोग से बना हुआ यह गीति-काव्य विशेष स्वस्थ सृष्टि है।"

'गीतिका' शब्द का निमार्ण 'गीत-गीतिकाव्य' के एकात्मबोध का परिचायक है। छायावाद की कोमला प्रवृत्ति भी इस नामकरण का कारण हो सकती है। इन गीतों में जो गेयात्मकता है वह केवल गीतवाली नहीं वरन छन्दवाली या काव्यवाली गेयात्मकता है। काव्य की चित्रात्मकता और गीत की राग-मयता से ये गीत सम्पुष्ट हैं। पर निराला की स्वर-लिपि के अभाव की पूर्ति क्या कभी हो सकेगी? इसी अभाव की पूर्ति की आशा से शायद अपने पुत्र को संगीतज्ञ बनाने का स्वप्न उस महाकवि ने देखा था।

'गीतिका' के १०१ गीतों की रचना खड़ी बोली में नए गीत देने के निमित्त हुई थी। निःसन्देह ये गीत आज भी बेजोड़ हैं। सरस्वती-वन्दना व भारत मां की वन्दना का समा बान्धते ही 'वरदे, वीणावादिनि वरदे' और भारति, जय, विजय करें' के शब्द-स्वर गूंज उठते हैं। गीतिका का हर गीत गेय है। गेय-पद का संक्षिप्त होना अनिवार्य है, अतः गीतिका के 'गीत' इसी दृष्टि से लिखे गए हैं। दो एक गीतों के अतिरिक्त सब गीत ८ से २० पंक्तियों में ही समाप्त हो गए हैं और वे काव्य की गरिमा और रसवत्ता से पूर्ण हैं, वे गीत की कोमलता से युक्त भी हैं। वे खड़ी-बोली गीत-मंजूषा के अमर रत्न हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतिका की तीन कविताएं----

(१) वरदे, वीणा वादिनि वरदे—

'गीतिका' की पहली कविता (पृष्ठ-३)

यह सरस्वती वन्दना है। सरस्वती देवी है, शक्ति है और वरदे (वर देने-वाली) है। उसका स्वर 'वीणा' की मधुरता में अभिव्यक्त होता है। वह गीत-की देवी है। अतः गीतकार निराला देवी प्रज्ञा से जिस वर की कामना करता है, वह है—

भारत की परतंत्रता को मिटादो। अपनी वीणा की मधुर ध्वनि के द्वारा स्वतंत्रता का स्वर भारत के वायुमण्डल में भर दो। देवी की शक्ति है उसका स्वर, उसकी वाणी। भारत के शक्तिहीन, गुलाम, असहाय जनगण को यह स्वर जीवनी-शक्ति से सम्पन्न करदे।

हे ज्ञान की देवी! तुम मानव के बन्धन स्तर को—वर्ण, जाति, सम्प्रदाय के संकीर्ण बन्धनोंको—काटदो, उसके हृदय के अंधकार, अज्ञान और कलुष को दूर करके ज्ञान का आलोक फैला दो, प्रकाश का निर्झर बहा दो। कलुष, अज्ञान और संकीर्ण वन्धनों से मुक्त होकर मानव-लोक ज्योतिमय हो उठे, ऐसा वर दो।

मानव-लोक का इस नव-ज्योति को पाकर नव निर्माण हो जाये। वह नई शक्ति से सम्पन्न होकर, अमृतमंत्र से पुण्य होकर, स्वतंत्रता से विभोर होकर नव-नव उन्मेष की प्राप्ति करे। वह नई गति, नई लय को प्राप्त करे; उसके ताल और छन्द शक्ति-सम्पन्न-नवीनता से युक्त हों, उसका कण्ठ नवल उद्‌घोष से उसी प्रकार पूर्ण हो जैसे जलद का मन्द्र-रव। इस स्वतंत्रता के वायुमण्डल में मानव नव-स्वर-प्राप्त और नव-पंख-प्राप्त विहग के रूप में विचरण करे।

कवि देवी सरस्वती से स्वतंत्रता का वरदान मांग रहा है। भारत ने स्वतंत्रता को अज्ञान-रत होकर खोया है, ज्ञान-सम्पन्न होकर वह पुनः स्वतंत्रता प्राप्त करे, यही वर देवी दे।

इस कविता में वैदिक ऋषि की सी भावना अभिव्यक्त हो रही है। साम-संगीत का यह नव-रूपान्तर है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हो तेरे चरणों पर मां
गीतिका की बीसवीं कविता (पृ० २२)

कवि जीवन की सम्पूर्ण उपलब्धियों को स्वर्गादपि-गरीयसी मातृभूमि के चरणों में अर्पितकर जीवन को सार्थक बनाने की कामना करता है। जीवन का मार्ग कंटकाकीर्ण है। वह प्रतिपल मृत्यु की ओर अग्रसर होता जा रहा है। महाकाल से दुर्धर्ष संघर्ष में विजय-श्री प्राप्त करने के निमित्त वह शक्ति की याचना करता है। साथ ही अपने हृदय में अश्रुजल से धुली हुई मां की पावन प्रतिमा को प्रतिष्ठित कर अपूर्व शक्ति का संचार करना चाहता है जिससे वह अपने जीवनके कर्मों के फलों को उसके चरणों में उत्सर्ग कर सके। मां की आँखों के आंसू कर्म की प्रेरणा देंगे, मां को स्वतंत्र करने के व्रत को पूर्ण करने का बल देंगे।

कवि विघ्न-बाधाओं के मध्य मां की भक्ति में अटल रहने की आकांक्षा करता है। विषम परिस्थितियों में भी वह अपनी मातृ-भूमि को न भूले, यही उसका काम्य है। वह उसकी कृपा-दृष्टि का अभिलाषी है सदैव उसकी दयादृष्टि चाहता है, हृदय-कमल पर उसकी पावन प्रतिमा को अंकित कर अपने कलुषित नर जीवन को उसकी मुक्ति के निमित्त उत्सर्ग कर देना ही उसके जीवन का परम लक्ष्य है। जीवन के श्रेय को जन्मभूमि की मुक्ति के लिए न्यौछावर करने में ही वह अपने कर्त्तव्य की इति समझता है। मातृभूमि के प्रति अनन्य प्रेम भावना इस कविता में व्यक्त हुई है।

(३) जलादे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन;
क्या करूँगा तन जीवन-हीन ?
गीतिका की ३४ वीं कविता (पृष्ठ—३९)

जीवन उत्साह उन्मेष और शक्ति का प्रतीक है। उत्साह-हीन, शक्तिविहीन जीवन मृतवत है। ऐसा जीवन जीर्ण शीर्ण है, वह निष्प्राण-सा है। ऐसे शक्ति-हीन जीवन की उपादेयता ही क्या ? अतः कवि शक्ति की देवी, से प्रार्थना करता है कि हतोत्साह जीवन को नष्ट करके पुनः नव-शक्ति दो। भारत पराधीनता के कारण शक्ति हीन, उत्साहहीन, दुर्बल और जीर्ण हो गया है, उसकी पराधीनता का विनाश करदो। तुम माया-तन-मानवी रूप में अवतरित होकर देवव्रत जैसे चरित्रवान, दृढ़प्रतिज्ञ, शक्तिशाली, वीर और उत्साही पुत्रों को जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो। वे नर-वीर नवीन शक्ति का संचार भारत-भूमि पर करें। इन नरवीरों के हृदय कमल पर, हे शक्ति-दात्री, तेरे चरणों के चिह्न हों, अर्थात् उनके हृदय में शक्ति के प्रति भक्ति हो। शक्ति का प्रकाश फैला कर हे मां, तुम पुनः दिव्य ज्योति में लीन हो जाओ। अर्थात अवतार रूप में अपने कार्य को पूर्ण करके पुनः दिव्य रूप को प्राप्त हो जाओ

इस कविता में कवि शक्तिदात्री मां दुर्गा से प्रार्थना करता है कि तुम पराधीन भारत की जड़ता को मिटा कर शक्ति का संचार करो।

उक्त तीनों कविताओं में - तीनों गीतों में—कवि स्वतंत्रता की कामना करता है, शक्ति और उत्साह चाहता है। उसकी ये प्रार्थना देवी सरस्वती, भारत माता एवं शक्तिदात्री दुर्गा से है। स्वतंत्रता के प्रति कवि की विकलता इनसे व्यक्त होती है।

साहित्य के विविध पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक नवीन स्तम्भों से परिपूर्ण अपने प्रकार की अकेली साहित्य-प्रधान उच्चकोटि की त्रैमासिक पत्रिका—

समिति वाणी

वार्षिक शुल्क—६ रुपया

प्रकाशक—श्री हिन्दी साहित्य समिति

भरतपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नवीन*

नाम रहस्य :—

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का कलापूर्ण नाम उनके माता-पिता अथवा संबंधियों की देन नहीं, स्वयं कवि की अपनी सृष्टि है। उन्हें माता-पिता से नाम मिला था 'सर्जुकुमार तिवारी'। महिषादल के उच्च माध्यमिक विद्यालय में १९०८ में आठवीं क्लास में जब निरालाजी भर्ती किए गये तब उनका नाम रजिस्टर में सर्जुकुमार तिवारी लिखाया गया था। उस समय उनकी अवस्था बारह वर्ष लिखायी गयी थी। इससे यह प्रमाणित होता है कि उक्त विद्यालय में प्रवेश पाने से पूर्व उनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। विद्यालय में वे आठवीं कक्षा में सर्व प्रथम आए।

कलकत्ता विश्व विद्यालय के समस्त रेकार्ड देख लेने पर मालूम हुआ कि १९०८ से १९१२ तक सर्जुकुमार तिवारी नाम का विद्यार्थी महिषादल से मैट्रिक की परीक्षा में नहीं बैठा। न उसके किसी आवेदन-पत्र का ही पता चलता है जो परीक्षा के लिए लिखा गया हो। इससे यह पता चलता है कि निरालाजी ने मैट्रिक की परीक्षा कलकत्ते से नहीं दी। १९१०-११ के लगभग उनके पिता एक लम्बी छुट्टी लेकर अपने ग्राम चले गए थे। अतः परीक्षा न देने का यही कारण हो सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि सर्जुकुमार तिवारी सूर्यकान्त त्रिपाठी कैसे बन गए? प्रचलित परम्परा के अनुसार निरालाजी का मूल नाम सर्जु या सरजू था, और इसी तरह से नामकरण उस समय प्रायः गांवों में किया जाता था।

महिषादल के वर्तमान राजकुमार श्री देवप्रसाद गर्ग, उनके वर्तमान कामदार और निराला के गांव की महिषादल में रहनेवाली एक वृद्धा से प्राप्त समाचारों के अनुसार उनके पिता उनको 'सरजुआ' कहते थे, और विद्यालय में भर्ती करवाते समय सर्जु के साथ कुमार जोड़ दिया गया, जो स्वाभाविक ही था।

बड़े होने पर कवि की सौन्दर्य-भावना को संभवतः सर्जुकुमार नाम अप्रिय और अनुपयुक्त लगा। उन्होंने सरजू या सर्जु को शुद्ध करके सूरज किया

*प्रो० कल्याणमल लोढ़ा से बात-चीत के आधार पर। स० सम्पा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर उसको तत्सम रूप 'सूर्य' दिया। सूर्य के साथ 'कुमार' उन्हें उपयुक्त नहीं जान पड़ा, सम्भवतः सूर्य कुमार में अन्तर्निहित अर्थ व्यंग्य उन्हें भला न लगा हो। अथवा कुमार की तुलना में कान्त अधिक कोमल और ललित जान पड़ा हो। स्पष्ट है कि 'सूर्यकान्त' में नाद सौन्दर्य और काव्योचित्त उच्चारण है। निरालजी का नाद-प्रेम उनके संगीत-ज्ञान से सिद्ध होता है, और शब्द-चयन का लालित्य उनकी कविता का सौन्दर्य है। अतः अपने नाम को यदि उन्होंने काव्योचित ध्वनि प्रदान की तो उनके स्वभाव के अनुकूल ही है। इसी प्रकार तिवारी से तत्सम शब्द 'त्रिपाठी' करना भी स्वाभाविक ही है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी नाम के साथ 'निराला' उपनाम भी जुड़ा। वही कवि के व्यक्तित्व का पूरक बना। यह उपनाम मतवाला के सम्पादक स्व० महादेव प्रसाद सेठ का दिया हुआ है। उन्होंने कवि को निकट से देखा था, जाना था। उनकी असाधारण प्रतिभा को पहिचाना था। 'निराला' शब्द निरालाजी की असाधारणता का प्रतीक है। और इस प्रतीक की विशालता ही निरालाजी के व्यक्तित्व की विशालता है।

कुश्ती —

महिषादल राजपरिवार में रहते हुए ही निरालाजी ने कुश्ती का शौक प्राप्त किया। उनके पिता भी कुश्ती के शौकीन थे। अतः यह शौक विरासत में ही कवि को मिला। पल्लवित हुआ — महिषादल में राजपरिवार के अखाड़े में निकट से कुश्ती देखकर। सुगठित शरीर, सुन्दर स्वास्थ्य ने इस शौक को बहुत दिन तक जीवित रखा। मन की अस्वस्थता ने ही उन्हें इससे विमुख किया था।

अभिनय —

महिषादल की पुरानी राजबाड़ी में अभी भी एक रंगशाला बनी हुई है। ५०-६० वर्ष पूर्व वह रंगशाला बहुत सक्रिय थी। बचपन से ही निरालाजी अभिनय में भाग लेते थे। आज भी वहां के कुछ वृद्ध लोगों को 'वीर-अभिमन्यु' नाटक में निरालाजी द्वारा किया गया अभिमन्यु का अभिनय खूब याद है।

'निराला' और 'रंगीला'

'निराला' थे 'रंगीला' के सम्पादक। कुछ साथियों के सहयोग से कार्य सहज-रूप से चल रहा था। दो अंक निकल गए थे, तीसरे अंक की सामग्री के मुद्रण की तैयारी हो रही थी। निरालाजी के कुछ सहयोगियों ने उनकी अजानकारी में कलकत्ते के किसी श्रेष्ठि के सम्बन्ध में कुछ अपवाद-सामग्री एकत्रित की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी योजना थी कि उक्त सामग्री के द्वारा वे श्रेष्ठि को डरा-धमका कर द्रव्य लाभ कर लेंगे।

जब कम्पोज्ड सामग्री निराला जी के सामने आई तो उन्होंने उस पर बड़ी आपत्त उठाई। उनके साथियों ने द्रव्य-लाभ करने की अपनी योजना बतलाई। निरालाजी ने क्रोध और आवेश में उस सारी सामग्री को फेंक दिया और कहा-- "त्रैलोक्य के राज्य की प्राप्ति पर भी यह नहीं होगा।"—क्रोध की शान्ति तब हुई जब उन्होंने रंगीला से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। और बिना निराला के 'रंगीला' का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। क्या आज के पत्रकार के लिए यह एक आदर्श नहीं है?

———

"वातायन"

(त्रैमासिक)

पिछले दशक के हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं का सांगोपांग विवेचन!

कथा

कविता

नाटक

शोध

मूल्यांकन करनेवाले हस्ताक्षर—

डा. जगदीश चन्द्र जोशी, डा. ओमानंद सारस्वत

डा. महावीर दाधीच, डा. अम्बाशंकर नागर

डा. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय प्रो. निर्मल तालवार

प्रो. कीर्तिनाथ कुर्त कोटी की सैद्धांतिक बार्ता—

मई '६३ में प्रकाश्य

वार्षिक शुल्क ५.००, विशेषांक २.०० पृष्ठ संख्या ३००

विज्ञापन व प्रति के लिये लिखें

प्रसार व्यवस्थापक

वातायन, ५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर।

शाखा : २२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला साहित्य

श्री कृष्णाचार्य

स्रष्टा की दृष्टि से निराला और उनकी कृतियों का क्रम सदैव के लिये विराम ले चुका है। हमें यह सब यों ही देखते नहीं रह जाना चाहिये। आज के साहित्यकारों के लिये निराला अभी जीवित हैं। भविष्य में भ्रमों की विश्वामित्रीय निरर्थक और हानिप्रद सृष्टि से बचने के लिये आज मानव और साहित्यकार निराला संबंधी साहित्य का वैज्ञानिक, अर्थात् तथ्यपरक अनुबंधन नितांत आवश्यक है। विश्वास है कि सुधी पाठक और निराला को निकट से जाननेवाले साहित्यकार इस सूची को ध्यान से देखेंगे और संपादक को शुद्धाशुद्धि से सूचित करेंगे।

काव्य-साहित्य

अधिवास (रचनाकाल १९१६)

जूही की कली—कलकत्ता, 'मतवाला' के १८ वें अंक में प्रकाशित, १९२३, प्रथम बार यहाँ पूरा नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रकाश में आया।

अनामिका—कलकत्ता, नवजादिकलाल श्रीवास्तव, १९२३, प्रथम काव्य संग्रह, ये सब कविताएँ 'नारायण', 'समन्वय' और 'मतवाला' में छपी थीं।

— प्रथम संशोधित संस्करण। इलाहाबाद, भारती भंडार, १९३८। १९४ पृ० २१ सें० भूमिका में लेखक ने लिखा है : 'इस अनामिका में उसका (सन् १९२३ की अनामिका का) कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं······मेरा उपनाम 'निराला' 'मतवाला' के अनुप्रास पर आया था······अस्तु, उस अनामिका की अच्छी कृतियाँ बाद के परिमल नाम के संग्रह में आ गई थीं।' आरम्भ में लेखक का रंगीन तरुण चित्र है। बाद में महादेव सेठ का भी।

परिमल—लखनऊ, गंगा फाइन आर्ट, १९३०। ६ ठा सं० १९५४ में। इसकी अधिकांश रचाएँ मतवाला में छपीं। ७८ कविताएँ। २३ पृ० की भूमिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतिका—इलाहाबाद, भारती भंडार, १९३६। २१, १०६ पृ० १८ सें०। १॥/१०१ गीत।

तुलसीदास—इलाहाबाद, भारती भंडार, १९३८। ५६,३८ पृ०, भूमिका में २२-१२-३८ तिथि अंकित, ४ था सं० १९५१ 'आदरणीय अग्रज पंडित श्री नारायणजी चतुर्वेदी महोदय के कर कमलों में समर्पित' मुख चित्र (चतुर्वेदी), दूसरा चित्र (लेखक) और रायकृष्णदास कृत ४ पृ० की भूमिका।

अणिमा—उन्नाव, युग मंदिर, १९४३, १०४ पृ० १६ सें० रामविलास शर्मा को समर्पित है।

कुकुरमुत्ता—उन्नाव, युग मंदिर, १९४२, ६४ पृ० १६ सें०।

—२ रा परि० संस्करण। काशी, राष्ट्र भाषा विद्यालय, १८ ४८, ३२ पृ० १८ सें०, भूमिका में ८-७-४८ दिनांक, 'कुँवर सुरेश सिंह को' समर्पित।

अपरा—इलाहाबाद, साहित्यकार संसद्, १९४६ (२००३ वि०) ५, २१६ पृ० २२ सें०।

—२ रा सं० १९५२। २, १७६ पृ० २४ सें०। यह लेखक कृत-काव्य-पुस्तकों से संकलित। चुनाव में महादेवी वर्मा का प्रमुख हाथ।

नये पत्ते—इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशंस, १९४६। १०३ पृ० १८ सें०। इसमें कुकुरमुत्ता की सात और अनामिका की कविताएँ भी हैं। २८ कविताएँ, चित्र सहित, 'गंगाप्रसाद पाण्डेय को सस्नेह' समर्पित।

वेला—इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशंस, १९४६। ९५ पृ०, १८ सें० २) भूमिका में १९४३ ई० अंकित है। जानकी वल्लभशास्त्री का मुख-चित्र, उन्हीं को समर्पित।

अर्चना—इलाहाबाद, कला मंदिर, १९५०। ३ : ११२ पृ० १८ सें० १९५० में लिखे ११२ गीत, 'प्रचलित कुल तालों से समन्वित······आधुनिक गीतों का संग्रह', ३ पृ० की भूमिका, मुखचित्र लेखक का।

आराधना—इलाहाबाद, साहित्यकार संसद्, १९५३। ४ ; ९६ पृ० १८ सें २॥) रचनाकाल—जनवरी १९५१ से दिसम्बर १९५२। ९६ कविताएँ, मुखचित्र लेखक का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत-गुञ्ज—बनारस, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, १९५४, ६४ पृ० १८ सें०, १।)
पृ० १६-३६ तक सुधाकर पाण्डेय कृत भूमिका। पृ० ३९-६४ तक १३ गीत। रचनाकाल—१९५३-५८। पुस्तक के आरंभ में प्रकाशक क्रम के अन्तर्गत लेख की कृतियों की सूची।

कविश्री—झाँसी, साहित्य सदन (चिरगाँव), १९५५। ३९ पृ० २१ सें०
ले० द्वारा संकलित २२ कविताएँ।

निबन्ध और प्रबंध

हिन्दी बंगला का तुलनात्मक व्याकरण (सरस्वती—१९१९).
कविवर श्री चंडीदास (१९२०)
चरखा—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी (१९२५)

रवीन्द्र कविता कानन.

कलकत्ता, निहालचन्द एण्ड कं०, १९२८.
विभिन्न समयों में लिखे गये निबंधों का संग्रह.
——.२ रा सं० वाराणसी, हिन्दी प्रचारक, १९५४. १७५ पृ० १८ सें०, १.००

प्रबंध पद्म

सम्पादक दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ गंगा पुस्तक माला, १९३४.
——.२ रा सं० दिल्ली, भारती भवन, १९५४. १०, १६२ पृ० १८ सें०
प्रथम निबंध संग्रह. स्वामी सारदानन्द जी को भेंट. विषय : शून्य और शक्ति, साहित्य और भाषा, मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य, एक बात, पंतजी और पल्लव, राष्ट्र और नारी, रूप और नारी, हमारे साहित्य का ध्येय, काव्य में रूप और अरूप, साहित्य का फूल अपने ही वृन्त पर.

प्रबंध प्रतिमा

इलाहाबाद, भारती भण्डार, १९४०, ५ ; ३४५ पृ० ; १८ सें०, २.००.
दूसरा निबंध संग्रह. विषयः चरखा. गांधीजी से बातचीत (१९३९), नेहरूजी से दो बातें (१९३९), महात्मा दयानन्द सरस्वती और युगान्तर, नाटक समस्या (१९२४), 'साहित्यिक सन्निपात' या वर्तमान धर्म, रचना सौष्ठव (१९३३), भाषा विज्ञान, बाहरी स्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीनता और स्त्रियाँ, सामाजिक पराधीनता, विद्यापति और चण्डीदास (१९१९), कविवर श्री चण्डीदास (१९२०), कवि गोविंददास की कुछ कविताएँ (१९२९), कला के विरह में जोशी बन्धु (१९२८), हिंदी साहित्य में उपन्यास (१९३३), वर्तमान हिन्दू समाज, प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, मेरे गीत और कली (१९३७, बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृङ्गार वर्णना, हमारा समाज.

पंत और पल्लव

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९४९. ९८ पृ० १८ सें०. सन्त कवियों के समर्थन में और पंतजी पर रोष.

चाबुक

इलाहाबाद, कला मन्दिर (दारागँज), १९ ; १२२ पृ० १८ सें० तीसरा निबंध संग्रह. २२-२३ की आयु में पत्नी के स्वर्गवासका उल्लेख. 'नवजादिक लाल श्रीवास्तव की पुण्य स्मृति में, विषयः मौनकवि, कविवर बिहारी और कवीन्द्र, नन्ददुलारे वाजपेयी, काव्य-साहित्य, कला और देवियाँ, वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति, बहता हुआ फूल, चरित्र हीन, चाबुक.

चयन

संपादक शिवगोपाल मिश्र. वाराणसी, कल्याणदास ब्रदर्स, १९५७. २०४ पृ० १८, ५ सें० ४). निबंध संग्रह. विषयः भाषा की गति और हिन्दी की शैली १९२३, खड़ी बोली के कवि और कविता (१९२९), काव्य-साहित्य (१९३०), हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति (१९२८), हिन्दी के आदि युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, कवि अंचल, साहित्य की समतल भूमि (१९२३), महाकवि रवीन्द्रनाथ की कविता, ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास, तुलसी के प्रति श्रद्धाञ्जलि, अर्थ-अर्थान्तर, महादेवी के जन्म दिवस पर, शक्ति परिचय, पं० बनारसी दास का अंग्रेजी ज्ञान, बंगभाषा का उच्चारण, छत्रपुर में तीन सप्ताह, मनसुखा को उत्तर, कामायनी महाकाव्य परीक्षा, बोलचाल, श्रीराम-कृष्ण, धंतोली की पुस्तकें, प्राच्य और पाश्चात्य, श्री भुवनेश्वर की तारीफ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा साहित्य

अप्सरा

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३२.

——.अन्य सं० १९५४. २७० पृ० १८ सें०.

अलका

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३३.

——७ वाँ सं०. १९५४. २१९ पृ० १८ सें०

लिली

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३३.

——३ रा सं० १९४९; १४३ पृ० १८ सें०. ८ कहानियाँ: पद्मा और लिली, ज्योतिर्मयी, कमला, श्यामा, अर्थ, प्रेमिका परिचय, परिवर्तन, हिरनी. (१९२९-३०-रचनाकाल).

निरूपमा

इलाहाबाद, भारती भण्डार, १९३६.

——७ वाँ सं० १९५४. १४८ पृ० १८ सें० दो अध्याय सुधा में छपे किन्तु कई वर्ष बाद इलाहाबाद में पूर्ण किया.

प्रभावती

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३६, ४, २६४ पृ० १८ सें०

——४ था सं० इलाहाबाद, किताब महल, १९५३. ४, १८० पृ० १८ सें० ऐति० उपन्यास. १-३-१९३६ को लिखी भूमिका में लेखक ने अपनी दिवंगता पत्नी को सश्रद्धा समर्पित किया. २ पृ० का प्राक्कथन रूप नारायण पाँडेय द्वारा। समर्पण—

प्रिय बीबी,

बहुत दिन हुए—अट्ठारह वर्ष,—पन्द्रह वर्ष की तुम नव-वधू होकर घर आई हुई थीं, जहाँ बिना माँ के दो शिशुओं की सेवा में तुम्हें श्रृङ्गार की साधना का समय नहीं मिला; तुम्हारे ऐसे हस्त संसार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नहीं किये जा सकते; मैं केवल अपनी प्रीति के लिये वहाँ यह पुस्तक नयस्त करता हूं; जानता हूं, कालिदास भी तुम्हें 'वीणा-पुस्तक-रंजित-हस्ते' नहीं कर सकते, क्योंकि तुम तबसे आज तक शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला' हो।

सस्नेह - निराला

लखनऊ—१-३-१९३६.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल्ली-भाट :—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३९.

——२ रा सं० १९४७. १४६ पृ० १८ सें० रेखा चित्र.

चमेली :—

१९४२. केवल एक परिच्छेद रूपाभ' में. (अधूरा)

बिल्लेसुर बकरिहा :—

उन्नाव, युग मन्दिर, १९४२. ६१ पृ० २८ सें० रेखाचित्र. यथार्थवादी.

चतुरा चमार :—

इलाहाबाद, किताब महल, १९४५.

७५ पृ० १८ सें० ८ कहानियाँ, चतुरी चमार, सखी (लखनऊ से १९३५ में प्रकाशित), न्याय, राजा साहब को ठेंगा दिखाया, देवी, स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं, सफलता, भक्त और भगवान्।

सुकुल की बीबी :—

इलाहाबाद, भारती भंडार, १९४२.

——अन्य सं० १९४७. ९६ पृ० १८ सें० ४ कहानियाँ।

चोटीकी पकड़ :—

इलाहाबाद, किताब महल, १९४७. १६७ पृ० १८ सें० २.२५. अधूरा (प्रथम-भाग मात्र)

देवी :—

बनारस, राष्ट्र भाषा विद्यालय, १९४८. १५९ पृ० १८ सें० भूमिका लेखनकालः १२-८-४८. महादेवी वर्मा को समर्पित. १० कहानियाँः देवी, भक्त और भगवान्, चतुरी चमार, हिरनी, सुकुल की बीबी, अर्थ, श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, क्या देखा, प्रेमिका परिचय, जानकी.

काले कारनामे :—

इलाहाबाद, केसरवानी प्रेस, १९५०. ८० पृ०.

——२ रा सं० वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, १९६०. १०२ पृ० (पाकेट बुक्स में).

जीवनी

भक्त ध्रुव :—

कलकत्ता, पॉपूलर ट्रेडिंग कं०, १९२६ (रत्नाकर ग्रंथमाला,)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—२रा सं० १९३०. ९६ पृ० १८ सें०

महाराणा प्रताप :—

कलकत्ता, पॉपूलर ट्रेडिंग कं०, १९२५. (रत्नाकर ग्रंथमाला,)
—२रा सं० १९२९ १८६ पृ० १८ सें०

भक्त प्रह्लाद :—

कलकत्ता, पॉपूलर ट्रेडिंग कं०, १९२५. (रत्नाकर, ग्रंथमाला)
—रा सं० १९३०. ११६ पृ० १८ सें०

भीष्म :—

कलकत्ता, पॉपूलर ट्रेडिंग कं०, १९२६ रत्नाकर ग्रंथमाला, १५)
१११ पृ० १८ से० ।

'बालकों के लिये इस महापुरुष के चरित्र की भीष्म पर लिखी गई अंग्रेजी, बंगला पुस्तकों के आधार पर……चरित्र-चित्रण की चेष्टा की है ।' —लेखक

अनूदित साहित्य

महाभारत (संक्षिप्त) :—

लखनऊ, गंगापुस्तक माला, १९९६ वि० (२६-७-३९), १९६ पृ० द्वि स्तंभीय छपाई ।

'यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों, गृह देवियों और बालकों के लिये लिखी गई है ।' निराला,
पं० रामशंकर शुक्ल को समर्पित ।

श्री रामकृष्ण वचनामृत ३ भाग :—

नागपुर, रामकृष्ण आश्रम, १९४२
— २ रा सं १९४७—१९५२,

रामायण—विनय खण्ड :—

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास कृत का अवधी से हिन्दी अनुवाद। काशी, राष्ट्रभाषा विद्यालय, १९४८। (ज्येष्ठ बदी ६, २००५ वि०) पृ० ५-८ तक रामविलास शर्मा कृत भूमिका। 'सुभद्रा कुमारी चौहान की स्मृति में' परिशिष्ट में कठिन शब्दों के अर्थ। ओजपूर्ण भाषा में पद्य बद्ध अनुवाद। सिर पर कपड़ा बाँधे पार्श्व-चित्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में विवेकानन्द :—

नागपुर, रामकृष्ण आश्रम, १९४८।

२ रा सं० १९५२, ६, ४९८ पृ० १८ सें, विवेकानन्द की अंग्रेजी पुस्तक Indi.in lectures का अनुवाद।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत :—

१. आनन्दमठ।
२. कपालकुंडला।
३. कृष्णकान्त का बिल।
४. चन्द्रशेखर।
५. दुर्गेश नन्दिनी।
६. देवी चौधरानी
७. युगलांगुलीय
८. रजनी
९. राजा रानी।
१०. राजसिंह।
११. विषवृक्ष।

गीत-गुँज के आरंभ में 'निराला साहित्य और उसके प्रकाशन' शीर्षक के अंतर्गत इस अनुवाद साहित्य का उल्लेख है और इन पुस्तकों का प्रकाशक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद बतलाया गया है। ये प्रकाशन मुझे कलकत्ते के बड़े-छोटे किसी पुस्तकालय में नहीं मिले। बड़ाबाजार लाइब्रेरी के कैटलाग में केवल 'दुर्गेशनन्दिनी' चढ़ी है, किन्तु पुस्तक कहीं नहीं है। कुमार सभा पुस्तकालय में केवल १९५१ में इंडियन प्रेस से मुद्रित 'आनन्दमठ' के दर्शन हुए और उक्त प्रकाशक के सूचीपत्र में 'विषवृक्ष' व 'कृष्णकान्त का बिल' का विज्ञापन भी है। अतः निराला ने इनका अनुवाद अवश्य किया था। किन्तु, खेद है कि इस अवसर पर प्रथम संस्करणों पर प्रकाश न पड़ सका! 'गीत-गुंज' के अनुसार निराला कृत, पुस्तक भंडार, पटना से 'रस अलंकार', निहालचन्द्र एण्ड कं०, कलकत्ता से 'वात्सायन कामसूत्र' का अनुवाद, और 'वैदिक-साहित्य' का उल्लेख किया है। प्रकाशन तिथि नहीं दी है।

'गीत-गुंज' में अप्रकाशित पुस्तकों की सूची इस प्रकार दी है :—

नाटक – समाज, शकुन्तला, ऊषाअनिरुद्ध, राजयोग।

उपन्यास—फुलवारी, लीला, चमेली, सरकार की आंखें।

और गीत—गोविन्द दास की बंगला कृति (अनुवाद),

उच्छृंखल (ब्रजभाषा में)।

हिन्दी बङ्गला शिक्षक :—

कलकत्ता, पॉपूलर ट्रेनिंग कं०, १९२८।

———

४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला का व्यक्तित्व

डा० दिवाकर झा

साहित्य पूर्णता का प्रतीक है। पूर्णत्व को लेकर ही हम भावों का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं और इस समन्वय का आधार है व्यक्तित्व। व्यक्तित्व की पूर्णता ही पूर्ण विचारों को रूप दे सकती है। साहित्य के क्षेत्र में व्यक्तित्व पूर्णता का माध्यम है। भावों का प्रकाश, जो मूल प्रेरणा बन कर आता है, व्यक्तित्व के द्वारा छनता है। जीवन के घात-प्रतिघात, जो भौतिक हलचल उत्पन्न करते हैं, उनको एक आधार देने के लिए व्यक्तित्व के उस रूप की आवश्यकता होती है जिसको गीता ने स्थितप्रज्ञ बताया है, जहां बुद्धि स्थिर है वहीं विचार भी स्थिर हैं। कोई आश्चर्य नहीं यदि हमारे मनीषियों ने ज्ञान को अपने आप में पूर्ण नहीं बताया अपितु ज्ञान की सिद्धि भक्ति और विवेक में बतायी है। भक्ति का रागात्मक स्वरूप और विवेक का प्रतिध्वनित आधार ज्ञान को संज्ञा देते हैं।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, यदि हिन्दी साहित्य में किसी साहित्यिक के व्यक्तित्व को हम देखते हैं तो निश्चय ही चार साहित्यक ध्यान में आते हैं — विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास और निराला। विद्यापति का सौन्दर्य-बोध तत्व, जिसने राग को अनुराग के रूप में देख कर सिद्धत्व का अनुभव किया; और सूरदास, जिसने भाव को झनकार देकर स्वर उत्पन्न किया; तुलसी, जिसने समाज के स्थूल भाव का भावमय नाटकीय-करण किया और निराला, जिसने साहित्य में अहम् का स्वरूप स्थित किया।

निराला का अहं वह अहं है, जो सृष्टि के मूल में है। ईश्वर ने भी कहा था 'एकोऽम् बहुस्यामि'। अहं का प्रतिगुणित स्वरूप ही सृष्टि है। इष्ट को 'त्वं' प्रदान करना ही सृष्टि का मूल रूप है, और यह रूप प्रदान कौन कर सकता है? जिसने अपने को देखा और समझा है। अहं बोध ही सौन्दर्य बोध है। कारण पशुत्व और देवत्व का समिश्रण यह मनुष्य जब अहं-बोध करता है तो देवत्व की सीमाओं से टकराता है। निराला ने इसी अहं का अनुभव किया और उसे अपनी कविता में अभिव्यक्त किया। निराला का प्रकृति-दर्शन भी इसी भावका परिचायक है। प्रकृति का अर्थ निराला ने लिया—वह तत्त्व है, जो पूर्व निश्चित है, और पूर्व निश्चित स्वरूप ही भाव-संस्कार की मूल वाणी है। किन्तु कृतित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व के विकास का दूसरा नाम है। इसलिए निराला के प्रकृति चित्रण में जहां एक ओर उनके व्यक्तित्व का विकास है वहां दूसरी ओर एक शाश्वत पूर्व निश्चित स्वरूप का भी आभास है। निराला ने प्रकृति को कभी भी झरोखे से झांक कर नहीं देखा है, उन्होंने उसे देखा है उसीमें समाकर।

क्या निराला का व्यक्तित्व सोद्देश्य है? प्रश्न यह उठता है कि व्यक्तित्व का उद्देश्य से सामंजस्य कहां तक है? मैंने यहां सम्बन्ध का उल्लेख नहीं, सामंजस्य का किया है। सम्बन्ध में भौतिक बन्धन है, लेकिन सामंजस्य में अनन्त दिशा का संकेत है। निराला के व्यक्तित्व में जीवन की गतिशीलता प्रतिबिम्बित होती है। कुछ अनजाने स्वरूप में इसी स्वरूप को गीता ने विराट स्वरूप कहा है, जो भौतिक लक्ष्य से ऊपर उठ सकता है और साहित्य के क्षेत्र में जो शब्द के जाल को तोड़ सकता है वही भाव के क्षेत्र में विराट तत्त्व उत्पन्न कर सकता है। मेरी समझ में निराला ने यही किया है। उन्होंने साधारण भौतिक दृष्टियों को देखा और देखकर उन्हें तुच्छ समझा। तुच्छता इसलिए नहीं कि वे तत्त्व छोटे हैं, तुच्छता इसलिए कि उसमें विशालता की स्वच्छता का अभाव है। तो क्या कोई भी साहित्यिक सोद्देश्य रचना कर सकता है? और क्या हम उस रचना को साहित्य कह सकते हैं?

इस पृष्ठिभूमि में हम देखते हैं कि साहित्य में यदि उद्देश्य हो भी तो उसकी परिधि कभी सीमित नहीं रह सकती है, जिस तरह स्वार्थ का विस्तार ही परमार्थ है। निराला ने जिस रूप को देखा उस रूप को अपने व्यक्तित्व द्वारा बढ़ाया, या यों कहिए अपने आप वे बढ़ गए। अब चाहे आप इसे उद्देश्य कहें अथवा अचेतन विस्तार की स्वाभाविक क्रिया।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या निराला का अहं संसार का सन्देश है? कुछ अर्थ में यह भारत की शाश्वत परम्परा का एक क्रमिक अंग है, चाहे शंकर को लें अथवा बुद्ध को, विवेकानन्द को लें अथवा चैतन्य को, उन्होंने जीवन का दर्शन जीवन में किया। यह अहं का सहज स्वरूप है। और यही सहज तत्त्व संसार के लिए एक सन्देश है। इस सहजपन में कोई नया नहीं, कोई पुराना नहीं। जो दर्शन करता है वही उसका आभास प्रदर्शित करता है। इसलिए इस सन्देश को निराला से पृथक तत्त्व न मान कर निराला ही मान लें। क्योंकि साहित्य उनका सन्देश नहीं, जीवन का भाव उनका माध्यम नहीं, वाणी था। यदि कोई सन्देश के लिए उत्सुक है तो कहना पड़ेगा कि निराला का सन्देश संदर्भ युक्त है, और वह संदर्भ है साधनामय पूर्णत्व।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिवाद और निराला

श्री लालबहादुर सिंह

जीवन को पूर्णता की ओर उन्मुख करनेवाली गति को ही प्रगति की संज्ञा दी जाती है। गति का सम्बन्ध मानव के तन, मन और आत्मा से है किन्तु साहित्य में उसका तात्पर्य हुआ करता है मानसिक गति से। युगों से संचित मानव का मानसिक अंशदान ही साहित्य है। युग की परिस्थितियाँ एवं भावनाएं साहित्यकार एवं साहित्य दोनों को प्रभावित करती हैं। इसीलिए युग विशेष का साहित्य अपना वैशिष्ट्य रखता है। हिन्दी साहित्य के विविध युगों का साहित्य इसका पुष्ट प्रमाण है। आदि काल का साहित्य यदि वीर भावना से ओत-प्रोत है तो भक्तिकाल का भक्ति भावना से। इसी प्रकार रीति युग में भी श्रृंगार भावना की प्रधानता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य भी नवीन विचारों एवं भावनाओं से पूर्ण प्रभावित है। इस युग के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं नैतिक परिवेश का साहित्य पर प्रचुर प्रभाव है। राष्ट्रीय, छायावादी, रहस्य-वादी, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी काव्यधाराएं युग की ही उपज हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता के विविध 'वादों' में एक प्रमुख वाद है प्रगतिवाद। छायावाद के उपरान्त व्यापक नवीन सामाजिक चेतना से युक्त साहित्य प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य के नाम से अभिहित किया गया, जिसमें मानवतावादी भावना की प्रधानता रही—आदर्श एवं कल्पना की जगह यथार्थवादिता एवं उदारता ने ले ली। इस धारा की ओर पाठकों एवं लेखकों का ध्यान १९३६ ई० में स्थापित प्रगतिशील लेखक-संघ ने आकृष्ट किया। छायावाद विशेषतः कविता के क्षेत्र में ही सीमित रहा किन्तु प्रगतिवाद एक व्यापक जीवन दृष्टि के साथ साहित्य के प्रायः सभी क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हुआ। यह 'वाद' रचनात्मक साहित्य के विविध क्षेत्रों में तो परिव्याप्त हुआ ही, आलोचना का मानदण्ड भी बना। इसने सम्पूर्ण मानव जाति को अपनी परिधि में समेट लिया। अनेक समर्थ कवियों एवं लेखकों ने अपनी साधना से इस धारा को पुष्ट किया। प्रेमचन्द्र, यशपाल, राहुल जी, डा० रामविलास शर्मा, निराला, पंत, दिनकर, सुमन आदि इसके आधार-स्तम्भ हैं।

हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों एवं कवियों में महाप्राण निराला का विशिष्ट स्थान है। वे एक बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। वे चरित्र एवं स्वभाव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण मानव हैं। अतः उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह भी सम्पूर्ण मानवों के लिए। "सामाजिक हिताहित की चिन्ता न करके मनमाना साहित्य लिखना वैसा ही है जैसा महमूद मियाँ का अपने बकरे की पूँछ की तरफ से जिबह करना।"—यह है साहित्य के सम्बन्ध में महामना निराला की धारणा। उन्होंने कभी-भी किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता की परवाह कर नैतिकता या संस्कृति के नाम पर रूढ़ियों को छिपाना अच्छा नहीं समझा। उनकी लेखनी ने जहाँ एक ओर प्रजातंत्र का गुणगान किया वहाँ दूसरी ओर दलितों, पीड़ितों एवं शोषितों के मार्मिक चित्र भी अंकित किए, जन जागरण की प्रभाती भी गाई। उनकी प्रगतिवादी रचनाओं में वैयक्तिकता का स्वर कहीं भी निस्वन नहीं सर्वत्र मानव मात्र की आन्तरिक एवं बाह्य स्थितियों का मार्मिक चित्र अंकित है।

महाप्राण निराला की रचनाओं में प्रगतिवाद की जैसी व्यापक अभिव्यक्ति हुई है वैसी अन्य साहित्यकारों में नहीं। कारण यह है कि निराला का साहित्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। साथ ही जिस प्रकार सामाजिक एवं वर्गगत आर्थिक विषमताओं की जैसी चक्की में उन्हें पिसना पड़ा, वैसी कटुस्थिति का अनुभव अन्य साहित्यकारों को नहीं। निराला का यही कटु अनुभव सामाजिक क्षेत्र में वितृष्णा की भावना का मूल कारण है। कवि के मानस शतदल पर इस का प्रभाव पड़ा। समाज के शोषितों एवं पीड़ितों के प्रति कवि के मन में भावात्मक एवं क्रियात्मक सहानुभूति जागृत हुई। कवि के मन में व्यंग्यात्मकता का प्रादुर्भाव हुआ जिसके माध्यम से उसने व्यक्ति एवं समष्टि के जीवन का जीता-जागता चित्र अपने साहित्य में अंकित किया। जीवन की सच्ची अनुभूति ही उनकी सशक्त लेखनी द्वारा जिस प्रवाह के साथ काव्य में अभिव्यक्त हुई है उस गति से गद्य साहित्य में भी उसका स्रोत फूट पड़ा है। अतः गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में निराला का प्रगतिवादी स्वरूप मूर्त हो उठा है। सर्व प्रथम पद्य में उनके इस रूप का दर्शन करेंगे तदुपरान्त गद्य-साहित्य में। उभय-पक्षों के स्पर्श के बिना निराला का पूर्ण प्रगतिवादी स्वरूप जानना संभव नहीं।

उनकी लेखनी से जिस प्रवाह में कविता निःसृत हुई है उसी गति से गद्य का भी स्रोत फूट पड़ा है। अतः पद्य एवं गद्य दोनों विधाओं में निराला का प्रगतिशील रूप पूर्णतया अभिव्यक्त हुआ है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का इतिहास निराला जी के 'कुकुरमुत्ता' एवं 'नयेपत्ते' के प्रकाशन से प्रारम्भ होता हैं। इन दोनों कृतियों में कविने व्यंग्य के सहारे सामाजिक दुरावस्था, नैतिक पतन, धार्मिक आडम्बर, राजनैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाल एवं आर्थिक विषमता के विविध पक्षों पर पूर्ण प्रकाश डाला है। "कुकुर मुत्ता" में सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं पर व्यंग्य किया गया है। इसका व्यंग्य व्यापक पृष्ठभूमि पर आधारित है, मानवीय भावनाओं एवं सूक्ष्म दृष्टि का द्योतक है। सर्व प्रथम समाज के उस उच्च वर्ग पर व्यंग्य कसा है जिसमें निम्न वर्ग तिरस्कृत है, उसका कोई स्थान नहीं है। 'कुकुर मुत्ता' निम्न वर्ग का प्रतीक है और 'गुलाब' उच्च वर्ग का। इसमें उन साम्यवादियों पर भी करारी चोट है जो अपने सिद्धान्त को पुष्टि के लिए वैदिक विचार धारा से लेकर आधुनिकतम को भी एकांगी दृष्टि से देखते हैं। इसमें तथा कथित प्रयोग एवं प्रगतिवादी कवियों पर भी तीखा व्यंग्य किया गया है। इस प्रकार इसका व्यंग्य अनेकोन्मुख है। इसकी रूपरेखा युग की भावनाओं की परिचायक है। व्यंग्य युग पर किया गया है।

'नये पत्ते' में व्यंग्यात्मक ढंग से युगकी प्रगतिशीलता पर कवि ने दृष्टिपात किया है। भाव की दृष्टि से जीवन के नये परिवेश एवं युगकी नई जनवादी काव्य धारा का द्योतक है। इस रचना में कवि अधिक सामाजिक है, वाह्योन्मुख और शास्त्रीय है। इस संग्रह की प्रथम एवं प्रमुख रचना है 'रानी और कानी' जिसमें मातृहृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में निराला जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। विवाह योग्य होने पर रानी की व्यथा, माँ की चिन्ता एवं वेदना के फल स्वरूप आँसू रूप में परिणत हो जाती है। उसका रुदन समाज पर एक तीखा व्यंग्य है। 'मास्को डायलग्स' शीर्षक कविता में साहित्य में अनाधिकार प्रवेश करने वाले समाजवादी नेताओं पर गहरा व्यंग्य किया गया है। इस संग्रह की अनेक रचनाओं में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के शोषण का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। लक्ष्मी की महिमा का प्रभाव आज के युग के लेखक, कवि और साहित्यकार सब पर है। सभी सामन्तों के मुखापेक्षी हैं। धर्म के नाम पर व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों के दुष्परिणाम और उनके प्रति विद्रोह की भावना इस संग्रह की अनेक कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। "चर्खा चला" में मानव विकास के नवीन बोध का आग्रह है। काव्य में नित्य नवीनता का संकेत है। जिस प्रकार बाल्मीकि रामायण धरती की कथा है उसी तरह निराला की कविता भी सामाजिक चेतना और नवीन बोध से आप्लावित है। 'गर्म पकौड़ी' 'डिप्टी साहब आये,' 'झींगुर डटकर बोला' में कृषकों की दयनीय दशा और शासकों की क्रूरता पर करारी चोट की गयी है। 'महगू मंहगा रहा' कविता में राष्ट्रीय नेता और गाँधीवादी नीतिपर व्यंग्य किया गया है साथ ही निम्न वर्ग की स्थिति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा चित्र भी अंकित किया है। 'देवी सरस्वती' इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण तो है ही, ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। ऐसा यथार्थ चित्रण अन्यत्र दुर्लभ ही है।

'बेला' तृतीय काव्य संग्रह है जिसकी कुछ रचनाओं में लोक जीवनकी मार्मिक झांकी तो मिलती ही है, यत्र-तत्र जन-क्रान्ति की भावना भी अभिव्यंजित है। इसके गीतों में नवीनता का भेरी गान, पूंजीपतियों का विरोध, सर्वहारा के प्रति सहानुभूति, समाजिक व्यवस्था में परिवर्तन, मुक्ति गीत आदि अत्यन्त आकर्षक हैं। इन कविताओं में कवि का क्रान्तिकारी स्वरूप उभर आया है। ये गीत प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रबल स्रोत हैं। किन्तु कवि यहाँ साहित्यकार कम जनगीतकार विशेष रूप में है। जन काव्य के रूप में इन गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रगतिवादी काव्य की सम्पूर्ण विशेषताएं इनमें सन्निहित हैं।

'अणिमा' के गीतों में जीवन का विषाद विशेष रूप में वर्णित है। वास्तव में कवि के जीवन की गाथा दुख ही रही है अतः अत्यधिक विषाद एवं विषमता विद्रोह भाव के रूप परिणत हो गए हैं। समाज के विकलांग पर, रूढ़िबद्धता पर कवि का अन्तःकरण पुकार उठता है, व्यथा की गांठ खोलकर रख देता है—

स्नेह निर्झर बह गया है,
रेत-सा तन ढह गया है।

इसी तरह 'मैं अकेला' में भी जीवन की अतिशय वेदना की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है—

मैं अकेला देखता हूं, आरही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती आ रही है, हट रहा मेला।

महाप्राण निराला के प्रगतिशील स्वरूप का दर्शन उनकी गद्य-कृतियों में भी होता है। उनके रेखा चित्रों, कहानियों एवं उपन्यासों में घटनाओं एवं पात्रों का नियोजन मानवतावादी दृष्टिकोण से किया गया है। यद्यपि गद्य की अपेक्षा पद्य में चित्रात्मकता की विशेष अपेक्षा रहती है फिर भी निरालाजी के रेखा चित्र निराले हैं। वे हल्की रेखाओं एवं रंगों में वर्णमय चित्र प्रतीत होते हैं। गद्यकार की गौरव-गरिमा से समन्वित लेखक ने पात्रों का मूर्त चित्र अपनी कृतियों में अंकित किया है। अपनी विविध रचनाओं में निराला जी ने अनेक सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्याओं, धार्मिक रूढ़ियों एवं वर्गगत विषमताओं का दिग्दर्शन कराया है और समाज के पुनर्निर्माण का स्वर उठाया है।

'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्ली भाट' निराला जी के अत्यन्त सफल रेखा-चित्र हैं। इन दोनों रचनाओं में उनका प्रगतिशील स्वरूप पूर्ण उभर कर आया है। तथाकथित समाज के राजनैतिक और धार्मिक ठेकेदारों पर कठोर प्रहार किया है। यह दिखाया है कि हमारे समाज में विडम्बना की सीमा नहीं है। सच्चे, सरल, सज्जन, देश सेवक अनेक यातनाएं झेलते हैं, संघर्ष रत रहकर टूट जाते हैं किन्तु समाज के नामधारी अगुआ अपनी साम, दाम, दंड और विभेद की नीति द्वारा अपना उल्लू सीधा करते हैं। 'बिल्लेसुर बकरिहा' तो ग्रामीण जीवन का हस्तामलक है। ग्रामीण जीवन की रूढ़ियों, गरीबी, संकुचित दृष्टिकोण एवं मूढ़ता का जैसा यथार्थ चित्रण इसमें किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। विधवाओं एवं अनाथों की करुण-कथा अत्यन्त मर्मस्पर्शी है।

निराला जी की कहानियों में भी हमारे समाज के विविध पक्षों का सजीव चित्र अंकित है। इनकी कहानियों का आधार हैं सामाजिक समस्याएं। इनमें धर्म, राजनीति, कला, अछूतोद्धार, विधवा विवाह आदि की समस्याओं का भी पर्याप्त विवरण उपलब्ध होता है। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं—लिली, सखी सुकुल की बीबी आदि। 'चतुरी चमार' और 'देवी' निराला जी की अन्यतम कहानियाँ हैं। इन दोनों कहानियों में रेखाचित्र की भी विशेषताएं उपलब्ध होती हैं। इन दोनों की विशेषताएं हैं—कटु यथार्थ एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण। समाज के उपेक्षित वर्ग की दयनीय स्थिति का जैसा मूर्त रूप इन कहानियों में अंकित किया गया है वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। वर्ग भेद के कारण समाज का निम्न वर्ग किस प्रकार शोषण-चक्र में पीसा जा रहा हैं इसका उदाहरण है चतुरी चमार एवं देवी जी का शोषित जीवन। यातनाओं को झेलतें हुए यह वर्ग नैतिकता और सचाई का दामन आज भी पकड़े हुए है जब कि शोषकों की स्थिति पूर्णतया विपरीत है। ये चित्रण प्रगतिशील साहित्य की परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। 'देवी' का चरित्र तो प्रगतिशील साहित्य की पराकाष्ठा है।

कहानियों के अतिरिक्त अप्सरा, अलका, निरुपमा, चोटी की पकड़ आदि उपन्यासों में निराला का प्रगतिशील रूप दृष्टि गत होता है। 'अप्सरा' में वेश्याओं की समस्या उठाई गई है। 'अलका' में ग्रामीणों पर ढाये जाने वाले अत्याचारों का सजीव चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है। पूंजीपतियों एवं जमीं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारों के विलासी जीवन एवं अनैतिक कार्यों का पर्दाफाश किया गया है 'चोटी की पकड़' में। इस तरह निराला जी के गद्य-साहित्य में भी वर्त्तमान सामाजिक जीवन के नैतिक, धार्मिक, राजनैतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। विविध घटनाओं के सन्दर्भ में सामाजिक विकृतियों का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं गतिशील रूप में किया गया है।

इस प्रकार निराला साहित्य का आलोड़न कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जहाँ एक ओर कवि की प्रगतिशील दृष्टि कुकुर मुत्ता, नये पत्ते की विविध रचनाओं, विधवा, भिखारी, तोड़ती पत्थर आदि कविताओं में परिलक्षित होती है और उनमें सहानुभूतिपूर्ण मानवतावादी स्वर ध्वनित हुआ है वहाँ दूसरी ओर बिल्लेसुर बकरिहा, कुल्ली भाट, चतुरी चमार, देवी, अप्सरा आदि रचनाओं में सामाजिक समस्याओं एवं वर्गगत विषमताओं के चित्र अनूठे बन पड़े हैं। बिना रंग के ही चित्र अप्रतिम हैं। वास्तव में निराला ने वादग्रस्त होकर साहित्य सृजन नहीं किया किन्तु उनका लोक दर्शन (प्रगतिवादी-साहित्य) व्यक्ति समाज और राष्ट्र निर्माण में सन्निहित है। उन्हें दल विशेष से सम्बद्ध करना घोर अन्याय है। स्वस्थ एवं उदात्त मानवतावादी विचार ही प्रगतिवादी निराला का मूल स्वर है, उसमें ही उनका अप्रतिम पौरुष व्यक्त है। इसी रूप ने उन्हें जन-गणमन का अधिनायक बना दिया है।

बंगीय हिन्दी परिषद का नया प्रकाशन

"अनुदान"

नेफा और लद्दाख में भारत के सीमान्तों की रक्षा में रत भारत के जवानों को समर्पित है।

मूल्य—३.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि निराला और रहस्यवाद

श्री पवन कुमार
एम. ए.

रहस्यवाद एक व्यापक शब्द है। यह उतना ही पुराना है, जितना की स्वयं मानव और उसकी सृष्टि। सृष्टि के आदि काल से ही उसकी परंपरा मिलती है। अव्यक्त एवं अगोचर के प्रति जिसने भी कुछ सोचा, समझा, उसकी अभिव्यक्ति रहस्यवादी अभिव्यक्ति कहलायी। भगवान के सच्चे स्वरूप को किसी ने आज तक पहिचाना नहीं। यथार्थ जगत् में रहकर किसी ने उसके विराट रूप को देखा नहीं, केवल कुछ सफल साधकों ने उसकी विशाल सत्ता एवं महिमा का अनुभव किया। अपने अपने अनुभव के आधार पर अनेक संतों, विद्वानों एवं साधकों ने सृष्टिकर्त्ता का रूप खड़ा किया, उसे संवारा तथा उससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया। उसके अनेक रूप बतलाये। ऋग्वेद के एक श्लोक में कहा गया है कि इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुवर्ण, यम, मातारिश्वान् आदि भिन्न भिन्न देवता उसी एक सत्ता के अनेक रूप हैं, अनेक अंग है—

> इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः ससुवर्णो गरुत्मान्।
> एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः॥
>
> ऋ० १।१६४।४६॥

सारी सृष्टि उसी दिव्य सत्ता से आलोकित है। अतः उस सत्ता से सम्बन्धित जितने भी छन्द, पद एवं दोहे रचे गये, सभी रहस्यवाद के नाम से अभिहित हुए। जहाँ सिद्धों एवं नाथों की रहस्यभावना अधिक साधनात्मक है वहीं पर बाद के कवियों की रहस्यभावना अधिक भावात्मक है। सन्त कवि, सूफी कवि तथा अन्य फुटकल वर्गों के कवियों ने भी अपने-अपने अनुभवों के आधार पर उस सत्ता का चित्रण किया है तथा उससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य के आदि काल से लेकर आज तक के काव्यों में उस परम सत्ता का रमणीय रूप परिलक्षित होता है।

आधुनिक काल का रहस्यवाद चार स्तम्भों पर आधारित है—प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी वर्मा। चारों स्तम्भों पर प्रकाश डालना मेरा अभीष्ट नहीं। अतः मैं —'निराला के रहस्यवाद' पर ही प्रकाश डालूँगा। महाकवि निराला एक उच्चकोटि के रहस्यवादी कवि हैं। इनका रहस्यवाद आध्यात्मिक वर्णनों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष सम्बन्ध रखता है। इनके रहस्यवाद में आध्यात्मिक एवं धार्मिक चिन्तन की मधुर शीतल छाया परिलक्षित होती है। इन्होंने माया अद्वैत, मुक्ति, विराट तत्व आदि का वर्णन उपनिषदों के आधार पर किया है। निराला जी ने ईश्वर की कल्पना 'माँ' के रूप में भी की है। उनपर रामकृष्ण मिशन की विचारधारा का बहुत प्रभाव पड़ा है। इन्होंने 'परिमल' के पंचवटी प्रसंग में बतलाया है कि परम तत्त्व की उपलब्धि के लिये भक्ति की अतीव आवश्यकता है। राम पंचवटी प्रसंग में दार्शनिक तत्त्व का निरूपण करते है तो लक्ष्मण भक्ति तत्त्व का। राम कहते हैं कि जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं। दोनों एक हैं। पर अविद्या माया उन्हें अलग कर देती है। जीव जब माया की इस कुचाल को समझ जाता है तब उसे अद्वैत दृष्टि प्राप्त हो जाती है और उसे भगवान् का दर्शन मिल जाता है—

व्यष्टि और समष्टि में नहीं है भेद, भेद उपजाता भ्रम --
माया जिसे कहते हैं।

व्यष्टि औ समष्टि में समाया वही एक रूप, चित्रघन, आनन्दकन्द
चेतावनी देती जब चेतना कि छोड़ो खेल; जागता है जीव तब
योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म, सूक्ष्माति, सूक्ष्म हो जाता।

[परिमल, पृष्ठ २३०—२३१]

इन्होंने भक्ति को विशेष मान्यता दी है। कवि लक्ष्मण के मुख से पंचवटी प्रसंग में भक्ति की स्थापना करा रहा है—

मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रहे काफी है।
सुधाधर की कला में अंशु यदि बनकर रहूं तो अधिक आनन्द है
अथवा यदि होकर चकोर कुमुद नैश गन्ध।

(परिमल पृष्ठ २२३)

निराला जी ने आध्यात्मिक अद्वैत का प्रकाशन 'मैं' शैली में किया है। जीव ब्रह्म का ही अंश है, यह मानकर, उन्होंने अपनी 'तुम और मैं' नामक सुप्रसिद्ध कविता में भक्त और भगवान के विविध सम्बन्धों का अच्छा चित्रण किया है। कवि का यह दृढ़ विश्वास है कि जहाँ-कहीं भी भगवान है वहाँ भक्त भी किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। भक्त और भगवान का सम्बन्ध अवर्णनीय है। दोनों आपस में इतने घुले मिले हैं कि दोनों में कोई अन्तर नहीं। अन्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर है तो आकार का, भाव का नहीं। इस सिद्धान्त की पुष्टि निम्न लिखित कविताओं से हो जाती है—

तुम तुंगहिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता,
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता;
तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भव सागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा।

[अपरा, पृष्ठ ५९]

निराला जी ने अव्यक्त तत्त्व के साथ अपने हृदय के भाव सुमनों की व्यंजना भी सुन्दर गीतात्मक शैली में की है। अविद्या माया की सीमा के उस पार कोई अपरिचित अनजाना व्यक्ति रहता है। कवि उसके बारे में जानने के लिये अपनी जिज्ञासा प्रगट करता हुआ कहता है—

कौन तम के पार ? -(रे कह)
अखिल पल के स्रोत जल-जग, गगन घन घन धार
गन्ध व्याकुल-कूल उरसर लहर कच कर कमल मुख पर
हर्ष अलि हर स्पर्श-शर, सर गूँज बारम्बार (रे, कह)

[गीतिका—पृष्ठ—१४]

कवि जीव से कहता है कि तू ही ब्रह्म है, तू क्यों उसे इधर उधर खोजता है।

'स्पर्श मणि तू ही अमल अपार' रूप का फैला पारावार
व्यष्टि में सकल सृष्टि का सार, कामिनी की लज्जा शृंगार,
खोलते खिलते तेरे प्राण, खोजता उसे कहाँ नादान।

[गीतिका—पृष्ठ —१९]

निराला जी ने अव्यक्त तत्त्व को नारी के रूप में देखा है। वह एक महान नारी है। प्रकृति के समस्त रमणीय तत्त्व उसके विभिन्न अंग प्रत्यंग है। उस नारी का रूप बड़ा ही मोहक है तथा उसका हृदय स्नेह की बूँदों से सिक्त।

"कौन तुम शुभ्र किरण वसना, सीखा केवल हंसना,
केवल हंसना, शुभ्र किरण वसना,

मन्द मलय भर अंग गन्ध मृदु बादल अलकावलि कुंचित ऋजु
तारकहार चन्द्रमुख मधु ऋतु, सुकृत पुंज अशना।

[गीतिका—पृ०—३४]

निराला जी ने प्रकृति के माध्यम से भी अव्यक्त के प्रति अपने मार्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धों का अच्छा चित्रण किया है। 'सन्ध्या सुन्दरी' इसका उदाहरण है। इन्होंने खिले हुए कमल को अव्यक्त का धवल धार्मिकधाम माना हैं। 'परिमल' की पवित्र पंक्तिया इस सिद्धान्त को अच्छी तरह, प्रतिपादित करती हैं। प्रत्येक सफल रहस्यवादी कवि की तरह इनके रहस्यवाद के मूल में भी वेदना से करुणा, विषाद और नैराश्य का स्वर सुनाई पड़ता है। इन्होंने जहाँ जीवन के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण किया है वहाँ पर इन्होंने जीवन के तमोमय पक्ष का भी उद्घाटन किया है। एक चित्रण देखिये—

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।
मेरा अन्तर वज्र कठोर, देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुख की गहन अन्धतम निशि न कभी हो भोर।

[अपरा—पृष्ठ—६०]

इन्होंने अन्तः साधना, पूत भावना तथा जीवन की समरसता पर विशेष जोर दिया है। इनका रहस्यवाद इनके जीवन दर्शन एवं चिन्तन से आच्छादित है। इन्होंने अव्यक्त की प्राप्ति के लिये शक्ति की साधना पर विशेष बल दिया है तथा बतलाया है कि बिना साधना के शक्ति नहीं मिलती। निराला जी ही वे प्रथम महामानव हैं जिन्होने हिन्दी काव्य के आधुनिक रहस्यवाद में साधना की अवतारणा की है। इन्होंने 'तुलसी दास' नामक अपने काव्य में प्रकृति के रूप में दिव्य सत्य की सुन्दर व्याख्या की है—

'केवल विस्मित मन, चिन्त्य नयन
परिचित कुछ भूला, ज्यों प्रियजन—
ज्यों दूर दृष्टि की धूमिल तन तट रेखा,
हो मध्य तरंगा कुल सागर
निः शब्द स्वप्न संस्काराम
जल में अस्फुट छवि छायाधर यों देखा'।

[तुलसी दास १५ वां पद]

प्रायः ऐसा देखा गया है कि रहस्यवादी कवि अव्यक्त का गीत गाकर लोक-निरपेक्ष और पलायनवादी हो गये हैं। लोक की दीनता पर उनकी दृष्टि ही नहीं पड़ी है। वे अन्तर्मुखी हो गये हैं। पर हमारे महाप्राण निराला इसके अपवाद हैं। इन्होंने अव्यक्त अगोचर का गीत भी गाया है तथा लोकजन के लिये बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के लिये मंगलमय कार्यों का श्रीगणेश भी किया है। इन्होंने अपने लिये लोक को नहीं भुलाया है बल्कि लोक के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने को भुलाया है। इनकी 'उद्बोधन' और 'मुक्ति' नामकी कविताएँ इसी कोटि में आती है। आधुनिक रहस्यवाद की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि कवि अव्यक्त का गीत भी गाता है तथा उससे विश्व कल्याण के लिये, नव निर्माण के लिये निवेदन भी करता है। देखिये —

आँखों में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत,
बिखर झर जाने दे प्राचीन।
बार-बार उर की वीणा में कर निष्ठुर झंकार,
उठा तू भैरव निर्जर राग।

[अनामिका, पृ०—६७]

कवि अव्यक्त तत्त्व का आह्वान कर उसके मधुर शीतल स्पर्श से संसार को सुखमय बनाना चाहता है—

पल प्रकाश को शाश्वत कर !
हरित हृदय पर मन्द उतर !

[आराधना पृ० ४१]

समुद्र के पार उस अव्यक्त रहस्यमय का रहस्यमय राजमहल है। कवि कितनी स्वाभाविक मुद्रा में उसकी जिज्ञासा करता है—

'पार पारावार जो है स्नेह से मुझको दिखादो,
रीति क्या ? कैसे नियम ? निर्देश कर कर के सिखादो।
कौन से जन, कौन जीवन, कौन से गृह, कौन आँगन,
किन तनों की छाँह के तन, मान-मानस में लिखा दो।

[आराधना, पृ० ४२]

वास्तव में महाप्राण निराला रहस्यवाद के एक दृढ़, निर्भीक, पौरुषसम्पन्न और अमर काव्यकार हैं। इन्होंने जाने-अनजाने में रहस्यवाद का मधुर गीत गाया है। इनके 'रहस्यवादी गीत कहीं मुक्तछन्द में हैं तो कहीं शास्त्रीयशैली में। इनपर अगर कहीं बंगीय साहित्य का प्रभाव पड़ा है तो वे काशी के दिग्गज पंडितों की छाया से भी दूर नहीं रहे हैं। इनके छन्दों में सुकुमारता, कोमलता और समरसता की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। इस प्रकार निराला जी एक उच्चकोटि के रहस्यवादी कलाकार हैं। जब तक सृष्टि रहेगी और नील गगन में चाँद सितारों की दुनिया आबाद रहेगी तब तक निराला अमर रहेगा और जन मानस मन्दिर में पूजा प्राप्त करता रहेगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्राण निराला

श्री अनन्त मिश्र

माँ भारती के वरद पुत्र और हिन्दी के यशस्वी कवि महाप्राण निराला का पंच भौतिक शरीर अब इस संसार में नहीं रहा है, किन्तु उनकी अमर कृतियाँ आज भी हमारे मन-प्राण को झंकृत कर जाती हैं। उनकी अन्तरात्मा का प्रकाश आज भी हमारा पाथेय है। महाकवि की अन्तर वाणी उनके काव्यों के माध्यम से सम्पूर्ण भारत में आज भी अभिगुञ्जित हो रही है। जन्म और मृत्यु प्रकृति का शाश्वत नियम है। इस पृथ्वी पर जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अनिवार्य है। किन्तु कुछ ऐसी भी विभूतियाँ आती हैं जो अपनी कृतियों के चलते अमरत्व प्राप्त कर लेती हैं। यही कारण है कि हमारे आचार्यों ने कवियों और साहित्यकारों के अमरत्व में दृढ़ आस्था प्रकट की है। महाकवि निराला ऐसी ही विभूतियों में से एक थे। वे केवल कवि ही नहीं, युगद्रष्टा और मानवतावादी भी थे। साहित्य के विभिन्न-अंगों को परिपुष्ट करते हुए उन्होंने युग को एक नयी चेतना दी। यह सभी जानते हैं कि निराला का जन्म और लालन-पालन संघर्षों में ही हुआ तथा संघर्षों के अन्धड़ और तूफान में ही उनका अवसान भी हुआ। जीवन के जिन कठोर संघर्षों से होकर महाकवि को अपनी जीवन-यात्रा पूरी करनी पड़ी उनकी अनुभूति और स्मृति आज भी हृदय को कम्पित कर देती है। अगर महाकवि को संघर्षों की इस अग्नि-परीक्षा से नहीं गुजरना पड़ता तो उनकी जीवन सरिता की गति किस ओर जाती यह कहना कठिन है। कल्पना कीजिये कि महाकवि का जन्म किसी राज परिवार में अथवा समृद्ध माता पिता के घर में हुआ होता और उनका लालन-पालन भी उन सौभाग्य शाली राजपुत्रों की तरह हुआ होता जो सोने चाँदी के ढेर में पैदा होते हैं और जीवन के समस्त भौतिक सुखों का उपभोग करते हुए विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं तथा अन्ततः, उस मृत्यु का वरण करते हैं जो जीवन की अन्तिम गति है। फिर क्या आप आशा करते हैं कि महाकवि की लेखनी से जन क्रान्ति की वह ज्वाला फूटती जिसमें दुखियों और पीड़ितों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का करुण क्रन्दन प्रतिध्वनित होता ? हम नहीं जानते कि महाकवि के जीवन की धारा उस स्थिति में किस ओर जाती किन्तु इतना निश्चित है कि मानव जीवन के संघर्षों की करारी चोट से उनका कोमल हृदय विदीर्ण न हो पाता। संघर्षों और पीड़ाओं से महाकवि के जीवन को एक शाश्वत गति और प्रेरणा मिली है। उन पीड़ाओं और वेदनाओं ने उन्हें जन-जन के हृदय का सम्राट बना दिया है अतः मेरी धारणा है कि कवि का संघर्ष मय जीवन उनके लिए अभिशाप नहीं, वरदान था। दुख, दैन्य, पीड़ा, वियोग और मानव के प्रति मानव द्वारा किये जाने वाले अन्याय ने उन्हें एक ऐसी क्रान्ति की ज्वाला धधकाने की प्रेरणा दी जिसमें समाज की सम्पूर्ण विषमतायें और सारी वेदनायें भस्मीभूत हो जायें। उन्होंने सामाजिक विषमताओं पर गहरा आघात किया। कवि की वाणी केवल सौंदर्य और साधना तक ही सीमित नहीं रहती है बल्कि वह विश्व को जागरण का नूतन सन्देश देती है। कायरता और दीनता कवि को सह्य नहीं है। तभी तो वह ललकारता है :—

तुम हो महान
तुम सदा हो महान,
है नश्वर दीन भाव,
कायरता, काम परता,
ब्रह्म हो तुम
पदरज भर भी है नही
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार।

कवि का क्षोभ और रोष यहीं शान्त नहीं होता। गुलाब के माध्यम से वह समाज के उन लोगों को फटकारता है जो दूसरों के श्रम पर वैभव का प्रासाद खड़ा करते हैं और फिर गर्व के साथ अपने वैभव की प्रशंसा भी करते हैं। कवि कहता है: –

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगों आब।
खून चूसा खादका तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की बहुमुखी प्रतिभा केवल एक क्षेत्र और वर्ग विशेष तक ही सीमित नहीं रहती। एक ओर जहाँ 'जूही की कली' का स्वच्छन्द प्रणय-व्यापार दिखलायी पड़ता है वहीं दूसरी ओर 'जागो फिर एक बार' का क्रान्ति घोष सुनाई पड़ता है। अध्यात्म और साधना की पराकाष्ठा 'राम की शक्ति पूजा' में है। तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, आराधना, अर्चना आदि के माध्यम से महाकवि साधना का सन्देश देते हैं। 'परिमल' में निराला की भक्ति भावना का पूर्ण निखार हो आया है। 'कुकुरमुत्ता' और 'नयेपत्ते' में कवि की क्रान्तिकारी भावना का परिचय मिलता है।

निराला ने केवल काव्य का ही सृजन नहीं किया बल्कि उपन्यास और कथा साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने अपूर्व सफलता अर्जित की है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे एक निर्भीक और साहसी पत्रकार भी थे। 'मतवाला' 'सुधा' आदि पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन में आपका प्रमुख हाथ था। यद्यपि वे कवि के रूप में ही अधिक विख्यात रहे तथापि पत्रकार के रूप में भी उनकी सफलतायें कुछ कम न थीं। पत्रकार के रूप में आपने जो निबन्ध लिखे वे भी कुछ कम प्रभावशाली न थे, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत और उर्दू साहित्य के ज्ञाता तो थे ही, वेदान्त और दर्शन का भी आपके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। क्रान्तदर्शी कवि बादल को क्रान्ति का प्रतीक मानकर गा उठता है:—

भय के माया मय आंगन पर,
गरजो विप्लव के नव जलधर।

फिर कवि लिखता है:—

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर।
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार,

यह निराला का संघर्षमय जीवन है जो उनके काव्य के माध्यम से प्रतिध्वनित हो उठता है। निराला ने जिस समय हिन्दी काव्य कानन में प्रवेश किया था उस समय देश परतन्त्र था, किसानों, मजदूरों और पीड़ितों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। सामाजिक न्याय और सुरक्षा की प्राप्ति का कोई मार्ग न था। साम्राज्यवाद और सामन्त शाही के बन्धनों में जकड़ा हुआ देश कराह रहा था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः यह स्वाभाविक था कि निराला अपने चतुर्दिक के वातावरण से प्रभावित होते। यद्यपि निराला ने सौन्दर्य और साधना के अनेक गीत लिखे हैं तथापि पीड़ितों और दलितों की मूक वेदना से भी वे अप्रभावित नहीं रहे हैं। कवि का भावुक हृदय देश के दैन्य पर केवल रोता ही नहीं है बल्कि वह क्रान्ति की रणभेरी भी बजाता है। यही निराला के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। सम्पन्न मनुष्य की प्रशस्ति गान के लिए कभी उन्होंने अपनी लेखनी को कलंकित नहीं किया। वैभव का माया मृग कभी उन्हें अपनी ओर आकर्षित न कर सका। वैभव को उन्होंने साध्य नहीं बल्कि साधन ही माना।

महाकवि निराला की मृत्यु से हिन्दी का एक महान स्तम्भ तो टूट ही गया किन्तु सबसे दुखद बात यह हुई कि पीड़ित मानवता का एक महान सेवक और पुजारी भी उठ गया। आधुनिक युग के कवियों में वे ही ऐसे थे जिन्होंने मनुष्य की अन्तर्वेदनाओं का गहराई से अध्ययन किया। उनकी पावन स्मृति और आर्य ऋषियों जैसा महान व्यक्तित्व आज भी विस्मृत नहीं हो पाता। उनके अन्तिम दर्शन का सौभाग्य कलकत्ता में ही प्राप्त हुआ था जबकि मेरे विशेष आग्रह पर वे निर्धारित समय से दो घण्टा पहले ही 'सन्मार्ग' कार्यालय में पधारे और कुछ देर बातें करके चलते बने। अन्य अतिथि जब निर्धारित समय पर आये तो निरालाजी कार्यालय से जा चुके थे। फिर उन्होंने 'पतझर' शीर्षक अपनी एक कविता 'सन्मार्ग' के दीपावली विशेषांक के लिए प्रकाशनार्थ भेजी। ऐसा मालूम पड़ा कि सब कुछ नाटकीय ढंग से हो गया। वे पवन वेग की तरह आये और चले गये। आज उनकी पावन स्मृति में हम श्रद्धा के शतशः सुमन समर्पित करते हैं।

अनंग

भारतीय काव्य में कामदेव पर प्रथम महाकाव्य।

मूल्य—५.००

कवि—डा० पुत्तूलाल शुक्ल 'चन्द्राकर'

प्रकाशक—बंगीय हिन्दी परिषद;

१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,

कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसौटी पर

धरती है बलिदान की

लेखक—श्री शान्ता कुमार;

प्रकाशक—भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली—१.

आज इतिहास जाग उठा है। उसकी कहानी मुखर हो उठी है। 'धरती है बलिदान की,' उसका एक स्वर है। शीर्षक स्पष्ट करता है कि मातृभूमि को अगणित बलिदानों का मूल्य चुका कर प्राप्त किया है, उसकी रक्षा करना आज हमारा एक-मात्र धर्म है। जिस तरह हमारे पूर्वज हमें गौरवमय बलिदान की थाती दे गए हैं हम आनेवाली पीढ़ियों को उसे सौंप सकें तभी अपने कर्तव्य और धर्म को पूर्ण कर सकेंगे।

सन् १८५७ के बाद गुलामी की शृंखला की कड़ियों को टूटने योग्य बनाने का प्रयास जिन देश-भक्तों ने किया उनकी अकथ कहानी यह लघु पुस्तक प्रकट करती है।

पहली कहानी - 'सत्तावन के बाद पहली चिनगारी' है। यह नरवीर वासुदेव फड़के की वीरता और देशभक्ति की कहानी है। रोमोशी जाति के इस सेनापति से अंगरेज कांप उठे थे। २० जुलाई १८७९ को वासु पकड़ा गया। अदन की वधशाला की कराल कोठरी में भयंकर यातनाओं से तड़पा-तड़पा कर उस दिव्य आत्मा का अन्त किया गया।······रोटी सेंकने की सलाखों से वासु का पूरा शरीर छेद डाला गया और जब खून से तरबर हो गया तो उल्टा करके छत से टांग दिया गया। यह सिलसिला पूरे साल भर चलता रहा . .. ।

वासु भारत में जनतंत्र स्थापित करने की घोषणा करने वाला १८५७ के बाद का पहला राजनैतिक बन्दी तथा क्रान्ति मार्ग का उद्गाता था।

गुलामी अभिशाप है। इसकी सबसे बड़ी विडम्बना है—कि देशभक्तों को फांसी की डोर में लटककर, तोप के सामने खड़े होकर और जीवित जल कर अपने प्राणों की आहूति देनी पड़ती है। अमानुषिक अत्याचारों को सहन करना पड़ता है। देशभक्त ही ऐसी यातनाएं सहन कर सकते हैं।

रामसिंह कूका, दामोदर बालकृष्ण, वासुदेव (चाफेकर बन्धु), वारीन्द्र घोष, खुदीराम बोस, प्रफुल्लचन्द्र चाकी, मदनलाल ढींगरा, कन्हाई, सत्येन्द्र बसु, भाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालमुकुन्द, बलराज, मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, वसन्त कुमार, गेंदालाल दीक्षित, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह आदि अगणित वीरों के बलिदान की कहानियां इस लघु पुस्तक में संकलित हैं। वीर सावरकर, लोकमान्य तिलक, रासबिहारी बसु, रानाडे और लाला लाजपत राय पुस्तक के हर पृष्ठ पर छाए हैं। कहानियां परिचित होते हुए भी जिस ढंग से प्रस्तुत की गई हैं, अति रोचक, कलात्मक एवं प्रभावोत्पदक हैं।

'साईमन वापस जाओ' नारे के साथ साईमन कमीशन का विरोध करने के लिए लाहौर की जनता उमड़ पड़ी थी। नेतृत्व कर रहे थे इस जलूस का लाला लाजपत राय! और उस दिन जो नृशंस लाठी चार्ज हुआ उसीने लाला जी के प्राण लिए। उन्होंने अपने अन्तिम भाषण में कहा - 'जो सरकार निहत्थी प्रजा पर इस प्रकार के नृशंस आक्रमण करती है उसे सभ्य सरकार नहीं कहा जा सकता।' साथ ही उन्होंने भविष्य वाणी की – "I declare that the blows struck at me will be the last nailsi n the coffin of the British rule in India." लालाजी की मृत्यु पर स्वर्गीय चित्तरंजन दास जी की धर्म पत्नी, माता वासन्ती देवी (वे अभी जीवित हैं) ने कहा—"मैं जब यह सोचती हूं कि कमीने और हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था, एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को जो इतना वृद्ध, इतना आदरणीय और भारत के तीसकोटि नर-नारियों को इतना प्यारा था, तब मैं आत्मापमान के भावों से उत्तेजित होकर कांपने लगती हूं। क्या देश का यौवन और मनुष्यत्व आज जीवित है? क्या वह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सा को उसकी लज्जा और ग्लानि को अनुभव करता है। मैं इस भारत भूमि की एक स्त्री, मैं इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर चाहती हूँ। पूर्व इसके कि हमारे प्यारे लाजपत की चिताभस्म ठंडी हो भारत का मनुष्यत्व और युवक-समाज आगे आए और जवाब दे।"

माता वासन्ती के ही स्वर में मानों आज भारत माता स्वयं देश के यौवन और मनुष्यत्व से उत्तर मांग रही है चीनी आततायियों के बर्वर आक्रमण का।

'धरती है बलिदान की' पुस्तक की भूमिका विनायक दामोदर सावरकर ने लिखी है। और उनका कथन सत्य है कि स्वाधीनता संग्राम का श्रेय केवल कांग्रेस को नहीं है। उनके ही शब्दों में—"इतिहास एक पवित्र वस्तु है। उसके साथ किसी प्रकार की भी तोड़-मरोड़ एक निन्दनीय कृत्य समझा जाएगा। भारत के इतिहास की पवित्रता को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि अपनी भरी जवानी में जीवन की सभी उमंगों पर ठोकर मारने वाले उन सशस्त्र क्रान्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारियों की निःस्वार्थ देश भक्ति का ठीक मूल्यांकन किया जाए।" आज वही पवित्र इतिहास पुनः करवट बदल रहा है। इस समय में लेखक का यह प्रयास स्तुत्य है। वे हमारी बधाई के पात्र हैं।

दमयन्ती तालवार

बिहार की महिलाएँ

(राजेन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ)—सम्पादक—स्व० आचार्य शिवपूजन सहाय

प्रकाशक—महिला चर्खा समिति, पटना।

'राजेन्द्र अभिनन्दन ग्रंथ' में डा० राजेन्द्र प्रसाद के महान कार्यों का इतिहास नहीं है, उनके व्यक्तित्व की झांकियाँ भी नहीं हैं। पर वे उसमें उस चन्द्र आभा के समान छाये हैं जिससे प्रेरणा और प्रकाश पाकर बिहार-वृन्त पुष्पित और पल्लवित हुआ है। बिहार की महिलाओं की उन्नति व प्रगति के राजेन्द्र बाबू प्रेरणा स्रोत रहे हैं। 'प्राचीन बिहार की यशस्विनी नारियों' की कड़ी जोड़ी है 'स्वतंत्रता संग्राम में बिहार की महिलाओं ने', और इस सत्कार्य में निसन्देह देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने अगणित स्त्रियों व पुरुषों का पथ प्रदर्शन किया है। 'पुनर्जागरण की बेला में नारी' का योग भी महत्वपूर्ण है।

भारतीय महिलाएँ अनुपम पातिव्रत्य, निर्भयता, सहनशीलता, क्षमा, आदर्श, वात्सल्य, त्याग, तथा दृढ़चरित्र के लिए सदा से सुविख्यात हैं। इस ख्याति में बिहार का भी योग रहा है। भारत के इसी भूखण्ड में मर्यादापुरुषोत्तम राम की अर्द्धांगिनी महाशक्ति देवी सीता का आविर्भाव हुआ था। और उनका अनुकरण परवर्ती अनेक महिलाओं ने किया।

'बिहार की महिलाएं' एक अमूल्य साहित्यिक उपलब्धि है, बिहार की महिलाओं के त्याग, बलिदान तथा आदर्श इस ग्रंथ द्वारा हमारे सामने चित्रवत् समक्ष आ जाते हैं। श्रीमती राजवंशी देवी, श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी, श्रीमती रमावती देवी, श्रीमती ललिता देवी आदि के चरित्र से भारत की नारियां सुदीर्घ काल तक शिक्षा ग्रहण करती रहेंगी ; अनुप्राणित एवं अनुप्रेरित होती रहेंगी।

इस ग्रंथ की भाषा बड़ी ही सुगम और सरल है। इसके लोक गीतों की भाषा अपनी आंचलिकता में भी प्रभावपूर्ण है।

दुःख की बात यह है कि इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के सम्पादक—सौम्यसन्त आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवपूजन सहाय एवं देशरत्न राजेन्द्र प्रसादजी दोनों ही आज नहीं रहे। हमारा विश्वास है कि 'बिहार की महिलाएं' ग्रन्थ के प्रचार और अध्ययन से दोनों दिव्यात्माओंको शान्ति मिलेगी।

श्री अवनीश त्रिपाठी

रणमत सिंह—

लेखक—डा० श्याम सुन्दर लाल दीक्षित
प्रकाशक—भारतीय संस्कृति विद्यापीठ, रीवा, मूल्य—१.००.

सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता संग्राम के अमर शहीद ठाकुर रणमत सिंह बघेल के जीवन में परिव्याप्त देश-प्रेम और स्वतंत्रता को वाणी देने वाला यह सुन्दर खण्ड-काव्य है। सन् सत्तावन की शताब्दी के अवसर पर रीवा के 'दरबार कालिज' का नाम परिवर्तित करके 'ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महा विद्यालय' रखा गया। इस खण्ड-काव्य के रचयिता डा० दीक्षित इसी महा विद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। वे भी आजादी की लड़ाई के एक सैनिक (१९२८ से १९४७ तक) रहे हैं। अतः स्वतंत्रता संग्राम के वीर सैनानी रणमत सिंह के प्रति श्रद्धार्पित करना उनके लिए स्वाभाविक ही है।

रणमत सिंह खण्ड-काव्य की इक्कीस पृष्ठों की भूमिका निसन्देह साहित्य के ही नहीं इतिहास के विद्यार्थियों के लिए भी महत्वपूर्ण है—मुख्यतः खण्ड-काव्य के लक्षणों के लिए और सन् सत्तावन के इतिहास के लिए।

इस खण्ड-काव्य में ९ सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में भारत की परिक्रमा द्वारा कवि ने देश-दर्शन करवाया है। उसके बाद नायक के जन्म, बाल्यकाल की वीरता आदि के साथ कथा का विकास होता है। तीसरे सर्ग की 'दो घटनाएं' रणमत के चरित्र का विकास करती हैं। 'आल्हा' के द्वारा कथानक की रोचकता संधि-स्थल पर बढ़ गई है। पांचवें सर्ग में इतिहास प्रसिद्ध 'रोटियों' का वर्णन है—

प्रिय बन्धु अपने देश की रक्षित रहें सब 'रोटियां'
इस हेतु बांटी जा रहीं, संघर्ष की यह गोटियां"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवें सर्ग में तात्या टोपे को रणमत का आमंत्रण-पत्र महत्वपूर्ण है। आठवें सर्ग का 'क्योटी संग्राम' चरित्र नायक की वीरता व रणकौशल का परिचायक है। नवें सर्ग में दीनबन्धु पाण्डे का कलंक प्रकट होता है। उसने रणमत को बन्दी बनवाया। इस समय रणमत के शब्दों में भविष्य मुखरित होता है—

यह स्वतंत्रता की आग। बुझी है नहीं, उड़ेगी जाग॥
चाहती है यह अनुपम रक्त। प्रकट हों जिससे लाखों भक्त।"

और रणमत की माता का शौर्य भी प्रकट होता है, जिसने पुत्र के प्राणों से अधिक स्वतंत्रता को सम्मान दिया। अन्त में आगरा की जेल में नवम्बर १८६० में तीस वर्ष की उम्र में उस नरवीर रणमत को फांसी दी गई। फांसी के क्षणों में प्रिय मित्र रणजीत राय का मिलन मृत्यु के वरण को और अधिक उल्लासमय बना देता है।

खण्ड काव्य का कथानक हमारे लिए मन्दिर सा पावन है। हिमालय सा महिमामय है। भाषा सरल और प्रवहमान है।

—रेखा बोस

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रकाशक—डा० मिश्र अभिनन्दन समिति ; राजनाँद गाँव, मध्यप्रदेश

डा० मिश्र अभिनन्दन समिति द्वारा प्रकाशित यह कृति डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अनोखा प्रकाश डालनेवाली है। इसमें डा० मिश्र के जीवन या कृतियों की समीक्षा ही नहीं वरन् उनकी मौलिक रचनाओं के मार्मिक स्थल भी संकलित हैं जो पाठकों की भाव वृत्ति एवं जिज्ञासा को तृप्त करने वाले हैं। सम्पूर्ण कृति विषय-क्रम से तीन खण्डों में विभाजित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड में डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के जन्म-स्थान एवं वंशादि का परिचय दिया गया है। साथ ही मिश्र जी के जीवन के विविध पहलुओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। 'आत्म-परिचय' शीर्षक से प्रकाशित संस्मरण में डाक्टर साहब के जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं तथा उनके जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों की भी चर्चा की गई है। निसंदेह उनकी समाज सेवा और साहित्य साधना पाठकों की प्रेरणा और शिक्षा का स्रोत है।

द्वितीय खण्ड में डाक्टर साहब की कृतियों की विशद सूची साहित्य प्रेमियों के लिए उपयोगी है। इसी अंश में उनकी मौलिक रचनाओं के उत्कृष्ट स्थलों का संकलन भी है जिसका पद्य-भाग हमारी भावना वृति को तृप्त करने वाला है तो गद्य-भाग जिज्ञासा तृप्ति और विचार वृद्धि को। डा० (कुंवर) चन्द्रप्रकाश सिंह का समीक्षात्मक निवन्ध "मानस के महान व्याख्याकार डा० बलदेव प्रसाद मिश्र" डाक्टर बलदेव प्रसाद मिश्र के भक्त, कवि, व्याख्याकार, एवं विचारक के स्वरूप का पूर्ण निरूपक है। डा० (कुंवर) चन्द्रप्रकाश सिंह ने डा० मिश्र को आधुनिक युग का तुलसीदास कहा है। निस्सन्देह उन्होंने गोस्वामी जी द्वारा निरूपित जीवनादर्शों के ढाँचे में अपने जीवन को पूर्णतया ढाला है।

अन्तिम खण्ड परिशिष्टांक है जिसमें डाक्टर साहब के अभिनन्दन के अवसर पर प्रेषित देश के विविध क्षेत्रों के विद्वानों की अनमोल शुभ कामनाएं हैं। इस अंश में डाक्टर साहब को प्रदत्त कतिपय मान पत्रों का भी संकलन है। पुस्तक की भाषा साफ सुथरी है, छपाई भी पूर्ण स्वच्छ है। समग्ररूप में कृति पूर्ण उपादेय पठनीय और संग्रहणीय है।

विशेष—अभिनन्दन समिति ने डा० मिश्र को उनके जन्म दिवस पर चतुःषष्ट्यब्द पूर्ति पर रजत मंजूषा में मानपत्र सहित १०००) की थैली भेंट की। डा० साहब ने उस राशि को समिति को पुनः साहित्यिक कार्य के निमित्त सौंप दिया। उसी राशि से यह ग्रन्थ समिति ने प्रकाशित किया, एवं निर्णय किया कि उक्त ग्रन्थ की बिक्री से जो आय होगी वह प्रतिरक्षा कोष में दे दी जायेगी। हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक के सम्मान द्वारा एक वरिष्ठ साहित्यकार का ही नहीं देश-सेवा का भी सम्मान करेंगे।

श्री लाल बहादुर सिंह

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुदान—

मूल-लेखक बलाई चन्द मुखर्जी, अनुवादक श्री गोपाल माहेश्वरी 'प्रताप'—प्रकाशक—बंगीय हिन्दी परिषद् ; १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता —१२. पृष्ठ संख्या १७६, मूल्य. ३ रु० ५० न० पैसे।

'वनफूल' श्री बलाईचन्द मुखर्जी अपने शिल्प विधान के कारण बँगला साहित्य में प्रभूत ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनकी कहानियाँ—लघु-कथायें आकार-प्रकार में वस्तुतः इतनी अर्थ-गौरव एवं सौष्ठव से परिपूर्ण होती हैं कि पाठक उन्हें आद्योपान्त पढ़े बिना रह नहीं सकता। एक निश्चित परिधि में कथा-शिल्प की उत्कृष्ट कलात्मकता तथा रसोपलब्धि की सहज एवं सरल अभिव्यंजना 'वनफूल' की अनुपमेय विशेषता है।

बंगीय हिन्दी परिषद् ने वनफूल जी की कतिपय श्रेष्ठ कहानियों का संकलन 'अनुदान' के नाम से हिन्दी संसार को सोल्लास समर्पित किया है। अहिन्दी-भाषाभाषी प्रदेश में परिषद् का यह ठोस सर्जनात्मक कार्य सच्चे माने में 'अनुदान' है।

अनुक्रमणिका में ३५ कहानियों की सूची दी गई है। श्री गणेश 'नीम का पेड़ और कवि' से होता है। शीर्षक के पढ़ने से तुरन्त मन में भाव उठता है कि नीम के पेड़ का कवि के साथ क्या औचित्य ? प्राचीनकाल से आज तक उपमानों के उपकरण भी इस वृक्ष से नहीं ग्रहण किये गए बल्कि निम्बौरी को दाख की तुलना में निकृष्ट बतलाया गया है; फिर भी वनफूल को नीम के पेड़ की याद आई वसन्त ऋतु में। लेखक धीरे से, चुपके से वनौषधि का प्रसंग प्रस्तुत करके एक कविराज (वैद्यराज) के रूप में उसके महत्त्व पर प्रकाश डालता है। फलतः कुतूहल और बढ़ जाता है कि नीम के पेड़ का कविराज के साथ औचित्य युक्ति संगत है, न कि कवि के साथ! कथा-शिल्पी इस नन्हीं सी कहानी में अपने शिल्प का चूड़ान्त निदर्शन तो लिपिबद्ध करता ही है, साथ ही पारिवारिक एवं सामाजिक हितैषणा के लिए गृहकर्म निपुण मझली बहू की भावना की अनुभूति भी सहज संवेदनशील कवि के अलावा अन्य किसी को होती होगी, निसन्देह नहीं कहा जा सकता।

जीवन के स्वास्थ्य के लिए जितनी उपयोगिता नीम के पेड़ की है उतनी ही, प्रत्युत उससे भी अधिक उपादेयता सुन्दर समाज एवं परिवार की स्वास्थ्य-रक्षा के निमित्त 'गृहकर्म निपुण मझली बधू की है। समाज, राष्ट्र एवं विश्वबन्धुता की आधार भूमि सुलक्षणा गृहिणी के भ्रू-विलास पर अवलम्बित है; नहीं तो अनेकानेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना ग्रन्थियाँ कलेजे का रक्त चूस कर मानव समाज का भयावह कंकाल खड़ा करके अट्टहास करतीं। हमारा समाज सद्गुण-संपन्न सुलक्षणाओं का शरीर नोच डालता है परन्तु यह प्रक्रिया जीवन का सब रस पीकर प्याली की तरह फेंकने वाली घृणित एवं निन्द्य है।

वनफूल की लघु कथा मर्म पर सीधे प्रभाव जमा कर मानव समाज की स्वार्थ-परता एवं निर्ममता का पर्दाफाश करती है। लेखक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है। परन्तु व्यर्थ के प्रवचन सुनाना या उपदेशों से व्यस्त एवं क्लान्त मानव मनको बोझिल करना उसे अभीष्ट नहीं। इसीसे वह नन्हीं-मुन्नी कहानियों में ठीक वैसे ही सौष्ठव औदार्य, विनिश्चितार्थत्व एवं भावग्रंथियों का उन्मीलन करता है जैसे रससिद्ध कवीश्वर बिन्दु में सिन्धु तरंगायित करने में सफलता प्राप्त करता है। अथवा शिल्पी पिण्ड में ब्रह्माण्ड का सौन्दर्य सत्य एवं शिव देखने की लालसा से नारी-प्रतिमा की सृष्टि करके उसमें अपनी साधना से प्राण प्रतिष्ठा करता है। 'नदी' कहानी में जीवन का निसर्ग सिद्ध प्रवाह अबाध गति से बहता है; उसे सहस्रबन्धन बन्दी बनाकर नहीं रख पाते फलतः आदरिणी नायिका रूढ़ि ग्रस्त समाज के मुँह पर थप्पड़ मार मुसलमान से शादी कर लेती है।

लेखक प्रकारान्तर से समाज की पुराण पंथी रूढ़ियों पर बड़ी उग्रता से कशाघात करता है, परन्तु क्या मजाल कि कला एवं रस का दुर्विपाक हो। इसी तरह हर कहानी अपने में एक जबरदस्त भावना, समस्या एवं मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि का सुलझा हुआ रूप लाकर खड़ा करती है। इसी से प्रत्येक कहानी अपने में पूर्ण सिन्धु सी असंख्य उत्ताल तरंगों का आन्दोलन छिपाये हुए मानव जीवन के अन्ध विश्वासों की शिलाओं पर आघात करती जाती है, पर असीम सागर सी भारतीय संस्कृति की मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं होने पाता। 'कर्तव्य भावना की कोरी कल्पना की धूलि नहीं फाँकता और नाहीं गलदश्रुभावुक की तरह हिचकियाँ भर-भर कर रोता ही है। कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ सेनापति नर्स के प्यार की मोहिनी मूठ का शिकार बन जाता है, पन्तु सहसा उसे याद आता है ये नर्स विषकन्या मायाविनी छलना है, गुप्त रूप से सैन्य-संचालनकी गति विधिका पता लगाने आई है। फलतः उपभोग की वेदी पर क्षात्र धर्म भावना का शिकार बनकर अनुताप नहीं करता जबकि विषकन्या अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई अपनी सुजात-अंगयाष्टि का राष्ट्र हित अनुदान देकर कृतकार्य होती है।

'वनफूल' की चेतावनी वर्तमान सैन्यसंचालकों की आंखें खोलने के लिए पर्याप्त है। आशा है इस 'अनुदान' का पूर्णतः समादर होगा।

श्री अवध प्रसाद वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार-पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून १८५६

के अन्तर्गत "जनभारती" नामक समाचार-पत्र से संबन्धित स्वामित्व तथा अन्य बातों का ब्योरा (प्रपत्र—४)

१. प्रकाशन का स्थान ...बंगीय हिन्दी परिषद,
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

२. प्रकाशन की अवर्तिता .. त्रैमासिक

३. मुद्रक का नाम ...श्री लालबहादुर सिंह
राष्ट्रीयता ....भारतीय
पता ....बं० हि० परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

४. प्रकाशक का नाम ...श्री लालबहादुर सिंह
राष्ट्रीयता ....भारतीय
पता ....बं० हि० परिषद्; बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

५. सम्पादक का नाम ...डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
राष्ट्रीयता ...भारतीय
पता .. बं० हि० परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

६. अन्य साझीदार .. बंगीय हिन्दी परिषद्, (एक-मात्र स्वामी)
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

मैं, लालबहादुर सिंह, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सही हैं।

लालबहादुर सिंह
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

२० अप्रेल, १९६३

श्री लालबहादुर सिंह द्वारा स्वस्तिक मुद्रणालय २७/१ बी, कार्नवालिस स्ट्रीट, से मुद्रित एवं बंगीय हिन्दी परिषद, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२ से प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद-प्रकाशन

१ मीरा स्मृति ग्रन्थ	१५.००	सं आ० ललिता प्रसाद सुकुल एवं अन्य
२ भारतेन्दु कला	४.५०	सम्पादित
३ जनभारती कबीर-अंक	१.१२	सम्पादित
४ काव्य तरंगिणी	२.१२	सम्पादित
५ काव्य कला-निधि	१.७५	सम्पादित
६ निबन्ध कुसुमाकर	१.२५	सम्पादित
७ नवकथा	१.००	अनु० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
८ मीराबाई का जीवन चरित्र	१.५०	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
९ काव्यचर्चा	२.२५	ले० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
१० मेघदूत	५.००	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
११ बुन्देले हरबोलों के मुँह 'जिसने' सुनी कहानी	५.००	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
१२ भारतेन्दु के दो नाटक	२.५०	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
१३ मानस में राम कथा	३.५०	ले० डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
१४ प्रेमचन्द प्रतिमा	२.००	ले० प्रो० कमला देवी गर्ग
१५ सुबह होती है शाम होती है	३.७५	ले० श्री गंगाधर शुक्र
१६ नवीन दर्शन	६.२५	ले० केशवदेव उपाध्याय
१७ कबीर परिचय	०.६२	ले० प्रो० तारकनाथ अग्रवाल
१८ तुलसी परिचय	०.६२	ले० प्रो० कमलादेवी गर्ग
१९ रामराज्य	१.००	ले० श्री राजबहादुर लमगोड़ा
२० श्यामा स्वप्न	४.००	ले० स्व० ठा० जगन्मोहन सिंह
२१ भारती भूषण	१.२५	ले० स्व० बाबू गिरधर दास
२२ ऋतु संहार	१.२५	ले० स्व० ठा० जगन्मोहन सिंह
२३ प्रमिताक्षर दीपिका	१.००	ले० स्व० ठा० जगन्मोहन सिंह
२४ अनंग (प्रबन्ध काव्य)	५.००	डा० पुत्तूलाल शुक्ल 'चन्द्राकर'
२५ गद्यगरिमा	२.२५	सम्पादित
२६ अनुदान (कहानी संग्रह)	३.५०	श्री वनफूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशीलन एवं वैज्ञानिक समीक्षासामग्री से युक्त त्रैमासिक

जनभारती

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

हिमालय-अंक

वर्ष ११ अंक ३-४ संवत् २०२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-भारती

आद्य सम्पादक — स्व० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
सम्पादक — डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
स० सम्पादिका — प्रो० निर्मल तालवार

हिमालय अंक का विशेष सम्पादक मण्डल—

(१) डा० बलदेव प्रसाद मिश्र (२) डा० कालिदास नाग
(३) आ० नन्ददुलारे वाजपेयी (४) डा० गौरीनाथ भट्टाचार्य
प्रबन्ध सम्पादिका—प्रो० निर्मल तालवार

सम्पादक मण्डल :

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी
डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
डा० भगीरथ मिश्र
डा० विनय मोहन शर्मा
डा० नगेन्द्र
डा० इन्द्रनाथ मदान
प्रो० ए० चन्द्रहासन
श्री अक्षय चन्द्र शर्मा
डा० पुत्तूलाल शुक्ल
प्रो० एस० आर० नायडू
डा० कन्हैयालाल सहल
डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी

प्रसाद जी
की
हीरक-जयन्ती
पर

प्रसाद

(प्रसाद साहित्य पर समीक्षात्मक ग्रन्थ)

मूल्य ८·५० नपै.

साहित्य के जिज्ञासु पाठकों को बंगीय हिन्दी परिषद की भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय
को सादर समर्पित,
निर्मल तालवार
(स. सम्पादिका)
२२.५.६४

श्रद्धेय
आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

को

६३ वीं जन्म-तिथि की पुनीत स्मृति

के

अवसर पर परिषद् की विनीत भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाकत आश्रम
पटना
दिसम्बर १, १९६२

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि बंगीय हिन्दी परिषद् अपना आगामी अंक 'हिमालय विशेषांक' के रूप में प्रकाशित करने जा रही है। हमारे प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य में हिमालय का महत्वपूर्ण स्थान है। युग-युग से हमारे साहित्य निर्माता ही नहीं तत्वचिन्तक भी उससे प्रेरणा लेते और अपनी विमल अनुभूति-गंगा से हमें नयी चेतना देते रहे हैं। यही कारण है कि वह भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख अंग सा बन गया है।

इस संकटपूर्ण स्थिति में आपका प्रयास सराहनीय है। मैं विशेषांक की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

राजेन्द्र प्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद प्रगति—

वसंत पञ्चमी १९६३ से वसंत पञ्चमी १९६४ तक।

वसंत पञ्चमी १९६३ :—परिषद ने अपने १८ वें वर्ष में प्रवेश किया। अपने स्थापना-दिवस के साथ ही अपने संस्थापक स्व० आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के जन्म दिवस को पुण्य-स्मृति में अपनी विनीत श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उक्त आयोजन की अध्यक्षता की-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने। आ० चतुर्वेदी ने विद्वतापूर्ण भाषण में परिषद की हिन्दी-सेवा पर प्रकाश डाला। साथ ही साथ इसके संस्थापक स्व० ललिता प्रसाद सुकुल की साहित्य-साधना की भी चर्चा की।

प्रो० निर्मल तालवार ने परिषद का वार्षिक विवरण प्रस्तुत किया तथा आचार्य सुकुल के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। स्थानीय कवियों ने कविता-पाठ किया और आचार्य सुकुल के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। सरस्वती की वन्दना से कार्य आरंभ हुआ एवं अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

१० फरवरी १९६३ को परिषद कक्ष में एक साहित्य-गोष्ठी का भव्य आयोजन हुआ जिसके अध्यक्ष थे-डा० भगवतशरण उपाध्याय। साहित्य, कला एवं संगीत के आधुनिक स्वरूप का विस्तृत विवेचन डा० उपाध्याय ने प्रस्तुत किया। अनेक सुधी विद्वानों एवं विद्यार्थियों ने आधुनिक कविता एवं कला के नूतन स्वरूप पर प्रश्न उठाए। डा० भगवतशरण उपाध्याय ने उनके प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त सुलझे स्वरूप में दिया।

३१ मार्च १९६३ को आ० सीताराम चतुर्वेदी के विद्वतापूर्ण व्याख्यान का आयोजन परिषद कक्ष में ही किया गया। विषय था-"काव्येषु नाटक रम्यम्"। आ० चतुर्वेदी ने अपने गूढ़ एवं विद्वतापूर्ण व्याख्यान से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया तथा नाटकों की महत्ता से जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान पिपासा को तृप्त किया।

३ अप्रैल १९६३ को परिषद में श्री श्रीप्रकाश की अध्यक्षता में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। विषय था-"वर्तमान संकटकालीन स्थिति में साहित्यकार का दायित्व।" उक्त गोष्ठी में श्री श्रीप्रकाश ने देश की एकता को सुदृढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने में पत्रकारों के महत्व एवं दायित्व पर प्रकाश डाला। भाषा, जाति, प्रान्त एवं धर्मगत मतभेदों से मुक्त होकर ही हम चीन को मुंहतोड़ उत्तर दे सकते हैं। वर्तमान स्थिति में देशकी सुरक्षा ही प्रमुख है। सर्वस्व त्याग कर उसकी रक्षा हमारा परम कर्तव्य है। हिन्दी प्रेमी और उसके साहित्यकारों का प्रथम कर्तव्य है। भाषा-विवाद से मुक्त होकर देश की सुरक्षा और एकता के सूत्र में आबद्ध होकर शत्रु का सामना करना।

२७ अगस्त १९६३ को पपिषद द्वारा महाबोधि हॉल में डा० गौरीनाथ भट्टाचार्य के सभापतित्व में तुलसी जयन्ती समारोह का भव्य आयोजन किया गया। हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि डा० रामकुमार वर्मा भी उस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने अपने भाषण एवं कविता-पाठ से श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। उक्त अवसर के अन्य प्रमुख वक्ता थे—प्रो० कल्याणमल लोढा एवं आ० सीताराम चतुर्वेदी। आयोजन की सफलता में प्रमुख योगदानर हा-रेडियो आर्टिस्ट, श्री माधव झङ्कड़े, श्री प्रभात मुखोपाध्याय, कुमारी इप्सिता घोष एवं श्री मती इन्दु पालिकर का।

५ अक्टूबर १९६३ को परिषद कक्ष में भारत सरकार के निमन्त्रण पर आए हुए सोवियत रूस के कोषकार और भाषाविद् श्री बी. आई. अलेक्जिव और श्री बी. ए. मेकार का स्वागत किया गया। उक्त दोनों विद्वानों ने रूस में हिन्दी और भारतीय भाषाओं की शिक्षा पर प्रकाश डाला और रूसी हिन्दी कोष की महत्ता का उल्लेख किया। रूसी और हिन्दी भाषाओं की कविताओं का पाठ भी किया गया।

११ नवम्बर १९६३ को परिषदकक्ष में दिल्ली साहित्य एकाडमी के साहित्य सचिव क्षेमचन्द्र 'सुमन' की अध्यक्षता में एक साहित्य-गोष्ठी का आयोजन किया गया। 'सुमन' जी ने हिन्दी के प्रसार में कलकत्ते के महत्व पर प्रकाश डाला। उक्त गोष्ठी के प्रमुख वक्ता थे-प्रो० कल्याणमल लोढा प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री, श्री रामकृष्ण भारती, सुश्री निर्मल तालवार एवं श्री मती रजनि पणिकर।

३० नवम्बर १९६३ को परिषद ने मीरा जयन्ती समारोह का आयोजन डा० नीहार रञ्जन राय की अध्यक्षता में की। प्रधान अतिथि का आसन ग्रहण किया-श्री सोहनलाल दूगड़ ने। डा० पांडुरङ्ग राव, प्रो० कल्याणमल लोढा एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने मीरा की महत्ता का उल्लेख करते हुए अपने विद्वतापूर्ण भाषण से श्रोताओं को मुग्ध कर दिया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० रघुवंश, डा० जगदीश गुप्त, डा० राम प्रसाद त्रिपाठी आदि का भी परिषद को स्वागत करने का सुअवसर मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६ अप्रैल १९६३ को परिषद ने हिन्दी के दो वरिष्ठ साहित्यकार, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और बाबू गुलाब राय के निधन पर शोक सभा की। उक्त सभा में उपस्थित विद्वान थे—डा० शम्भुनाथ सिंह, पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', श्री सीताराम चतुर्वेदी, श्री अक्षयचन्द्र शर्मा। उपस्थित विद्वानों एवं प्राध्यापकों ने दोनों महारथियों के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और उनकी साहित्य सेवाओं पर प्रकाश डाला।

पुस्तकालय एवं वाचनालय का उपयोग विविध कालेजों एवं विश्वविद्यालय के छात्र और छात्राएँ बराबर से करती आ रही हैं। पश्चिम बङ्गाल सरकार के आफिसरों की सुविधा के लिए विभागीय हिन्दी की मौखिक एवं लिखित पढ़ाई की व्यवस्था परिषद द्वारा की जाती है। अनेक विद्यार्थी उससे लाभ उठाते हैं।

परिषद प्रकाशन-१९६३-स्व. ठाकुर जगमोहन सिंह ग्रन्थावली का प्रथम खंड प्रकाशित किया। 'गद्यगरिमा' निबन्ध संग्रह का पुनः मुद्रण किया गया। उक्त पुस्तक केरल विश्वविद्यालय में बी. ए., बी. एस. सी. की परीक्षाओं के लिए स्वीकृत है।

श्री सोहन लाल दुगड़ से विशेष सहायतार्थ १००१ रुपये परिषद को प्राप्त हुए।

वसंत पंचमी १९६४—परिषद अपने २० वें वर्ष में आज प्रवेश कर रही है। इस मङ्गल वेला में परिषद साहित्य मनीषियों एवं हिन्दी प्रेमियों से सहयोग की कामना करती है। अपने संस्थापक आचार्य सुकुल की पुण्य स्मृति में जनभारती का 'हिमालय अङ्क' समर्पित कर रही है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषद-प्रकाशन

१	मीरा स्मृति ग्रन्थ	१५.००	सं आ० ललिता प्रसाद सुकुल एवं अन्य
२	भारतेन्दु कला	४.५०	सम्पादित
३	जनभारती कबीर-अंक	१.१२	सम्पादित
४	काव्य तरंगिणी	२.१२	सम्पादित
५	काव्य कला-निधि	१.७५	सम्पादित
६	निबन्ध कुसुमाकर	१.२५	सम्पादित
७	नवकथा	१.००	अनु० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
८	मीराबाई का जीवन चरित्र	१.५०	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
९	काव्यचर्चा	२.२५	ले० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
१०	मेघदूत	५.००	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
११	बुन्देले हरबोलों के मुँह 'जिसने' सुनी कहानी	५.००	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
१२	भारतेन्दु के दो नाटक	२.५०	सं० आ० ललिता प्रसाद सुकुल
१३	मानस में राम कथा	३.५०	ले० डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
१४	प्रेमचन्द प्रतिभा	२००	ले० प्रो० कमला देवी गर्ग
१५	सुबह होती है शाम होती है	३.७५	ले० श्री गंगाधर शुक्ल
१६	नवीन दर्शन	३.२५	ले० केशवदेव उपाध्याय
१७	कबीर परिचय	०.६२	ले० प्रो० तारकनाथ अग्रवाल
१८	तुलसी परिचय	०.६२	ले० प्रो० कमलादेवी गर्ग
१९	रामराज्य	१.००	ले० श्री राजबहादुर लमगोड़ा
२०	श्यामा स्वप्न	४.००	ले० स्व० ठा० जगन्मोहन सिंह
२१	भारती भूषण	१.२५	ले० स्व० बाबू गिरधर दास
२२	ऋतु संहार	१.२५	ले० स्व० ठा० जगन्मोहन सिंह
२३	प्रमिताक्षर दीपिका	१.००	ले० स्व० ठा० जगन्मोहन सिंह
२४	अनंग (प्रबन्ध काव्य)	५.००	डा० पुत्तूलाल शुक्ल 'चन्दाकर'
२५	गद्यगरिमा	२.२५	सम्पादित
२६	अनुदान (कहानी संग्रह)	३.५०	श्री वनफूल
२७	ठा० जगमोहन सिंह ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)	६.००	सम्पादित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In the Service of Glass Industries

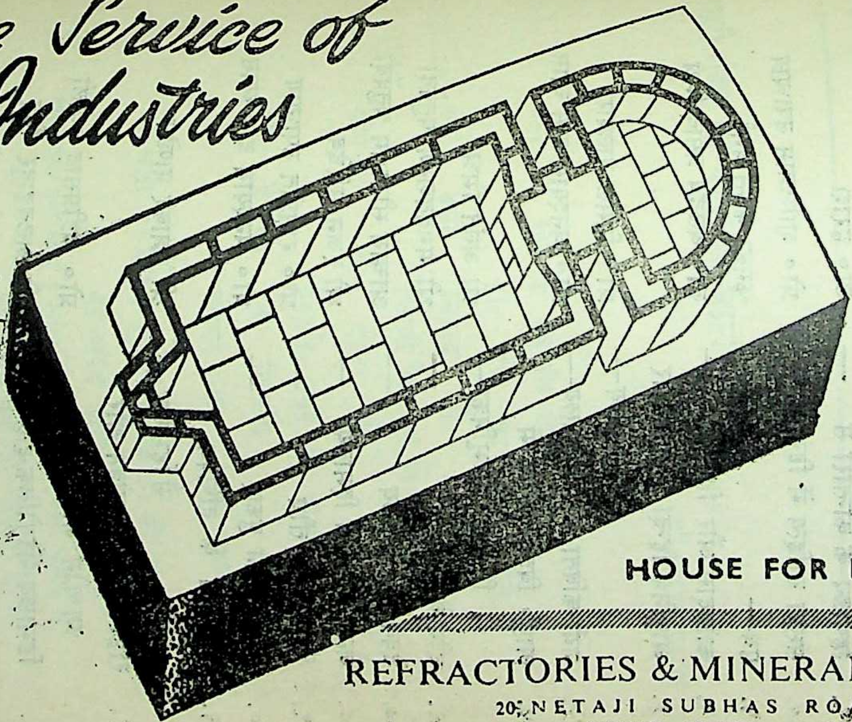

Manufacturing also :

Special Blocks
Moderate Heat Duty
High Heat Duty
Low Porosity Bricks
AND
SHAPES

RMS (P) LTD

We Offer Blocks

For
Floor
Wall
Throat
Dog House
Working Chamber
etc. etc.
In Glass Furnaces.

HOUSE FOR INDUSTRIAL FIREBRICKS

REFRACTORIES & MINERALS SYNDICATE (P) LTD

20, NETAJI SUBHAS ROAD, CALCUTTA-1
PHONE: 22-1946 GRAM : FIREPROOF

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका

१.	खोजती गंगा रहे रक्त धारा —	डा० रामकुमार वर्मा	१
२.	अभयं वै ब्रह्मा भैषी —	श्री अलिन्द	३
३.	हिमालय —	डा० मुंशीराम शर्मा	४
४.	हमारा पहरेदार हिमालय —	प्रो० विष्णुकुमार त्रिपाठी	५
५.	आज महाभारत की बेला —	कमला कान्त वर्मा	८
६.	हिमालय मुसकरा रहे हैं —	श्री हेमराज	१२
७.	हिमालय हमारा है —	प्रो० ए. बो. सिनहा	१९
८.	हिमालत पर प्रहार —	श्री शान्ता कुमार	२३
९.	हिमालय के कान्तारों से —	डा० हरीश	२७
१०.	संस्कृत साहित्य में हिमालय —	प्रो० शालिग्राम उपाध्याय	३३
११.	पथ—	कमला कान्त वर्मा	४७
१२.	कालिदास और हिमालय —	डा० बलदेव प्रसाद मिश्र	४९
१३.	आधुनिक हिन्दी कविता और हिमालय—	प्रो॰ निर्मल तालवार	५५
१४.	नयी कविता और हिमालय—	प्रो० घनश्याम दास व्यास	६९
१५.	आधु० विश्वराजनीति में हिमालय की भूमिका—	श्री अनंत मिश्र	७६
१६.	चीन के नाम —	श्री भगवतशरण चतुर्वेदी	८३
१७.	देवतात्मा हिमालय —	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	८५
१८.	जैन साहित्य में हिमालय —	श्री रंजन सूरिदेव	८८
१९.	हिमालय के तीर्थ —	प्रो० रामप्रीत उपाध्याय	९५
२०.	हिमालय की पुकार —	प्रो० घनश्याम दास व्यास	१०१
२१.	कालिदास के दृष्टिपथ में हिमालय —	श्री रत्नाकर पाण्डेय	१०३
२२.	राष्ट्रीयता, लोक जीवन और प्राचीन भारती साहित्य —	प्रो० बद्रीप्रसाद पंचोली	११७
२३.	हिमालय भौगोलिक दृष्टि में—	श्री लालबहादुर सिंह	१२९
२४.	बंगला काव्य में हिमालय —	कुमारी रेखा बोस	१३३
२५.	कसौटी पर —		
	चारुचन्द्रलेख —	उषा तालवार	१३८
	हिमालय —	श्री अवनीश त्रिपाठी	१४०
	हिन्दी साहित्य का विश्लेषणात्मक इतिहास —	श्री किशोरी रमण तिवारी	१४७
	कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध	श्री लालबहादुर सिंह	१४३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

हिमालय-अंक

वर्ष ११ अंक-३ + ४ संवत् २०२०

खोजती गंगा रहे वह रक्त-धारा

डॉ० रामकुमार वर्मा

कौन वह स्वर है कि जिससे
वीर रस का राग जागे,
कौन डमरु निनाद है,
जिससे कि शिव का नाग जागे!
कौन-सा वह होम है
जिससे समर की आग जागे,
कौन है वह पर्व जिसमें,
वीरवर का भाग जागे॥

बढ़ चलो ओ वीर! तुमको विजय श्री की शपथ है—
वह शपथ आज पुकारती है।
बढ़ चलो ओ वीर! तुमको हिम शिखर की शपथ है
वह शपथ पथ की आरती है॥

कौन वह विक्रम जिसे,
इतिहास अब भी जानता है!
कौन वह अरिमुण्ड है,
जिसको कि तू पहिचानता है!
कौन-सा वह रक्त है,
जो युद्ध में ललकारता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन-सा वह प्राण है,
जो व्याघ्र सा हुँकारता है।

जानता हूँ मैं, युगों से जीतने का गर्व है
तो गर्व फिर से जगमगाए
समय तुझसे मांगता है प्राण की बलि
कौन जाने यह समय आए-न-आए

बहन ने राखी तुझे बांधी
नहीं थे व्यर्थ धागे।
और मां के स्वप्न तुमको
जन्म देकर आज जागे॥
वीर तुझमें शक्ति है
तो मान को अभिमान कर दे।
पूर्व का तू सूर्य है
जो काल को दिनमान कर दे

एक हिम के शैल ने यमुना बहाई
जो मिली है खोज गंगा का किनारा
रक्त तू ऐसा बहा दे हिम शिखर से
खोजती गंगा रहे वह रक्तधारा॥

—:०:—

"जिस प्रकार शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसी प्रकार हिमालय पर आते ही जन्म-जरा-रहित ब्रह्मपद प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों की बुद्धि सांसारिक आकर्षणों से मुक्त हो जाती है।"

—महाकवि भारवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभयं वै ब्रह्म मा भैषी......'

श्री अलिन्द

हे वाणो के परारूप ! हे नादविन्दु समुद्भव कला के अक्षर विन्यास ! कर्म, मर्म और धर्म के अनन्त भंडार ! परानुरक्तिमय प्रणव-व्याहृति की अर्ध-मात्रा भी तुम्ही तो हो !! सम्पूर्ण सृष्टि चैतन्य के सहस्रार !!

परासंवित आनन्दघन शिव ! ज्ञात-अज्ञात, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, देह-प्राण, यष्टि-समष्टि, जड़-चेतन सभी तो तुम्हारे ब्रह्मलोक में पहुँच चिरन्तन आनन्द लीला को प्राप्त होते हैं !

ओ देवतात्मा हिमालय ! तुम्हीं तो वह शिव हो, जाग्रत ऊर्ध्वमुखी कुण्डलिनी जिसमें एक हो पूर्णत्व प्राप्त करती है ।

ओ देव सृष्टि के आदि स्रोत ! ओ मानवीय, विश्वचेतना के मध्य !! ओ दानवीय संहार के प्रलय !!! तुम्हीं रुद्र हो, तुम्ही शिव और तुम्हीं प्रलयंकर ! यह तुम्हारी ही लीला है कि तुम पाप को उस सीमा तक सह लेते हो, जब तक पृथ्वी उसके आतंक से हिल न उठे ।

ओ प्रलय के प्रचण्ड तृतीय नेत्र ! . अब खुलो !! देखते नहीं, पुनः सतीदाह हो गया है ! ओ ब्रह्मतेज, एक बार फिर बरस पड़ो । देखते नहीं, प्रचण्ड दानवाग्नि तुम्हारे ही इर्द-गिर्द फैल रही है ! ओ राम की अजेय-बाहु पुनः कोदण्ड धारण करो, मृगमारीच के भुलावे में फिर सीता-हरण के दुर्दिन आ गए हैं ।

ओ सुदर्शन ! आज फिर कंस और शिशुपाल तुम्हारे हाथों नाश के क्षण की प्रतीक्षा कर रहे हैं । हे गाण्डीव ! हे महाबाहो गुडाकेश !! एक टंकार से ही यह सुप्त चैतन्य पुनः प्रलय मेघमाला बन आततायियों पर बरस पड़े ।

तुम्हें इसी दिन की तो प्रतीक्षा थी, ओ मौन तपस्वी ! साधना-काल बीत गया, यही तो सिद्धि की पावन बेला है ! चिरगतिमय, तोड़ो कारा की इस शृंखला को ; चैतन्य के अबाध प्रवाह, बहो जड़ता की निष्क्रियता में अमोघ प्लावन बन !!

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय

डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम'
कानपुर

अयि धीर, अचल हिमवान !
व्योम में रहें प्रदीप्त शिखर तेरे ॥१॥
उदयाचल, काञ्चन शृंगावलि,
माँ गौरी की केलि-कलास्थलि,
दिव्य सुमेरु चढ़ाता तेरे चरणों में श्रद्धा-सुमनांजलि।
अयि भारत-शीर्ष महान !
सूर्य-शशि दें शाश्वत तेरे फेरे ॥२॥
ओषधि, लता, वनस्पति, शाद्वल,
गो-अज- अवि-गज-मृग- महिषादल,
कारण्डव - पारावत-केकी - गृध्र गरुड-श्येनादि -श्रयस्थल।
अयि मणि-सुवर्ण-संस्थान !
खनिज की खानि भरे तेरे खेरे ॥३॥
सिद्ध पीठ, देवों के आश्रम,
ऋषि-मुनि-यती निकेत मनोरम।
महाराज, गन्धर्व, नाग, सुर, यक्ष, किन्नरों के क्रीड़ा क्रम
अयि गिरा-गीत गुण-गान
अंगिरा-वेदशिरा तेरे चेरे ॥४॥
अयि विराट की सृष्टि अलौकिक,
भुवनों की भव्याभा भौतिक,
उन्नत-भ्रु व ललाट से नभ में छिटक रही उरु-ज्योति चतुर्दिक
शुचि ऋक-यजु साम-विधान,
छन्द छलके उर से प्रभु के प्रेरे ॥५॥

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा पहरेदार हिमालय

प्रो० विष्णु कुमार त्रिपाठी 'राकेश

(१)

युगों-युगो से खड़ा हिमालय,
उत्तर में भारत का प्रहरी।
राजतिलक करने आती नित,
सलज रेशमी किरन सुनहरी॥

(२)

भू मण्डल का नेता हिमगिरि,
दुनिया के शिखरों का मुखिया।
यह धरती का मानदण्ड है,
कोटि-कोटि जन का मन बसिया॥

(३)

एक-एक से बढ़कर ऊँची,
अभ्रभेदनी शिखर श्रेणियाँ।
प्रकृति परी ज्यों गूँथ रही हो,
हरसिंगार की सघन वेणियाँ॥

(४)

कहीं खड़े हैं 'गौरी शंकर'
और कहीं पर 'नन्दादेवी'।
'धौलागिरि' पर 'नीलकण्ठ' है,
'नर-नारायण' के पद-सेवी॥

(५)

'नंदाघुंटी' राकापोशी,
और कहीं पर हैं चुमलारी।
'हाथी पर्वत' सम 'चौखम्भा';
करते भारत की रखवारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

बूढ़े से चितकबरे तन पर
बर्फ़ीले वस्त्रों को डाले।
योगी जैसा समाधिस्थ है-
जटा जूट का भार सम्हाले॥

(७)

कर्मठता का पुण्य भवन है,
तपोभूमि सा सुन्दर पावन।
यद्यपि भीतर वज्र सरीखा,
फिर भी हरा-भरा ज्यों सावन॥

(८)

इसी हिमालय से जन्मी है,
भारत की श्री सकल सम्पदा।
तरल धमनियों जैसी नदियाँ
हरती हैं धरती की विपदा॥

(९)

यमुना जी इससे निकली हैं,
और इसी से गंगा मइया।
झेलम सतलज की धाराएँ,
नाचा करती ता-ता-थइया॥

(१०)

उपजाऊ मैदान सिंधु के,
रावी की बलखाती नहरें।
हहराती धारा चिनाब की,
ब्रह्मपुत्र को ऊँची लहरें॥

(११)

इसकी है हर चीज़ निराली,
जल औ वायु यहाँ की अनुपम।
यह ऋषियों-मुनियों का घर है,
वेद मंत्र से गुँजित हरदम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२)

सब कहते है कभी यहीं पर-
शंकर जी ताण्डव नाचे थे।
जिनके डमरु के डिम-डिम पर-
धरती और गगन जागे थे॥

(१३)

नवप्रसून से ज्यादा कोमल,
पर इसकी फौलादी छाती।
इसमें सहसबाहु का बल है,
सदा जागता नींद न आती॥

(१४)

कोई बुरी नज़र यदि डाले,
करनी का फल चखना होगा।
यह देवों का पुण्य धाम है,
यहाँ सम्हल कर चलना होगा॥

(१५)

इसकी ही छाया में रहकर,
हम सब फूले और फले हैं।
इसकी अमर ज्योति को छूकर,
बल-विक्रम के दीप जले हैं॥

(१६)

तन-मन जीवन प्राण सभी कुछ,
जिस पर पुरखों ने वारा है।
जैसे भी हो उसकी रक्षा—
करना अब धर्म हमारा है॥

(१७)

यह भारत का राजमुकुट है,
इसकी शान न जाने देंगे।
हँस हँस कर मिट जायेंगे, पर
इसकी आन न जाने देंगे॥

("गूँजते इतिहास के स्वर" से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शपथ

आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार

कमलाकान्त वर्मा

कहता भारत—मेरे विगत युगों की आज समीक्षा है,
हिम-गिरि पर युग-धर्म बुलाता, युद्ध-धर्म की दीक्षा है,
यह रण है भविष्य-निर्णय का, बल की अग्नि-परीक्षा है,
मुझे नियति को उत्तर देना, जग कर रहा प्रतीक्षा है,
शपथ भरत की, रण जीतूँगा तोड़ शत्रु के दुर्ग-द्वार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार !

तेरी अर्चा को केसर की क्यारी लिये खड़ा कश्मीर,
तेरी कुशल पूछता, हिम-गिरि, उछल-उछल झीलों का नीर,
कालिदास के छंदों में तू ही वंदित, हे 'नगाधिराज !'
वर्णित हैं 'कुमार-संभव' में तेरी रण-सज्जा के साज ।
कालिदास की शपथ, आज हों कोटि-कोटि उठ खड़े कुमार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार !

बोला वीर पंचनद—जिसने युग-युग मुझ को सींचा है,
उसी हिमालय का शोणित दानव ने आज उलीचा है,
शपथ मुझे अपने खेतों की, हरियाली-खुशियाली की,
शपथ मुझे बल-विक्रम की, अपने जीवन की, प्राणों की,
मुक्त न हो हिम गिरि तब तक कर में होगी नंगी तलवार !
आज महाभारत की वेला, गीता गायन का त्यौहार !

कहता मरुधर— मेरे कण कण में अनंत इतिहास भरा,
उसमें मित्र शिरोमणि हिमगिरि का शुभ स्नेहिल हास भरा,
पानी उसका भेजा आता मेरी प्यास बुझाने को,
शपथ उसी पानी की, अब उठना पानी दिखलाने को,
मित्र मित्र पर कैसे मर मिटता है यह देखे संसार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा-यमुना की घाटी की मिट्टी का कण-कण बोला,—
हिम-गिरि पर जब संकट आया, तब उत्तराखंड डोला,
रघु-कुल, यदु-कुल, कौरव-कुल ने यह संबंध निभाया है,
अपने उष्ण रक्त से शीतल जल का मूल्य चुकाया है।
राम कृष्ण की शपथ उसे लौटाना युग-युग का उपकार!
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार!

विंध्याचल उसपार खड़े पश्चिम भारत ने ठाना है,
शिव की पूजा करने हमको गौरी के घर जाना है,
शपथ हमें शिव की, गौरी की फिर बारात सजानी है,
सदा निछावर हिम-गिरि पर पश्चिम की रही जवानी है,
मरकर भी कैलास-शिखर पर पुनः सजाने बंदनवार!
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार

जो समर्थ गुरु रामदास ने वीर शिवा को ज्ञान दिया,
कारा-गृह में बैठ तिलक ने जिसका पुनराख्यान किया,
कर्मयोग का महाराष्ट्र में महा-मंत्र गूँजा-'युध्यस्व'!
धर्म-युद्ध में योद्धा निकले कृष्णार्पित करके सर्वस्व!
कर्मयोग की शपथ, कर्म का आज दिखा देना अधिकार!
आज महाभारत की वेला, गीता गायन का त्यौहार!

कहता गुर्जर— धर्मवीर गांधी को मैंने उपजाया,
गांधी से ही वीर-धर्म का कर्म-मर्म मैंने पाया,
वही मर्म है शपथ दिलाता, मुझको अस्त्र उठाना है,
पहले सत्य अहिंसा पीछे, यह जग को समझाना है।
'लज्जा, शोक, पराजय' मां की धोना मुझे लहू की धार!
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार!

आज कुमारी अन्तरीप से दौड़े मेघ हिमाचल को,
दक्षिण का जल चला बुझाने उत्तर के दावानल को,
जागो सूर्य! प्रभंजन जागो! मेघों को पहुँचाना है,
व्योम! मार्ग दो! गिरि का ऋण सागर को आज चुकाना है,
शपथ व्योम की, भाई का भाई पर झर् झर् बरसे प्यार!
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा का जल लाल हुआ है, रक्त बहा है शंकर का,
आज बंग सागर ने धारण किया रूप प्रलयंकर का,
गंगे ! मार्ग दिखाओ ! मैं शिखरारोहण को चलता हूँ ।
शपथ मुझे अपनी लहरों की, हिम गिरि पार उछलता हूँ
डूबे दानव-देश, करूँ निःशेष आज दानव परिवार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्योहार ।

स्वर्णिम बंग-भूमि के, हिम-गिरि, तुझे निवेदित कोटि प्रणाम,
'सुजला सुफला शस्यश्यामला' तेरी छाया क परिणाम,
शपथ बंग की तेरे हित सर्वस्व समर्पण करने की,
चीर नसों को आज रुधिर की धारा तर्पण करने की
तेरी रक्षा में जायेगा वह तेरी सीमा के पार ।
आज महाभारत की वेला, गीता गायन का त्योहार ।

बोला मगध—बन्धु हिमगिरि, मैं तापस भी, सेनानी भी,
मुझे अहिंसा भाती है, आती तलवार चलानी भी,
संतों की हूँ तपोभूमि, हूँ जन्म-भूमि बलवानों की,
रही युगों से एक साधना, भूमि बनूं बलिदानों की,
शपथ साधना की, रण में भेजूँगा प्राणों के उपहार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार !

कहता है कलिंग – मैंने पौरुष अशोक का देखा है,
अंकित शिला-शिला पर मेरी उस पौरुष की रेखा है,
वह पौरुष भिक्षुक बन निकला, भारत का भविष्य रोया,
पंचशील के याचक ने जब अपना पांचजन्य खोया,
शपथ उसी पौरुष की, वंचक दानव का करना संहार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार !

ब्रह्मपुत्र गरजा धिक् है ! मेरे रहते तस्कर आया ?
मणिपुर का मणि-मुकुट म्लान कर जीवित शत्रु लौट पाया ?
क्यों भूला मैं, इसी द्वार पर पाण्डव-कुल का अश्व रुका !
यहीं बभ्रुवाहन के सम्मुख अर्जुन का गांडीव झुका !
शपथ बभ्रुवाहन की, करना उस गौरव का नव शृंगार !
आज महाभारत की वेला, गीता गायन का त्यौहार !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-मुसलिम-सिख-ईसाई ! कोटि-कोटि भारत-संतान !
यह पुरुषार्थ-परीक्षण-क्षण है, जीवन मरण-वरण-अभियान,
गति-पथ पर थम गया काल-रथ, खड़ा साँस रोके इतिहास,
चली तौलने नियति आज दानव हठ से मानव विश्वास,
आज एक पथ, एक शपथ, करना हिमगिरि का पुनरुद्धार !
आज महाभारत की वेला, गीता गायन का त्यौहार !

दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर,
धरा की यह सिकुड़न भयभीत
आह, कैसी है ? क्या है पीर ?

मधुरिमा में अपनी ही मौन,
एक सोया सन्देश महान,
सजग हो करता था संकेत ;
चेतना मचल उठी अनजान।

बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल-मालाओं का श्रृंगार ;
आँख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुन्दर सम्भार।

(कामायनी से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय मुसकरा रहे हैं

श्री हेमराज
भूतपूर्व प्रधानाचार्य
गुर्जर महाविद्यालय, दादरी

हिमालय के उस पार एक बड़ा देश है जिसका नाम है चीन। पहले इस देश से हमारे सम्बन्ध मधुर थे। और अब? अब कुछ न पूछिये। आइये "तब" और "अब" का भेद देखें और समझें।

"तब"

तीसरी शताब्दी से भारत की पवित्र भूमि की यात्रा करने के लिये अनेक चीनी आते रहे हैं। चीनी सम्राट् "हो" के समय में कई राजदूत चीन से उपहार की वस्तुएँ लेकर आये। भारतीय सम्राट श्री श्रीगुप्त ने २० बौद्ध चीनी श्रमणों के लिये बंगाल में एक मन्दिर बनवा दिया और २० गाँवों की आय उस मन्दिर के लिये दी। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेनसंग का सम्राट हर्ष द्वारा भव्य स्वागत हुआ। नालन्दा विश्वविद्यालय के कुलपति से हुयेनसंग ने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि "कृपया मेरी प्रसन्नता को पूर्ण करने के लिये ज्ञान और ज्योति प्रदान कर एक आज्ञाकारी शिष्य मानकर मुझे गौरव प्रदान कीजिये"। यही प्रसिद्ध यात्री जब बोधि-गया गया तब बुद्ध की मूर्ति और बोधिवृक्ष १ को देख कर इस पवित्र स्थल की पवित्र भावना से उसका हृदय भर आया और उसने बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया, उसकी आंखों से आंसू बरस पड़े और जिसने भी उसे देखा उसकी भी यही भावविह्वल दशा हुई। ९६४ ई० में ३०० चीनी साधु भारत आये और हमारे देश में वे बारह वर्ष तक धर्म-यात्रा करते रहे।

भारत के अनेक विद्वान बौद्ध भिक्षु चीन गये और वहां उनका सम्मान पूर्वक स्वागत हुआ। ऐसा ही एक त्यागी तपस्वी गुणवर्मन् था। इनके द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार लंका और जावा में हुआ। ४२४ ई० में नांकिंग (Nanking) के बौद्ध श्रमणों ने अपने सम्राट से प्रार्थना की कि गुणवर्मन् को चीन आमन्त्रित

१—कहते हैं कि गौड़ाधिपति शशांक ने इस वृक्ष को काट दिया था। तदुपरान्त अशोक के वंशज मगध के राजा पूर्णवर्मन् ने प्रतिदिन १०० गायों के दूध से इसे सींच कर पुनर्जीवित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाय। ऐसा ही हुआ और गुणवर्मन् चीन ४३१ ई० में पहुँचा। चीन के सम्राट स्वयं इस विद्वान के स्वागत के लिये पधारे और जीतवन विहार में इनके ठहरने की व्यवस्था की गई। एक दूसरा भारतीय विद्वान बोधिरुचि चीन में ६९३ ई० से ७२७ ई० तक रहा। इन्होंने ५३ बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। कभी-कभी स्वयं सम्राट इनके पास आते थे और अपने हाथ से टिप्पणी लिखते थे। कभी-कभी महारानी और दरबार के उच्च अधिकारी भी उपस्थित हो जाते थे।

६० से ७० फुट गहरे हमारे बड़े जहाजों में जब हमारे व्यापारी व्यापार के लिये चीन जाते तब वहां अपने द्वारा बनाए गये मन्दिरों में वे पूजा करते थे। कहते हैं कि केन्टन (Canton) में तीन ब्राह्मण मठ थे।

इस प्रकार चीन और भारत में विचार विनिमय और सत्सङ्ग १०३६ ई० तक होता रहा। गीता के १३ वें अध्याय में ७ से ११ वें श्लोक तक ज्ञान के २० लक्षण वर्णित हैं और १६ वें अध्याय में पहले तीन श्लोकों में दैवी सम्पत्ति के २६ गुण दिये हुए हैं। ऐसा लगता था कि इस दैवी सम्पदा को अपनाने में भारत और चीन में होड़ लगी हो। हमारे यहां की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से सब परिचित हैं। चीन में ला ओत्से ने, ईश्वर की सर्व व्यापकता और सर्व शक्तिशाली सत्ता को मानने वाले, और वैराग्य, त्याग, और सद्भावना से ओत-प्रोत 'ताओ' धर्म का प्रचार किया। ला ओत्से का कहना है—

"जो भले लोग हैं उनके साथ मैं भला हूँ, और जो लोग भले नहीं हैं मैं उनके साथ भी भला हूं, जिससे मैं सदा भलाई पा सकूं। जो ईमानदार हैं मैं उनके प्रति ईमानदार हूं, और जो ईमानदार नहीं हैं मैं उनके प्रति भी ईमानदार हूं जिससे मैं सदा ईमानदारी ही पाऊं।

"कुंग" अथवा कन्फूशस ने पड़ोसियों के प्रति बन्धुत्व के भाव और सब प्राणियों के प्रति दया के भाव का प्रचार किया। "The Great Learning" में अपने विचार "कुंग" ने इस प्रकार व्यक्त किये हैं:—

"हमारे वे पूर्वज जो साम्राज्य भर में महानतम गुणों का प्रसार करना चाहते थे पहले अपने राज्यों को सुव्यवस्थित करते थे। अपने राज्य में सुशासन करने से पहले अपने परिवार को सुचारु रूप से व्यवस्थित करते। अपने परिवार को व्यवस्थित करने की कामना से अपने आपको संयत करते। अपने को संयत करने की भावना से वे हृदय को पवित्र करते। अपने हृदय पवित्र करने की भावना से अपने विचारों के प्रति विश्वस्त होते। विचारों के प्रति विश्वस्त होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूर्व में अपने ज्ञान का पूर्ण विकास करते। ज्ञान की प्राप्ति के लिए वे पदार्थों का परीक्षण करते। पदार्थों के परीक्षण से उन्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता और ज्ञान प्राप्त करने पर उनके विचार विश्वस्त हो जाते। विचारों के विश्वस्त होने पर उनके हृदय पवित्र हो जाते। हृदय की पवित्रता प्राप्त करने पर उनका मन संयत हो जाता। मन के संयत होने पर उनका परिवार सुव्यवस्थित होता। परिवार के व्यवस्थित होने पर उनका राज्य सुचारु रूप प्राप्त करता और राज्य के सुशासन से साम्राज्य में सुख और शान्ति का प्रसार होता !

"अब"

अब, 'दम भरते थे जिसकी दोस्ती का वह आस्तीन का सांप निकला' वाली बात हो गई। हम 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा लगाते रहे, राष्ट्र-संघ में चीन के लिये जाने के लिये हमने खूब वकालत की और बदले में, सब पुरानी बातों को भूलकर, चीन ने हमारी प्रिय मातृ-भूमि पर २० अक्टूबर १९६२ में आक्रमण कर दिया। ऐसा क्यों हुआ ? इस पर विचार करना है। गीता के १६वें अध्याय में चौथे श्लोक तथा तदनुसार इसी अध्याय के ७वें श्लोक से लेकर १४ वें श्लोक तक वर्णित आसुरी संपदा को चीन ने अपना लिया। चीन के आधुनिक रवैये का चित्रण तुलसीदास जी की निम्नलिखित चौपाइयों में भी मिलेगा :—

करहिं उपद्रव असुर निकाया।
नाना रूप धरहिं करि माया॥

*

सुभ आचरन कतहुं नहीं होई।
देव, विप्र गुरु मान न कोई॥

*

मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

*

जिन्हके यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

*

खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी।
जरहिं सदा पर संपति देखी॥

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बयरू अकारन सब काहूसों।
जो कर हित अन हत ताहू सों॥

*

झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना॥

*

तुलसीदासजी ने ऐसे प्राणियों को राक्षस कहा है। चीन को राक्षस की उपाधि प्रथम नेपोलियन ने दी। उसने एक समय कहा था China—There lies a sleeping Giant. Let him sleep, for when he wakes, he shall shake the world." अर्थात् चीन—यह दानव सो रहा है; इसे सोने दो, क्योंकि जब यह जागेगा, यह संसार को हिला देगा।

चीन की आबादी ७० करोड़ के लगभग है। प्रतिवर्ष चीन में १ करोड़ ५० लाख बच्चे पैदा होते हैं। १९८० ई० तक यदि कोई दुर्घटना न घटी तो चीन की जनसंख्या एक अरब हो जायगी और २००० ई० में एक अरब ६० करोड़ चीनी होंगे। जन और अपनी सैनिक शक्ति के बल पर आधुनिक चीन के उच्चकोटि के नेता विश्व विजय का स्वप्न देख रहे हैं और इसे साकार करने की फ़िक्र में हैं। एक सन्त की वाणी है कि यदि कोई कहे कि भूमि मेरी सम्पत्ति है तो भूमि हंस देती है। कंजूस को देखकर धन हंस पड़ता है और रण से डरने वाले को देखकर काल अट्टहास कर उठता है। इसी प्रकार चीन की विश्व विजय की आकांक्षा को देखकर हिमालय मुस्करा रहे हैं।

सहसबाहु, दसवदन आदि नृप बचेन काल बलीते। हम-हम करि धन-धाम संवारे, अन्त चले उठ रीते।

सिकन्दर, नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी इत्यादि विजेताओं की विश्व विजय योजना का क्या बना? पर चीन को अपनी शक्ति का गर्व है, धक्के शाही से काम बनाना चाहता है। हिमालय के मुस्कराने का अर्थ नहीं समझ रहा है।

चीन विश्व के लिये खतरा

चीन औसतन अपनी सेना पर, प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार, १० अरब रुपया प्रतिवर्ष खर्च कर रहा है। फौज पर इतना अधिक खर्च और फिर चीन की बढ़ती हुई जनसंख्या, विश्व की चिन्ता के कारण बन गये हैं।

चीन ने युद्ध नीति अपना रखी है। मुसोलिनी ने ८ वर्ष के बालक के हाथ में बन्दूक दी थी। चीन ने दो वर्ष घटाकर ६ वर्ष के बालक के हाथ में यह शस्त्र दे दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, भले ही वह लकड़ी का बना हो। चीन के कालेजों और विश्वविद्यालयों में जो लगभग ७ लाख विद्यार्थी पढ़ रहे हैं उन में लगभल ५¾ लाख साइन्स का अध्ययन कर रहे हैं। चीन का एक साधारण कृषक खेती की देख भाल के अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में भाग लेता है और उसे सैनिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है। औरतों को भी शस्त्राभ्यास कराया जाता है और वे गाती हैं "हमारे हाथ में बन्दूकें हैं, हम अपने देश की रक्षा के लिये कटिबद्ध हैं।"

चीन की हिंसात्मक कार्यवाही की एक झलक

तिब्बत में चीन की बर्बरता देखिये :—

श्री पुरुषोत्तम टीकमदास, भारत के सुप्रीम कोर्ट के उच्च एडवोकेट ने अपनी जेनेवा रिपोर्ट में १९५९ में कहा—"अनेक मठों के अधिपतियों को मारने, कैद करने और अपमानित किये जाने के हमारे पास प्रमाण है....एक बहु सम्मानित लामा को बांध कर खुरदरी चट्टान पर उसे रस्सी से खींचा गया, परिणाम स्वरूप वह मर गया, उसका पेट चट्टान पर घसीटे जाने से फट गया था। केवल खाम (Kham) प्रान्त में २५० मठ नष्ट किए गए। ऐसी भी खबरे मिली है कि उन मठाधीशों का घोड़ों के पैरों से कुचल कर मरवाया गया और बड़ी संख्या में उन्हें चीन के Concentration Camps में भेजा गया। विश्वसनीय सूचना के आधार पर मृतकों की संख्या लगभग ६५,००० है।

यह १९५९ की गणना है। अब तो मृतकों की संख्या ८०,००० से, एक लाख तक पहुंच गई है।

अशोक महाराज ने पशु पक्षियों के लिये भी अस्पताल खुलवाये थे प्राणीमात्र पर इनकी दया दृष्टि थी। चीन को गर्व है कि चीनियों ने १ अरब ६० करोड़ ५ हजार चिड़ियों का सफाया किया, १ अरब ५० करोड़ ७ हजार चूहे मारे और वजन में १ लाख १८ हजार टन मक्खियां और मच्छर यमपुर पहुंचाये।

आधुनिक चीन के नेता और उनकी नीति

आजकल चीन अपनी 'Fight fight and talk talk" अर्थात् लड़ाई लड़ो और बात चीत करो वाली नीति पर अमल कर रहा है। आइये इनके कुछ नेताओं की विचार धारा पर विचार करें।

माओ-त्से-तुंग

इनकी आयु ७० वर्ष की है। जहां स्टालिन का कहना था कि साम्यवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Communism) का प्रचार पहले नगर के मजदूरों में किया जाय, माओ ने इसका प्रचार पहले कृषकों में किया। इनकी कुछ उक्तियां हैं :—

"Political power grows out of the barrel of a gun."

अर्थात्—बन्दूक की नली से राजकीय शक्ति प्राप्त होती है।

"A Revolution does not march in a straight line. It wanders where it can, retreats before superior forces, advances whenever the enemy retreats or bluffs, and above all is possessed of enormous patience."

"The highest form of Revolution is to seize power by force, to solve problems by war."

चाऊ-एन-लाई

पहले एक नाटक कम्पनी में खेल खेलने वाले चाऊ अब विश्व मंच पर नाटक खेल रहे हैं। १९५५ में बाण्डुंग सम्मेलन में ये सहअस्तित्व का प्रचार कर रहे थे। अब बात कुछ दूसरी है। कभी हमें साम्राज्यवादी आक्रमणकारी बताया जाता है कभी कोलम्बों सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों के नेताओं के लिये कहा जाता है कि उन्होंने जो शर्तें चीन और भारत को दीं उनमें भेद था। देखिये अपनी नीति में रबर की तरह लचीले चाऊ महाराज आगे क्या-क्या करते हैं?

लिन-शाओ-ची

१९५९ में इन्हें माओ ने चीनी गणतन्त्र का चेअरमेन बनाया। लोगों का विचार है कि यह इस बात का संकेत है कि माओ इन्हें अपना योग्य उत्तराधिकारी समझते हैं। यह देवता दुबले पतले हैं पर हैं अति कठोर और निर्दयी। मानव के प्रति इनके भाव देखिये :—

"When contradictions arise between the interests of the party and the individual, we can without the slightest hesitation or feeling of compunction submit to party interests and sacrifice the individual."

अहंकार का भाव चीन में अब इतना बढ़ा हुआ है कि चीनी कहते हैं "Anything yon can do, we can do better"—जो कुछ आप कर सकते हैं, उससे अच्छा हम कर सकते हैं। स्थिति यह है "Shang hsing hsia hysiao"—Those above act, those below confirm,' नेतागण आज्ञा देते हैं, जनता उसपर स्वीकृति की मुहर लगा देती है। चीनी हमेशा से आज्ञा पालन करते आये हैं—पहले सम्राट् की, परिवार के मुखिया

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की, अब साम्यवादी नेताओं की। साम्यवादी चीन में परिवार प्रथा समाप्त सी है। अधिकांश चीनी कॉम्यून्स में रहते हैं। जहां मानव जीवन यंत्रवत् है। तुलसीदासजी ने रावण के लिये कहा है। "रण मद मत्त फिरइ जग धावा" सो आज चीन रणमद मत्त होकर दुनियां को आंखे दिखा रहा है। तिब्बत को डकार लेने के बाद और भूमि हड़पने की इसकी भूख बढ़ी है। भारत, पाकिस्तान, रूस, अफगानिस्तान और लाल चीन के मध्य में लद्दाख है। चीन यहां से हटने का नाम नहीं लेता। अक्तूबर के आक्रमण के द्वारा चीन ने हमें टटोला था। अब युद्ध कभी भी हो सकता है। हमें एक बड़ी शक्ति का सामना करना है। अपनी सरकार को पूरा सहयोग देकर, हम अपने देश की रक्षा करें। अन्त में जीत धर्म की होती है। "Eternal vigilance is the price of freedom" स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम सदा जागरूक रहें। अन्त में चीन को समझना ही होगा कि हिमालय क्यों मुसकरा रहे हैं।

अरे महान् देश के महान् अंग तुम
रहे स्वदेश शक्ति में विवेक संग तुम,
स्वदेश है विपत्तिग्रस्त प्राण ओज दो,
स्वशक्ति का स्वदेश में खिला सरोज दो!
नगाधिराज के शिखर चमक चमक उठे,
सुधांशु पीत सिन्धु जल लपक लपक उठे,
कि प्राणों में लहर उठे चमक उठे धरा
अनन्त शक्ति उर्वरा बने बसुन्धरा।

—उदयशंकर भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय हमारा है

प्रो० ए० बी० सिनहा
उदयपुर

हिम मण्डित पर्वतमालाओं का प्रदेश हिमालय, भारत और चीन दो प्राचीन संस्कृतियों के बीच संगम है। हिमालय की स्थिति, सीमा तथा विस्तार स्वयं ही एक ऐसी बड़ी मान्यता है जिसको न तो इतिहास झूठा बना सकता है और न विज्ञान की परम्परायें। हमारी भावनायें भले ही कुंठित हो जायें, विचार भले ही साम्यवादी बन जायें, पर जिस भौगोलिक परिस्थिती में हिमालय का जन्म हुआ है वह एक शाश्वत सत्य है। और वह उतना ही सत्य है जितनी कि भारतीय और चीनी संस्कृति। हिमालय भारत और चीन के बीच केवल एक सीमा ही नहीं निर्धारित करता परन्तु जीवन के हर दृष्टि-कोण से वह भारत को चीन की परम्पराओं से अलग करता है। भले ही यह बात ठीक हो कि चीन और भारत के बीच कुछ साम्य है। उदाहरणतः दोनों राज्यों की संस्कृति नदी-घाटियों में पनपी, जनसंख्या का महत्व कृषि पर आधारित अधिक है, परन्तु इसके पीछे जुड़ा हुआ इतिहास अपना स्वयं ही इतना बड़ा प्रमाण है कि विषमतायें दोनों राष्ट्रों की अपनी अपनी अलग हैं।

धार्मिक प्रमाण यदि प्रस्तुत किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि हिमालय की स्थिति सबसे बड़ा कारण है भारत और चीन को अलग करने का। कभी भी ऐसा अवसर प्रमाण के रूप में नहीं मिलता कि इन देशों में धार्मिक प्रवृत्तियाँ एक रही हों। भले ही मूल-भूत सिद्धान्त धर्मों के एक हों। परन्तु उनका केन्द्रीकरण अपने ढंग से अलग हुआ। सामाजिक जीवन, राज्य विस्तार, सांस्कृतिक मिलन तथा जन-जीवन की परम्परायें सब भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल हुए। आज भी इसके प्रमाण प्रस्तुत हैं। बौद्धधर्म की मान्यता, जिसको सारा एशिया जानता है, भारत के बाहर अपने ढंग से फैली। कला की अमिट छाप आज भी किसी मन्दिर में अपने आप बोल देती है कि यह चीन की मूर्तिकला है और यह भारत की। भले ही एक दूसरे राज्यों में आदान-प्रदान सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनैतिक होते रहें और इसका प्रभाव समीप के छोटे राज्यों पर पड़ा, परन्तु वह प्रभाव वातावरण के कारण पड़ा। अतः सम्भावनाओं पर अधिक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विश्वास करनेवालों से यही तो पूछना पड़ता है कि यह सम्भावनायें किस ओर से और कैसे आईं। इसका एक ही उत्तर है कि हिमालय के दक्षिण के प्रदेश (चीन की मान्यता वाले भाग) तथा उत्तर (भारत) अपनी भौगोलिक स्थिति से एक दूसरे से विपरीत हैं।

दक्षिण के भाग जिन्हें तिब्बत के भाग कहा तो जाय अनुचित न होगा। यह भाग केवल कुछ भागों को छोड़ कर १२००० ́से अधिक ऊँचा नहीं है, और यह भाग पठार के रूप में तिब्बत के पठार के नाम से जाना जाता है। इसलिए यह भाग कठोर, प्रायः अधिक उबड़खाबड़ नहीं है और साथ ही साथ इसकी ढाल भी तीव्र नहीं है, इसलिये यहाँ पर आवागन की स्थिति भारत के विपरीत है। यही एक प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत कर देता है कि भारतीय सेनाओं को किन विषम परिस्थितियों में अपना कार्य करना पड़ा। यही नहीं हिमपात यहाँ पर कम होता है और समय भी उसका अधिक नहीं है। परन्तु दूसरी ओर हिमालय का भाग जो कि भारत की ओर है वह विषमताओं के कारण एक तरफ तो शत्रुओं को सुविधा प्रदान करता है और दूसरी ओर भारतीय सेनाओं के लिए एक समस्या। क्योंकि ढाल के ऊपर चीनी सेनाओं का जमाव आसानी से हो जाता है और भारतीय सेना विषम स्थिति में नीचे रह कर अपना कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती। लद्दाख, उपसी, लोहित इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

हिमालय को सदा से ही एक सीमा-रेखा माना गया है। इसी आधार पर मैकमोहन रेखा का निर्माण हुआ है। मैकमोहन रेखा पार्वत्य प्रदेशों की ऊँची चोटियों के आधार पर है। यह सीमा-रेखा चिह्नों द्वारा पूर्वी प्रदेशों से लोहित के समीप स्पष्टरूप से दीख पड़ती है। परन्तु मध्य तथा पश्चिम की ओर पहाड़ ऊँचे होने के कारण पर्वतों की ऊँची श्रेणी को सीमा मान लिया गया है। सन् १९१३ के सन्धि प्रस्ताव के आधार पर भारत सरकार तथा तिब्बत के बीच एक समझौता शिमला में हुआ। इसमें चीन को भी बुलाया गया और हस्ताक्षर करने के लिये कहा गया। परन्तु चीन ने संधि-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया। उत्तर के तिब्बती पठार और दक्षिण की नीची पहाड़ियों के बीच सीमा रेखा बनाई है। तिब्बत और भारत की सीमा रेखा का मध्यवर्ती भाग उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और पंजाब के कुछ क्षेत्रों में बना है। इनकी सीमायें भी नदियों तथा अन्य प्राकृतिक सुविधाओं के अनुसार ही हैं।

हमारी पश्चिमी सीमा जम्मू और काश्मीर के साथ सिक्किम और तिब्बत से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली हुई है। यह सीमा ११०० मील प्रायः लम्बी है और अधिकांश भाग लद्दाख से संबंधित है। यह सीमा-रेखा १८४२ में तत्कालीन दलाई लामा और चीन के सम्राट की मान्यताओं के आधार पर बनाई गयी। यह सीमा-रेखा १८९३, १९१७ तथा १९१९ में चीन के सरकारी नक्शों में भी दिखायी गयी है। विवाद ग्रस्त सीमा तिब्बत और भूटान के साथ अधिक है। इसी कारण १९५० में प्रधान मंत्री नेहरू ने १९१३ के संधि पत्र के अनुसार मैकमोहन रेखा को ही सीमा-रेखा माना और इसपर चीन को कोई भी आपत्ति नहीं थी। परन्तु पंचशील के समर्थक चीन ने अनाधिकार उत्तर-पूर्व के लगभग ३६००० वर्ग मील क्षेत्र तथा उत्तर-पूर्व लद्दाख के लगभग १२००० वर्ग मील क्षेत्र को चीन के अन्दर दिखाया। इसकी शंका नेहरू जी ने चीनी चर्चा पर १९५४ में की परन्तु चीन ने यह कहकर बात समाप्त कर दी कि वे नक्शे गलत और पुराने हैं, अतः इनका अब कोई महत्व नहीं है। परन्तु विवाद १९५५ में बाराहोती स्थान पर हुआ और बाद में क्रमशः १९५९ में अधिक विकसित हो गया। शान्ति के प्रयास के फलस्वरूप लद्दाख में चीन ने आकसाई चीन सड़क बनाई।

पं० नेहरू ने प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस बात का संकेत किया कि मैकमोहन रेखा ही निर्धारित रेखा है। इतिहास, भूगोल, सामाजिक व्यवस्था रीति और संस्कृति पर आघात करके चीन ने इस बात को सिद्ध करने की कोशिश की कि यह भाग चीन का है। परन्तु अन्त में यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि किस आधार पर चीन अपनी मान्यता चाहता है इसके विरुद्ध कुछ प्रमाण तर्क रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं कि चीनी साम्राज्यवादी यदि यह बताते कि हिमालय का यह भाग किस प्रकार उनका है।

(१) सिक्किम और भूटान सदा से ही स्वतंत्र राज्य थे और सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से भारत के समीप ही नहीं पर एक अविच्छिन्न अंग रहे हैं।

(२) नेफा के राज्यों में जो प्रशासनिक व्यवस्था है वह पूर्णतया सदियों से भारतीय चली आ रही है।

(३) लद्दाख और जोरावर सिंह का संबन्ध इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि यह भाग भारतीय है।

(४) कैलाश और मानसरोवर कभी भी चीनियों के धार्मिक या राजनैतिक केन्द्र नहीं रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) इतना ही नहीं प्रशासनिक व्यवस्था, मान्यता तथा नियम के आधार पर सहस्रों वर्षों से आदिम संस्कृति की मान्यताएँ, परम्पराएँ और संगठन भारत के साथ थे।

परन्तु कालान्तर में केवल ऊँचाई की विषमताओं और संकट स्थिति का फायदा उठाकर चीनिओं ने हिमालय की भौगोलिक स्थिति को चुनौती दी। इतिहास बदल सकते हैं, मान्यताएँ कल दूसरी हो सकती हैं परन्तु हिमालय की भौगोलिक स्थिति सदा से एक रही है और रहेगी। यदि हिमालय को बदल दें तो शायद सीमारेखा बदल जाय। नदियों की धाराओं को मोड़ दें तो शायद सीमा रेखाएँ वक्र हो जाएं। परन्तु कैलाश, मानसरोवर, गौरीशंकर शृंग भारतीय मानवता के गर्व हैं, प्रमाणों के आधार पर सम्मेलनों के आधार पर और जनमन के आधार पर हिमालय का भाग सदा से भारतीय रहा है, रहेगा और हिमालय का प्रदेश (५०००० वर्ग मील) आज नहीं, कल नहीं, आनेवाले कल भी भारत का रहेगा।

(पृष्ठ ३२ का शेषांश)

फिर तेरे ये हाथ सजा पूजा की थाली
लेकर नीराजना द्वार तुम खड़ी रहोगी
एक नहीं लाखों वीरों का अर्चन करने
विजय गीत गा, वही हाथ फिर तिलक करेंगे
और आज जो खाली दिखते, कल ही इनमें
नीलम, हीरों और रत्नों की पहनाऊंगा
तुझे चूड़ियाँ,
करता है चाणक्य प्रतिज्ञा तेरा भैय्या।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय पर प्रहार—एक पृष्ठभूमि

श्री शान्ता कुमार

हिमालय एक पर्वत नहीं अपितु भारत की आत्मा है। प्रलय के बाद यहीं कहीं मनु की एकाकी नौका किसी शिला से टकराई थी। हिमालय की इसी तराई मनाली (कांगड़ा) के निकट मनु ने प्रलय के प्रलयङ्कारी दृश्य को निहारा था। कविवर प्रसाद के शब्दों में :—

हिमगिरि के उत्तुङ्ग-शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छांह।
एक पुरुष भींगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।

(कामायनी)

सृष्टि के उस प्रथम प्रहर से हिमालय भारत की आत्मा के रूप में रहा है। इसी की गहन घाटियों में तपस्या करके ऋषि मुनियों ने मानव जीवन के वे अमर तत्व खोज निकाले जिन्हें देख आज का प्रगतिशील मानव भी हतप्रभ हुए बिना नहीं रहता। यहीं पर वेदों की अमर वाणी गूँज उठी थी। इसी हिमालय की गोद से निकल कर पुण्य सलिला सरितायें कल कल निनाद करती हजारों मीलों की यात्रा करके भारत की भूमि को सींच यहाँ के जन-जीवन को जीवन देती आ रही हैं। भारत सदा से इसकी पूजा करता रहा है। आज भी हिमालय के एक एक कङ्कड़ में हमें भगवान शंकर के दर्शन होते हैं।

सदियों से उत्तर का अभेद्य प्रहरी, मां का मुकुट हिमालय आज भेदा जा चुका है। हजारों वर्गमील भूमि पर एक शत्रु अपना अधिकार कर चुका है। मानों हमारी ही आंखों के सम्मुख हमारी पूज्य माँ के पुण्य मुकुट पर एक आततायी अपनी एड़ी रगड़ रहा है। आज नेफा व लद्दाख की धरती भारतीय वीरों के रक्त से लाल हो पुकार रही है। मानसरोवर का जल खौल उठा है। मां के पवित्र मुकुट की ओर एक दुष्ट ने अपने नापाक हाथ बढ़ाये हैं। संकट की इस विकट बेला में इस समस्या के कारणों व इतिहास पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालना अनिवार्य हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः हिमालय पर यह आक्रमण आज नहीं हुआ, इसका इतिहास बहुत पुराना है। विश्व के मानचित्र पर जिस क्षण रूस का साम्यवादी राज्य आया ठीक उसी समय एशिया के इस प्रमुख देश पर गृद्ध-दृष्टि प्रारंभ हो गई थी। साम्यवाद के दूसरे मसीहा लेनिन ने कहा था कि—'वाशिंगटन व न्यूयार्क को जाने के लिये रास्ता दिल्ली व कलकत्ता से होकर जाता है।' स्टालिन के समय जब रूस की कम्युनिस्ट पार्टी ने प्रत्येक देश में साम्यवाद फैलाने की योजना के लिये विदेशी विमान खोले तो उस समय भी भारतीय विभाग पर विशेष ध्यान दिया गया। उनकी दृष्टि में भारत को लाल करना विश्व साम्यवाद के लिये अनिवार्य था। तब भारतीय-रूसी योजनाओं को कार्यान्वित करने में भट्टाचार्य व एम. एन. राय ने रूस के विभाग में कार्य किया।

चीन के प्रमुख नेता डा० सनयात सेन ने आज से बहुत पूर्व कहा था 'मंगोल सैनिकों के घोड़ों की टापों से उड़ी धूलि के कण और ध्वनि जहां तक पहुंची है वह सब चीन का है और हम उस सब को प्राप्त करके रहेंगे।' माओ ने १९३९ में एक पुस्तक—'चीनी क्रान्ति और कम्युनिस्ट पार्टी' में स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि साम्राज्यवादियों ने पिछले कुछ वर्षों में चीन के बहुत से इलाके छीन लिये हैं। उस लम्बी तालिका में माओ ने आसाम, वर्मा, लद्दाख व नेफा के क्षेत्र भी गिनाये हैं। साथ ही कहा था कि उन सब को वापिस लेना उनका प्रथम कर्तव्य है।

१९५४ में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक पुस्तक—'आधुनिक चीन का संक्षिप्त इतिहास' छापी थी। उसमें कहा था कि चीन को दुर्बल देखकर साम्राज्यवादियों ने उसके सिक्कम, भूटान, नेपाल, लद्दाख व आसाम के क्षेत्र छीन लिये थे। इन क्षेत्रों को 'आजाद' करवाने का निश्चय किया गया।

ऊपर की पंक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विश्व साम्यवाद की यह सोची समझी योजना थी। लेनिन ने हिमालय पर के आक्रमण को सैद्धान्तिक रूप से प्रारम्भ किया था। चीन के नेताओं ने चीन पर पूर्ण अधिकार करने के पूर्व इस आक्रमण का स्पष्ट निर्देश कर दिया। हम उस दुष्ट की दुष्टता न समझ सके—यह बात दूसरी है।

इतना ही नहीं कुछ महापुरुषों ने आज से सदियों पूर्व चीन की दुष्टता का संकेत दे दिया था। भारत के विश्वविख्यात सन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने १८९२ में जब वे विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिये गये थे कहा कि अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद इस बात की स्पष्ट संभावना है कि चीन भारत पर आक्रमण करे। नेपोलियन ने भी इस संकट की ओर ध्यान दिलाया था। एक और महान राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीतिज्ञ ने कहा था कि चीन एक सोता हुआ शेर है, इसे सोने दो अन्यथा जाग उठने पर यह सबको तंग करेगा। तिब्वत के मामलों पर अंग्रेज विशेषज्ञ सर चार्लस बेल ने ३०० वर्ष पूर्व कहा था—'अंग्रेजों के जाने के बाद अपनी दिलचस्पी अथवा क्षमता के अभाव में भारत लाल या पीले किसी भी चीनी साम्राज्य को तिब्वत दे देगा और तिब्वत पर कब्जा करने के बाद सिक्कम भूटान, नेपाल पर संकट आयेगा।' प्रसिद्ध विचारक एस. एन. राय ने भी प्रधान मंत्री नेहरूजी को परामर्श दिया था कि उत्तरी सीमा की पूरी चौकसी की जाये और तिब्वत में अपनी सेना रखी जाये।

विश्व साम्यवादी अन्य लोगों को कितना भी कहें पर चीन भी एक भयानक प्रकार का साम्राज्यवादी देश रहा है। वास्तव में प्रारम्भ का चीन आज के चीन का पांचवा भाग था जिसके चारों ओर दीवार खड़ी की गई थी। पिछले २ हजार वर्षों में चीन ने मंचूरिया, इनर मंगोलिया, सिंक्यांग व क्वांगसी के देशों को अपने पाश्विक शिकंजे में जकड़ कर विश्व मानचित्र में से इन देशों के अस्तित्व को सदा के लिये समाप्त कर दिया। वे सब चीनी साम्राज्य के अंग बन गये। इस प्रकार उसने अपना क्षेत्रफल तीन गुना कर लिया। इस प्रकार से चीनी साम्राज्यवादियों का अधिकार अटलांटिक महासागर से लेकर शान्तमहासागर तक हो गया। उत्तर में उत्तरी ध्रुव का भू-भाग उसके पास पहिले ही था। अब उसके विस्तार की दिशा दक्षिण ही हो सकती थी। उसी योजना के अनुसार उसने सर्व प्रथम धोखे व चालबाजी से भोले भाले धार्मिक लामाओं के देश तिब्वत को हड़पा और कुछ दिनों में लगभग ६० हजार लामाओं के खून से होली खेली।

तिब्वत पर 'मुक्ति सेना' का पाखण्ड रच कर जब उसका खून किया जा रहा था तो हमारे प्रधान मंत्री ने उसका विरोध किया। उसपर पेकिंग रेडियो से श्री नेहरू जी को 'साम्राज्यवादी कुत्ता' कह कर गाली दी गई। शान्ति प्रिय नेहरू चुप हो गये। तब डा० मुकर्जी जीवित थे। उन्होंने १९५० में संसद में बोलते हुए कहा था कि तिब्वत को हड़प लेने के बाद चीन भारतीय सीमा में घुसने का प्रयत्न करेगा। पर जब दिल्ली की गलियाँ 'हिन्दी-चीनी-भाई भाई' के नारों से गूँज रही थीं और इस लोरी में देश का जन-मन खर्राटें भर रहा था तो जनरल करिआपा, श्री कृपलानी जैसे लोगों ने चीन की दुष्टता की ओर संकेत किया था। संघ के प्रमुख गुरु गोलवलकर ने तो रामलीला मैदान में भाषण करते हुए कहा था कि चाऊ एन लाई जो हाथ प्रधान मन्त्री से मिला रहा है तिब्वत के खून से लाल है और हमें धोका देने के लिये यहां आया है। उन्होंने यह भी कहा था कि इधर "भाई भाई" हो रहा है और उधर भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमा पर चीन एक सड़क बना रहा है। बाद की घटनाओं से यह भविष्य वाणी प्रमाणित हो गई।

इतिहास से जो शिक्षा नहीं लेते, इतिहास उन्हें भी शिक्षा देता है चीन की दुष्ट मनोवृति को न समझने की भयानक भूल ने अब भारत को एक ज्वालामुखी के मुँह पर ला खड़ा किया है। इसमें किसी की भी कितनी ही भूल क्यों न हो, इस संकट को रोकने में हमें कितना भी बलिदान क्यों न देना पड़े पर यह निश्चित है, एक अमर सत्य है कि अन्तिम जीत हमारी होगी। कोई भी दुष्ट आक्रमणकारी हम से बच कर न जा सका। हूण-शकों को खाकर हमने अपने शरीर का अंग बना लिया। बड़े नृशंस आततताइयों के आंदोलन गंगा के दहाने में डूब गये। मानवता का हत्यारा, विश्व का यह लाल सितारा अब अपनी अन्तिम यात्रा कर रहा है। साम्यवाद की अन्तिम कब्र नेफा व लद्दाख के शीतल हिममण्डित शिखरों पर बनेगी। फिर किसी मौलाना हाली की तरह चीनी कवि को यह कहना पड़ेगा कि विश्व साम्यवाद का सितारा हिमालय की चट्टानों से टकरा कर सदा सदा के लिये चकनाचूर हो गया। पर इस अन्तिम विजय के लिये भारत के जन-मन को उठना होगा, हुंकार भरनी होगी, बलिदान के लिये तैयार होना होगा और रामकृष्ण, शिवा, प्रताप के पराक्रम को फिर से उत्पन्न करना होगा। आज भारत की चहुँ दिशाओं से सब के मुख से एक ही ध्वनि निकलनी चाहिये—

"लहू देंगे मगर इस देश की मिट्टी नहीं देंगे।"

———

धरती का सिन्दूर बचाने तन को भेंट चढ़ाना होगा,
दुश्मन के हर एक दाँव को मिलकर विफल बनाना होगा
हर शिरा में है खून मां का, सिर पर तिलक बहिन का साथी
सांसों के अंतिम सफर तक माँ का बोझ चुकाना होगा।

—श्री हर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय के कान्तारों से—
सैनिक का पत्र : बहन के नाम

डॉ० हरीश

(१)

बहिन !

आज हो सुबह सुबह जब मैं बैठा था
अपने एक दोस्त के सिरहाने चिन्तित सा
क्योंकि लगी थी गोली एक पाँव में उसके
कल के घमासान-से रण में लड़ते लड़ते
मन संवेदित, तन भी थोड़ा हुआ भ्रमित सा
तभी कमान्डर ने लाकर दे दिया
स्नेह का मूर्त्त रूप यह पत्र तुम्हारा
जो तुमने पिछले महीने में मुझे लिखा था
जिसमें तुमने अपने जीवन की महंगी सी
भव्य भावनाएँ भर कर अनुभूति संजोई
गिरवी रख चूड़ियाँ, मंगाई ऊन ढेर सी
और छलकती आँखों से गिन गिन कर तुमने
अपनी ममता की कड़ियों की माल पिरोयी
जिसको नाम दिया था तुमने "स्वेटर-मफ़लर"
एक नहीं, अनगिन बुन बुन कर भेजोगी तुम
प्रतिक्षण प्रतिपल चला करेंगी स्नेहमयी ये
दो सलाइयों से उलझीं उँगलियाँ तुम्हारी !
द्रवित हो गया हूं मैं पढ़ संकल्प तुम्हारा,
मैं ही नहीं, सभी मेरे संगी साथी भी
जो कि हिमानी बर्फानी तूफानी पथ में
प्रलयंकर शंकर के सदन हिमालय में जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठा संगीनें लड़ते हैं दीवानों जैसे
भारत माँ के लिए, देश के वीर लाड़ले
लिए मौत की आँखों में बेजोड़ खुमारी !
सभी लगे कहने हम कितने भाग्यवान हैं
किस्मत वाले नौजवान हैं हिन्द देश के
जिन्हें धरोहर में मिल गया मंत्र ममता का
एक नहीं सौ सौ संगीनों का बल बन कर
या टैंकों, गोलों, तोपों जैसी समता का !

(२)

बहिन !

सत्य कह रहा समझना सब का उत्तर
जिसे लिख रहा हूँ मैं तन के लाल रक्त से
दृढ़ प्रतिज्ञ बन सीमा पर न्यौछावर होकर
जो राखी भेजी थी तुमने सहज स्नेह की
उसके सूत्र सूत्र में सारे जकड़ गए हैं
मेरे अगणित दोस्त उसे सिर चढ़ा चढ़ा कर
पूजा करते हैं तेरे मानस मन्दिर की
वर्ण वर्ण और शब्द शब्द तेरी पाती का
गूँज रहा है
आगे पीछे, दायें बांयें, शोला बनकर
नस नस फड़क रही सबकी दुश्मन को चने चबाने
और भुजायें उठ जाती हैं हर भाई की भीष्म-व्रती सी
जिसके लिए बद्ध ममता हो भेजोगी तुम
स्वेटर मफ्लर, जाने क्या क्या बुन मनमाने
माँ, बाबा का प्यार गूँथ ऊनी धागों में
जिसके मिलने की स्मृति से ही केवल
बार बार सिहरन होती है, पावनता सी
और न जाने क्या क्या मिलता है इस मन को
जैसे मिलता माँ बेटे के अनुरागों में !
और लिखूँ क्या जीजी ! तुमको ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शत शत खंड भले हो जायें इस शरीर के
बोटी बोटी नुच जाये माँ की रक्षा में
कभी न रुकने देंगे माँ के विजय गान को
और न झुकने देंगे उसके हिम-किरीट को,
जिसके आंचल से बहती है गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र सी
घी दूधों की नदियां अविरल
जिसके आंगन में खेले हैं, राम कृष्ण जैसे पैगम्बर
अमृत पुरुष बुद्ध जैसे करुणा के सागर
ज़र्रा ज़र्रा गाता जिनके अमर गान को।
उस भारत की मिट्टी कैसी ?
सोने वाली, चाँदी वाली, हीरों वाली, रत्नों वाली
फल फूलों के अमृत वाली, शस्य श्यामला माँ वसुन्धरा
तिलक सुभाष लाजपत वाली, गाँधी और जवाहर वाली
बहिन ! उसी मिट्टी का हूँ मैं, घुन लगते तो देर लगेगी
इसीलिए इस स्वर्ण-मेखला धरती का मैं
हो निर्भीक पत्र में इतना हाल लिख रहा
जिसके लिए गीत की भाषा "गिरा अनयन नयन बिनु वाणी"
मेरे साथ सैंकड़ों नहीं, हजारों, लाखों
लाल, हिमालय की छाती के वरद पुत्र हैं
वज्र सरीखे, सागर जैसे या अम्बर के ध्रुवतारे से
अर्जुन, भीम, लक्ष्मण-से करते रखवाली

(३)

थोड़ा और लिखूँगा केवल, यों भी वक्त कहां मिलता है
इसको भी पूरा होने में लगे बीस दिन
और विषम वेला में लम्बे पत्र नहीं लिखने की
बात तुम्हारी, परंपरा बन बोल रही, वह शिरोधार्य है !
पर थोड़ी सी झलक यहाँ की भी लिख दूँ तो
शांति मिलेगी बूढ़ी मां को और बाबा को
जिनके आशीर्वाद हमारे शिरस्त्राण हैं, स्वाभिमान हैं
जिनके कारण सौ सौ सूर्य चमक जाते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नेफा लद्दाख उपूसी के प्रांतों में
क्योंकि हिन्द के लाल अफ़ीमी नहीं देश के वीर आर्य हैं।
सुन लो जीजी !

जत्थे के जत्थे जब लड़ते और टूटते
चीनी लाशों पर भूखे गिद्धों से जुड़कर
तब मुझ को सत्तावन की यादें आती हैं
और घूम जाते नज़रों में बयालीस के
दृश्य, लिखे जो इतिहासों में
रंगे पड़े हैं अनगिन पन्ने गदर क्रांति के
गर्म लहू तब और उबलता चीनी गीदड़
भाग भाग कर जंग छोड़ कर छिप जाते हैं
और घोषित करते हैं हमने बन्द कर दिया
युद्ध नहीं, हम शांन्ति प्रेम के सदा उपासक।
करता है प्रस्ताव आज यह नकली, चाऊ,
पर सभी राज़ ज़ाहिर हैं हम पर
हम सच्चे हैं इसीलिये तो सारा विश्व साथ देता है
फिर हमको चिंता क्या जीजी !
हम भारत के सैनिक बांके
जिनकी देह इस तरह नहीं पसीजी।
हर सैनिक हो सिंह बुभुक्षित गुर्राता है
क्षुधा शांत करता है इन चीनी लाशों से
तो भी कैसे बुझे ?

प्यास है दीवानों की, भगत सिंह आज़ाद
अभी भी सांस सांस में बसे हुए हैं
वीर प्रताप, शिवाजी और झांसी की रानी
थर्राता था जिनकी हुँकारों के आगे
सभी विदेशी सत्ता का कलमुँहा सितारा
और खून हो जाता जिसका, ठंडा पानी
उसी तरह हर सैनिक जब गर्मा जाता है
और चीन के कायर भाग खड़े होते हैं
तो मेरे सब दोस्त हिमालय की गोदी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खो जाते हैं शांति मयी भारत माता का
वरद हस्त पाने को व्याकुल हो जाते हैं
वंदे मातरम् कह कर नत मस्तक होते हैं
तब मुस्क्या देता है मां का वह नवनीती,
स्वर्णिम मुकुट हिमालय, जिसको कालिदास ने
शब्द शब्द में बांधा गरिमा महिमा गाकर
अर्घ्य बनाकर चढ़ा दिया वाणी मन्दिर में
और कैलास ताण्डवी शंकर का बर्फानी
मानसरोवर पुलकित कर देता मानस को
जिसके तट पर शुभ्र जोड़ियां हैं हंसों की
मोती चुगने वाली जिनकी अमर कहानी
देवदारु और सेव चीड़ के इन्हों घने कान्तारों में हम
सांझ सकारे, रात रात भर घूम रहे हैं
और बर्फ की आंधी उठती है शिखरों से
बादल के हिम धवल सितारों जैसी मोहक
हर सैनिक का रक्तिम भाल चूम जाती है,
जो माँ की पूजा की रोली जैसी लगती
जगा जगा कर लाख लालों को, जीजी
सुबह सुबह बन बिगुल घाटियों की शहनाई
मादक बन कर तन पर हवा झूम जाती है।

(४)

माँ को कहना हम जिन्दा हैं, सभी कुशल हैं
कुछ ने निश्चय पा ली है गति
पर वीरों की, वह भी माँ की लाज बचाने
बलिदानों के बन कर शोले
और शेष हम सभी आज तैयार नींव के पत्थर बनने
माँ का गौरव ऊँचा करने खड़े हुए हैं
देवदारु-सा उन्नत तन लेकर सीमा पर।
सभी पहरुए जागरूक हैं,
पीलेपीले चपटी नाकों वाले चाऊ के सब सैनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी धरती की मरियल मरियल सी मिट्टी
और पानी में सनी हवा को भी न इधर आने देंगे हम
हमले की क्या बात ?

खत्म औकात हो गई चमगादर-सी आँखों वाले उस माऊ की
और गिर गया दुनियां की नज़रों में बिल्कुल
बहिन ! हमारे अटल हिमाचल ने जो खींची
उस लक्ष्मण-रेखा को नहीं लांघ जाने देंगे हम
क्योंकि हमारे पास सभी माता बहिनों की,
सभी पिताओं की आशीषें बहुत आ रहीं
इसीलिये हे बहिन ! कह रहा हूँ दृढ़ता से
जैसे सांझ सबेरे तेरी सुदृढ़ ऊंगलियाँ
श्रम की पूजा करती रहती हैं प्रतिपल ही
और कंठ से समर सिद्ध तुम गीत गा रहीं
भारत के सब कवियों और शायरों को ले
उससे सौ सौ गुनी शक्ति और गति को लेकर
मेरी और मेरे सहयोगी सब वीरों की
ये वज्रादपि लौह-दण्ड-सी सबल भुजायें
स्वाभिमान से भरे तिरंगे को, गौरव से
जिसके सिर पर हैं भारत के चाँद सितारे
जब तिब्बत तक फहरा-फहरा लहरा देंगी
और विजय का गान सुबह की शहनाई बनकर फूटेगा
तब लौटूँगा,
तब लौटूँगा, अपने घर मां के चरणों में
शीश झुका बाबा का बेटा कहलाऊंगा
मां का दूध पिया है मैंने जीवन रूपी
जीवट जिसमें ममता और वात्सल्य अमरता
और सुनी है लोरी उससे सोते सोते
झांसी की रानी की अमर कहानी वाली
उसी दूध को,
कभी लजा कर क्या मां को मुंह दिखलाऊंगा ?

(शेष पृष्ठ २२५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत साहित्य में हिमालय

प्रो० शालिग्राम उपाध्याय

'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥' [ऋग्वेद १०।१२१।४]

[ये हिमवाले ऊँचे ऊँचे पर्वत, जलयुक्तनदियाँ और गतिशील पृथ्वी सहित यह समुद्र या महान् आकाश जिसके महान् सामर्थ्य का उद्घोष कर रहे हैं, उस एक, अद्वितीय जगत् कर्त्ता की हम विशेष भक्ति से उपासना करें।]

इसी हिमवन्त पर मौजवान् पर्वत है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। इस मौजवान् पर सामलता या सोमवल्ली विशेष रूप से पाया जाता है। वेदों में यज्ञों के अवसर पर सोमरस पान की चर्चा मिलती है मौजवान् पर्वत पर सोम की चर्चा आध्यात्मिकार्थ लिए हैं—

'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छात्।'
(ऋग्वेद १०।३४।१)

[जूए की चर्चा करते हुए ऋषि कहता है यह बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न जूए का गोटा मुञ्जवान पर्वत पर उत्पन्न सोमलता के भक्षण योग्य रस के समान आस्वाद करने योग्य जीता जागता मानो मुझे बहलाता है। अध्यात्मपक्ष में—उस महान् पाप के ये परिणाम धन जलादि शांतिदायक साधनों से रहित दिशा में मनुष्य को ले जाते हैं।]

यह मौजवान् पर्वत गान्धार और वाह्लीक के पास माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण में जिस उत्तरगिरि का उल्लेख है वह हिमालय ही है। अतः प्रसादजी ने मनु को हिमगिरि के उत्तुँगशिखर पर बैठा कर जलप्लावन का दृश्य दिखलाया है। शतपथ ब्राह्मण में मनोरवसर्पण के प्रसंग में लिखा है—''अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व, तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद् यावत् यावद् उदकं समवायात् तावत् तावत् अन्ववसर्पासि इति स ह तावत् तावदेवान्ववससर्प। तदप्येतदुत्तरस्यगिरे र्मनोरवसर्पणमिति।" (८।१)

३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय पर प्रसिद्ध क्रौञ्च और मैनाग पर्वत का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक (१।३१) में मिलता है। पुराण, रामायण और महाभारत काल में आकर हिमालय न केवल एक पर्वत रह गया अपितु वह चैतन्य और देवों का संबंधी देव भी बन गया। मत्स्यादि पुराणों में वह अपनी कन्या पार्वती या उमा के विषय में बहुत चिन्तित दिखाई पड़ता है। इन्द्र की प्रेरणा और नारद आदि के षड्यंत्र और मंत्रणा से शिव उमा का विवाह हिमालय के घर होता है। मत्स्य पुराण के ११७ और ११८ वें अध्याय में हिमवत् प्रदेश का भी वर्णन है। जिस पर नाना प्रकार की तरुलताएँ, किन्नर अप्सरसिद्धयक्षविद्याधरराक्षस देवादि जातियां निवास करती हैं। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण के बालकांड के पैंतीसवें सर्ग में विश्वामित्र ने गंगावतरण के प्रसंग में रामलक्ष्मण से हिमालय की चर्चा की है। मेरु की कन्या सुन्दरी मेना हिमालय की पत्नी है जिससे गंगा तथा उमा दो कन्याएं उत्पन्न हुई। ज्येष्ठा गंगा को अपने शुभ कार्यों के लिए देवताओं ने हिमालय से मांग लिया। और कनिष्ठा पार्वती ने उग्र तप करके सुरों की शान्ति के लिये ही शिव को पति रूप में प्राप्त किया। वाल्मीकि कृत रामायण में हिमालय को 'धातूनामकरो महान्' भी कहा गया है। महाभारत में विभिन्न स्थलों पर पुराण और रामायण के ही समान पर्वतेन्द्र जड़प्रदेशरूप और उसके अधिष्ठातृदेव दोनों रूपों में हिमालय का उल्लेख है। वन पर्व में तीर्थों का माहात्म्य बतलाते हुए हिमालय को प्रसिद्ध देवभूमि बताया गया है। नरनारायण और सिद्ध मुनियों की भूमि होने के कारण महाभारत काल में हिमालय को बहुत पूज्य स्थान मिल गया। पांडवों ने हिमालय के प्रति अपनी बहुत आत्मीयता व्यक्त की है। वहां की अनेक दानवी जातियों को पराजित कर उसके विभिन्न स्थलों पर पांडवों ने भारतीय संस्कृति का उद्धार या संस्थापन किया। यह तत्कालीन सिद्ध भूमि है जहां तापस और सिद्धलोगों की आवास भूमि है। यहीं केदारनाथ विशाला, बदरीनाथ कैलास और त्रिविष्टप् हैं। इसी हिमालय पर पांडवों का स्वर्गारोहण हुआ।

पाणिनि को भी अष्टाध्यायी (४।१।४९; ४।४।११२; ५।२।३४ और ६।४।२९) के अनुसार हिमानी (महद् हिमम् = ग्लेसियर) उसकी उपत्यका, अधत्यका और उसमें स्थित हिमश्रय का ज्ञान था।

वेद-पुराण-रामायण और महाभारत में प्रकटित हिमालय के प्रति महर्षियों के दृष्टिकोण ने परवर्त्ती संस्कृत साहित्य के कवियों को तदनुकूल प्रेरणा दी। अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' में हिमालय का उल्लेख किया। अश्वघोष के अनुसार कपिल गौतम ने हिमालय के शुभ अंचल में अपना पवित्र आश्रम बनाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तस्य विस्तीर्णं तपसः पार्श्वे हिमवतः शुभे ।
क्षेत्रं चायतनञ्चैव तपसामाश्रमोऽभवत् ॥ (सौ० १ । ५)

उस कपिल के आश्रम के कारण ही आगे चल कर वहाँ कपिलवस्तु नामक नगर बसाया गया जहाँ सिद्धार्थ का जन्म हुआ। पहले वहाँ सुन्दर लताओं और वृक्षों का वन था। वहाँ को भूमि स्निग्ध और मृदुतृणों से आच्छादित थी। वहाँ हवन होने के कारण ऊपर फैला हुआ धूआँ सर्वदा बादल की शोभा धारण करता था। कोमल सिकतामय चिकने पवित्र तथा केसरों की शय्या से ... स्थलों से मानो उस आश्रम का अंगराग हुआ था।

चारुविरुत्तरुवन: प्रस्निग्धमृदु शाद्वलः ।
हविर्धूम वितानेन यः सदाभ्र इवाबभौ ॥
मृदुभिः सैकतैः स्निग्धैः केसरास्तर पाण्डुभिः ।
भूमिभागैरसंकीर्णैः साङ्गराग इवाभवत् ॥ (सौ० १ । ६-७)

वहाँ कमलों का सरोवर था। वहाँ के तपस्वी नीवार के चावल से ही ... और सन्तुष्ट थे। वहाँ पवित्र वेदियों पर सोये हुए हरिण ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो लावा और माधवी पुष्पों के साथ वे उपहार चढ़ाये गए हों। वहाँ हिंस्र पशु मृगों के साथ शांति पूर्वक विचरण करते थे, मानो उन्होने शरण देने वाले तपस्वियों से विनय की शिक्षा प्राप्त की हो।

"विरेजुर्हरिणा यत्र सुप्ता मेध्यासु वेदिषु ।
सलाजैर्माधवी पुष्पै रुपहाराः कृता इव ॥
अपि क्षुद्र मृगा यत्र शान्ताश्चेरुः समः मृगैः ।
शरण्येभ्यस्तपस्विभ्यो विनयं शिक्षिता इव ॥" [सौ० १ । १२-१३]

हिमालय पर स्थित कपिलवस्तु का वर्णन करते हुए अश्वघोष लिखता है : —

'पाण्डुराट्टाल सुमुखं सुविभक्तान्तरापणम् ।
हर्म्यमाला परिक्षिप्तं कुक्षिं हिमगिरेरिव ॥' [१ । ४३]

पाण्डुरवर्ण की अट्टालिकाओं से उस नगरी का मुख भाग बहुत ही सुन्दर लगता था। उसके भीतर बहुत सुन्दर ढंग से अलग-अलग बाजार सजे हुये थे। वह नगरी बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं से हिमगिरि की कुक्षि के समान सुशोभित हो रही थी।

संस्कृत कवियों में कालिदास का हिमालय प्रेम अप्रतिम है। कालिदास भूले-भटके भी हिमालय या हिमसंबन्धी किसी न किसी तत्व को स्मरण किये बिना नहीं रह सकते। रघुवंश के द्वितीय सर्ग में दिलीप नन्दिनी को चराने के लिये हिमालय पर ही ले जाते हैं। वहाँ के कीचक नामक बाँसों से वंशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ध्वनि वे सुनते हैं। कालिदास ने हिमालयीय निर्झरों के जल बिन्दु से संपृक्त सुगन्धित मंदवायु का सेवन किया था, जिसकी चर्चा उन्होंने दिलीप के गोचरण की प्रसंग में की है :—

पृक्तस्तुषारैर्गिरि निर्झराणामनो कहा कम्पित पुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्र माचारपूतं पवनः सिषेवे ॥ [रघु० २।१३]

कालिदास कहते हैं कि गोचारण के लिये वन में जाते हुये दिलीप के ऊपर बाल लताएँ अपने पुष्प गिरा-गिरा कर पौरकन्याओं द्वारा लावा बरसाने का आचरण करती हैं। कभी-कभी लता वितान से निकलने के कारण उनके केशों में पतली-पतली टेढ़ी-मेढ़ी लताएँ उलझ जाती हैं। गंगा प्रपात के समीप उपजी हुई कोमल घासों को चरने के लिये एक दिन नन्दिनी गौरीगुरु के गह्वर गुहा में पहुंच जाती है। ('गङ्गाप्रपातान्त निरुढशष्पं गौरी गुरोर्गह्वर माविवेश ॥' (२।२६) कालिदास का गोचारक हिमालय की शोभा देखे बिना कैसे रह सकता है। इधर दिलीप अद्रिशोभा देखने में तन्मय होते हैं उधर पाटलवर्ण की उस नन्दिनी पर एक सिंह का आक्रमण हो जाता है। कालिदास ने उस आक्रान्त गौ पर आक्रामक सिंह का जो चित्र खींचा है वह निश्चय ही उनकी हिमायल पर्यवेक्षिका दृष्टि का नमूना है। उस हिमालय को गैरिक अधित्यका (शिखर भूमि) पर प्रफुल्ल लोध्रद्रुम के समान पाटलवर्ण वाली नन्दिनी पर आक्रमण करने वाला सिंह दिखाई पड़ रहा था. :—

स पाटलायां गवि तस्थिवासं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श ।
अधित्यकायामिव धातु मय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥ (२।२९)

रघु की दिग्विजय का वर्णन करते हुए कालिदास प्राची के बंग, उत्कल, कलिंग, दक्षिण के पांड्य, ताम्रपर्णी तट, पश्चिम के पारसीक यवनों और द्राक्षावलय भूमि विजय के बाद रघु की कौबेरी दिक्-उत्तर दिग्विजय की चर्चा की है। उस प्रसंग में हिमालय और उस पर के जनपद भी आगये हैं। उत्तर के हूणों और कम्बोजों को हराने के बाद गौरी गुरु शैल (हिमालय) पर अश्व संपन्न रघु पहुंचते हैं। यहाँ भी कालिदास ने हिमालय के गोरीशंकर शृंग का स्मरण किया है :—

ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वः साधनः ।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः ॥ (रघु० ४।७१)

गुहा में सोने वाले सिंह रघु की सेना का घोष सुनकर वहीं रह जाते थे आगे नहीं बढ़ते थे। हिमालय के भोजपत्रों की मर्मरध्वनि और कीचक बाँसों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांसुरी-सी आवाज एवं गंगा से जलबिन्दु को लेकर बहने वाली मन्द हवा वों ने रघु का स्वागत किया :—

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचक ध्वनि हेतवः ।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥ (रघु० ४ । ७३)

रघु की सेना वहीं कहीं पर कस्तूरी सुरभित चट्टानों पर नमेरु वृक्षों की छाया में अपनी थकावट दूर की थी। वहीं सरलवृक्षों में लगी हुई लतौषधियों में रघु के हाथियों ने गले की शृंखला रगड़ दी थी जिससे उन औषधियों ने रात के समय विना तेल के ही दीपिका का काम किया, :—

सरलासक्त मातङ्गग्रैवेय स्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्त मस्नेहदीपिका ॥

वहां देवदारु वृक्षो में रघु के हाथियों ने अपने कंठ की शृंखला रगड़ दी थी। उन देवदारुओं ने ही किरातों को हाथियों की ऊँचाई की सूचना दी थी। वहाँ पर्वतीय गणों के साथ रघुकी बहुत कठिन लड़ाई हुई। वहाँ उत्सवसंकेत नामक गणों को रघु ने हराया और किन्नरों ने रघु का स्वागत किया, :—

शरैरुत्सव संकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ (रघु० ४ । ७८)

उस लड़ाई में उत्सव संकेतों ने रघु को बहुता उपायन दिया। हिमालय तथा रघु दोनों ने परस्पर एक दूसरे का क्रमशः बल और धन समझ लिया : —

“परस्परेण विज्ञातस्तेषू पायन पाणिषु ।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ॥” (रघु० ४ । ७९)

सारांश यह है कि उस लड़ाई में हिमालयीय गणों ने रघु का बल समझ लिया और प्रभूत धन उपायन स्वरूप दिया। किंतु रघु उसके बाद कैलास तक नहीं जा सके वहीं से लौट गये। वहाँ से लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नद को पार कर रघु कृष्णागुरु वृक्षवाले प्रदेश प्राग्ज्योतीष (आसाम में कामरूप में) पहुंचते हैं।

रघुवंश में कालिदास ने हिमालय के लिये हिमवत्, हिमाद्रि और गौरी-गुरु नामों का उल्लेख किया है। कुमारसंभव में गौरीगुरु को हिमालय को देवतात्मा और पूर्वापरतोयनिधि को व्याप्त करने वाला पृथ्वी का मानदण्ड कहा है। उन्होंने नगाधिराज नाम से स्मरण किया है। कालिदास के कुमार-संभव का प्रथमश्लोक न केवल कालिदास की बल्कि भारतीय जीवन और संस्कृति की प्रमुख उपलब्धि है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः (कु० १।१)

इसका एक-एक वर्ण और एक-एक स्वर अप्रतिम महत्त्वपूर्ण है। श्लोक के प्रारम्भ में 'अस्ति' क्रिया त्रैकालाबाधित है। कोई भी हिमालय का निषेध नहीं कर सकता। 'अस्ति' से जो ध्वनि निकलती है, उसमें आत्मीयता, सातत्य और अक्षुण्ण का भाव झलक रहा है। कितनी गंभीरता है इस 'अस्ति' में। उसे देवतात्मा कह कर कालिदास ने सभी पुराणों रामायण और महाभारत का निचोड़ कह दिया है। पृथ्वी का मानदण्ड और नगाधिराज शब्द के द्वारा कालिदास ने उसके विस्तार और सवालाख पर्वतों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्णता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। कुमारसंभव के प्रथम सर्ग में एक से सत्रह श्लोकों तक उपजाति छन्द में जो हिमालय का वर्णन किया है वह संस्कृत साहित्य में अपनी तुलना नहीं रखता। यहाँ सत्रह श्लोकों तक तो हिमालय के पर्वत रूप का वर्णन है, बाद में मेरु की दुहिता मेना के पति और उमा के पिता के रूप में उपस्थित किया गया है। प्रारम्भिक सत्रह श्लोकों में कालिदास ने बताया है कि उत्तर दिशा में यह वही देवतात्मा नगाधिराज हिमालय है जो पूर्वापर समुद्रतक फैल कर पृथ्वी को उत्तर-दक्षिण दो भागों में बाँटने वाला मान दण्ड के समान प्रतीत होता है। यह वही पर्वत है जिसको सभी पर्वतों ने बछड़ा बनाया था, उस समय पृथु द्वारा उपदिष्ट धरित्री रूप गौ को दूहने में निपुण मेरु दोग्धा बना था। फल स्वरूप मेरु ने तो पृथ्वी से रत्नों और औषधियों को लिया हो हिमालय पर भी सुन्दर-सुन्दर रत्न और महौषधियाँ चमकने लगीं। अनन्त रत्नों को उत्पन्न करने वाले उस हिमालय पर हिम है तो इससे उसकी सुन्दरता में कोई कमी नहीं क्योंकि हिम यदि उसमें कोई एक दोष भी है तो वह चन्द्रमा की किरणों में जैसे उसका कलंक छिप जाता है वैसे ही उसके गुणोत्कर में छिपा हुआ है। उसी हिमालय पर अप्सराओं के विलास सामग्रियों को उत्पन्न करने वाले अनेक शिखर विराजमान हैं। उनकी धातुओं की अरुणिमा से आकाश में स्थित बादल के टुकड़े असमय सन्ध्या कालीन लालिमा को धारण करते हैं। वह इतना ऊँचा हैं कि मेघ उसके मध्यभाग में ही घूमते रहते हैं। इसके कारण तपस्वी सिद्ध मुनि जब उसके अधः भाग में छाया का आनन्द लेते हैं और जब कभी वृष्टि से ऊब जाते हैं तब ऊपरी भाग में पहुँच कर धूप का आनन्द लेने लगते हैं। यह वही हिमालय है जिस पर सिंहों को मारने वाले किरात विचरण करते हैं, वे गज मौक्तिक हाथियों को मार कर जाने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहों का पता उन बर्फ की चट्टानों पर भी लगा लेते हैं, जिसके पिघलने के कारण उन पर पैर के चिन्ह नहीं दिखाई देते हैं। हाथियों के मस्तक से सिंहों के नखों द्वारा गिराई हुई गजमुक्तायें ही किरात व्याधों को सिंहों के मार्ग बता देती हैं। यह वही हिमालय है, जहां पर कुंजर बिंदु के समान लाल भोज पत्रों का उपयोग विद्याधर सुन्दरियां उस पर सिन्दूरादि द्रव पदार्थों की स्याही से काम-व्यंजक प्रेम-पत्र लिख कर अपने प्रियतमों के पास भेज कर करती हैं। यह वही हिमालय है जिसकी गुफाओं की वायु कीचक बाँसों के छिद्रों को भर कर उस समय वंशी वादन का तान भरने का काम करती है, जब वहां के किन्नर गण गाने की इच्छा करते हैं। यह वही हिमालय है, जहाँ हाथी सरलद्रुमों से अपने कपोल को रगड़ कर उसकी खुजली मिटाते हैं। इस रगड़ से सरलद्रूमों के छिलने के कारण उनसे सुगन्धित दूध निकलने लगता है जिससे सारी चोटियाँ सुगंधित हो जाती हैं। रात के समय उस हिमालय पर्वत की गुफाओं का अन्धकार कैसे दूर होता है। दीपक जलाने की कोई आवश्यकता नहीं। वहाँ ऐसी-ऐसी वनौषधियाँ हैं जो प्रकाश करके बिना तेल के दीपक का काम करती हैं। ये ही वनौषधियाँ प्रकाश के कारण वनेचर दम्पतियों के लिये सुरत प्रदीप का काम करती हैं। यह वही हिमालय है जहाँ बर्फ की चट्टानें कितना भी पैर की उँगलियों, तलवे और एड़ी आदि को ठिठुराये पर सुन्दरी किन्नरियाँ अपने नितम्ब और स्तनों के भार से दबी रहने के कारण अपनी मन्दगति नहीं छोड़ती। हिमालय शरणागत की रक्षा करता है। दिन में दिवाकर के डर से छिपे हुये उल्लू के समान अन्धकार की रक्षा अपनी गुफाओं में छिपा कर करता है। उदार व्यक्ति शरण आये हुये नीच के साथ भी सज्जनों जैसी आत्मीयता दिखाता है। इसे जो गिरिराज कहा जाता है वह ठीक ही है, क्योंकि चन्द्र के समान सफेद अपनी चमरमयी पूछों को इधर-उधर हिलाकर चमरी गायें उसके लिये गिरिराज शब्द को सार्थक करती है। यह वही हिमालय है जिसकी कंदराओं में किन्नर अपनी प्रियतमाओं का अंशुक खींचकर निर्वस्त्र कर देते हैं और वे किन्नरियाँ अपने को नग्न देख लजा जाती हैं, किन्तु गुफा के द्वार पर लटके हुये बादल उनके लिये तिरस्करिणी (पर्दा) का काम करते हैं। यहाँ पर मृगों को ढूढ़ते-ढूढ़ते थकने वाले किरात कैसी हवा का आनन्द लेते हैं? वह वायु जो भागीरथी के निर्झरों के जलबिन्दुओं को लेकर आई है, जो वायु देवदारु के पत्तों को धीरे-धीरे हिलाती है और जो किरातों को कमर में लगे मोर पंखों को भी कपाने वाली है। ऐसी वहाँ की शीतल मन्द और सुगन्धित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु है। हिमालय की ऊँचाई का वर्णन करते हुये एक बार कवि ने मेघ को उसके मध्य भाग तक ही रह जाने का उल्लेख किया था। वह सूर्य को भी उसके मध्य भाग तक ही रहने का उल्लेख करता है। हिमालय की अधित्यका परस्थित सरोजों को सप्तर्षिगण पूजा के लिये चन लेते हैं और उसके नीचे रहने वाले सूर्य अपनी ऊर्ध्वमुखी किरणों से अपने से ऊपर स्थित कमलों को प्रबोधित (विकसित) करते हैं। उस हिमालय को स्वयं विधाता ने शैलाधिपति बनाया है, क्योंकि उन्होंने देखा कि यही यज्ञों में उपयोगी सोमलतादि को उत्पन्न करने वाला यज्ञाङ्ग साधक है, इसी में धरित्री धारने का सामर्थ्य है।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती के सती होने पर शंकर जी विषयासक्ति से रहित होकर उसी हिमालय के किसी शिखर पर तपस्या कर रहे थे। कालिदास ने शंकर की उस तपोभूमि के सम्बन्ध में बताया है कि वहाँ गङ्गा की धारा से संसिक्त देवदारू के पेड़ थे। वह शिखर कस्तूरी गंध से आमोदित और किंनरों के गान से शब्दायमान था—

स कृत्तिवास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षत देवदारु।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभि गन्धि किंचित्क्वणि त्किन्नरमध्युवास ॥१।५४॥

उस समय हर के गण मनःशिला का अनुलेप कर शिलाजीत वाले पत्थरों पर भोजपत्र पहन कर नमेरू वृक्ष के पुष्पों का अलंकार धारण कर वहाँ बैठे थे—

गणा नमेरू प्रसवाववतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवती र्दधानाः।
मनः शिला विच्छुरितानिषेदुः शैलेय नद्धेषु शिलातलेषु ॥१।५५॥

पिता से आज्ञा पाकर गौरी ने जिस शिखर पर तप किया, बाद में चलकर प्रजाओं में उसी के नाम पर उस शिखर का नाम गौरी शिखर पड़ गया—

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा . गुरूणा गरीयसा।
प्रजासु पश्चात् प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥
(कु० ५।७)

मेघदूत का यक्ष तो हिमालय के अञ्चल अलकापुरी का ही निवासी है। रामगिरि पर निर्वासित यक्ष अपनी प्रिया के पास मेघ के द्वारा संदेश भेजता है। पूर्व मेघ के पचासवेंश्लोक से लेकर अन्त तक हिमालय का वर्णन है। कनखल के और ऊपर शैलराज हिमालय से उतरती हुई जाह्नवी सगर-तनयों को स्वर्ग पर चढ़ाने की सीढ़ी की पंक्तियों के समान दिखाई पड़ती है। वहाँ गौरी की भ्रुकुटि रचना को गङ्गा अपने फेनों के द्वारा हस कर चन्द्रकरों के सहारे शङ्कर के जटाजूट को अपने करों (उर्मियों) से पकड़ने में समर्थ हो गई है। हिमालय की शिलाओं पर कस्तूरी मृग बैठते हैं अतः उनकी कस्तूरी से सारी शिला सुगंधित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती है। श्वेत हिमालय के शृङ्ग पर स्थित बादल शङ्कर के नंदी बैल की सींगों पर लगे पंख की शोभा धारण करते हैं। हिमालय पर सरल वृक्षों के घर्षण से बन में आग लग जाती है। चमरी गौओं के बालों में भी जब वह आग पहुँच जाती है तब बादल वर्षा करके आग बुझाते हैं। कालिदास ने शरभ मृगों पर मेघ को करका वर्षा करने की सम्मति नहीं दी है। उन्होंने बादलों में कूदनेवाले मृगों को देखा है। उस हिमालय की किसी शिला पर भगवान् शंकर के चरण अंकित हैं। सिद्धजन जिसकी निरंतर पूजा करते हैं। उन भगवान शंकर के चरणों के दर्शन से सारे पाप धुल जाते हैं और श्रद्धालु व्यक्ति को भगवान शङ्कर के गणों का पद मिल जाता है। उस हिमालय पर बजनेवाले कीचक जाति के बाँस हैं जिनके छेदों में प्रवेश कर वायु वंशी की ध्वनि करती है। वहाँ किन्नरियाँ त्रिपुर विजय का गान करती हैं। उस समय बादलों का गरजना नगाड़ा का काम करता है। कालिदास ने मेघदूत में प्रालेयाद्रि हिमालय पर हंस द्वार भृगुपतियशोवर्त्म क्रौञ्चरन्ध्र का उल्लेख किया है। और यक्ष उससे होते हुए मेघ को अलका पुरी भेजता है—

'प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषा—
न्हंसद्वारं भृगुपति यशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यं गायामशोभि
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णुः॥'
(पूर्वमेघ ५७)

पुरानों के अनुसार परशुराम ने अपने बाण से क्रौञ्च पर्वतका भेदन किया था। अतः कालिदास ने इसे भृगुपतियशोवर्त्म कहा है। यह कुमाऊँ से कैलास के मार्ग में आनेवाला प्रसिद्ध नीति दर्रा है जो भारत को तिब्बत से मिलाता है।[1] इसी मार्ग से हंस मानसरोवर को जाते हैं। क्रौञ्चरन्ध्र के बाद कालिदास ने त्र्यंबक के राशिभूत अट्टहास के समान त्रिदश वनिताओं के दर्पन रूप श्वेत कैलास का उल्लेख किया है। श्वेत कैलास पर्वत पर काले काले बादल बलराम जी के कंधे पर सुन्दर लगनेवाले नीले वस्त्रों के समान सुन्दर लगते हैं (पू० मे ५९)

कैलास पर पहुँचने के बाद मेघ क्या करेगा। इस विषय में यक्ष उपदेश देता है कि मेघ, जब क्रीड़ाशैल पर सर्प कंकणों से रहित शिव के हाथों का सहारा लेकर गौरी पैदल घूमने लगें, उस समय तुम अपने जल को भीतर घना करके टेढ़ा

१—दे० 'काव्य मीमांसा' पं० सारस्वत की टीका पृ० २९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेढ़ा हो सोपान का रूप धारण कर उस मणि तट पर चढ़ने में उन्हें सहारा देना, (पू० मे० ६०)

कालिदास ने कैलास के समीप मानसरोवर के पास अलकापुरी का भी वर्णन किया है। इस अलका को आसानी से पहचाना जा सकता है। यह पुरी कैलास रूपी प्रिय की गोद में बैठी हुई एक नायिका है जिसका गङ्गा रूपी दुकुल कुछ स्रस्त हो गया है। उस पुरी में ऊँचे-ऊँचे भवन हैं। वहाँ की सुन्दरियाँ मणियों को अपनी चोटियों में गूँथती हैं। (पू० मे० ६३)

अलका की सुन्दरियों की क्रीड़ा का वर्णन करते हुए कालिदास बताते हैं कि मंदाकिनी की शिशिर वायु से वे ठंडी होती हैं, मंदार वृक्षों के नीचे गर्मी दूर करती हैं और सोने की बालुका की मुट्ठियों में मणियों को छिपा-छिपा उसे ढूँढ़ने का खेल खेलती हैं।

मन्दाकिन्याः सलिल शिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि
मंन्दाराणामनुतट रुहाँ छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टि निक्षेप गूढ़ैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमर प्रार्थिता यत्र कन्याः॥ (उ० मे० ४)

कुमार संभव (१।२९) में हम देखते हैं कि पार्वती भी मन्दाकिनी की बालुका की वेदिका बना-बना खेलती है।

'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के सातवें अंक में दुष्यन्त मातलि के साथ स्वर्ग से उतर रहा है। सामने के पर्वत को देख कर वह मातलि से पूछता है—यह कौन सा पर्वत है, जो पूर्वा पर समुद्र संबद्ध है, जिससे कनक रस भर रहा है जो सायंकालीन मेघार्गला के समान दिखाई दे रहा है।—

विष्णुपुराण में हेम कूट पर्वत के हिमालय से परे बताया गया है और किं पुरुष को भी मेरु के दक्षिण में स्थित बताया गया१ है। महाभारत सभा पर्व के अनुसार हेमकूट पर ही अर्जुन ने अपनी सेना का पड़ाव डाला था और वहाँ से वे हरिवर्ष में गए थे।

कालिदास के हृदय में हिमालय ने अपना इतना गहरा प्रभाव डाल दिया है कि उससे निकलने वाली वाणी उस देवतात्मा को स्पर्श किये बिना नहीं निकलती।

कालिदास के बाद भारवि ने अपने किराताअर्जुनीयम् के पांचवें सर्ग में प्रस्तुत रूप में हिमालय का वर्णन किया है। व्यास जी के कथनानुसार यक्ष की सहायता

१—भारतं प्रथमं वर्ष ततः किं पुरुषं स्मृतम्। हरिवर्ष तथै वान्यन्मेरोर्दक्षिणको द्विज (विष्णु पु०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अर्जुन हिमालय से होते हुए इन्द्रकील पर्वत पर जाते हैं। हिमालय के वर्णन के प्रसंग में कवि ने कहा है कि आगमों की सहायता से ही यत्किंचित् हिमालय का वर्णन किया जाता है। वह परपुरुष (ब्रह्म) के समान अज्ञेय है, ब्रह्मा ही उसको ठीक से समझते होंगे२। उसकी ऊँचाई का वर्णन करते हुए कवि कहता है—'शायद सुमेरू पर्वत को जीतने के लिए यह इतना ऊँचा है, अथवा दिग्-दिगन्तों को देखना चाहता है या वह आकाश का अतिक्रमण करना चाहता है। वह इतना ऊँचा है कि जिधर सूर्य रहते हैं उधर प्रकाश और दूसरी ओर अंधकार बना रहता है। मानों त्रैलोक्य के सार रूप में उसका निर्माण कर शंकर ने अपने यश का प्रचार किया है। इसमें पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग के रहने वाले सभी परस्पर एक दूसरे को बिना देखे अदृश्य होकर रहते हैं!—

क्षितिनभः सुरलोक निवासिभिः कृतनिकेतमदृष्ट परस्परैः।
प्रथयितुं विभुतायभि निर्मितं प्रतिनिधिं जगतायिव शंभुना॥ (किरात ५।३)

इस हिमालय पर अनेक रत्नों की तटवाली नदियाँ हैं। हाथियों ने उनके तटों को स्थान-स्थान पर तोड़ कर स्नान करने के लिए उतरने योग्य बना दिया है। नदियों में कमल खिलते हैं और ऊँचे से गिरने के कारण नदियों की धारा बहुत तेज है। —

'दधतमाकरिभिः करिभिक्षतैः समवतार समैर समैस्तटैः।
विविध कामहिता महिताम्यसः स्फुट सरोजवनाजवना नदीः॥५।७॥

इस हिमालय की चोटियों पर अनेक भास्वर रत्न हैं। अतः इन्द्रधनुष के होने पर भी उसका पहचाना जाना मुश्किल है वर्फ की चट्टानों पर स्थित बादल भी श्वेत वर्ण में मिलने के कारण नहीं पहचाने जाते। बादल जब गरजने लगते हैं तब उनका पता चलता है। यहाँ कुररी पक्षी रहते हैं। हंसों वाला मान-सरोवर भी इसी पर है। हिमालय पर ऐसी औषधियाँ हैं कि स्वर्ग के चतुर्दिक स्थित ग्रहों और देवों के विमानों को भी प्रकाशित करती रहती हैं। इससे शंकर भगवान के गणों को संदेह हो जाता है कि कहीं फिर त्रिपुर दाह हो रहा है क्या?

ग्रहविमान गजानभितो दिवं ज्वलयतौषधिजेन कृशानुना।
मुहुरनुस्मरयन्तमनुक्षणं त्रिपुरदाहमुमापति सेविनः॥ (५।१४)

इस हिमालय पर बहने वाली गंगा के मार्ग को उपल जब अवरुद्ध कर देते हैं, तब गंगा का जल चट्टानों के ऊपर टकरा कर ऊपर तीव्र गति से जलविंदु फेकता है, उस समय लगता है जाह्नवी को चमर डुलाया जा रहा है।

२—किरातः (५ १८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस हिमालय पर अविदित विभाव वाले शंकर जी सर्वदा निवास करते हैं। अतः इस गौरी गुरु हिमालय की तुलना त्रिभुवन भी नहीं कर सकता। (५।२७)

इस पर सुर सुन्दरियों का निवास है। इसका नितंब भाग सुन्दर है। यह रुचिर निनाद करने वाले नदों से युक्त है। यह पाताल रक्षक वासुकि को अत्यन्त प्रिय है। इस पर पृथ्वी पर के सभी स्वादों को तिरस्कृत करने वाली अतिस्वादिष्ट सुधा का वास है। (५।२७)

स्वर्ग की ललनाएँ इसकी लतौषधियों को प्राप्त कर स्वर्ग का सुख भी भुला देती हैं। हरिचन्दन के नये नये पल्लवों वाली शय्या, रतिश्रम को दूर करने वाली वायु उनको स्वर्ग का सुख याद नहीं आने देती। यहीं कैलास है जिस पर प्रात; काल सुरापगा के तट पर सन्ध्यादि के समय अर्द्धनारीश्वर शिव के चरणों के चिह्न स्पष्ट प्रतीत होते हैं। वाम (पार्वती वाले) चरण की रेखा यावकरस रञ्जित होने के कारण लाल और विषम (छोटा) है और दक्षिण (शिववाले चरण का चिह्न ऐसा नहीं है।—

'इह सनियमयोः सुरापगायामुषसि सयावक सव्य पादरेखा।
कथयति शिवयोः शरीरयोगं विषम पदा पदवी विवर्तनेषु॥ (५।४०)

महा भारत के सभा और बन पर्व में इन्द्र कील की चर्चा आती है। यह गंध मादन पर्वत से परे है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारवि ने पुराण महाभारतादि के सहारे अपनी कल्पना शक्ति से हिमालय का वर्णन किया है। लगता है भारवि ने कालिदास के समान हिमालय को अन्तश्चक्षु से नहीं देखा था। प्रत्यक्ष दर्शन भी पता नहीं कितना था। इन्होंने हिमालय को पढ़ा और सुना था।

सोमदेव ने कथासरित् सागर में शिव पार्वती संवाद के अवसर पर हिमालय का वर्णन किया है। वे कहते हैं, किन्नर गंधर्व विद्याधरों द्वारा सेवित और गिरीन्द्रों का चक्रवर्ती हिमवान् नामक पर्वतेन्द्र है। उसकी महत्ता इसी से व्यक्त होती हैं कि त्रिजगत की जननी भवानी उसकी पुत्री हैं। उस हिमालय का उत्तरी शिखर सहस्र योजन तक फैला हुआ कैलास नामक महा गिरि है। वह अपने गौर वर्ण के कारण मंदराचल को भी हसता है। अम्बिका पति अपने गणों, विद्याधर सिद्धादि द्वारा सेवित महेश्वर विद्यमान हैं।—

बाद के संस्कृत कवियों ने प्रायः अप्रस्तुत या उपमान रूप में ही हिमालय का वर्णन किया है। श्री भोजदेव ने शृङ्गार मंजरी कथा में कथानायिका का वर्णन करते हुए लिखा है—वह क्रौञ्चगिरि की रन्ध्र पक्ति के समान राजहंस गति से परिचित है,—क्रौञ्चगिरि रन्ध्र पद्धतिरिव परिचित राजहंस गतिः। वाण भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी अपनी कादम्बरी में ऐसे अनेक उपमान उपस्थित किये हैं। कादम्बरी में किन्नर मिथुन का पीछा करते हुए चन्द्रापीड हिमाचल की ऊँची चोटी पर पहुँच गया है। महाश्वेता ने उससे किंपुरुष और वहाँ के गन्धर्व परिवारों की चर्चा की है। बाण ने स्थान-स्थान पर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षादि के रूप में हिमालय या कैलास को उपस्थित किया है। उन्होंने अच्छोदसर और सिद्धायतन की कल्पना की है। महाश्वेता अपने पूर्वजों की कहानी सुनती हुई चन्द्रपीड से कहती है—यहाँ से कुछ ही दूरी पर भारतवर्ष के उत्तर किंपुरुष नामक वर्ष है जहाँ हेमकूट नामक पर्वत है। वहाँ पर उसके (चैत्ररथ के) भुजयुगलों से परिपालित सैकड़ों हजारों गन्धर्वों के समूह हैं। उसी ने इस चैत्ररथ नाम सुन्दर वन का निर्माण किया और इस अच्छोद नानक महान् सर को खुदवाया—

"इतश्च नातिदूरे तस्यस्मात् भारतवर्षादुत्तरेणानन्तरे किंपुरुषनाम्निवर्षे वर्ष पर्वतो हेमकूटो नाम निवासः। तत्र तद्भुज युगल परिपालितान्यनेकानि गन्धर्व शत सहस्राणि प्रतिवसन्ति। तेनैवेदं चैत्ररथं नासाति मनोहरं काननं निर्मितम्, इदं चाच्छोदाभिधान मति महत्सरः खानितम्।"

राजशेखर ने भी उत्तरापथ का परिचय देते हुए हिमालय की चर्चा की है। वहां के जनपद पर्वत नदियों और वस्तुओं की गणना करते हुए वे लिखते हैं कि पृथूदक से परे उत्तरापथ है। जहाँ शक, केकय, वोक्काण, हूण, वाणायुज, कम्बोज, वाह्लीक, बह्लव, लिंपाक कुलूत, कीर, तंगण, तुषर, तुरुष्क, बर्बर, हरहूरव, हुहुक, सहुड़, हंसमार्ग, रमठ और करकंठ आदि जनपद हैं। हिमालय, कलिंद इन्द्रकील और चन्द्राचल आदि पर्वत हैं। गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, इरवती, वितस्ता, विपासा, कूहू, देविका आदि नदियाँ हैं। इन जनपदों में—सरल देवदारु, द्राक्षा, कुंकुम, चमर, अजित सौवीत. श्रोतांजन, सैन्धव, वैदूर्य और अश्व आदि मिलते हैं। (का० मी० १७ वां अध्याय सारस्वत की टीका पृ० २२७)

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में हिमालय के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। उसका जड़-चैतन्य प्राकृतिक सौंदर्य भारतीय कवियों को सर्वदा विमुग्ध करता रहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भारतीय जीवन के चतुर्विधि पुरुषार्थों का ऐसा खुला दरवाजा विश्व में अन्यत्र कहाँ? जहाँ पवित्र तीर्थस्थल गंगोत्री, यमुनोत्तरी, बदरीनाथ, केदारनाथ और हंसद्वार कैलास, मानसरोवर हैं। कुबेर की अलका और देवों का त्रिविष्टय जहाँ विराजमान है। जिसके हरीगृहों में अनेक यक्षाप्सराएँ किन्नरियाँ विलास करती हैं तो कैलास और मानसरोवर के तट पर शंकर और पार्वती का ध्यान लगाये अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध तपस्वी भी बैठे हुए हैं। भास्वर रत्नों, औषधियों और वांछित फलदायक कल्पवृक्षों का आवास हिमालय वैदिक काल से अब तक भारतीय जनों को सर्वविधि संपन्न करता रहा है। भारतीय संस्कृत का मूलाधार हिमालय कभी भुलाया जा सका है? शंकर की आवास भूमि कैलास को भारतीय जनमानस से कौन निकाल सकता है? आवश्यकता है इसकी इंच-इंच भूमि से और अधिक आत्मीयता बढ़ाने की। यहाँ के आदिवासियों की भाषा सीखकर उनके इतिहास से उन्हें अवगत कराने की, कटु जीवन में भूले हुए यत्र तत्र के स्मृति कणों को एकत्र कर हिमालय के वास्तविक स्वरूप को पहचानने की।

भारत वर्ष हमारा है, यह
हिन्दुस्तान हमारा है।
विन्ध्य, सत्पुड़ा, नागा, खसिया,
ये दो औघट घाट महा,
भारत के पूरब-पश्चिम के
ये दो भीम कपाट महा,
तुंग-शिखर, चिर अटल हिमाचल
हैं पर्वत-सम्राट यहां,
यह गिरिवर बन गया युगों से
विजय-निशान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह
हिन्दुस्तान हमारा है।

—"नवीन"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलाकान्त वर्मा

1 धरती कहती, अम्बर कहता, कहता क्षितिज पुकार-पुकार,
सुन मानव ! दानव ने हिम-गिरि पर फिर आज किया हुँकार !

2 चिर-बर्बर, चिर-हिंस्र चीन से दानवता फुफकार उठी,
मानव को मर्दित करने की एक तुमुल ललकार उठी,
देश-देश को दास बनाने दस्यु चीन सरकार उठी,
कारागार एशिया का बनने चीनी दीवार उठी,
विकल बुभुक्षा युग-युग की युद्ध-ध्वनि बन टंकार उठी,
मृत्युवाद का तूर्यनाद कर दैत्य-शक्ति चीत्कार उठी,
"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" का करने समग्र संहार उठी,
कोटि-कोटि नर-रक्त-लिप्सु पशुओं की दीर्घ कतार उठी,
चली कुचलने विश्व-शांति सेना चीनी, खूनी, खूंखार,
दिशा-दिशा में रोष जगा, बरसा दिक्-दिक् से धिक्-धिक्कार !
सुन मानव ! दानव ने हिम-गिरि पर फिर आज किया हुँकार !

3 और एक दिन चीन-वाहिनी हिम-शिखरों पर चढ़ आई,
पंचशील की छाया में माया विनाश की फैलाई,
तपोभूमि के धवल गगन में धूमिल प्रलय-घटा छाई,
बहे पवन उंचास ध्वंस के उठी मृत्यु ले अँगड़ाई,
नन्दन-वन क्रन्दन से गूँजा, दमन-दुंदुभी घहराई,
काँप उठा कैलास, मानसर सूखा, अलका थर्राई,
क्षत-विक्षत मूर्च्छित हो तिब्बत गिरा, सभ्यता चिल्लाई,
रंगी रुधिर से तिब्बत की चोटी-चोटी, खाई-खाई,
लक्ष-लक्ष वक्षों को कुचला दानव ने कर चरण प्रहार,
लक्ष-लक्ष कण्ठों से फूटा आर्तस्वर में हाहाकार !
सुन मानव ! दानव ने हिम-गिरि पर फिर आज किया हुँकार !

4 बढ़ी बुभुक्षा नर-भीक्ष की, बर्बरता में ज्वार उठा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अब भारत की ओर उमड़ता पशुबल-पारावार उठा,
लोकतंत्र पर एक एकतंत्र करने बरबस अधिकार उठा,
मानव-जय करने दानव का दारुण शस्त्रागार उठा,
किन्तु उठा भारत भी, उठा एशिया, नव-संसार उठा,
लोकतंत्र का प्यार उठा, विभु लोकतन्त्र-परिवार उठा,
पृथ्वी के स्वतन्त्र देशों का एक विपुल विस्तार उठा,
दानव-बल खंडित करने मानव का वज्र-प्रहार उठा,
नहीं कहीं स्वाधीन भूमि ढोयेगी कोई चीनी भार,
चाहे महायुद्ध हो, चाहे महा-प्रलय ही हो साकार !
सुन मानव ! दानव ने हिम-गिरि पर फिर आज किया हुँकार !

पूछ धरा से, सागर से, सूरज से, चांद-सितारों से,
पूछ सभ्यता से, संस्कृति से, सृजनों से, संहारों से,
विध्वंसों के अवशेषों से, लुटे विभव-भण्डारों से,
भ्रष्ट युगों की नष्ट पड़ी भू-मग्न भग्न दीवारों से,
डोला जब भूतल विराट बहु-बर्द्धित बर्बर भारों से,
कांपी जब पृथ्वी यह दुर्वह पाशव अत्याचारों से,
दानव आधिपत्य का उलझा जब मानव अधिकारों से,
दानव दर्प-दंभ टकराये जब मानव संस्कारों से,
साक्षी है इतिहास, शक्ति का तब-तब हुआ रौद्र अवतार,
शिव-तांडव से हिम-तल में फूटे प्रलयांबु, प्रलय-अंगार !
सुन मानव ! दानव ने हिमगिरि पर फिर आज किया हुंकार !

युग-युग में दानव उपजे, प्रतियुग दानव उपजाता है,
पर दानव-चूड़ांत चीन है, यह इतिहास बताता है।
विश्व-समर हो, विश्व-नाश हो, मंत्र यही दुहराता है,
कापालिक यह महाप्रलय के प्रतिक्षण प्रेत जगाता है,
नरवेषी, नरद्वेषी नरकासुर नर-मेघ रचाता है,
चिता जले मानवता की, जग मरघट बने, मनाता है,
इस दानव का दलन-दमन जो करे धर्म का त्राता है,
यही धर्म-पथ, पथिक इसीका भूतल-भाग्य-विधाता है,
धन्य-धन्य भारत ! जिसने यह किया आज पथ अंगीकार !
आज महाभारत की वेला, गीता-गायन का त्यौहार !
सुन मानव ! दानव ने हिम-गिरि पर फिर आज किया हुँकार !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास और हिमालय

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

पर्वतराज हिमालय प्रागैतिहासिक काल से ही भारत के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। गंगा यमुना ब्रह्मपुत्र सरीखी बड़ी-बड़ी नदियां वहाँ की अमृत-राशि से भारत का वक्षस्थल शीतल करती और आर्यावर्त को शस्यश्यामल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया करती हैं। मौसमी हवा को भारत के लिये रोक रखने में बड़े समर्थ प्रहरी की भांति हिमालय पूर्व से पश्चिम तक के नाके रोक कर अडिग खड़ा हुआ है। अनेक प्रकार के रत्नों और खनिज पदार्थों से वह भरपूर है। वन्यसम्पदा भी उसमें अटूट है। भाँति-भाँति के फल फूल और पत्तों तथा इमारती लकड़ियों और मूल्यवान महौषधियों से वह लदा पड़ा है। दुर्लभ और अद्भुत पशु पक्षी उसमें पर्याप्त बड़ी मात्रा में निवास करते हैं। भारतीय संस्कृति का तो वह एक प्रकार से मूलस्रोत ही रहा है। हमारे सिद्ध महात्मा वहीं निवास करके उसीसे प्रेरणाएं पाते रहे हैं। पुराणों के अनुसार मानवों के आदि पुरुष कश्यप का मेरु वहीं रहा है। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन आदि अवतारों की कथा उसी से सम्बद्ध है। भगवती आदि शक्ति का क्रीड़ाक्षेत्र वही रहा है और भगवान सदाशिव का निवासस्थल तो वही आज भी माना जा रहा है। वहीं बदरिकाश्रम है, वहीं गङ्गोत्री, यमुनोत्री केदारेश्वरी आदि हज़ारों तीर्थ हैं। हर-द्वार अथवा हरि-द्वार वहीं प्रवेश करने का फाटक है जिसे पार कर अनेकानेक भारतीय नरेशों ने भी ऋषि मुनियों की भांति उसी की गोद में पहुँचकर समाधि ली है। हमारी देवयोनियों-सिद्धों, विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों आदि का निवासस्थल हमने उसे ही माना है। अतएव वह हमारे लिये देवस्वरूप है। जनपालक पिता स्वरूप है और हमारे राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अङ्ग है। उनका एक एक शिखर हमारा वह राष्ट्र ध्वज है, जिसके ऊपर हम किसी प्रकार का विदेशी आक्रमण नहीं सह सकते। हम भलेही मर मिटें किन्तु उसका कोई भी अंश विदेशी अधिकार में न जाने देंगे।

जिस प्रकार एक मानव-जीवन के लिये तन-मन-धन आवश्यक है उसी प्रकार एक राष्ट्र-जीवन के लिये भी। भारतीय राष्ट्र के तन मन धन के संरक्षण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवर्धन में हिमालय का कहां तक हाथ रहा है और यह ऊपर बनाया जा चुका है। सामान्य रूप से तो वह हिमालय है परन्तु हमारे लिये वह शस्यालय, अमृतालय, औषधालय, रत्नालय, विद्यालय, शक्त्यालय, प्रेरणालय, देवालय, शिवालय—सब कुछ है। वह जिस प्रकार अन्तः सौंदर्य में अद्वितीय है ; उसी प्रकार बाह्य सौंदर्य में भी। इसीलिये प्रत्येक प्रकार के भारतीय साधकों ने उसका सहारा ताका है।

सरस्वती के साधकों के लिये तो वह चिरकाल से बड़ा प्रेरणास्रोत रहा है। वैदिक तपोवन अधिकांश यहीं थे जहाँ से ऋषियों ने वेद मन्त्रों के दर्शन करके और दिव्य वाणी को श्रुतिपथ पर लाकर अमर सङ्गीत सुनाये हैं। आदि काव्य रामायण और पंचम वेद स्वरूप महाभारत सरीखो ऐतिहासिक रचनाओं में भी हिमालय का विशिष्ट स्थान रहा है। वाल्मीकि और व्यास के बाद कविकुलगुरु कालिदास की प्रतिभा पर हिमालयने अपना अमिट प्रभाव दिखाया है। संस्कृत, प्राकृत तथा भाषा के अनेकानेक कवियों ने भी हिमालय से प्रेरणाएँ ली हैं उन सब के विस्तार में न जाकर हम यहाँ कविश्रेष्ठ कालिदास की ही कुछ स्वीकृतियां रखना चाहेंगे जिनसे हिमालय के प्रति कविहृदय की प्रगाढ़ आत्मीयता का परिचय मिलेगा। यों तो शृंगार और सौंदर्य के कवि कालिदास का हृदय समुद्र ने भी आकृष्ट किया है। विन्ध्य पर्वत ने भी आकृष्ट किया है, प्रयाग के संगम ने भी आकृष्ट किया है और उज्जयिनी के समान नगरियों ने भी आकृष्ट किया है परन्तु अपनी रचनाओं में जितना स्थान उन्होंने हिमालय को दिया है उतना अन्य किसी प्राकृतिक पदार्थ को नहीं। इसका कारण केवल यही नहीं कि वे संभवतः हिमालय प्रदेशके निवासी माने जाते हैं। उन्हें यदि मोह था तो पूरे भारत का, जिसके चक्रवती राजाओं का उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ वर्णन किया है, न कि जन्म-स्थानीय किसी स्थान-विशेष का। स्थान-विशेष का मोह होता तो बड़े गर्व के साथ वे अपनी रचनाओं में उसे अपना जन्म-स्थान घोषित कर सकते थे। वस्तुतः हिमालय के प्रति उनका आकर्षण उस नगाधिराज की अद्वितीय रमणीयता तथा अप्रतिम महत्ता के कारण था।

महाकवि कालिदास कुमारसंभव नामक अपने प्रथम महाकाव्य का श्री गणेश ही हिमालय-वर्णन से करते हैं। उनका प्रथम श्लोक है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः
पूर्वापरौ तोसनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।

हिमालय देवतात्मा है—देव स्वरूप हैं। वह पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक फैला हुआ मानो समग्र पृथ्वी नापने का मान दण्ड है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं सर्व शैलाः परिकय वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधाश्च पृथुपदिष्टांऽऽऽधरित्रीम् ॥

हिमालय ही के कारण पृथ्वी से अनेक प्रकाशमान रत्न और बड़ी बड़ी महौषधियाँ प्राप्त हुई हैं।

अनन्त रत्न प्रभविस्य तस्य हिमं न सौभाग्य विलोपिजातं
एकोहिदोसो गुण सान्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणे सिवायः।

वह हिमालय अनन्त रत्न प्रभव है —इतने रत्न देता है जिनकी संख्या का अन्त नहीं। वर्फ तो उसका एक सत ही दोष ही माना जा सकता है जो उसके अनेक गुणों के सामने इस प्रकार दब जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों के प्रवाह में उसका काला धब्बा।

आमेखलं संचरतां घनानां छायामद्यः सानुगतां निसेव्य
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रसन्ते शृंगाणि यस्यातपवन्तिसिद्धाः ॥

वह इतना ऊँचा है कि बादल उसकी कमर तक ही टकरा कर रह जाते हैं। यदि उसके निचले भागों में मेघों की छाया रहती और वर्षा की झड़ी लगी रहती है तो ऊपर के भागों में सूर्य का आतप निर्बाध फैला रहता है। इस प्रकार वहाँ के सिद्ध गण एक ही समय में सब ऋतुओं का आनन्द लेते रहते हैं।

पदं तुसार स्रुति धौत रक्तं यास्मिन्नदृष्ट्वापि रतद्विपानां
विन्दन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तै मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥

वहाँ झुण्ड के झुण्ड ऐसे हाथी हैं। जिनके माथे में गजमुक्ता—अलभ्य मोती रहते हैं। वहाँ के सिंह भी ऐसे पराक्रमी होते हैं कि वे इस प्रकार के मत्त मतंगों के भी मस्तक फाड़ दिया करते और ढेरों गज मुक्ता विखराया करते हैं। परन्तु वहाँ के जंगली किरात लोग भी इतने बहादुर और शिकार के इतने शौकीन रहते हैं कि गजमुक्ता बटोरने की परवाह न करते हुए उन्हीं सहारे पता लगाते रहते हैं कि सिंह किस मार्ग से गये होंगे और इस प्रकार सिंहों का पीछा करते रहते हैं।

सिंहों के पद चिह्न तो बरफ़ से धुल जाते हैं, गजमुक्ता चिह्नों से ही उनके प्रस्थान मार्ग का पता मिलता है। गज-मुक्ता की इतनी विपुल सम्पति और उसके प्रति किरातों को यह उपेक्षा। जहाँ रत्नों का इतना आधिक्य हो वहाँ उनकी उपेक्षा होती रहे तो कौन आश्चर्य।

वनेचराणां बनिता सखानां दरीगृहोत्संग निसक्त मासः
भवन्ति रात्रौ सधयौ रजन्या मतैल पूराः सुरत प्रदीपाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की वनस्पितियाँ इस प्रकार की महौषधियाँ हैं जो रात्रि के अँधेरे में दीपक के समान प्रकाश देने लगती हैं। उनका आधिक्य इतना है कि वे वनवासियों-गुहनिवासियों—की विलास कन्दराओं में बिना तेलबत्ती की रोशनी देती रहती हैं। [आज दिन भी वहाँ कभी-कभी रात्रि को चमक उठने वाली वनस्पतियाँ दिखाई दे जाती हैं जिन्हें हमारे आधुनिक वैज्ञानिक लोग फास्फरस का चमत्कार बताते हैं। किसने जांचा है उनके दिव्य औषधि गुणों को]।

लंगूल विक्षेप विसपिशोभैरित स्ततश्चन्द्र मरीचि गौरैः

यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चर्यः

वहाँ धवल रंगवाली सुरगायें इतनी अधिक हैं कि उनकी पूंछ के चमर गिरिराज के ऊपर हर समय डुलते ही रहते हैं। छत्र और चमर तो खास राज चिह्न माने ही गये हैं। जिस राजा पर चमर न डुलाये जाते हों—वह राजा ही कैसा। हिमालय पर तो कृत्रिम चमर नहीं किन्तु स्वाभाविक चमर—और वे भी सदैव डुला करते हैं; अतएव उसका गिरिराज कहाना सर्वथा सार्थक ही है।

इस प्रकार की भूमिका बाँध कर इसी कुमार संभव में आगे चलकर, कालिदास ने प्रच्छन्न वेशधारी ब्रह्मचारी शंकर के मुख से पार्वती को संबोधित करते हुए कहाया है :—

दिवंपदि प्रार्थयसे वृथाश्रमः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूमय

हे पार्वती! क्या तुम स्वर्गलोक के लिये तपस्या कर रही हो। यदि ऐसा है तो तुम्हारा यह श्रम व्यर्थ ही कहा जाएगा क्योंकि तुम्हारे पिता हिमालय के प्रदेश ही तो देव-भूमियाँ हैं—देवस्थान हैं। इनके अतिरिक्त स्वर्ग और कौन हो सकता है। भावार्थ यह कि यही तो प्रत्यक्ष स्वर्ग है जिसके प्रभाव से दिव्य पार्वती (पर्वत) शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, फिर वह इसे खो कर और किस स्वर्ग को खोजने जाय।

कालिदास ने पुराणों की परम्परा का अनुगमन करते हुए प्रतीकात्मक भाषा में बताया है कि हिमालयोद्भूतः पार्वती शक्ति (पर्वतवाली शक्ति) हमारी अम्बिका तो है ही किन्तु जगत् की अम्बिका भी हैं, जगदम्बिका भी है। उसने हिमालय से वे धवल उज्ज्वल संस्कार पाये हैं जिनके कारण जन्म से ही वह शिवाभिलाषिणी है। शिव (कल्याण) के लिये वह तपस्यारत रही और कामविजयी शिव से अभिन्न हो कर ही वह सर्वदा रहेगी। शिवतत्व से संयुक्त होने पर ही यह पार्वती शक्ति ऐसा तनय दे सकती है, ऐसा प्रभावी परिणाम दे सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो षड् मुख होकर छहों ऋतुओं या छहों दिशाओं में प्राधान्य प्राप्त कर—सुर सेना-नायक बन सकता है अथवा यों कहिये कि सब प्रकार की प्राकृतिक शक्तियों का प्रेरक एवं संचालक हो सकता है, और तारकासुर के समान प्रकृति-विरोधी तत्वों का उन्मूलन कर सकता है। पुराणकार का कथन है कि इस पार्वती शक्ति को अपनी वशवर्तिनी बनाने के लिये शंभ-निशुंभ सरीखे कितने ही दानव आये किन्तु यह अजेय ही रही और इसने उलटे उन्हीं सब को ध्वस्त कर दिया। यह शक्ति प्रथम चरित्र में निद्राग्रस्त विष्णु को निष्क्रिय से बने हुए जगद् व्यवस्थापक को चैतन्य करती है; द्वितीय चरित्र में देवताओं को संघबद्ध संगठन का रूप धारण करके दुर्गा बनती है और तृतीय चरित्र में पार्वती की अन्तरात्मा रूप से प्रकट होकर स्वतः पार्वती को काली और चामुण्डा का रूप देकर आततायी रक्त-बीजों का रक्त चटवा देती है। कितनी आकर्षक कल्पना है इस शक्तिरूप के पीछे। अवश्य ही कालिदास ने भी 'कुमारसंभव' के प्रणयन में पुराणकारों का कुछ तो उत्तराधिकार पाया ही है।

अब रघुवंश का भी एक श्लोक सुन लीजिये। सम्राट् रघु दिग्विजय करते हुए हिमालय के पहाड़ी राज्यों में पहुंचे हैं। इस पर कालिदास कहते हैं:—

परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायन पाणिषु।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा॥

किसने ताबपी कि पहाड़ी राज्यों को हराये। हिमालय के पहाड़ी राज्य किसी से हारे ही न थे। अटूट दौलत भरी थी उनके पास। यह तो सूर्य-वंशी भारतीय प्रतापी वीर रघु का ही पौरुष था कि उसने हिमालय के पहाड़ी राज्यों को भी झुका दिया। वीरता के सच्चे पारखी उन राज्यों ने भी अधीनता स्वीकृति के चिह्न-स्वरूप भाँति-भाँति के उपहार अर्पित किए। वे उपहार चाहे सामान्य हो रहे हों और चिह्न स्वरूप ही रहे हों परन्तु वे भी इतने मूल्यवान थे कि उनसे हिमालय के विस्मयावह वैभव की कुछ थाह तो राजा को लग ही गई, ठीक उसी तरह जैसे हिमालय के पहाड़ी नरेशों को अयोध्या नरेश रघु की शक्ति की थाह लगी। पार्यावर्तीय जनशक्ति और हिमालीय धनशक्ति का कैसा पारस्परिक परिचय कराया है कवि ने। इन दोनों की समवेत शक्ति ही तो देश और राष्ट्र की सौभाग्य लक्ष्मी बनी हुई थी। क्या नये चण्डमुण्डों और शुंभनिशंभों द्वारा यह समवेत शक्ति छिन्न-भिन्न कराकर अपनी ही सौभाग्य-लक्ष्मी को हम अपनी ही आँखों के सामने कभी पद-दलित होने देंगे?

रघुवंश ही नहीं मेघदूत में भी कविकुलगुरु ने हिमालय का बड़ा हृदयग्राही उल्लेख किया है। उनका यक्ष मेघ को हिमालय तक का मार्ग बताकर कहता है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत्वा चोर्ध्वं दशमुख भुजोच्छ्वासित प्रस्थ संधेः
कैलासस्य त्रिदश वनिता दर्पणस्यातिथिः स्याः।
तुंगोच्छ्रासैः कुमुद विशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशिभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्ट हासः॥

कैलास (हिमालय ही का एक अंश) तो देवाङ्गनाओं का दर्पण है। भाव यह है कि दिव्यत्व की प्रतिच्छाया वहाँ सर्वत्र विद्यमान है। किसी जमाने में आततायी रावण ने उसपर बड़ा पराक्रम दिखाया था। उसने पत्थरों के जोड़-जोड़ तक तोड़ दिये। परन्तु परिणाम क्या हुआ? रावण समाप्त हो गया और अत्याचारों की कहानी ही रह गई किन्तु हिमालय तो कुमुद-धवल विशद शिखरों को आकाश तक ऊँचा उठाये और फैलाये हुए कालजयी वीर की भाँति अब भी विद्यमान है। उसे जड़ पर्वत न समझो। वह तो जगदात्मा मृत्युंजय सदाशिव का मूर्तिमान अट्टहास है जो दिन प्रतिदिन संचित होता-होता आज इस विशाल राशि में परिणत हो गया है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने ताज महल को काल के गाल पर पड़ा हुआ एक अश्रुबिन्दु बताया था। कवि कुलगुरु कालिदास ने हिमालय को परम शिव (जगन्मङ्गल) तत्व का अट्टहास बताया सामान्य हास नहीं, ठहाका वाला उन्मुक्त एवं सर्वतो-भावे ससंक्रामक हास। वह भी एक क्षण था। एक दिन का नहीं: किन्तु दिन-प्रतिदिन का राशिभूत अट्टहास। कौन अभागा और कौन अपुण्य इस मूर्तिमन्त अट्टहास को पाकर भी खो देना चाहेगा? कौन हृदयहीन है जो कवि की इस उपमा पर प्रतिभा की इस अपूर्व कल्पना पर, न्योछावर न होगा?

—— ——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी कविता और हिमालय

प्रो० निर्मल तालवार

हिन्दी कविता का बाल्यकाल व्यतीत हुआ रणभूमि में तलवारों की ताल पर नृत्य करते हुए। रणभेरी बजती थी और कविता के स्वर उसमें डूब-डूब जाते थे। कोमला प्रकृति रेवातट की बालू में और वन्य-प्रदेश की सघन हरियाली में छिपी रह गई। हिमालय की धवल सुषमा पर रवि किरणों की रंग-स्थली पर मुग्ध होकर कविता रचने का अवकाश वीर-गाथा के चारणों के पास नहीं था, फिर भी भारत की गौरव-गरिमा की मूर्त-रूप हिमगिरि पर रासो के गायकों की दृष्टि अनेकबार गई है। भक्तिकाल में निर्गुण के साधक अपने चतुर्दिक कण-कण में ब्रह्म को देख रहे थे और सगुण के उपासक मंदिर की आरती में विभोर थे, देव प्रतिमा पर मुग्ध थे। भक्तों को चारों धाम की यात्रा की आवश्यकता नहीं थी, वे प्रतिमा की परिक्रमा में ही विराट परिक्रमा को पा लेते थे। अद्वैत के साधकों ने भी शंकराचार्य के चारों ज्योतिष्पीठों का महत्व भुला दिया था। विष्णु के भक्त बद्रीनाथ तक नहीं गए और शिवभक्त भी केदारनाथ तक नहीं गए। हां शिव-पार्वती का कथा-प्रसंग जहाँ भी आया हिमालय की महिमा साकार हो उठी। तुलसीदास ने भी शिव-पार्वती प्रसंग-संदर्भ में हिमालय का विस्तृत वर्णन किया है। रीतिकाल में कविता राजमहलों और राजदरबारों के विलास-वैभव में भूली थी। ब्रज के केलि-कुंज ही तीर्थराज थे। किशोर-किशोरी के हाव-भावों को देखने में लीन कवियों से पर्वतराज की ओर आकृष्ट होने की आशा करना व्यर्थ था. किन्तु वीरता, भक्ति और श्रृङ्गार से बढ़ कर है हिमालय का पौरुष, तपोभूमि एवं सौन्दर्य सुषमा! अतः श्रृङ्गार-काल में भी हिमालय सम्बन्धी उक्तियाँ ठाकुर, देव, पद्माकर आदि की कविता में देखी जा सकती है।

आधुनिक-युग इतिहास की परम्परा से विच्छिन्न होकर हमारे सामने आता है। मुगलों ने भारत पर राज्य किया था। पर विदेशी रह कर नहीं, भारत के होकर। आधुनिक-युग आरम्भ होता है भारत के उस इतिहास से जिसने भारत के गौरवमय इतिहास को कलंकित किया। यह युग पराधीनता से प्रारम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। रणभूमि की तलवारों की झनकार की मादकता, मन्दिर की आरती के सम्मोहन और राजदरबारों के रंगीन आकर्षणों से दूर आधुनिक-युग का कवि देख रहा था 'भारत-दुर्दशा।' निर्गुण और सगुण दोनों की भावनाओं का आधार बना देश। माता-भूमि-देवता का रूप मूर्त हो उठा। और किशोरी का रूप देखने का समय बीत गया था अब भारत-माता की सुन्दरता साकार हो उठी। उसका भाल हिमकिरीट से शोभित, उसका वक्षःस्थल सदानीरा सरिताओं से आलोड़ित और उसके चरण धुलते हैं प्रतिक्षण रत्नाकर की कोमल उर्मियों से। पर उसकी स्वतंत्रता का अपहरण किया गया है। उसी स्वतंत्रता को लाना है। अतः भारतमाता राष्ट्रीय-जागरण की भावना का केन्द्र बनी और भारत-माता की वन्दना सर्वतोमुखी होकर आधुनिक काव्य में आई। राम का धनुष और कृष्ण की बांसुरी इसी माता-भूमि को अर्पित हुए। भारत-माता की गरिमा, भारत-भूमि की प्रकृति, देश के भूगोल, इतिहास, दर्शन और इतिहास पर विविध विधाओं में नव साहित्य का सृजन होने लगा। नाटक, निबन्ध, उपन्यास, गद्यकाव्य और काव्य के शब्दार्थ में माता भूमि-देवता की आरती के स्वर सजने लगे।

भारतभूमि की मिट्टी जड़ नहीं है। उसका एक-एक कण चेतना का बिम्ब है। भारतीय जीवन-दर्शन के अनुसार तो मानव की यह देह मिट्टी है और उसका अन्त इसी देश की मिट्टी से एकाकार प्राप्त करना है। हमारे देश की यह मिट्टी प्राणवान् है। आज के इस बौद्धिक युग में भी वर्षों बाद विदेश से लौटने पर बुद्धिवादियों को देश की मिट्टी को शीश पर चढ़ाते देखा जा सकता है। वे अभागे जो किसी कालभुजंगिनी नीति के चक्कर में पड़कर देश से निर्वासित हो गए हैं, उनकी कहानियाँ अविदित नही हैं कि देशवासियों से विदेश में मिलने पर देश की मिट्टी को सिर पर चढ़ाने के लिए वे अपनी विकलता अभिव्यक्त करते हैं। अतः इस मिट्टी से हमारा रागात्मक भावात्मक सम्बन्ध है। यह भूमि हमारी माता है। यह हमारी चेतना का उत्स है।

इसी भूमि-माता पर विदेशी अधिकार हुआ। कवियों की आत्मा तड़प उठी। राम और कृष्ण की भूमि पददलित हो रही थी। अतः साहित्यकारों ने भारत-माता के स्वरूप की ओर भटके हुए जन मन को आकृष्ट किया।

> या ही भुव में होत है हीरक, आम, कपास।
> तनहीं हिमगिरि, गंगजल, काव्य गीत परकास॥ भारतेन्दु।

भारतेन्दु ने भारत भूमि के जिस रूप की ओर संकेत किया उसकी वन्दना अनेक स्वरों में मुखर हो उठी। भूमि-माता का, हमारे देश का चित्र मूर्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। भारत-माता के साकार रूप के चित्र के साथ ही उसका धवल मुकुट आलोकित हो उठा। वन्दना के स्वर मुखर हुए—

जय-जय शुभ हिमाचल शृंगा,
कलरव-निरत कलोलिनि गंगा,
भानु-प्रभात-चमत्कृत अंगा,
तेज पुंज तप वेश,
जय-जय प्यारा भारत देश। (श्रीधर पाठक)

हिमालय और गंगा की यह भारत भूमि मनोहरा है। उसका रूप विविध शब्दों में साकार हुआ है। उसकी वन्दना अनेक स्वरों में गूंज उठी[1]। महाकवि निराला ने उसका जयगान गाया है—

भारती, जय, विजय करे,
कनक-शस्य-कमल धरे!
मुकुट-शुभ्र हिम तुषार
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशायें उदार
शतमुख-शतरव-मुखरे!

हिम-तुषार मण्डित शुभ्र मुकुट धारणी माता का सुन्दर वेश देख कर कौन भारत वासी मुग्ध नहीं हो जायेगा! विभोर न हो उठेगा!! उसकी पूजा करने के लिए उसके स्वर मुखर हो उठेंगे। भारत, उसका मानचित्र, धवल हिम-शिखर और उससे प्रवाहित हो सागर तक दौड़ती हुई सरिताएं! यही है माता भूमि देवता! इसी देवता का चित्र राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की शब्द तूलिका ने अंकित किया है—

---

१ वन्दहु मातृ-भारत धरनि
सेत हिमिगिरि, सुपय सुरसरि तपमय तरनि।
सरित वन कृषि भरिन भुव छवि सरस कविमन हरनि॥—श्रीधर पाठक

श्रीधर पाठक ने हिमालय का वर्णन भी किया है—

चाह हिमाचल आंचल में एक साल विसालन कौ बन है।
मृदु मर्मर शील भरैं जलस्रोत हैं पर्वत ओट है निर्जन है॥
लिपटे हैं लता द्रुम. गान में लीन प्रवीन विहंगन कौ गन हैं।
भटक्यौ तहां रावरौ भूल्यौ फिरै, मद बावरौ सौ अलि को मन है॥

कवि का मन-भ्रमर भी हिमालय पर मुग्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीख रही हैं कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी,
नदियां पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरू-राजि कर रही पूजा तेरी१।

भारत-भूमि देवता है। उसका शृङ्गार हिमालय-मुकुट से आरम्भ होता है, उज्ज्वला गङ्गा और श्यामा कालिन्दी उसकी मालायें हैं, अनन्त वनराजि निर्माल्य के पुष्प हैं। इस देवता की विराट पूजा का आयोजन स्वयं विधाता ने किया है। जब भारतवासी माता की पूजा के लिये थाली सजाकर सामने आए तो अर्घ्यदान के लिए हिमालय आये और चरण पखारने के लिये रत्नाकर२। इसकी अभ्यर्थना स्वयं उज्ज्वला ऊषा करती है, भारत की वन्दना का समवेत स्वर गूंज उठता हैं —

"हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हंस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।"

प्रसादजी ने हिमालय और भारत के जय गान विविध स्वरों में गाए हैं। विदेशी बाला कार्नेलिया भी हिमालय-मण्डित भारत में आती है। वह भी इस देश की सुषमा पर मुग्ध होकर गाती है —

"अरुण यह मधुमय देश हमारा!
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा!

थका क्षितिज इसी हिमालय पर विश्राम करता है और कार्नेलिया के विकल हृदय के भाव भी यहीं पहुँच विश्राम पाते हैं। हिमालय का सम्मोहन ही कामदेव-कन्या कामायनी को वशीभूत करता है। घूमने के अभ्यास-वश वह हिमालय प्रदेश की ओर आती है और हिमालय की ओर उसकी दृष्टि जब जाती

१ गुप्तजी ने 'भारत भारती' में भारत के पुण्य अतीत की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए भी लिखा है—

भू लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गङ्गाजल जहां।

२ आहा! पन्द्रह कोटि हार ले, आये आली,
जगमग जगमग हुई कोटि पन्द्रह ये थाली,
अर्घ्यदान के लिये हिमालय आगे आये,
रत्नाकर ये खड़े धुले श्री चरण सुहाये। — भारतीय-आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वह शैलमालाओं के सुन्दर सम्भार में खो जाती है[1]। यह रमणीयता अन्यत्र नहीं है। यह भारत भूमि की विशेषता है। इस भारतभूमि से हमारे मन-प्राण जुड़े हैं, इस पर विदेशी अधिकार असहनीय है। जन-जागरण की बेला आती है। और कवि का स्वर जनवाणी के मूर्त रूप घनीभूत रूप धारण कर गूंज उठता है—

कोटि-कोटि कण्ठों से निकली
आज यही स्वर धारा है
भारत वर्ष हमारा है, यह
हिन्दुस्तान हमारा है—
तुंग शिखर-चिर-अटल हिमाचल
है पर्वत सम्राट यहाँ
यह गिरिवर बन गया युगों से
विजय निशान हमारा है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारत की चर्चा हिमालय युक्त ही सम्भव है। भारत-माता की रूप श्री का वर्णन करते ही 'भारतीय-आत्मा' के शब्दों में वह 'हिम किरीटिनी' है ; उसके वैभव का वर्णन हो तो सदा-नीरा सरिताओं के स्रोत के रूप में हिमालय है यदि उसकी वीरता का गान हो तो हिमालय का पुंजीभूत ऊर्जस्वित पौरुष मूर्त हो उठता है वह हिमाच्छादित चट्टानों और शिखरों का समूह-मात्र नहीं है, वह हमारा रक्षक है, पहरेदार है[2]। वह देव-

---

1 दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर
बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल मालाओं का शृङ्गार,
आँख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुन्दर सम्भार। —कामायनी

1 उर्दू के प्रसिद्ध शायर इकबाल ने सारे जहां से भारत को 'अच्छा' मानते हुए हिमालय के गीत गाये हैं। उन्हीं के शब्दों में—

परबत वो सब से ऊंचा हम साया आसमां का
वह सन्तरी हमारा, वो पासबाँ हमारा!

प्रो० विष्णु कुमार त्रिपाठी 'राकेश' के शब्दों में —

युगों-युगों से खड़ा हिमालय उत्तर में भारत का प्रहरी।
राजतिलक करने आती नित सलज रेशमी किरन सुनहरी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्मा है, दिव्य है, गौरव का विराट रूप है। अतः कवि उसके वीरत्व पर विश्वास कर आस्था के स्वर में गा उठना है –

मेरे नगपति, मेरे विशाल
साकार, दिव्य, गौरव विराट
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल
मेरे भारत के दिव्य भाल
मेरे नगपति मेरे विशाल।

यह हिमालय भारत की शक्ति है। यह पर्वत सम्राट है। अपनी ऊंचाई में वह बेजोड़ है, और उसकी महानता को अनन्त आकाश भी स्वीकार करता है, वह झुककर हिमालय के हिम मण्डित शिखरों का चुम्बन करता है। इकबाल के शब्दों में—

ए हिमाला ! ए फसीले-किश्वरे-हिन्दोस्तां !
चूमता है तेरी पेशानी को झुककर आसमां !

आकाश को झुका देने की क्षमता हिमालय के अतिरिक्त और किसी में नहीं। अपने ऊँचे शिखरों से वह जिन जलधाराओं को जन्म देता है वे हजारों मील का रास्ता पार कर कलकल गान गाते हुए समुद्र तक पहुंच जाती हैं। एक छोर हिमालय का यदि अनन्त आकाश को स्पर्श करता है तो दूसरा छोर इन सरिताओं के द्वारा पुनः बादलों के रूप में अपनी गाथा हिमालय तक पहुँचाना है। ये मेघ समुद्र से हिमालय की ओर आते हैं और प्रत्युत्तर में सरिताएँ हिमालय से सागर की ओर हिमालय का यह जलदान सम्पूर्ण भारत को भी है। हिमालय से आने वाली हवाएँ भारत को प्राणवान करती हैं। निश्चित ही जो स्वर हिमालय से गूँजता है वह देश व्यापी होता है। स्वतंत्रता का भी जो स्वर हिम शिखरों से उठा वह उत्साह और वीरत्व का घोष बन कर भारत के वायुमण्डल में व्याप्त हुआ, भारत की नीर-भरी नदियों में प्रवाहित हुआ और भारत की शस्य श्यामला धरती की धानभरी सुनहरी बालों में मूर्त हुआ। वही निनाद गूंज उठा कवि के स्वर में—

हिमाद्रि तुंग शृङ्ग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोचलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशस्त पुण्य पंथ है
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

राष्ट्रगीतों की कवयित्री स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ऋतुराज वसंत के आग-मन पर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा देते हुए अपने देश के वीरों के सम्मुख एक प्रश्न उपस्थित करती हैं - "वीरों का कैसा हो वसंत ?" यह प्रश्न हिमा-लय के धवल शिखरों से ध्वनित होता है और सम्पूर्ण देश के वायुमण्डल एवं धरती के कणकण को स्पन्दित करता हुआ सागर की लहरों को आलाड़ित कर देता है।

आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बार-बार
प्राची पश्चिम भू नभ अपार
सब पूछ रहे हैं दिग्दिगन्त
वीरों का कैसा हो वसंत !

इस प्रश्न का उत्तर स्वयं हिमालय है। हिमालय का शृंगीनाद ही आत-तायियों की सफलता है। हिमालय का पौरुष ही वीरों का इतिहास है। अतः कवि (दिनकर) हिमगिरि से समाधि तोड़ने और शंकर को जगाने की प्रार्थना करता है—

कह दे शंकर से, आज करें, वे प्रलय नृत्य फिर एक बार।
सारे भारत में गूंज उठे हरहर बम, का फिर महोच्चार।

हिमालय नगाधिराज है, देवतात्मा है, पृथ्वी का मान दण्ड है, सौन्दर्य का कोष है, प्रकृति का प्रिय है, पौरुष का पुंजीभूत रूप है, गौरव की मंजूषा है। वह देश का रक्षक है और प्रहरी भी। वह देश की वैभवश्री का दाता है। वह समुद्रों का पोषक भी है और बादलों का आश्रय भी। वह असंख्य रूपों में कवियों की प्रेरणा का स्रोत है। अनगिन रूपों में कवि-वाणी ने इसकी अर्चना की है, इसकी रमणीयता पर मुग्ध हुआ है और इसकी सिद्धि के सम्मुख नमित हुआ है।

हिमगिरि के कुछ चित्र हम देखें —

शैल राज सहस्र शीर्षोपम बड़ा है,

* * * * *

वरद विभु सा अभय मुद्रा में खड़ा है।
सिद्ध योगी-सा समाधि निमग्न यह,
भूमि से उठ गगन से संलग्न है यह !

श्री मैथिली शरण गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्व० कवि गोपालशरण सिंह के शब्दों में—

हिमालय ! हिम शिखर ! हिम प्राण ! दिव्यता के तुम हो अवतार,
उच्चता के तुम हो आदर्श, देश के गौरव हो साकार।

*　　*　　*　　*　　*

नहीं सह सकते हो तुम ताप, शीघ्र होते हो द्रवित अपार,
बुझाने को जगती की प्यास बहा दी है नदियों की धार।

*　　*　　*　　*　　*

दिया गिरिजा को जन्म, जिसे पाने को स्वयं महेश,
हो गए सगुण प्रेम में लीन, छोड़ निर्गुण का ध्यान विशेष।

स्व० कवि सियाराम शरण गुप्त हिमालय के महान गौरव और महान रूप के सम्मुख नत होने में भी संकोच का अनुभव करते हैं—

पद पूजन का भी क्या उपाय ?
तू गौरव-गिरि उत्तुँग काय।
तू अमल धवल है मैं श्यामल,
ऊँचे में हैं तेरे पद-तल
यह हूँ मैं नीचे का तृणदल
पहुँचू उन तक किस भांति हाय !
तू गौरव-गिरि उत्तुंग काय !

प्रकृति के गीतकार कवि सुमित्रानन्दन पंत के प्राण तन्तु यदि, हिमालय से जुड़े हों तो कोई आश्चर्य नहीं। हिमालय ने उन्हें दी – 'पावन आशा' और दिया 'स्वप्नों का अभिलाषी जीवन'। 'शब्दों के शिखरों में' हिमालय के शिखरों को चित्रित करते हुये प्रकृति का चितेरा कवि भी विस्मित होकर हिमगिरि के नयनाभिराम रूप में खो जाता है। कवि के ही शब्दों में –

मानदण्ड भू के अखण्ड हे,
पुण्यधरा के स्वर्गारोहण,
शुभ्रशान्ति में समाधिस्थ हे;
शाश्वत सुन्दरता के भू मृत !
वाल्य चेतना मेरी तुम में,
जड़ी भूत आनन्द तरंगित,
तुम्हें देख सौन्दर्य-साधना
महाश्चर्य से मेरी विस्मित।

उक्त कतिपय उदाहरण इस तथ्य के प्रमाण हैं कि आधुनिक हिन्दी कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय भारत के मुकुट के रूप में, भारत के ऐतिहासिक गौरव के प्रतीक-रूप में, भारत के वैभव-प्रदाता के रूप में ; शक्ति और गौरव के रूप में और सौन्दर्य की सीमा के रूप में कवियों को आकर्षित करता रहा है।

अतीत के गौरवमय इतिहास के देखने से यह स्पष्ट है कि हिमालय के बिना भारतीय जीवन नहीं समझा जा सकता। श्रीमती महादेवी वर्मा ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"संसार के किसी अन्य पर्वत को मानव की संस्कृति, काव्य, दर्शन, धर्म के निर्माण में ऐसा महत्व नहीं मिला है जैसा हमारे हिमालय को प्राप्त है। वह मानो भारत की संश्लिष्ट विशेषताओं का ऐसा अखण्ड विग्रह है, जिस पर काल कोई खरोंच नहीं लगा सका।' अन्यत्र भी उन्होंने हिमालय के महत् प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखा है "उसकी हर चोटी, हर घाटी हमारे धर्म, दर्शन, काव्य से ही नहीं हमारे जीवन के सम्पूर्ण निश्रेयस् से जुड़ी हुई है।" वेदों में हिमालय की झांकी स्पष्ट है ; पुराणों में हिमालय का रूप बहुमुखी प्रस्फुटित है। रामायण और महाभारत बिना हिमालय के पूर्ण नहीं हो सकते।' किरातार्जुनीयम्' शिशुपालवध, रघुवंश, कुमारसम्भव' और मेघदूत जैसे अमर काव्यों को हिमालय का आशीर्वाद प्राप्त करना पड़ा है। लोक-साहित्य में बृहत्कथा का सूत्रपात भी हिमगिरि के शिखरों पर ही होता है। दर्शन और तपस्या का साधना-पीठ हिमालय से बढ़कर दूसरा नहीं माना गया। भृगु का आश्रम हिमालय में ही था, परशुराम वहीं बड़े हुए थे। दधीचि वहीं तपस्यालीन थे। जमदग्नि, शुकदेव आदि अगणित ऋषि-मुनियों ने तपः पूत शक्ति इसी हिमालय के शिखरों पर प्राप्त की। सप्त ऋषियों के आश्रम भी वहीं थे। पौराणिक गाथाओं को छोड़ दें तो भी इतिहास साक्षी है कि शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य हिमालय की चोटियों पर ही लिखा है। तंत्रधर्म की साधना को बल इसी हिमालय से मिला है। 'तारा' विद्या का स्थान हिमालय ही है। शैवधर्म और वैष्णव धर्म में श्रेष्ठ तीर्थ हिमालय ही में हैं। आयुर्वेद का आधार यही ओषधप्रस्थ हिमगिरि है! यह तो आध्यात्मिक, व धार्मिक क्षेत्र की चर्चा है, पर यहां यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि भौतिक वैभव, ऐहिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए भी रावण ने हिमालय पर ही तपस्या की थी। अतः हिमालय वह कल्पतरु है जहां लौकिक और आलौकिक सब प्रकार की सम्पदा उपलब्ध है। किसी भी क्षेत्र में असाधारणता प्राप्त करने के लिए हिमालय का वरदान प्राप्त करना अनिवार्य है।

आज भी हिमालय की शक्ति से हम अपरिचित नहीं। यहां हम केवल कविता के क्षेत्र की चर्चा कर रहे हैं, अतः मेघदूत और कुमारसंभव की परम्परा में आने वाले आज के काव्यों को भी देखें। आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य 'कामायनी' माना जाता है। कामायनी का प्रारम्भ 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर' से होता है१ और अन्त भी हिमालय के 'आनन्द-लोक' में ही होता है। कामदेव तनया श्रद्धा हिमालय की रमणीयता पर मुग्ध होकर ही मनु के निकट तक पहुँच पाई। मनु और श्रद्धा के प्रणय की भूमि हिमालय ही है। कामायनी में अनेक स्थलों पर हिमालय सम्बन्धी छन्द देखे जा सकते हैं। दिनकर जी का प्रबन्धकाव्य 'उर्वशी' भी हिमालय की क्रोड़ में पनपा है और दिनकरजी की 'हिमालय' कविता बराबर बहुप्रशंसित रही है।

शिव-पार्वती-कथा पर आधुनिक युग में स्वतंत्र प्रबन्धकाव्य भी लिखे गए हैं और कालिदास के कुमार संभव के भाषानुवाद एवं भावानुवाद भी हुए हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा ने कुमारसम्भव के हिमालय सम्बन्धी छन्दों का अनुवाद किया है। श्री आनन्द नारायण शर्मा का अनुवाद भी सरस है। श्री श्यामनारायण पाण्डेय का 'रूपान्तर' काव्य कुमारसम्भव का अनुवाद है। यह नगाधिराज की महिमा से मण्डित है। उमा व शिव के विवाह का प्रस्ताव लेकर सप्तर्षि पर्वत राज की राजधानी ओषधि-प्रस्थ आते हैं। उस नगर का वर्णन कवि के शब्दों में–

धन देख ओषधिप्रस्थ का अलका पुरी को शोक था।
गिरिराज का वह नगर मानो दूसरा सुरलोक था॥
गंगा-प्रवाहों से घिरा ज्वलितौषधों से प्रज्वलित।
माणिक्यवरणावृत सुरक्षित नगर था अतिशय कलित॥

और पर्वत राज ने जब अमल-मृदुल वाणी में सप्तर्षियों का स्वागत किया तथा उनके प्रस्ताव को स्वीकृत किया तो ऋषि अंगिरा गिरिराज की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं

"कहते तुम्हें हरि, योग्य ही हैं तव शरीर अपार है।
गिरिवर, चराचर जगत का तव कुक्षि ही आधार है॥
विस-मृदुल-फल से किस तरह अहि-पति धरा धरता कहो।
यदि आरसातल चरण से भू को न धरते तुम अहो।
जैसी तुम्हारी पूत नदियां जग-कलुष हरती सदा।
वैसी तुम्हारी कीर्ति भी अघ ओघ हरती सर्वदा॥

१ 'ह' दग्धाक्षर है, इससे महा काव्य प्रारम्भ नहीं होना चाहिए। किन्तु 'ह' अक्षर से जब 'हिमगिरि' शब्द का प्रयोग हुआ, और हिमगिरि महान है, देवतात्मा है, इसलिए दग्धाक्षर ने भी अपना दोष छोड़ दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० रामानन्द तिवारी का पुरस्कृत महाकाव्य 'पार्वती' हिमालय से ही प्रारम्भ होता है। इस प्रबन्ध काव्य का प्रथम सर्ग है 'हिमालय।' इस सर्ग में १०८ छन्दों में गिरिराज की महिमा का वर्णन है। भारतीय विचारधारा में १०८ की संख्या श्रद्धा-भाव को प्रतीक है। संभवतः कवि ने इसी भाव से अनुप्रेरित होकर इस सर्ग में १०८ छन्द रखे हैं। कवि ने हिमालय को—"वसुधा पर श्री की विभूति का अक्षय और अनन्त आगार" तथा 'शिव के शाश्वत कठिन पंथ के ध्रुव दीपक का चिर अवतार" माना है। हिमालय की सौंदर्य-सुषमा को देख कर सृष्टि रचयिता की सौंदर्य-साधना भी मूक हो गई—

"रूपराशि से सृजन-कोष की, विधि ने कर सुन्दर आरम्भ।
छोड़ दिया संकोच-सहित निज रम्य सृष्टि रचना का दम्भ॥
मर्यादा बन स्वर्ग-सृष्टि की सुषमा का असीम आगार।
चरम कल्पनायें कवियों की करता सदा सहज साकार॥

हिमालय न केवल सौंदर्य की पराकाष्ठा है, न केवल कवियों की कल्पना का चरम-रूप है, वरन् वह अखिल विश्व के मंगल का स्रोत भी है, वह समाधि-लीन शिव-सा ही है। वह योग की परम-पावन तपोभूमि है। वह प्रेम-योग का भी पथ प्रदर्शक है—

पावन गौरी शिखर उमा ने किया जहां तपयोग कठोर
शंकर के वर हेतु निरन्तर सह वातातप वर्षा घोर।
जहां महाश्वेता तपस्विनी अपर उमा-सी तप में लीन
गई पुनः पावन प्रशस्त कर प्रेम योग का पथ प्राचीन।

हिमगिरि के पुण्य शिखरों से अधिक पावन और तपःपूत स्थान विश्व में अन्य नहीं हो सकता; क्योंकि —

उमा और शङ्कर के तप का योग पूत यह पीठ महान,
तपोभूमि कर पद पद जग का, होगा संस्कृति का वरदान।

जिस प्रकार शंकर और पार्वती की कथा हिमालय के बिना सम्भव नहीं, उसी प्रकार गङ्गा अवतरण भी बिना हिमालय के भू-लोक में सम्भव नहीं। गंगा-अवतरण का वर्णन करते हुए 'रत्नाकर जी' ने कथा के प्रारम्भ में राजा सगर की तपस्या का उल्लेख किया हैं। राजा तपस्या के लिए हिमालय स्थित भृगु-आश्रम में जाते हैं। उसी का वर्णन कवि के शब्दों में—

हिमगिरि कै प्रस्रवन-पार्स्व मुनि जन मन हारी
सुर-किन्नर-गन्धर्व-सिद्ध-चारन सुखकारी
दोउ भामिनो लै सङ्ग भूप भृगु आश्रम आए।

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सगर-पुत्र प्राप्ति की कामना से हिमगिरि गए। भगीरथ की तपस्या का लक्ष्य था सगर-पुत्रों की मुक्ति के लिए गंगा को पृथ्वी पर लाना। भगीरथ की तपस्या फलवती होती है। गंगा ने अवतरित होने का निर्णय किया तब वह भी हिमालय (हर-गिरि) को भूलती नहीं, वरन्—

गङ्ग कह्यो उर भरि उमङ्ग तौ गङ्ग सही मैं,
निज तरङ्ग बल जौ हर-गिरि, हर सङ्ग मही मैं,
लै सबेग विक्रम पतालपुरि तुरत सिधाऊँ,
ब्रह्मलोक कौं बहुरो पलटि कंदुक इव आऊँ।

गंगा के इस निर्णय को जान कर शंकर ने भी अटल हिमाचल की दृढ़ता का आश्रय लिया, वे भी उस हिम-शिखर पर जाकर गङ्गा की प्रतीक्षा करते हैं जो महान और दृढ़ हो--

अति दीरघ स्रङ्ग देखि ता पर चलि आए।

वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाकाव्यों को हिमालय ने प्रभावित किया, हमारी चिन्तन धारा को रूप दिया, हमारे जन-मन को अनुप्राणित किया। वह केवल पर्वत राज ही नहीं है, जगत् जननि माँ पार्वती का जनक भी है। वह शिव का समाधि स्थान ही नहीं है वह शङ्कर के निश्छल अट्टहास का पूंजीभूत रूप भी है। वह सदानीरा सरिताओं का स्रोत ही नहीं है, भारत का श्रृङ्गार भी है। वह देवतात्मा है और भारत माता के गौरव को धवल ध्वजा भी है। उसकी गरिमा का प्रतीक उसका किरीट भी है। वह शुक्ति है और उससे आभान्वित मुक्ता भारत है। हिमालय के बिना हमारे देश की कल्पना भी संभव नहीं है। उसका इतिहास, उसका भूगोल, उसका दर्शन, उसका धर्म, उसकी संस्कृति और उसका इतिहास प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिमालय का ही परिणाम हैं। भारतवासी के चेतन और अवचेतन मन में हिमगिरि का बिम्ब सदा रहा है। पर उसके सुप्त-भाव आज सहसा मुखरित हो उठे हैं, उसकी अन्तश्चेतना शब्द-मय साकार हो उठी है। हिमालय से जुड़े उसके प्राण-तन्तु झंकृत हो उठे हैं। शैलराज ने अंगड़ाई ली है, और भारत के कण कण में स्पन्दन और उत्साह लहरा उठा है।

चीन ने हमारे देश पर आक्रमण करने से पूर्व हमारे प्रहरी हिमगिरि की शक्ति को टटोला है। और हिमालय की पुकार चालीस कोटि भारतवासियों के प्राणों को आलोड़ित करने में समर्थ। आज हिमालय न केवल भारत का राजमुकुट है वरन् वह स्वयं राष्ट्र है। हिमालय पर आक्रमण सम्पूर्ण राष्ट्र पर आक्रमण है, हिमगिरि के किसी अङ्ग पर घाव भारत के मस्तिष्क पर घाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय के किसी शिखर का रौंदा जाना भारत का रौंदा जाना है। हिमालय की किसी चट्टान पर चोट हमारे हृदय पर चोट है।

आज हिमालय भारतीय 'राष्ट्र' का और 'स्वराज्य' का पर्याय है। हिमालय आज से पहले 'प्रतिरक्षा' 'सुरक्षा' 'राष्ट्रीय एकता' 'शक्ति' का सशक्त प्रतीक इस रूप में नहीं माना गया था। चीन के इस अदूरदर्शी आक्रमण ने इस प्रतीक को मूर्त कर दिया। हिन्दी काव्य और साहित्य में इन विविध शब्दों द्वारा हिमालय के ही गीत मिलते हैं —धर्मयुग का 'उत्तर पूर्व सीमान्त विशेषांक' ; 'प्रसाद' पत्रिका का 'राष्ट्र रक्षा अंक' ; 'किशोर' का 'हिमालय अंक' ; 'पाञ्चजन्य' का 'हिमालय अंक' और 'कश्मीर अंक', 'आज' 'साप्ताहिक' का 'प्रतिरक्षा अंक' महादेवी वर्मा द्वारा सम्पादित "हिमालय' ग्रन्थ, श्री कार्तिकेय रुद्र द्वारा सम्पादित 'चीन को चेतावनी', 'चीन को चुनौती' गोपाल सिंह नेपाली को 'हिमालय ने पुकारा' पुस्तक के अतिरिक्त शायद ही दैनिक, साप्ताहिक व मासिक कोई पत्रिका बची हो जिसमें हिमालय सम्बन्धी एक न एक कविता न मिले। सत्य तो यह है कि हिन्दी ही नहीं भारतीय काव्य को हिमालय ने एक नया मोड़ दे दिया है और कोई आश्चर्य नहीं कि 'छायावाद काल' 'प्रगतिवाद काल' आदि को भांति हिन्दी काव्य का कुछ वर्षों बाद जब मूल्याङ्कन होगा तो उसमें हमें 'हिमालय काल' भी मिले। समय की मांग को कवि अनदेखा-अनसुना नहीं कर सकता।

अतः आज हिमालय संबंधी गत डेढ़ वर्ष से लिखी जाने वाली अगणित कविताओं का लेखा-जोखा करना संम्भव नहीं है, केवल कवियों के भाव को हम दो एक उदाहरणों में देख सकते हैं —

बनारस के प्रसिद्ध शायर नजीर 'बनारसी' ने हिमालय को 'वतन का शिवाला' कहा है, उनकी कविता कोटि कोटि भारत-जनता के भावों की वाणी है—

कलाओं का मन्दिर अदब का शिवाला
वतन का पुराना निगहवां हिमाला !

* * *

और इस हिमालय पर हमला साधारण पर्वत पर हमला नहीं है वरन्—

है शायर की पाकीज़ा दुनियां पे हमला
है कवियों की हर ऊँची उपमा पे हमला
है खतरे में पाकीज़गी कल्पना की—
यह हमला है लहराती गंगा पे हमला,
बचे जिस तरह भी हिमाला बचाओ।
बचाओ वतन का शिवाला बचाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँची उपमा और पवित्र कल्पना की सीमा आज हिमालय से भिन्न अन्यत्र नहीं है। कवियों का स्वर बदल गया है, श्रृङ्गार के आकर्षण फीके पड़ गए हैं। अतः आज कवि आनेवाले दिनों की भी कविता का संकेत देते हुए कहता है—

ओ मेरे बन्धु, यह शायर तुम्हारा
जो तुम्हारे लिए गाता रहा मधुमय गीत,
बुनता रहा रुमानी तराने
आज वह बेचैन अंगारे उगलने को
लिए तूफान अधरों पर
दहकती आग सीने में
निमन्त्रण दे रहा है जूझने का
नौ जवानी को,
उठा कर फूँकता है शंख
वंशी फेंक दी उसने

लुटेरों से न जब तक मुक्त होता है हिमालय
वह न सपनों की मदिर वंशी बजायेगा
तुम्हारा कवि,
बराबर आग के, अंगार के ही गीत गायेगा।

जय हो हिन्दुस्तान की,
जय हर वीर जवान की।
सौ सौ चीनी को बस काफी अपना एक जवान है,
हर सैनिक राणा प्रताप है, हर थापा चौहान है,
तेग शिवाजी की फिर से है मचल उठी हर म्यान में,
चंगेजों की कब्र बनेगी शायद हिन्दुस्तान में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता में हिमालय

प्रो० घनश्यामदास व्यास

'नयी कविता में हिमालय' वाक्यांश एक अद्भुत विरोधाभास प्रस्तुत करता है। हिमालय आर्य-संस्कृति का प्राचीनतम प्रतीक है और नयी कविता अभी नयी ही है। हिमालय में भारतीय जन जीवन को समष्टिगत निरन्तर विकसित होने वाली परम्पराएँ जुड़ी हैं और नयी कविता का प्रादुर्भाव अभारतीय (पाश्चात्य) प्रभावों से युक्त प्रयोगों तथा व्यक्ति की व्यष्टिगत कुण्ठाओं से युक्त माना जाता है। नयी-कविता अपने प्रादुर्भाव के लिए भले ही प्रयोगों और कुण्ठाओं पर आश्रित रही हो पर आज की नयी-कविता, जो दशक पूर्ण कर चुकी है जीवन के स्पन्दन के साथ विकसित हो रही है। आज वह समसामयिक विचारों की पुष्टि में सजग-प्रहरी सदृश्य सजग है

नयी कविता हमारे समक्ष सन् १९४३ में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ आई। इस संकलन में सात कवियों की कविताएँ हैं, साथ ही उनके वक्तव्य भी। मैं यह नहीं कह सकता कि इन कविताओं और वक्तव्यों में एक दूसरे कोस मझाने और समझने की कितनी क्षमता है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि वक्तव्य कहां तक ठीक एवं पूर्ण हैं। किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता कि वे नयी-कविता को स्पष्ट नहीं कर सके। तार-सप्तक के अनुभवी सम्पादक के वक्तव्य ने तो नयी-कविता को बार-बार प्रयोग कह कर प्रयोगवाद की ओर उसे अधिक उन्मुख करने का प्रयास किया है।

नयी-कविता नयी-विधा है। कोई भी नया काव्य-रूप विशेष कारणों से सम्बद्ध होता है। ये कारण, ये परिवर्तन मेरे विचार से निम्नांकित हो सकते हैं —

(१) चली आ रही परिपाटी को स्वीकार कर उन्हें अपने ढंग से नूतन रूप में प्रस्तुत करना।

(२) स्वयंस्फूर्त-प्रतिभा से सम्पन्न होकर आ रही परिपाटी में नूतन विकास का स्वरूप प्रस्फुटित करना। साथ ही नवजीवन की नयी शक्ति को काव्यगत रूपों को नूतन उपालब्धियों के साथ स्पष्ट करना।

(३) स्वयंस्फूर्त-प्रतिभा से सम्पन्न हो, परिपाटी से भिन्न, सर्वथा नव-रूपों का निर्माण करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) रचनात्मक प्रक्रिया के द्वारा आ रही परिपाटी एवं सर्वथा नव रूपों के मिश्रित रूप को प्रस्तुत करना।

इन उपरिलिखित मुद्दों के अनुसार काव्यगत रूपों में परिवर्तन आता है एवं विकास मार्ग प्रशस्त होता है।

किसी भी भाषा का साहित्य, चली आ रही परिपाटी के विरुद्ध विद्रोह का स्वर स्पष्ट करते हुए ही नवीन रूपों को प्रस्ताविक करता है। इसी तथ्यानुरूप हिन्दी साहित्य में नयी-कविता का प्रादुर्भाव हुआ। पृष्ठभूमि के रूप में छायावाद के साथ प्रगतिवाद का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ एवं वहीं से नयी कविता की नींव पड़ी।

यह तो हमें स्वीकार करना ही होगा कि प्रारम्भ में नयी कविता आलोचना योग्य ही थी। परन्तु मूल रूप प्रत्येक विधा का से प्रारम्भ ऐसा ही होता है। उसकी बड़ी आलोचना होनी है। वह पुराने लोगों द्वारा शीघ्रता से नहीं अपनाई जाती। आज की वास्तविक भूमि पर नयी-कविता प्रयोग, कुण्ठाओं आदि तक सीमित नहीं रह गई है। नयी-कविता का मूल-स्वर आज जन-जीवन की निकटता को प्राप्त कर रहा है। उसमें जन-जीवन की मूल-प्रवृत्तियों का समावेश प्रगाढ़ रूप से हो रहा है। आज की नयी कविता जीवन के मूल-रूप को अत्यधिक सफलता से स्पष्ट कर रही है। उसने मूल विचारधारा का अन्तर्तम रूप सजा लिया है, संवार लिया है। मूल-प्रवृत्ति में वह प्राचीन काव्य जगत के सदृश्य जीवन की अभिव्यक्ति को स्पष्ट कर रही है। ज्ञानोदय के अगस्त, ६३ के अंक में रमा सिंह की प्रकाशित कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिये :—

'पाँखुरी कसे हुए संदर्भों में —
खिलता फूल शायद जीवन

नयी-कविता के नये कवियों ने जनता के अधिक समीप आने के प्रयास में अपना कार्य प्रारम्भ किया था। छायावादी काव्य ने दुरूहता की सीमा पार कर दी थी। उसका अर्थ जन-साधारण को सुलभ नहीं था परन्तु नयी-कविता ने सरल भावों के साथ अपना कार्यारम्भ किया था। हुआ यह कि नयी-कविता को लेकर कुछ लोग अजीब ही रूप में सामने आए। उन्हें यदि कुछ हद तक पृथक कर दें तो नयी कविता जनमानस की सर्वाधिक निकटस्थ भावना की प्रतीक मात्र ही नहीं रही वरन् उसमें पूर्ण रूप से घुली मिली है। श्रीकान्त वर्मा की 'जूनः तीन कविताएँ की कुछ पंक्तियां पढ़िये :—

कहीं पर
गुजरती जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई
ट्रक।
.... और थी
कहीं पर
धूल और गसरे में
खड़ी
एक लड़की।

यही है सन् ६० के पश्चात् की नयी-कविता का रूप. कितनी सरलता है इसमें! साथ ही चित्र भी स्पष्ट रूप से उभर आता है। जून का महीना है, ट्रक के गुजरने से धूल उड़नी ही है।

नयी-कविता सत्य रूप में हमारे जीवन को छूकर चल रही है। उसमें तीखा व्यंग्य है, समझने और समझाने की तीव्रता है : साथ ही जीवन के रूप को समझ के साथ विकसित करने की शक्ति है। वास्तव में नयी-कविता का स्वर आज हमारे समाज का स्वर बन गया है। हमारी समस्याओं को स्पष्ट करने का स्वर बन गया। साथ ही उसमें पाठकों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता है, स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि नयी-कविता का स्वरूप प्रारम्भ की 'कविता' जिसे नयी कविता या 'प्रयोगवाद' नाम दिया था, से बहुत आगे बढ़ गया है। सन् ६० के पश्चात् की कविताएँ आज की 'नयी कविता' के रूप में विकसित हुई हैं। आज से मेरा आशय सन् ६२-६३ से है। इस समय की रचनाएँ वास्तव में काव्य में नया मोड़ ले आई हैं।

नयी कविता जनमानस की आन्तरिक वृत्तियों से झकझोर देती है। यही कारण है कि जैसे ही चीनी हम पर हावी होने का आतंक फैलाने तथा जन्म से आज तक भारत-सिरमौर हिमालय को हड़पने का प्रयत्न करने लगे तो 'नयी कविता' का स्वर 'प्रसाद' के साथ 'ओज' गुण का साकार रूप लेकर उपस्थित हो गया।

हिमालय हमारी संस्कृति का मूल स्रोत है। वहाँ से गङ्गा-जमुना की अजस्र धाराएँ, प्रवाहित हुई हैं। वह सिन्धु और ब्रह्मपुत्र का पिता है। कैलासवासी का निवास स्थान है। ऋषि-मुनिओं का सहारा रहा है। उसे हम अपने आप से पृथक कैसे होने दें? कैसे आक्रामक का उस पर अधिकार होने दें? परिणामतः सम्पूर्ण भारत आक्रामक चीन के विरुद्ध हो एक ही आवाज लगाने लगा कि उसे खदेड़ दो। नयी कविता में, जो तार-सप्तक से प्रारम्भ हुई थी, के दूसरे और तीसरे सप्तक में हिमालय पर कविताएँ देखने को मिलीं। उनकी भी संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल दो ही है। एक है नरेश मेहता की और दूसरी विजय देवनारायण साही की। इन सप्तकों में हिमालय पर अधिक नहीं लिखा गया। परन्तु चीनी आक्रमण के अनन्तर नयी कविता में हिमालय के दर्शन प्रवुद्ध रूप में मिलते हैं। चीनी आक्रमण के पश्चात् नयी कविता में ही हिमालय का विवरण अधिक मिलता है।

नयी कविता का हमें वास्तविक रूप चीनी आक्रमण के कारण और खुलकर दिख गया है। नयी कविता के कवियों ने अपनी वाणी के द्वारा अङ्गारे बरसाये हैं। समग्र चेतना पातकी को नीचा दिखलाने एवं उचित ताड़ना देने की ओर लगी हुई है। तभी तो कविता की भाषा बोल उठी है --

गंगा माँ का उद्गम थल ही
आज रक्त से सजा हुआ।

नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी की कविता 'बर्फ में जमे हुए सिपाहियों का गीत' मूल प्रेरणा को झकझोर देती है। कवि कहता है कि हिमालय के बर्फ में जमें हुए सिपाहियों को मत छेड़ना, उनको छेड़ना मौत को बुलाना है। इन सिपाहियों की रगों में आग का दरिया बहता है। याद रखना। देखिये :—

ओ बेशर्म दुश्मनों।
हिमालय की बर्फ में जमे हुए
सिपाहियों को छेड़ना,
मौत का आह्वान है।
हमारी रगों में
आग का दरिया बहता है।"

श्री बालकृष्ण राव दबे स्वरों को उत्तेजित कर रहे हैं—"आज पहली बार" में। श्री राव ने नगाधिपति को आज पहली बार नमित देखा है। उन्हें आश्चर्य है कि शिशिर में यह द्रवित कैसे हो रहा है! आज पहली बार हिमालय अपनी उदार वृत्तियों का भारत से प्रतिदान माँग रहा है। यह कैसा व्यक्तिक्रम है? कैसा विपर्यय है? वीरेन्द्र मिश्र की कविता ने तो यहाँ तक पूछ लिया है, कि—"मानसरोवर पूछ रहा, कैलास से, मेरी अथवा ब्रह्मपुत्र की लाश से।" इसी कविता की पंक्तियों में हिमालय को सती की लाश सा मर्दित बताया है। वास्तव में चीनी आक्रमण से हिमालय को कठोर आघात पहुंचा है, साथ ही भारत को महान धोखा हुआ है। एवं इधर अनिल कुमार "देश एक शक्ति पीठ" में ओज पूर्ण वाणी में कह उठे हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कैलास के वासी रुद्र सा
उद्वेग-उद्वेलित
उठ जाग ओ जन बल।"

यहाँ कवि सम्पूर्ण जन बल का आह्वान करता है। वह यहाँ तक कहने में नहीं चूकता कि अब सोने का समय नहीं है, वरन् कैलास के वासी शंकर के सदृश सम्पूर्ण जनबल को प्रलयंकारी तांडव नृत्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। कितना ओज है! यह है नयी कविता का रूप।

रमेशचन्द्र शाह ने "हिमालय को वात्सल्य दृष्टि" में अलसाये हुये पहाड़ों को उठाते हुए पीड़ा की करवट बतला दी है। कवि कहता है, आज प्रातः काल से ही हिमालय वत्सल दृष्टि से अपनी प्रकृति की मौन तरङ्गों को मन्द स्मित हास्य के साथ अपलक देख रहा है। इसी के साथ 'राही मासूम' की कविता 'विष्णु-अवतार' में सब की आँखें खोल देती है। कवि कहता है, आज हिमालय का दिल कितना दुखता है, इसकी कल्पना नहीं कर सकते। आज हिमालय के प्यार की नदियाँ भूखी-प्यासी नंगे पाँव, हर घाटी में घूम रही हैं। देखिये—

"आज हिमालय का दिल कितना दुखता होगा।
प्यार की नदियाँ, नीम बरहना
भूखी, प्यासी, बाल बिखेरे
नंगे पाँव हर एक घाटी में घूम रही हैं।
विन्ध्याचल के जोगी ने कैलास ने—
....
हमने आँखें खोलीं।"

डा० हरिवंशराय 'बच्चन' की कविता "सूर समर करनी करहिं" नूतन उद्बोध लेकर आई है। कहाँ बच्चन का स्वर मधुशाला और मधुबाला का प्रणेता था कहाँ आज बच्चन की वाणी नयी कविता के स्वरों में हुंकार कर उठी है। वह हुँकार भी ऐसी है कि धरती काँपने लगी है और गगन में दरारें पड़ गई हैं।

'हिम श्रृङ्ग से आसिन्धु
यह उठ पड़े,
हुँकारे ऽ......
कि धरती कँपे,
अम्बर में दिखाई पड़े दरारें।"

वीरेन्द्र मिश्र ने अपनी कविता में सम्पूर्ण जीवन का आह्वान किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसे आलस्य से झकझोर कर उत्साह की ओर बढ़ाया है। कवि की वाणी चीत्कार कर उठती है—

"शोणित सागर बन जाए, हो समुद्र मन्थन !
सिपाही देश के.
हिमालय छीन ले !"

'हिमालय को पुकार' और "हिमालत की भारत की नारियों से पुकार" दो कविताओं के कवि ने भी जन जीवन को पूर्ण रूप से सचेत होने को कहा है। वह यह कहता है कि तुम्हें हिमालय से अर्जुन भीम माँगने की जरूरत नहीं है वरन् तुम सब अर्जुन-भीम बनकर अपने अरिओं का मान चूर करो और उनका दमन करो। नारियों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि रजपूतनियों के जौहर को याद करो, पद्मिनी को याद करो, वीरांगना दुर्गावती और रानी झाँसी को याद करो। तुम्हें रण चण्डी बन चुण्ड-मुण्ड सहस्त्र अरियों का दमन करना होगा। देखिये कुछ पंक्तियाँ :—

....
(१) तुम साज बनो,
अर्जुन-भीम, लो गांडीव, गदा।
....
अपने वीरत्व का स्मरण कर,
और डटकर करो
अरिओं का दमन"

(हिमालय की पुकार—दक्षिण भारत मार्च-अप्रैल ६३-पृ० २८)

(२) तुममें वीरांगना रजपूतनियों सा जोश हो......
रण चंडी बन
अरियों का
मान चूर कर
दुर्दीय दमन कर
चुँड-मुँड सदृश्य
इस पातकी की दशा करनी होगी।

(हिमालय की भारत की नारियों से पुकार"—जागृत महिला—२७ जुलाई अंक, पृ०—६

ज्ञानोदय के अगस्त, ६३ के अंक में वैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा के लिखे 'मेरी डायरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...हिमालय" में भी नयी कविता में हिमालय का अपूर्व वर्णन मिलता है। चालीस ...कंठो से आज एक ही ललकार निकल रही है—आवेश भरी चुनौती— ...कह उठा है—

"... .....

चुनौति है तुम्हें
ओ क्रूर, नश्वर !
शक्ति हो तो
आज फिर आओ
हिमालय की धरा पर !"

स्पष्ट है कि आज नयी कविता जन जीवन के पूर्ण रूप को अपने में ...विष्ट कर प्रस्तुत कर रही है। निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि "नयी कविता" हमारे सर्वाधिक सन्निकट है और हिमालय का नयी कविता में ... रूप है।

———— —

पुण्य शिलाओं में अंकित है संस्कृति का अपूर्ण इतिहास
प्राण भर रहा है पाहन में मानव की स्मृति का अभ्यास

*   *   *   *

शिवशंकर के तपोयोग से वैभव मयी अनन्त विचित्र
रूप-राग-रस-मयी प्रकृति भी हुई उमा-सी पूर्ण पवित्र
भूमि, तेज जल के प्रभाव से बन अनेक देवों के धाम।
पुण्य परिग्रह से मुनियों के बने तीर्थ बहु क्षेत्र ललाम ॥

'पार्वती' महाकाव्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक विश्व राजनीति में हिमालय की भूमिका

—श्रीअनन्त मिश्र

हिमालय सहस्राब्दियों से भारत का प्रहरी रहा है, किन्तु, आधुनिक विश्व-राजनीति में उसका क्या स्थान है - यह प्रश्न भी कुछ कम महत्वपूर्ण और कम विचारणीय नहीं है। हिमालय अजेय है और उसके हिममण्डित उन्नत शिखरों का उल्लंघन कर शत्रु भारत की सीमा में प्रविष्ट नहीं कर सकते—यह मान्यता गत वर्ष चीन के आकस्मिक और बर्बर अक्रमण के कारण समाप्त हो गयी। अब हिमालय अजेय नहीं रहा, क्योंकि, उसके उन्नत शिखरों पर आज आक्रमणकारी चीन के सैनिक गीध की तरह भारत की शस्य-श्यामला धरती पर लोलुप दृष्टि डाले हुये मँडरा रहे हैं। संसार की सबसे ऊँची छत—जिसे तिब्बत का पठार कहा जाता है—आज चीनी सैनिकों के अधिकार में है। बौद्ध धर्म और संस्कृति का केन्द्र-स्थल तिब्बत हिंसा और विध्वंस के पुजारी क्रूर चीनी सैनिकों के अवैध अधिकार में है। तिब्बत की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के बाद चीनी दस्युओं का दल हिमालय के उन्नत शृङ्गों को पार करता हुआ भारत भूमि में प्रविष्ट कर चुका है और उनकी इस विस्तार लिप्सा के कारण आज सम्पूर्ण मानव संस्कृति और विश्व शान्ति पर खतरा उपस्थित हो गया है। ऐसी स्थिति में हिमालय आधुनिक विश्व राजनीति में जिस भूमिका का निर्वाह करने जा रहा है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। गत वर्ष ८ सितम्बर १९६२ के बाद चीनी सैनिकों के हमले प्रारम्भ हुये और इन हमलों को रोकने के लिये भारत के देशभक्त सैनिकों को उत्तर पूर्व सीमान्त अंचल से लेकर लद्दाख तक फैले हुये लगभग २५०० वर्गमील सीमा क्षेत्र की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगानी पड़ी। चीन का यह बर्बर आक्रमण ८ सितम्बर १९६२ से लेकर २० नवम्बर १९६२ तक अबाध गति से चलता रहा और इस बीच विश्व के सम्पूर्ण संवादपत्रों, कूटनीतिक अंचलों और राजधानियों में केवल हिमालय की ही चर्चा रही। मुझे स्मरण है कि २० अक्टूबर १९६२ को जब भारतीय पत्रकारों और साहित्य-कारों के एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ जब मैं अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन पहुँचा तो वहाँ के संवाद पत्रों के प्रमुख स्तम्भों के अन्तर्गत केवल हिमालय क्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की घटनाओं का ही उल्लेख मिला। 'हिमालय संकट में' तथा 'हिमालय क्षेत्र पर चीन का नग्न आक्रमण।' इस आशय के शीर्षक के साथ अमरीकी संवाद पत्रों में अग्रलेख प्रकाशित हुये।

अमेरिका के उपराज्य सचिव मि० तालबट और हैरिमन से लेकर वहाँ के साधारण नागरिकों तक ने हमसे केवल एक ही प्रश्न किया - हिमालय क्षेत्र में क्या हो रहा है? चीन ने हिमालय पर क्यों आक्रमण किया? हमने अनुभव किया कि हिमालय अब केवल भारत का विश्वस्त प्रहरी ही नहीं है, बल्कि, आधुनिक विश्व राजनीति का यह एक केन्द्र विन्दु हो गया है। हिमालय पर चीन का जो नग्न आक्रमण हुआ उसने हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर और अतलान्तक महासागर के पार के देशों को समान रूप से प्रभावित किया, क्योंकि, यह आक्रमण 'हिमाच्छादित शृंगों और निर्जन प्रदेशों पर किया गया प्रहार ही नहीं था, बल्कि, जनतन्त्र, मानव संस्कृति और विश्व-शान्ति के उन आधार भूत तथ्यों पर किया गया निर्मम प्रहार था जिसके लिये मानव समाज सदियों से प्रयत्न करता आ रहा है।

हिमालय के उन्नत शृंगों पर किये गये चीनी आक्रमण ने एशिया, अफ्रिका लैटिन अमेरिका, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, यूरोप और आस्ट्रेलिया के देशों को समान रूप से प्रभावित किया। लोकतन्त्र और मानव संस्कृति के प्रति आस्था रखने वाले विश्व के समस्त राष्ट्र इस नग्न आक्रमण के संवाद से मर्माहत, चकित और उद्विग्न हो गये। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, जापान, मलाया जोर्डन, संयुक्त अरब गणतन्त्र, युगोस्लाविया, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि कई देशों ने लोकतन्त्र की रक्षा के लिये नग्न आक्रमण और उपनिवेशवाद के विरुद्ध चलने वाले इस संघर्ष में जनतन्त्रात्मक शक्तियों (जिसका प्रतिनिधित्व भारत करता था) सक्रिय योगदान किया और हमने अनुभव किया कि हिमालय के प्रस्तर खण्डों में मानवीय पीड़ा और वेदना की जो अनुभूति छिपी हुई है उसके प्रति सम्पूर्ण विश्व की सहानुभूति है। हिमालय, जिसने सहस्राब्दियों से मानव समाज को साधना, तपस्या, अहिंसा, प्रेम, विश्वशान्ति और अध्यात्म का सन्देश दिया था, स्वयं हिंसा, घृणा, आक्रमण और प्रतिशोध का शिकार होने पर भी विचलित न हो सका। उसने उन डाकुओं, आततायियों और आक्रमणकारियों का नकाब उतार कर फेंक दिया जिन्होंने सोते हुये मृगशावक की पीठ में छुरा भोंकने की धृष्टता की थी। यहाँ तक साम्यवादी कहे जाने वाले सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप के अन्य देशों ने भी हिमालय की इस विपत्ति में उन्हीं जनतान्त्रिक शक्तियों का साथ दिया जो लोकतन्त्र और मानव संस्कृति की रक्षा के लिये संघर्षरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। सत्य, न्याय और शान्ति की रक्षा के लिये भारत ने जो युद्ध किया उसमें कुछ प्रारंभिक असफलतायें उसे अवश्य मिलीं, किन्तु, विश्व जनमत के समक्ष यह सिद्ध हो गया, कि आक्रमणकारी चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो वह सत्य, न्याय और नीति का गला नहीं घोंट सकता और न पंचशील तथा सह-अस्तित्व की खाल ओढ़ कर वह सारे संसार के विचारशील लोगों की आँखों में धूल ही झोंक सकता है। आइये अब हम विचार करें कि चीन के इस आकस्मिक और बर्बर आक्रमण का कारण क्या था ?

चीन ने क्यों आक्रमण किया ?

चीन ने आक्रमण किया यह एक तथ्य है किन्तु, उसने आक्रमण क्यों किया इसका उत्तर प्राप्त करने के लिये हमें उन तथ्यों का अन्वेषण करना पड़ेगा जो उपनिवेशवाद और साम्राज्य विस्तार के मूल प्रेरक तत्व हैं। यह स्पष्ट है कि चीन ने हमारे देश पर धोखे से आक्रमण किया और ऐसा करते समय उसने परम्परागत मैत्री, सद्भावना और शान्ति के सम्पूर्ण आधार भूत सिद्धान्तों का कोई ख्याल नहीं किया। सन् १९४९ में चीनियों ने अपने देश में एक ऐसी कम्युनिस्ट सत्ता की नींव डाली जिसका उद्देश्य था अधिनायकवाद और तानाशाही की स्थापना। कुओ-मिन-तांग सरकार को चीन की मुख्य भूमि से निष्कासित करने में चीनियों को जो सफलता मिली उससे उनका मदान्ध हो जाना स्वाभाविक था। च्यांगकाई शेक की सत्ता जब चीनी कम्युनिस्टों से परास्त होकर तैवान के निकटवर्ती द्वीप तक सीमित हो गयी और अमेरिका का प्रबल संरक्षण भी चीन की मुख्य भूमि पर उसकी प्रतिष्ठा को बनाये रखने में असफल सिद्ध हो गया तो चीनी कम्युनिस्टों ने पड़ोसी देशों की ओर अपनी लोलुप निगाहें दौड़ा दीं। चीन के आक्रमण का पहला शिकार तिब्बत हुआ। तिब्बत में भारी संख्या में चीनी सैनिक भेजे गये और उसे धीरे-धीरे एक उपनिवेश के रूप में परिणत किया गया। कोरिया युद्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना के विरुद्ध लाखों की संख्या में जो चीनी सैनिक उतर गये उसका एक मात्र उद्देश्य था – एशिया के छोटे-छोटे देशों को बल का प्रदर्शन करके आतंकित करना। बहुत अंशों तक चीनी अपने कुत्सित उद्देश्यों में सफल रहे। जन-संख्या और सैन्य संख्या का भय प्रदर्शित करके एशिया के छोटे-छोटे राष्ट्रों को उन्होंने आतंकित सा कर दिया। भारत ने चीन की नयी सत्ता को मान्यता देकर तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में बार-बार उसके प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठा कर संसार के अन्य देशों को यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि चीन शान्ति और सद्भावना का अवतार है। सन् १९५४ में तिब्बत के प्रश्न पर भारत और चीन के मध्य जो समझौता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

76301
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्न हुआ उसमें यह स्थिर किया गया कि तिब्बत की आन्तरिक स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी तथा भारत और चीन दोनों ही पंचशील व शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों का पालन करेंगे।

अनाक्रमण, अहस्तक्षेप, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखण्डता का सम्मान, पारस्परिक सहयोग और शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व के जो सिद्धान्त स्थिर हुए उनका विश्व के प्रायः सभी देशों ने स्वागत किया। इस सन्धि के बाद ही सन् १९५५ में एशिया और अफ्रीका के २९ स्वतन्त्र देशों का एक सम्मेलन वाण्डुंग में हुआ जिसमें चीन के प्रधान मंत्री श्री चाऊ एन लाई भी शामिल हुए। वाण्डुंग सम्मेलन ने विश्व शान्ति और सद्भावना के लिए दस सिद्धान्त स्थिर किये। इन सन्धियों के फलस्वरूप भारत और चीन में जो मित्रता स्थापित हुई वह अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकी। हिन्दी-चीनी भाई-भाई और पंचशील तथा सह-अस्तित्व का नारा शीघ्र ही निरर्थक सिद्ध हुआ। चीन ने अपना साम्राज्यवादी पंजे से तिब्बत को पूर्ण रूप से जकड़ लिया।

तिब्बत के धर्म गुरु और शासक दलाई लामा लासा से निष्कासित कर दिये गये और उन्होंने भारत से आश्रय की माँग की। अपनी परम्परा और अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार ही भारत ने दलाई लामा को आश्रय दिया किन्तु, उनपर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि भारत में रहते हुए न तो वे कोई निर्वासित सरकार बना सकेंगे और न राजनैतिक गतिविधियों में भाग ले सकेंगे। फिर भी चीन ने भारत के विरुद्ध प्रचार-युद्ध की घोषणा कर दी। चीनी समाचार पत्र और रेडियो द्वारा निरन्तर यह प्रचार किया जाने लगा कि भारत साम्राज्यवादी है।

इतना ही नहीं, चीन ने भारत की सीमा में प्रवेश करके सैन्य चौकियों, पुलों और सड़कों का निर्माण भी प्रारम्भ कर दिया। यों तो चीन सन् १९५५ से ही लद्दाख क्षेत्र में चौकियों, सड़कों और पुलों का निर्माण कर रहा था, किन्तु दलाई लामा के भारत आ जाने के बाद उसने अपनी गति-विधि और तेज कर दी। लद्दाख क्षेत्र में गश्त लगाने वाले भारतीय सैनिकों पर आक्रमण किया गया तथा लौंग्जू और लद्दाख के कई महत्वपूर्ण स्थानों पर चीनियों ने अपना कब्जा जमा लिया। उन्होंने भारत के ५० हजार वर्गमील क्षेत्र भूखण्ड पर अपना दावा उपस्थित किया तथा मैकमोहन-रेखा और परम्परागत रेखाओं को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा के रूप में मान्यता देना अस्वीकार कर दिया। अपने दावों के अनुसार उन्होंने भारत की भूमि पर कब्जा भी जमाना आरम्भ किया। अन्ततः, स्थिति ऐसी आयी कि चीनियों ने भारत के प्रायः ४० हजार वर्गमील भूखण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अपना अवैध अधिकार स्थापित कर लिया। भारत को ओर से शान्तिपूर्ण वार्ता के आधार पर सीमा-विवाद सुलझाने के लिये जो भी प्रस्ताव रखा गया उसे चीन ने ठुकरा दिया और उसने बल पूर्वक भारतीय भूखण्डों पर कब्जा करना प्रारम्भ किया। चीनियों द्वारा भारतीय सीमा का अतिक्रमण सन् १९५७ में उस समय प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने अक्साई चीन वाले मार्ग पर कब्जा किया। सितम्बर १९५९ में चोन ने पहली बार भारत की ५०००० वर्गमील भूमि पर दावा किया। इससे पहले चीनी अधिकारी यह कहते थे कि उन्हें मानचित्र में संशोधन करने का अवसर नहीं मिला। सन् १९६० में दोनों देशों के प्रधान मन्त्रियों का सम्मेलन दिल्ली में हुआ और उसके बाद ही उच्चाधिकारियों की बैठकें हुईं किन्तु चीन सदैव समझौता वार्ता के मार्ग में अड़ंगा डालता रहा।

८ सितम्बर १९६२ से लेकर २० अक्टूबर १९६२ के मध्य चीनियों ने उत्तरी पूर्वी सीमान्त क्षेत्र में भारत की २५०० वर्गमील भूमि पर अवैध कब्जा कर लिया। २१ नवम्बर १९६२ को जब चीनियों ने एक तरफ युद्ध स्थगन की घोषणा की तो उत्तरी पूर्वी सीमान्त अंचल और पश्चिमी क्षेत्र में बहुत बड़े भूभाग पर उनका कब्जा हो गया था। उत्तरी पूर्वी सीमान्त अंचल में वे बोमदिला तक बढ़ आये जिससे तेजपुर पर भी खतरा उपस्थित हो गया था। लद्दाख में त्रिसूल के पास उन्हें भारतीय जवानों के प्रबल प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि हिमालय क्षेत्र पर आक्रमण करने का उनका एकमात्र उद्देश्य अधिक भूमि प्राप्त करना था। इस उद्देश्य में चीनी बहुत अंशों तक सफल भी हो गये। २१ नवम्बर १९६२ को उन्होंने ७ नवम्बर १९५९ की वास्तविक नियन्त्रण रेखा तक हटने की जो घोषणा की उसके बाद भी प्रायः १४ हजार वर्गमील भूखण्ड पर लद्दाख क्षेत्र में उनका अवैध अधिकार रह ही गया। भारत की ओर से यह माँग की गयी थी कि चीनी सैनिक उस स्थान तक हट जायें जहाँ वे ८ सितम्बर १९६२ से पूर्व थे, किन्तु चीनियों ने इस माँग को स्वीकार नहीं किया। अन्ततः इस मामले में कोलम्बो राष्ट्र ने हस्तक्षेप किया किन्तु उसका भी कोई ठोस परिणाम न निकल सका।

कोलम्बो प्रस्ताव

सीलोन की प्रधान मन्त्री श्री मती भण्डार नायक के प्रयास से अफ्रीका और एशिया के छः देशों ने कोलम्बो में एकत्र होकर भारत-चीन सीमा-संघर्ष की समाप्ति के उद्देश्य से एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में भारत और चीन दोनों से अनुरोध किया गया था कि वे शान्तिपूर्ण वार्ता के आधार पर अपने विवादों को सुलझा लें। भारत ने कोलम्बो प्रस्तावों को पूर्ण रूप से स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया किन्तु, चीन ने उन प्रस्तावों पर अभीतक अपनी स्वीकृति नहीं दी है। चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाऊ एन लाई का कथन है कि कोलम्बो-प्रस्ताव केवल सुझाव मात्र है और उसे बाध्यता मूलक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः, चीन ने आक्रमण करके जिन भारतीय-भूखण्डों पर अधिकार कर लिया है उन्हें वह छोड़ना नहीं चाहता और विवाद को लम्बा बनाये रखकर वह हिमालय क्षेत्र में सदैव तनावपूर्ण स्थिति कायम रखना चाहता है।

चीन के आक्रमण का प्रभाव

चीन ने भारत पर अकारण आक्रमण करके यह सिद्ध कर दिया दिया कि पंचशील, सह-अस्तित्व तथा बाण्डुंग सिद्धान्तों में उसका कोई विश्वास नहीं है। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान में भी उसकी कोई आस्था नहीं है। उसका आचरण संयुक्त राष्ट्रसंघ की घोषणाओं और उसके विधानों के विपरीत है। उसके आक्रमण का उद्देश्य है साम्राज्य और प्रभुत्व का विस्तार करना, एशिया में आतंक की स्थिति बनाये रखना तथा युद्ध और उत्तेजना को प्रोत्साहन देना। भारत, इस समय एशिया का ही नहीं विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्रवादी देश है। चीन लोकतन्त्र को नष्ट कर अधिनायकवाद को प्रोत्साहन देना चाहता है। वह अफ्रो-एशियाई देशों की एकता को तोड़ कर अपने प्रभुत्व का विस्तार करना चाहता है। मार्क्स और लेनिन के उपदेशों और अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की राह छोड़ कर वह राष्ट्रीय प्रभुत्व विस्तार और स्वार्थ की राह पर चल रहा है चीन इस समय जिस राह पर चल रहा है वह फासिज्म और नाजीवाद की राह है। आधुनिक विश्व राजनीति में चीन आक्रमणकारी, अन्यायी, आततायी और उपनिवेशवादी देश समझा जाता है। विश्व-परिवार में न तो उसकी कोई प्रतिष्ठा है और न साख। कम्यूनिस्ट देश भी उस के आक्रमणकारी कार्यों का समर्थन नहीं करते। केवल अल्बानिया और पाकिस्तान को छोड़कर संसार के किसी भी अन्य देश ने चीन का समर्थन नहीं किया है। वस्तुतः वर्तमान विश्व-राजनीति में चीन तिरस्कृत, लांछित और एकाकी है।

———

६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन के नाम

श्री भगवतशरण चतुर्वेदी

आज एक खत और लिख रहा हूँ मैं तुझको,
मेरा अन्तिम फ़र्ज़ मुझे ललकार रहा है।
मेरा खून उबलता तूने कभी न देखा—
जिसमें दुश्मन के प्रति भी सत्कार रहा है।

मेरे दुश्मन! तुझे दुश्मनी ही आती है,
दिल से दिल का प्यार निभाना तू क्या जाने?
तेरी मुंदी-मुंदी आँखों का ये मुर्दापन—
खून और शबनम का अन्तर क्या पहचाने?

लेकिन मेरा देश कि जिसकी आँखें ऐसी,
जब तक काजल लगा हुआ है कजरारी हैं।
जिनमें सावन है, फागुन का अल्हड़पन है—
जो फूलों की रङ्गत जैसी मतवारी हैं।

लेकिन जब तक पलक झुके हैं, झुके हुए हैं,
किन्तु अगर खुल गये भयंकर हो जायेंगे।
तुझको कैसे समझाऊँ मैं, दूर देश के—
यहाँ प्यार के पूजक, शङ्कर हो जायेंगे।

जिनकी आँखें खुली प्रलय फिर मच जायेगी,
दुनिया का शीतल जल ज्वाला बन जायेगा।
अगर किसी ने बदनीयत से भारत देखा—
हर चलता इन्सान शिवाला बन जायेगा।
ये मेरा वो देश कि जिसके हर आँगन ने,
अन्यायी की लाशों से ये धरती पाटी।
कुरुक्षेत्र की अभी जवानी जली नहीं है—
अब तक जिन्दा मचल रही है हल्दी घाटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन का गाण्डीव अभी तो जगा हुआ है,
जगा हुआ है, राणा का मतवाला भाला।
वीर राम का तीर नहीं सो पाया अबतक—
अभी कृष्ण का चक्र उगलता जाता ज्वाला।

वेदव्यास की वाणी अब भी गूँज रही है,
कर्म करो लेकिन फल की अभिलाषा त्यागो।
तुलसी का वह दर्शन अब भी बोल रहा है,
आततायी को मारो, मेरे साथी जागो।

लेकिन तुमको पता नहीं है, ओ अन्धियारे,
मेरा तुझसे सदियों पहले का नाता है।
मुझे शरम है केवल उस ही रिश्ते की बस,
क्योंकि मुझे सम्बन्ध निभाना भी आता है।

मेरी प्यारी सीमा को हथियाने वाले,
मेरे तन को अपना यों बतलाने वाले!
अपने एक झूठ को सच करने की खातिर—
दुनिया का इतिहास अरे झुठलाने वाले!

बेजुबान सीमा से पीछे हटकर देखो,
कुछ मुखरित सीमायें तुझको बुला रही हैं।
जो अपने उस छिपे-झाँकते यौवन की ही,
पूजा में सिन्दूरी दीपक जला रही हैं।

तू अपनी कुछ भूलों को छोटी कह देगा,
किन्तु अगर इन्सान मर गया तो क्या होगा?
अगर पलक मुंदते ही वह सिन्दूर पुँछ गया—
खिलनेवाला फूल झर गया तो क्या होगा?

अगर पायलें बजते-बजते टूट गईं तो—
अगर खनकते कंगन ये नीलाम हो गये।
अगर चहकते आँगन सब शमशान बन गये—
और प्यार के प्यासे यदि बदनाम हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो तेरी खुदगर्जी को हम दफ़ना देंगे,
तुझको हम इन्सान-परस्ती सिखला देंगे।
बहुत सुना होगा तूने शेरों की बाबत—
सोया शेर जगा, हम तुझको दिखला देंगे।

अभी वक्त है, अपने घर वापिस जाने का,
अभी वक्त है, अपनी लज्जा रख पाने का।
अभी वक्त है, गलती में सुधार करने का—
अभी वक्त है, उलझी गुत्थी सुलझाने का।

मुझे अगर डर है तो केवल इतना ही है,
तेरी गलती से ये समय निकल जाये ना।
तुझको सबक सिखाने के मंसूबे से ही—
दुनिया का ये नक़शा कहीं बदल जाये ना।

इसीलिये मैं तुझे वक्त से बता रहा हूँ,
इसीलिये मैं तुझे पत्र ये पठा रहा हूँ।
मुझे बुद्ध की बहुत अहिंसा प्यारी है-
इसीलिये मैं तुझे खून से उठा रहा हूँ।

तू सम्हलेगा, बहुत जिन्दगी बच जायेंगी,
कितने को जलते सुहाग फिर मुसकायेंगे।
कितने ही मासूम, जिन्दगी फिर जी लेंगे—
फिर किसान खेतों में मस्ती से गायेंगे।

किन्तु ध्यान इतना तो तू फिर भी रख लेना—
अगर बढ़ा आगे तो हस्ती मिट जायेगी।
अपनी आज़ादी को कायम रखने भर को—
मेरी हर ज़िन्दगी झूम कर कट जायेगी।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवतात्मा-हिमालय

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

मानसरोवर के जिस अमल, स्वच्छ, सलिल-निधान से भागीरथी, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र में अपना, अस्तित्व ग्रहण करके हमारे देश के उत्तरी भाग आर्यावर्त को मरुभूमि होने से बचाकर उसे शस्य-श्यामला बनाकर इतना जन-संकुल कर दिया है, वह पवित्रता का प्रतीक सरोवर उस हिमालय पर्वत के अंक में सुशोभित है जिसके समीप ही गौरीगुरु भगवान शंकर अपने स्फटिक शैल कैलास पर निवास करते हुए ब्रह्मा की सृष्टि और विष्णु की पुष्टि को पलभर में अपने तांडव की लय के साथ प्रलय में परिवर्त्तित भी कर देते हैं और जिसपर वे आशुतोष प्रसन्न हो जाते हैं उन्हें भुक्ति और मुक्ति देने में विलम्ब भी नहीं लगाते। नगाधिराज हिमालय को हमारे देश के दार्शनिकों, पौराणिकों, कवियों और वैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से देखकर और भावमुग्ध होकर निरन्तर उसकी प्रशंसा की है। हिमालय स्वयं सजीव, दिव्य-तीर्थ है। उसके एकान्त-शील ढालों पर, गह्वरों में, अधित्यका और उपत्यकाओं में, जल-स्रोतों और सरोवरों में साधकों को सिद्धि दिलाने वाली स्वाभाविक शान्ति विद्यमान है। इसीलिये अनन्त काल से तीन आश्रमों का उपभोग करने के अनन्तर वान-प्रस्थ ग्रहण करने वाले विरक्त लोग इसी का आश्रय लेकर मुक्ति की साधना करते थे। नर और नारायण ने अपनी तपस्या के लिये इसी हिमालय के बदरिकाश्रम को अपनी तपःस्थली बनाकर उसे इतना गौरव प्रदान कर दिया कि आज के इस नास्तिकवादी, भौतिकवादी धर्मनिरपेक्ष युग में भी लाखों की संख्या में यात्री जाकर बदरिकाश्रम, केदारनाथ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी कैलास और मान सरोवर का दर्शन करने पहुँच जाते हैं और कभी-कभी तो अपनी श्रद्धा के आवेग में वे अपनी भाव-सुमनांजलियों के साथ-साथ प्राणांजलि भी अर्पित कर देते हैं।

लोक-कल्याण के निमित्त सूर्यवंशीय राजा भगीरथ ने अपने पूर्वज सगर के उन दुर्धर्ष पुत्रों का उद्धार करने के निमित्त त्रिपथगा को मर्त्यलोक में उतार लाने के लिये कठोर तपस्या भी इसी हिमालय के अंक में की थी, जिन्होंने इन्द्र द्वारा महर्षि कपिल के आश्रम में ले जाकर रक्खे हुए अश्वमेध दीक्षित सगर के अश्व को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढूँढ़ते हुए पृथ्वी में सागर बना दिए और कपिल के कोपानल में क्षार हो गए थे। इसी की पार्वत्य, शैलप्राय, भूमि में व्याप्त भागीरथी ने गंगोत्तरी में प्रकट होकर आर्यावर्त्त को अपने पुण्य पीयूष जल से सींचकर पवित्र और उर्वर कर दिया, अन्यथा सिन्धु-गंगा के बीच की यह भूमि न जाने कब की मरुभूमि बन गई होती और यहाँ कभी मनुष्यों के दर्शन तक न हुआ करते।

महाकवि कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा, देवताओं का निवास-स्थान देवता-तुल्य पूज्य, देवतामय – बताया है। पुराणों के विश्वास के अनुसार देव-सृष्टि इसी हिमालय के क्रोड़ में हुई थी और जब जल-प्रलय के समय मनु ने एकाकी नौका में बैठकर बीज-रूप से सृष्टि की रक्षा करते हुए महामत्स्य के सींगों में नौका बांधकर अपनी तरणी खेते हुए इसी की अधित्यका पर आकर जल-प्रलय के समाप्त होने तक प्रतीक्षा की थी। पुराणों के ही अनुसार जब राजा पृथु ने इस रत्नगर्भा धरित्री से रत्न और औषधि दूह लेने का विचार किया, उस समय मेरु पर्वत को ही धरित्री-रूपी गौ को दूहने वाला ग्वाला बनाया गया और हिमालय को ही उसे पेह्नानेवाला बछड़ा बना कर इस पृथ्वी से औषधियाँ और रत्न दूह लिए। अतः रत्न और औषधियों को प्रकट करने का श्रेय भी हिमालय को ही है।

आयुर्वेद-शास्त्र में स्पष्ट रूप से घोषणा की गई है कि शरीर को नीरोग करने वाली उत्तम जड़ी-बूटियाँ हिमालय पर्वत से ही प्राप्त हो सकती हैं। जिस समय सुदूर लंका में मेघनाद की शक्ति से आहत होकर लक्ष्मण मूर्च्छित हुए पड़े थे उस समय लंका के राज-वैद्य सुषेण ने हिमालय के द्रोणागिरि शैल से ही संजीवनी बूटी मँगाने का आदेश दिया था और आंजनेय हनुमान जी ने इस हिमालय पर चमकती हुई दिव्यौषधियों में संजीवनी को न पहचानने के कारण पूरा शैल ही उखाड़ लिया और लक्ष्मण जी के प्राणों की रक्षा की। क्षय-जैसे रज रोगों से त्राण पाने के लिये हिमालय ही एक मात्र जीवन-आधार है। देवताओं और आर्यों की प्रिय सोमवल्ली, बुद्धि को संवर्धित करने वाली ब्राह्मी बूटी, जरठच्यवन ऋषि को शाश्वत यौवन प्रदान कर देने वाले च्यवन-प्राशावलेह में प्रयुक्त होने वाले अष्ट-वर्ग का तथा लंगूर-जैसे बली शाखा-मृग को पीछे लौटकर कूद आने की शक्ति प्रदान करने वाला शिलाजतु इसी के अंक में जन्म लेता है। देवताओं और राजाओं के मस्तकों पर डुलने वाला चंवर यहीं के चामर-मृगों की पूंछ का प्रसाद है। भयंकर से भयंकर शीत में एक कण मुँह में रख लेने पर तूस और अलवान की सम्पूर्ण उष्णता को परास्त कर देने वाली कस्तूरी इसी के अंक में पलने वाले कस्तूरी मृगों की नाभि का वरदान है। इसी की हिमप्लावित क्यारियों में वह केसर खिलखिलाती है जिसकी एक केसर मुंह में डाल लेने पर कोई भी व्यक्ति शिष्ट समाज में बैठने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोचर हो जाता है। इसी की गोद में पलती हुई शैल द्रोणियों में झिलमिलाती झीलों से मुस्कुराता हुआ वह काश्मीर प्रदेश है जिसके सौन्दर्य की झलक भर पा लेने के लिये और जिसके सरोवरों में नौका-निवास और नौका-विहार करने के लिये असंख्य यात्री प्रतिवर्ष देश-विदेशों से उत्कंठा के साथ दौड़े चले आते हैं। इसीके अंचलों में बसी हुई मसूरी, शिमला, नैनीताल और दार्जिलिंग की पहाड़ियों में न जाने कितने अभितप्त नागरिक ग्रीष्म काल में विश्राम, विनोद और मनःशान्ति के लिये छुट्टी बिताने चले आते हैं।

भौतिक दृष्टि से हिमालय अपनी नदियों के द्वारा आर्यावर्त्त को उर्वर बनाता ही है पर साथ ही अपनी उच्चता के कारण वह हमारा प्रहरी भी है, रक्षक भी है। वह सम्पूर्ण भारत वासियों के लिये, उनके भवननिर्माण के लिये काष्ठ भी देता है और आवश्यकता पड़ने पर मुक्ति भी। इसीलिए महाभारत के पश्चात् जब पांडवों ने बन्धु-विनाश का प्रायश्चित करने का संकल्प किया तो इन्होंने इसी हिमालय के स्वर्गारोहण स्थल पर अपना अन्तिम श्वास इसी को समर्पित किया था।

हिमालय हमारे जीवन-मरण का साथी है, हमारी सम्पूर्ण संस्कृति का आधार है, पृथ्वी का मानदण्ड है। इसीलिये कवियों ने अत्यन्त भाव-विभोर होकर इसके गौरव गीत गाए हैं। इसके अंक में निवास करने वाले केसरी, किरात और किन्नरों के साथ-साथ यक्षपति कुवेर की राजधानी उस अलका का भी उन्होंने वर्णन किया है जहाँ बारह महीने वसन्त लहलहाता है, जहां शिवजी के मस्तक पर विराजमान चन्द्रमा की चमक से निरन्तर प्रकाश बना रहता है।

शिवजी का श्वसुरालय ओषधि-प्रस्थ भी यहीं है। इस प्रकार कवियों की क्रान्तदर्शी वृत्ति को पुष्पित और पल्लवित करनेवाला देवतात्मा हिमालय हमारी सम्पूर्ण आध्यात्मिक, भौतिक तथा साहित्यक भावनाओं का अत्यन्त आत्मीयता पूर्ण केन्द्र है, हमारा प्राण है, हमारी आत्मा है, उसके बिना भारत-भारत नहीं। इसलिये हम उससे कभी पृथक् नहीं हो सकते, उसको कभी अपने से पृथक् नहीं होने दे सकते।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन साहित्य में हिमालय

श्री श्रीरञ्जन सूरिदेव—

देवतात्मा नगाधिराज हिमालय, पुरातन काल से ही, भारतीय संस्कृति के प्रबलतम प्रहरी के रूप में प्रतिष्ठित है। राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से भारतीय सीमा के संरक्षक मानदण्ड की महत्ता भी उसे प्राप्त है। अन्वेषकों की दृष्टि में हिमालय यदि रत्नों, ओषधियों, विभिन्न जीव-जन्तुओं एवं गन्धर्व-किन्नरों का आगार है तो कवियों और साहित्यकारों की दृष्टि से राष्ट्र का गर्व-गौरव। आज चीनी आक्रमण-काल में 'हिमालय बचाओ' आन्दोलन संकेत करता है कि अपने राष्ट्र के गर्व-गौरव की रक्षा करो।

सच पूछिये तो, हिमालय भौतिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टिकोणों से भारत का गर्व-गौरव है। वैदिक काल से आजतक के अनन्त भारतीय इतिहास की आवृत्ति-विवृति का अतन्द्र साक्षी है हिमालय—युग-युग का साक्षी। यही कारण है कि समस्त भारतीय वाङ्मय हिमालय की गुण-गिरा से स्वरित-मुखरित है। जहाँ तक ऐतिहासिक, भौगोलिक और साहित्यिक दृष्टि से हिमालय वर्णन की बात है, जैनसाहित्य सर्वाग्रणी है। जैन-दर्शन ग्रन्थों और जैनकाव्यों में तो हिमालय की विस्तृत और विशद परिवर्णना है। कारण है कि जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ ने हिमालय से ही निर्वाण लाभ किया था। जैनसाहित्य के मुख्यतः निम्नांकित ग्रन्थों में हिमालय चर्चित हुआ है :—

(१) आदिपुराण (महापुराण) : रचयिता आचार्य जिनसेन (८ वीं शती)
(२) उत्तरपुराण : रच० आचार्य गुणभद्र (जिनसेन के परवर्त्ती)
(३) पद्मपुराण : रच० आचार्य रविषेण (७३४ वि० सं०)
(४) वरांगचरित : रच० जटासिंहनन्दि (८ वीं शती)
(५) तिलोय पण्णति : रच० आचार्य यतिवृषभ (चतुथ शती)
(६) त्रिलोकसार : रच० सिद्धान्त चक्रवर्त्ती आचार्य नेमिचन्द्र (१०वीं शती)
(७) तत्त्वार्थसूत्र : रच० आचार्य उमास्वाति (उमास्वामी)—(ई० १ शती)
(८) राजवार्तिक : रच० अकलंकदेव (सन् ७२०-७८० ई०)

उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त जम्बूद्वीवप्रण्णत्ति सर्वार्थसिद्धि न्याय विनिश्चय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पउमचरिउ आदि अनेक दर्शन-काव्यग्रन्थों में हिमालय का वैविध्यपूर्ण मनोरम प्रासंगिक वर्णन शब्दित किया गया है।

प्रसिद्ध तत्त्वार्थसूत्र के तृतीय अध्याय में अधोलोक के वर्णन-क्रम में हिमालय का ज्ञातव्य भौगोलिक वर्णन उपस्थित करते हुये आचार्य उमास्वाति (इन्हें उमास्वामी भी कहा गया है) ने कहा है कि जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों (भारतवर्ष, हैमवतवर्ष हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष तथा ऐरावतवर्ष,) के पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत छह कुल पर्वतों (हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरिन्) में हिमवान् का स्थान अन्यतम है। इन्हीं छह कुलपर्वतों के द्वारा उक्त सातों क्षेत्रों का विभाजन होता है, इसलिये उन्हें वर्षधर पर्वत कहा जाता है।१ 'हिमवान' संज्ञा अनादिकाल से प्रचलित है।

हिमवान पर्वत भारतवर्ष और हैमवतवर्ष की सीमा पर अवस्थित है। इसका विस्तार १०५२$\frac{१२}{१९}$ योजन है। इसकी गहराई पाताल में २५ योजन है और ऊँचाई १०० योजन की है। हिमवान पर्वत का रंग चीनी रेशमी वस्त्र (चीनांशुक) के समान है और महाहिमवान का रंग सफेद अर्थात् महाहिमवान जहाँ निरंतर तुषारावृत्त रहता है, वहीं हिमवान के शिखर सूर्यःरश्मियों से सदा रंजित-विच्छुरित रहते हैं।

जम्बूद्वीप के उक्त सातों क्षेत्रों के बीच से गंगा, सिन्धु आदि चौदह महानदियां२ प्रवाहित होती हैं। ये चौदह महानदियाँ चौदह हजार सहायक नदियों से घिरी हैं।३ इन सहायक नदियों की भी असंख्य सहायक नदियाँ जम्बूद्वीप में प्रवाहित होती हैं। इनमें से गंगा, सिन्धु आदि सात नदियाँ पूर्व समुद्र में जाती हैं और शेष सात पश्चिम समुद्र में मिलती हैं।४ भरत और हैमवत की सीमा पर अवस्थित हिमवान ही गंगा-सिन्धु का मूल उद्गम है।

---

(१) भरत हैमवत हरि विदेह रम्यक हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महा-हिमवन्निषध नीलरुक्मिशिखरिणों वर्षधर पर्वताः—तत्त्वार्थसूत्र, अ० ३, सू० १०-११।

(२) गङ्गा सिन्धु रोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्ता सीतासीतोदा नारीनर कान्ता सुवर्ण रुप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः। (तत्त्वार्थसूक्त, अ० ३, सू० २०।)

(३) चतुर्दश नदी सहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः। उपरिवत, सू० २३।

(४) द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः। शेषास्त्वपरगाः। उपरिवत, सू० २१-२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरिसंकेतित छहों कुलपर्वत मणियों से भरे हैं और वे आमूलचूल एक समान विस्तारवाले हैं।१ उन छहों पर क्रमशः छह सरोवर हैं—पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरिन, महापुण्डरीक और पुण्डरीक।२ उनमें प्रथम कुलपर्वत हिमवान पर स्थित 'पद्म' संज्ञक प्रथम सरोवर एक हजार योजन लम्बा और लम्बाई से आधा, यानी पाँच सौ योजन चौड़ा है।३ इस पद्म सरोवर की गहराई दश योजन है और उसके बीच में एक योजन विस्तारवाला कमलवन है।४ आचार्य उमास्वाति का संकेत कदाचित् प्रसिद्ध मानस सरोवर की ओर ही है। इतनी समृद्धि के कारण ही हिमालय को गिरिराज की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

जैन साहित्य में हिमालय को 'कैलास' तथा 'अष्टापद' इन दो अपर पर्यायों से भी अभिहित किया गया है। इसलिए जैन पुराणों में प्रायशः 'कैलास' नाम से भी उसे परिवर्णित किया गया है।

आचार्य रविषेण ने पद्मपुराण के दशम पर्व में हिमालय को 'हिमवान' तथा उसके पूर्व नवम पर्व 'कैलास' कहकर वर्णन उपस्थित किया है। पहला प्रसंग है: विद्याधर चक्रांक के पुत्र साहसगति को सुतारा नामकी विद्याधरी से प्रेम हो गया है और वह उसकी प्राप्ति के निमित्त विद्यासिद्धि की आराधना हिमालय की गुफा में जाकर प्रारम्भ करता है :—

हिमवन्तं ततो गत्वा गुहामाश्रित्य दुर्गमाम्।
आराधयितुमारेभे दुःखितं प्रिय मित्रवत्॥

पद्मपुराण, दशमपर्व।

दूसरा प्रसंग है: सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा को व्याहकर रावण पुष्पक विमान से लंका लौट रहा था। रास्ते में कैलास पर उसका विमान सहसा रुक गया। उस समय बालि उसी कैलास पर तप कर रहा था। विमान रुकने का कारण बालि का तपस्तेज ही था। मारीच रावण के साथ था। उसी ने उससे विमान रुकने का कारण बतलाया। तब क्रोधान्ध रावण ने अपने बल से गर्वित होकर कैलास पर्वत पर दृष्टि निक्षेप किया, तो उसे वह इस रूप में दृग्गत हुआ—

(१) मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूलेच तुल्य विस्ताराः। उपरिवत्, सू० १३।
(२) पद्ममहापद्मतिगिञ्छ केशरि महापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि। उपरिवत सू० १४।
(३) प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो ह्रदः। उप०, सू० १५।
(४) दशयोजनावगाहः। तन्मध्ये योजनं पुष्करम्। उप०, सू० १६-१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुत्वा मारीच वचनमथ कैलास मूधरम् ।
ईक्षाञ्चक्रे यमध्वंसः स्वपराक्रमगर्वितः ॥
नानाधातु समाकीर्ण गणैर्युक्तं सहस्रशः ।
सुवर्ण घटनारम्यं पदपंक्तिभिराचितम् ॥
प्रकृत्यनुगतैर्युक्तं विकारैर्विलसंयुतम् ।
स्वरैर्बहुविधैः पूर्णं लब्धव्याकरणोपमम् ॥
तीक्ष्णैः शिखर सङ्घातैः खण्डयन्तमिवाम्बरम् ।
उत्सर्पच्छीकरैः स्पष्टं हसन्तमिव निर्झरैः ॥
मकरन्दसुरामत्तमधुव्रतपरैधितम् ।
शालौघविततकाशं नानानोकहसंकुलम् ।
सर्वर्तुज मनोहारि कुसुमादिभिराचितम् ।
चरत्प्रमोदवत्सत्त्व सहस्तसदुपत्यकम् ॥
औषधत्रास दूरस्थ व्यालजाल समाकुलम् ।
मनोहरेण गन्धेन दधतं यौवनं सदा ॥
शिलाविस्तीर्ण हृदयं स्थूल वृक्ष महाभुजम् ।
गुहागम्भीर वदनमपूर्व पुरुषाकृतिम् ॥
शरत्पयोधराकार तटसङ्घातसङ्कटम् ।
क्षीरेणैव जगत्सर्वं क्षालयन्तं करोत्करैः ॥
क्वचिद्विश्रब्ध संसुप्तमृगाधिपदरी मुखम् ।
क्वचित्सुप्तशयुश्वास वाताघूर्णितपादपम् ॥
क्वचित्परिसरक्रीडत्कुरङ्गककदम्बकम् ।
क्वचिन्मत्तद्विपव्रात कलिताधित्यकावनम् ॥
क्वचित्पुलकिताकारं प्रसूनप्रकराचितम् ।
क्वचिदृक्षसटाभारैरुद्धतैर्भीषणाकृतिम् ॥
क्वचित्पद्म वनेनैव युक्तं शाखामृगाननैः ।
क्वचित्खड्गिक्षतस्यन्दिसालादिसुरभीकृतम् ॥
क्वचिद्विद्युल्लताश्लिष्ट सम्भवद्धनसन्ततिम् ।
क्वचिद्दिवाकराकार शिखरोद्योतिताम्बरम् ॥

—पद्म पु०, नवम पर्व, श्लो० १११—१२४ ।

उपर्युक्त कैलास-वर्णन बहुत ही विशद और मनोरम है। उससे एक ओर जहाँ हिमालय के वैभव का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है, वहीं दूसरी ओर निसर्ग सुन्दरी प्रकृति की भीषणता भी परिलक्षित होती है। साथ ही, एक आचार्य जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की वर्णन शैली का वैशिष्ट्य भी अप्रच्छन्न नहीं रहने पाया है। यों तो उपर्युद्धृत श्लोक बड़े सरल और सरस हैं और मैं नहीं चाहता कि उनका अर्थ देकर लेख के कलेवर को अनावश्यक मेदस्वी बनाया जाय। फिर भी, नितान्त हिन्दी-पाठकों के लिये भावार्थ प्रस्तुत है।

रावण द्वारा संदष्ट कैलास अनेक धातुओं और हजारों देवगणों से युक्त था। सोने की भी वहाँ प्रचुरता थी। उसकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ आकाश को कुरेदती थीं। झरनों की झड़ी लगी थी। अनेक शाल वृक्ष लहलहाते थे। मकरन्द मत्त भौंरों की भरमार थी। सभी ऋतुओं के फूल खिले थे। उसकी उपत्यका में हजारों प्रकार के जीव जन्तु विचरते थे। विभिन्न ओषधियाँ प्रदीप्त थीं। विस्तीर्ण शिलाएँ उसका हृदय (छाती) था। बड़े-बड़े मोटे पेड़ उसकी भुजा-स्वरूप थे। गम्भीर गुफाएँ उनके मुख-जैसी थीं। इस प्रकार वह कैलास अपूर्व पुरुष की भाँति प्रतीत होता था। उसकी हिमतटी शरद के मेघ की तरह लगती थी। कहीं सिंह सोये हुये थे, तो कहीं अजगर के श्वास से पेड़ प्रकम्पित थे। कहीं हिरण चौकड़ी भरते थे, तो कहीं उसकी अधित्यका (ऊर्ध्वभूमि) मत्त हाथियों से आकुल थी। कहीं भयंकर रीछ थे, तो कहीं बन्दर पेड़ों की डालियों से उलझते थे। कहीं गैंड़े के आघात से छिन्न छालवाले सालवृक्ष से सौरभ प्रवाहित था, तो कहीं बिजली से मेघावली वलयित थी और उसके सूर्य-जैसे शिखरों से आकाश जगमग था।

आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने लिखा है : ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्त्ती भरत ने षट्खण्ड (सम्पूर्ण विश्व) का विजय किया था। इसी दिग्विजय के बाद वे जब अपनी राजधानी अयोध्या लौट रहे थे, तब जिनेन्द्र की पूजा के निमित्त कैलास पर गये थे। उन्होंने भी कैलास का बड़ा वैभवशाली रूप—दर्शन किया। कुछेक पंक्तियाँ परिलोक्य हैं—पूरा वर्णन तो कुल ९३ (१२-१०४) श्लोकों में है।

कैलासाचलमभ्यर्णमथालोक्य रथाङ्गभृत्।
निवेश्य निकटे सैन्यं प्रययौ जिनमर्चितुम्॥
निपतन्निर्झरारावैः आह्वयन्तमिवामरान्।
त्रिजगद्गुरुमेत्यारात् सेवध्वमिति सादरम्॥
ज्वलत्योषधिजालेऽपि निशिनाभ्येति किन्नरः।
तमोविशङ्कयास्याद्रेः इन्दुनीलमयीस्तटीः॥
सूर्यांशुभिः परामृष्टाः सूर्यकान्ता ज्वलत्यमी।
प्रायस्तेजस्विसम्पर्कस्तेजः पुष्णाति तादृशम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहेन्दुकरसंस्पर्शात्प्रक्षरन्तोऽप्यनुक्षणम् ।
चन्द्रकान्ता न हीयन्ते विचित्रा पुद्गलस्थितिः ।।

—आदि पु०, पर्व-३३

अर्थात्, भरतचक्रवर्ती पास ही में सेना को पड़ाव डालने का आदेश देकर स्वयं कैलास पर्वत पर जिनेन्द्र की पूजा के लिये गये। वह कैलास निर्झरों की आवाज से ऐसा लगता था, जैसे देवताओं को त्रिजगद्गुरु भगवान जिनकी पूजा के लिए बुला रहा हो। वहाँ औषधियाँ प्रदीप्त हो रही थीं, फिर भी किन्नर उसकी नीले-पत्थरों वाली तलहटी में अन्धकार के भय से प्रवेश नहीं कर पाता था। सूर्य की किरणों से सूर्यकान्त मणि चमक रही थी। एक तेज दूसरे तेज से मिलकर जग-मगा रहा था। चन्द्रमा की किरणों के संस्पर्श से चन्द्रकान्त मणियाँ प्रतिपल प्रक्षरित होकर भी ज्यों की त्यों बनी रहती थीं — निःशेष नहीं हो पाती थीं, क्योंकि पुद्गल (जड़ पदार्थ की स्थिति ही अद्भुत है।

जैनमत में पुद्गल की परिभाषा है 'पूरणगलनस्वभावः पुद्गलः।' अर्थात् पुद्गलों का निरन्तर घटते-बढ़ते रहना ही स्वभाव है। किन्तु चन्द्रकान्त मणियों को तो देखिये कि निरन्तर क्षरित होते रहने पर भी कभी घटती ही नहीं। इसीलिये, जड़पदार्थ की स्थिति के बारे में कुछ कहना कठिन है।

'पुद्गल' शब्द जैनशास्त्रियों द्वारा निर्मित एक पारिभाषिक शब्द है। और जैसी उसकी परिभाषा है, तदनुसार सारा संसार ही पुद्गलमय है। जैनकाव्यों की यह विशिष्टता रही है कि वे संस्कृत की परम्परा का अनुकरण न कर अपने ढंग से वस्तु-वर्णन करते हैं। इसीलिए, जैन परम्परा से अपरिचित सामान्य पाठक जैन काव्यों का पूरा स्वारस्य ले भी नहीं सकते। अस्तु;

जिनसेन के परवर्ती आचार्य गुणभद्र ने भी अपने उत्तर पुराण में कैलास की विशद चर्चा करते हुए कहा है कि सिद्ध क्षेत्रों में कैलास पर्वत का स्थान सर्वप्रथम है। भरत चक्रवर्ती ने उस पर्वत पर रत्नमय जिनालय बनवाये थे। अजितनाथ तीर्थंकर के समय सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्रों ने कैलास पर्वत के चारों ओर खाई का निर्माण किया था :

राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलासे भरतेशिना।
गुहा कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिरर्हताम् ।।
तेषां गङ्गा प्रकुर्वीध्वं परिखां परितो गिरिम्।
इतितेऽपि तथाऽकुर्वन् दण्डरत्नेन सत्वरम् ।।

अ०, १, श्लो० १०७-१०८

विक्रम संवत् १८०६ में एक जैन परिब्राजक लामचीदास ब्रह्मचारी ने हिमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय की यात्रा की थी। यात्रा से लौटकर उन्होंने एक पत्र अपने भक्तों के नाम लिखा था, जिसे मेरठ शहर के धर्मदास जगदीश प्रसाद सर्राफ ने 'श्रीकैलासयात्रा' की संज्ञा से पुस्तिका के रूप में २४८६ वीराब्द में प्रकाशित किया है। उक्त पुस्तिका से इस बात की स्पष्ट सूचना मिलती है कि हिमालय के उपकण्ठ में स्थित वर्मा, चीन, तिब्बत, कैलास, मानस सरोवर आदि देश भारत से पूर्णता सम्बद्ध रहे हैं और वहाँ न केवल बौद्धों का एकच्छत्र राज्य था, अपितु जैनों की भी प्रचुरता थी। प्रत्यक्षदर्शी उक्त ब्रह्मचारी जी ने तत्सम्बन्धी मन्दिर, उनके प्रकार पूजा-विधान और उनके भेद उपभेद के साथ ही उन देशों की यात्रा पद्धति, राज्य प्रणालियाँ, नगर-निर्माणशैली, राज्यवंश, प्रजा की स्थिति, खान-पान, वेष-भूषा, कला-कौशल, सामाजिक रीति-रिवाज और मनोभाव-इन सबका सरल-सरस और सुन्दर शब्दों में मनोहारी वर्णन किया है। भाषा राजस्थानी-प्रभावित सधुक्कड़ी है। एक उदाहरणः

'ताही चीन में पेकिन शहर से पूर्ण ओर कोस ३०१ पर पर्वत हैं, ताके मध्य हरी एक रंग की खान है, ताही के रङ्गों में हर एक चीनी ड्रेस छापे जाय है। वहाँ कल जादू का काम वहुत है। कल पुतली २० गज के अरज के पट बुनती हैं।...वहाँ की मस्कन रूई का विनौला लाल और मोट होय है और एक टापू से किसी पक्षी की ऊन आती है, ताही की ऊनी ड्रेस और मखमल होयं है। वहाँ के राजा महाराजा सब देश बौद्धमती हैं, कहीं कहीं जैनी हैं और वहाँ एक अवतार बभूजिब उनके कनफूस नामा गौतम अवतार से १०० वर्ष पिछाड़ी हुआ है सो खास चीन के लोग उसी के मत पर चलते हैं इसी की •साखा वहाँ जारी है।...सोइन छहीं चीन में आठ तरह के जैनी देखने में आया है। सो इस पेकिन शहर में तुनधारे जैनियों के २०० मन्दिर हैं। शहर में जैनियों के घर ८००० तिष्ठे हैं ..।'

इदमित्थं स्पष्ट है कि हिमालय की भूमि जैनों के लिए परम आदरास्पद रही है। उसका वर्णन हिमालय, अष्टापद, कैलास आदि पर्यायों से जैन-साहित्य में प्रचुर है। आवश्यकता इस बात की है कि समग्र जैनसाहित्य का अध्ययन कर विभिन्न दृष्टियों से हिमालय और उसके भारतीय तथा भारतीयेतर सम्बन्धों को पुस्तकायित किया जाय।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय के तीर्थ

प्रो० रामप्रोत उपाध्याय

हिमालय भारत का शुभ्र मुकुट, प्रहरी और आदि शिवालय है। यह सत्य शिवं सुन्दरम् की साकार मूर्ति है। यह हिमप्रदेश सृष्टि के आदि काल से ही सुर-नर मुनि, ऋषि एवं अन्य नरपुंगवों की तपोभूमि, साधनाभूमि एवं कर्मभूमि रहा है। आदिशक्ति जगदम्बा यहीं पैदा हुई थीं और हमारे देवादि-देव भगवान आशुतोष अपने गणों के साथ यहीं निवास करते हैं। यह स्वयं तीर्थ है और इसमें भी अनेक पहाड़ियाँ एवं चोटियाँ अनेक देवी-देवताओं की कर्मभूमि हैं। इस शैल-शिखर का प्रत्येक कण देवत्व की महिमा से संश्लिष्ट है। इसका प्रत्येक मधुर स्पन्दन ईश्वरत्व की अनिर्वचनीय प्रभा से भासित है। वेद, पुराण, श्रीमद्भागवत, रामायण और अनेक अर्वाचीन ग्रन्थ इस हिमराज के प्रशस्तिगान में अपने को श्री सम्पन्न करते हैं और अपना अहोभाग्य समझते हैं। संक्षेप में यही तुंगनाभ की महिमा है।

हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में तीर्थों की महिमा विशेष रूप से गायी गई है। बड़ों की वासभूमि ही छोटों के लिये तीर्थ-भूमि है, धर्मभूमि है। भारतीय ऋषियों ने छः प्रकार के तीर्थ बताएँ हैं— भक्ततीर्थ, गुरुतीर्थ, मातातीर्थ, पितातीर्थ, पतितीर्थ, और पत्नीतीर्थ। इन तीर्थों का वर्णन बड़ा ही दिव्य है। लघुगण इनके पास जाकर इनकी वन्दना करते हैं तथा श्रद्धा के दो फूल चढ़ाकर अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। तीर्थ एक व्यापक शब्द है और अनेक अर्थों का द्योतक है। आत्मशुद्धि के लिये यह बहुत आवश्यक है कि लोग इन तीर्थों का भ्रमण करें, अपने इष्टदेवताओं की अर्चना करें तथा अपने मंगल के लिये प्रसाद-स्वरूप उनके अभिवादन को अंगीकार करें। भारतीय मनीषियों ने तीर्थों की महिमा को विशेषरूप से गौरवान्वित करने के लिये सत्य, क्षमा, दया, सरलता, निग्रह दान, संतोष, ब्रह्मचर्य, मधुरवाणी, ज्ञान, धैर्य, तप, एवं शुद्धता आदि को भी तीर्थ की संज्ञा दी है। इन तीर्थों में भ्रमण और इन भाव तीर्थों के चिंतन मनन और पालन से व्यक्ति को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों आलोकों की प्राप्ति होती है। सारांश यह कि भारतीय तीर्थ, ज्ञान और भक्ति की पृष्ठभूमि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हैं, भाव और विचार की सिद्ध भूमि हैं तथा अनेक अस्त्रों एवं पुराणों की भाव भूमि हैं और कोरे भावुक भक्तजनों के लिये ये तीर्थ सामान्य भूमि हैं। इस दृष्टि से हिमालय की गरिमा और बढ़ जाती है और वह सम्पूर्ण तीर्थों का सिद्धपीठ बन जाता है। सच है—हिमालय लय, प्रलय और महाप्रलय की शरणभूमि है।

हिमालय के तीर्थस्थल हर दृष्टि से आलौकिक हैं। जिस प्रकार भारत का प्रत्येक व्यक्ति दार्शनिक होता है, ठीक उसी प्रकार हिमालय का प्रत्येक प्रस्तर भी तीर्थ है। हिमालय का कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जो देवत्व एवं ईश्वरत्व की महिमा-गरिमा से संश्लिष्ट न हो। प्रत्येक पुण्यस्थल का वर्णन करना असंभव है। अतः विस्तारमय के परिपार्श्व में गंगोतरी, यमुनोत्तरी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर, कैलास, अमरनाथ, बूढ़ेअमरनाथ आदिबदरी, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी और गोमुख का ही वर्णन समीचीन होगा।

गंगोत्तरी—इसका उद्गम स्थान हिमालय की उत्तरी सीमा है। यह स्थल बड़ा ही दिव्य एवं मनोहर है। यहाँ स्नान, तर्पण और उपवास करने से मन को शान्ति मिलती है तथा मनुष्य युग-युग के लिये ब्रह्ममय हो जाता है। पद्मपुराण में इसका विशद चित्रण मिलता है—

गओद्भेदं समासाद्य त्रिरामि पोषितो नरः।
वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत् सदा॥

वैदिककाल से लेकर आजतक के ग्रन्थों में गंगा की महिमा वर्णित है। महाकवि तुलसी ने तो इसका वर्णन खूब ही किया है—

गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे......
तीरथ अवगाहन सुरसरि जस .....

गंगा का जल श्वेत है तथा इसके तटों पर देवदार के लम्बे-लम्बे वृक्ष शोभायमान हैं।

यमुनोत्तरी—तरणि तनूजा का उद्गम स्थान गंगोत्तरी से पश्चिमोत्तर हिमालय का चीड़ प्रदेश है। इनके नाम स्मरण से जन्म-जन्म के पाप धुल जाते हैं तथा जलपान करने से उस व्यक्ति के सात कुल तक पवित्र रहते हैं। कूर्मपुराण और ब्राह्मी संहिता में इनका वर्णन विशेषरूप से मिलता है। इनका जल श्याम है तथा इस श्यामता की मनोरम झाँकी बड़ी सुन्दर परिलक्षित होती है। धार्मिक तथा प्राकृतिक दोनों दृष्टियों से यमुना की छवि स्तुत्य है।

बद्रीनाथ—यह पुण्यस्थल हिमशिखर की गोद में स्थित है। अलकनन्दा के सुरम्य तट पर स्थित यह तीर्थ उसकी नीलिमा में चार चाँद लगा देता है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वृक्ष रहित है तथा केवल झाड़ीदार पौधे ही दिखलाई पड़ते हैं। यात्री अलकनन्दा का दर्शन कर तप्तकुण्ड में स्नान करते हैं और पूजा का सामान लेकर मन्दिर में प्रवेश करते हैं। मन्दिर में श्रीबद्रीनाथ जी की मूर्ति चतुर्भुज है। यह श्वेत प्रस्तर की मोहक प्रतिमा है। इस मूर्ति के दक्षिण भाग में कुबेर, बाम भाग में नर-नारायण, सम्मुख उद्धव जी तथा कमलवत् चरण के समीप श्रीदेवी और भूदेवी शोभायमान हैं। कुछ दूरी पर गरुड़ जी की सजीव प्रतिमा है जो अपनी सुषमा के लिये प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के प्रांगण में स्वामी शंकराचार्य की गद्दी और कार्यालय है जहाँ यात्रियों की आवश्यकताएँ पूरी होती है। इस स्थान के समीप गरुड़शिला, नारदशिला, मार्कण्डेयशिला, नरसिंहशिला, वाराही-शिला, ब्रह्मकपालशिला आदि प्रमुख तीर्थस्थान हैं जहाँ यात्री परसपरा के अनुसार तप, व्रत एवं दान की क्रिया सम्पादित करते हैं।

केदारनाथ :—यह धाम मन्दाकिनी के तट पर सुशोभित है। इसका जल हरा है तथा इसके सुरम्यतट के सघन वृक्ष उसकी हरीतिमा को और द्विगुणित कर देते हैं। हरीतिमा को यह सुरम्य चादर तीर्थयात्रियों के लिये पयटकों के लिये आकर्षण एक केंद्र बिन्दु बन गई है। प्रकृति की सुषमा न्यारी है। यह धाम सतयुगीन उपमन्यु की साधनाभूमि, भगवान शिव की आराधनाभूमि, पांडवों की तपोभूमि और युग-युग की अनादि भूमि है।

यह स्थल भगवान शंकर की नित्यभूमि है। यहाँ कोई निर्मित मूर्ति नहीं अपितु स्वयं निर्मित एक त्रिकोण प्रस्तर प्रतिमा है। यात्री यहाँ पूजा का समान स्वतः लेकर आते हैं, पूजा करते हैं तथा प्रसादांश लेकर घर की ओर प्रत्यागमन करते हैं। इसके निकटस्थ दिव्यस्थल भृगुपंथ, क्षीरगंगा, वासुकिताल, गुगूकुण्ड एवं भैरव शिला हैं जो अपनी मनोरमता एवं पवित्रता के लिये चिर विख्यात है। इस मन्दिर मंडप में ही उषा, अनिरुद्ध, पंचपांडव, श्रीकृष्ण तथा शिव-पार्वती की सौम्य मूर्त्तियां हैं। इस मन्दिर के बाहर अमृत कुण्ड, ईशान कुण्ड, हंस कुण्ड, रेतस कुण्ड आदि दर्शनीय स्थान हैं जहाँ यात्री दर्शन के पश्चात् श्री सुख सौरभ की शीतल स्निग्ध छाया में पल भर विश्राम करते हैं। सौन्दर्य एवं धर्म दोनों दृष्टियों से यह तीर्थ प्रातः बन्दनीय है।

मानसरोवर :—हिमालय के उस पार तिब्बत के विस्तृत वृक्ष विहीन पठार में एक पर्वत के चरण कमल के समीप मानसरोवर का सुन्दर स्निग्धसरोवर है। इसका आयतन बीस मील है और इसका सलिल स्वच्छ और नीलाभ है। साध्वी सती की दाहिनी हथेली इसी सरोवर में जलमग्न हुई थी। इसी कारण यह सरोवर सती का शक्तिपीठ कहलाता है और विश्व के कोने-कोने से पर्यटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके दर्शन के निमित्त आते हैं। राजहंसों का यह पावन प्रदेश अनेक नदियों का मूल स्रोत है। इस सरोवर का जल शीतल है तथा यात्रियों के लिये विशेष लाभप्रद है। जहाँ तक इसकी धार्मिकता का प्रश्न है—पद्मपुराण और वाल्मीकि रामायण में इसके अनेक प्रकरण मिलते हैं जो इसकी मनोरम गाथा पर विशेष प्रकाश डालते हैं। वाल्मीकि रामायण में विश्वमित्र ने मानसरोवर के बारे में राम से बहुत कुछ कहा है। एक उदाहरण लीजिए

कैलास पर्वते राम मनसा निर्मितं परम्।
ब्रह्मणा नरशाईल तेनेदं मानसं सरः॥
(वाल्मी० बाल० २४।१८)

पावनता एवं मनोरमता की दृष्टि से मानसरोवर तीर्थ यात्रियों के लिए एक धर्मधाम बन गया है।

कैलास : यह शिवधाम मान सरोवर से बीस मील की दूरी पर स्थित है तथा समुद्रतट से १९००० फूट ऊँचा है। इसकी आकृति एक विराट शिवलिंग जैसी है जो षोड़स प्रस्तर कमल दल के बीच सुशोभित है। इसके समीपस्थ पर्वत इस प्रकार झुके हुए हैं मानो वे इस शैल शिखर को आराधना में विरत हैं। कमलाकर कैलास काले कलेवर में कमनीयता से ओत प्रोत है, अनेक अलसायी वल्लरियों से सुशोभित है तथा अनेक दिव्य स्रोताओं की सुरभि से सुरभित है। कैलास कवियों की भाव-भूमि, योगियों को तपोभूमि, और भक्तों की प्राणभूमि है। इसकी महिमा से स्कंदपुराण, काशी खंड, हरिवंश, देवी भागवत, श्रीमद्‌भावत एवं रामचरित मानस आदि अनेक धर्मग्रन्थ मंडित हैं। श्रीमद्‌भागवत में यह शिव की पुण्यभूमि बतलाया गया है—जन्मौषधितयोमन्त्र योग सिद्धैर्नरेतरैः
जुष्टं किन्नर गन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सद॥

महात्मा तुलसी ने तो दिल खोलकर इसका वर्णन किया है—

परम रम्यगिरिवर कैलासू। सदा जहाँ शिव उमा निवासू॥
सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किन्नर मुनि बृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृति सकल सेवहिं शिव सुखकंद॥

इस तरह कैलास आदि देवालय है, आदि शिवालय है।

अमरनाथ :— अमरगंगा के सुरम्यतट पर स्थित अमरनाथ अपनी अमरता के लिये चिर प्रसिद्ध है। समुद्रसतह से सोलह हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित यह पुण्यधाम, हिमशैल शिखरों की गोद में अवस्थित यह शिवधाम स्वयं अकाम है। इसका हिम निर्मित प्राकृतिक शिवलिंग एकम् के चाँद की तरह क्रमशः कलापूर्ण होता हुआ पूनममय; शुभ्र हो जाता है। अमरनाथ मंडप में ही एक पार्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक गणेश पीठ है। ऐसा लगता है कि ममतामयी माँ हिम समुज्ज्वल परिधान में आवेष्ठित होकर पुत्र को ज्ञान और कर्म का अमर संदेश दे रही है। यही वह स्थल है जहाँ सती का कंठ गिरा था। तब से यह भूमि पुण्य भूमि हो गई है। अमरनाथ के ऊपर श्रीरामकुंड है, जहाँ से रह रहकर जल की शीतल बूंदे टपकती हैं। पास ही कबूतरों की सुन्दर पंक्ति है जो बड़े ही चाव से जलपान करती है। अपनी प्राकृतिक रम्यता में यह पर्वत अद्वितीय है।

बूढ़े अमरनाथ :—काश्मीर में 'पूँछ' के निकट पुलस्ता नदी के एकान्त तट पर पुलस्त मुनि का आश्रम है। इस आश्रम के पास बूढ़े अमरनाथ का पवित्र मन्दिर है। यह मन्दिर एक ही श्वेत पत्थर से निर्मित है तथा इसके चर्तुदिक सुन्दर बावलियों का रजतमय प्रवाह है। यही अमरनाथ का आदि मन्दिर है।

आदि बदरी :—तिब्बत का थुलिंग मठ ही आदि बदरी का प्रथम पवित्र स्थल है। श्री आदि शंकराचार्य जी वहाँ से उन्हें भारत लाये और मूर्ति का संस्थापन कार्य सम्पन्न किया। धार्मिक पुरुष आज भी वहाँ जाते हैं और श्रद्धा के दो पुष्प अर्पित करते हैं।

देवप्रयाग :—यह तीर्थ भागीरथी और अलकनन्दा के संगम पर स्थित है। यहाँ श्रीरघुनाथ जी, आद्य-विश्वेश्वर और गंगा-यमुना आदि की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ है। यहाँ पर्वतों की सुषमा अपूर्व है। एक किंवदन्ति के अनुसार यह सुदर्शन क्षेत्र है और आज भी हिन्दू तीर्थयात्री पिंड दान देते हैं। यह एक प्रमुख तीर्थ स्थान है।

रुद्रप्रयाग :—यह पुनीत स्थल अलकनन्दा और मन्दाकिनी के सुरम्यतट पर स्थित है। यहाँ एक सुन्दर शिवालय है। देवर्षि नारद ने संगीत शास्त्र में निपुण होने के लिये यही शंकर की अर्चना और वन्दना की थी। यह शिवलिंग एक सघन गुफा में स्थित है। इसके ऊपर शीतल सलिल का सुन्दर स्रोत है जो ग्रीष्म की दाहकता को दूरकर, स्निग्ध आर्दता की सृष्टि करता है। यात्रियों की सुविधा के लिये यहाँ अनेक धर्मशालाएँ हैं। यह केदारनाथ का पथ विन्दु है। इसका अपना धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व है।

उत्तर काशी :—यह धर्मधाम भागीरथी, असि, एवं वरणा के संगम पर स्थित है। यह मन्दिरों का नगर है। इसके प्रमुख मन्दिरों में विश्वनाथ मन्दिर, त्रिशूल मन्दिर, एकादशरुद्र मन्दिर, गोपेश्वर परशुराम, दत्तात्रेय, भैरव, अन्नपूर्णा, रुद्रेश्वर, कंडेसर, जडभरत मन्दिर, शिवदुर्गामन्दिर आदि के नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय है। यहाँ के अनेक कुंडों में ब्रह्मकुंड विशेष प्रसिद्ध है जहाँ यात्री स्नान करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवदर्शन पाते हैं। यहाँ पंचकोशी का पवित्र विधान है। हर दृष्टि से यह तीर्थ सुन्दर है, अलौकिक है।

गोमुख :– गंगोतरी से बीस मील की दूरी पर चीड़ प्रदेश के नीचे एक हिमधारा द्रवीभूत होती है। इसी धारा के शीर्ष स्थल पर यह पुनीत तीर्थ है। यहीं जगत पावनी भागीरथी उद्भूत होती हैं जिसमें स्नान कर लोग अपने को कृतार्थ करते हैं। इसका जल अतीव शीतल और स्वच्छ है। उसकी प्राकृतिक सुषमा अलौकिक है।

हिमालय के ये पुण्यमय प्रदेश आज विदेशियों के लिये भी आकर्षण एवं स्पर्धा के केन्द्र बन गये हैं। इसके अक्षय भंडार उनकी लोलुपता के कारण बन गये हैं। आज कुछ विदेशी इसकी रमणीयता, मनोहारिता, दिव्यता, एवं साधनः सम्पन्नता से प्रेरित होकर इस पर अधिकार करने के प्रयास में कदम बढ़ाये चले आ रहे हैं। पर वे भूल रहे हैं कि यह हिमालय भारत का है और उसी का होकर रहेगा। भारत वासी किसी भी मूल्य पर अपने नगराज का, अपने देवालय का सौदा नहीं करेंगे और मरते दम तक इसके सम्मान की रक्षा करेंगे। ऐसा लगता है कि विदेशियों ने हिमालय की सुषमा को देखा है, शक्ति को नहीं; कैलास की हरीतिमा को देखा है, कैलासपति शंकर के तांडव नृत्य को नहीं; अन्यथा वे इस ओर बढ़ने का दुःसाहस नहीं करते। बातचाहे जो भी हो, आवश्यकता इस बात की है कि हम भारतवासी अपने पारस्परिक भेदभावों को भूलकर प्रेम एवं एकता की पवित्र डोरी में बँध जाय और तुंगनाथ को साक्षी देकर कहें—कि जब तक धरती पर गंगा-यमुना का जल प्रवाहमान रहेगा और गगन में चाँद सितारों का दिव्य देश देदीप्यमान रहेगा, तब तक अपने प्राणों की बलि चढ़ाकर तुम्हारी रक्षा करेंगे, अपने शिव स्थान की रक्षा करेंगे और अपने अटल प्रहरी की रक्षा करेंगे। जय हिमालय।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की पुकार

प्रो० घनश्यामदास व्यास

मैं नगपति
हिम का समग्र रूप
खड़ा अटल
जीवन का दृढ़ विश्वास लिए।
मानव के विगत जीवन की
सहस्र धाराओं का
सरल, सुलभ एवं
भीष्म-प्रतिज्ञ मान लिए।
मेरे बच्चों,
मैं हिम का राजा
हिम किरीट,
—और
जीवन के गहनतम
"जीव" का आलय
हिमालय हूँ।
एक बार उठी थी हुंकार—
"फिरा हमें गांडीव गदा
लौटादें अर्जुन भीम वीर! (श्री दिनकर)
(पर, मुझे) देता हूं मैं
गांडीव-गदा
अब
तुम सब बनों
अर्जुन-भीम, लो गांडीव-गदा
और बनो मम सहृदय
दृढ़, अडिग, अखंड।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो निज माता का ध्यान
करने शत्रुओं का मान दमन।
इसमें न सोचों केवल,
न केवल समझो
वरन् कर गुरुतर भावों से
अपने वीरत्व का स्मरण
और डटकर करो
अरियों का दमन।
भूलेंगे सब भेद-भाव
करो प्रण।
हो अभय,
समस्त विश्व सम रखो
नवजीवन का,
नवोत्साह पूर्ण,
सजग,
सत्यमय;
उद्धहरण
मैं, हिमालय—
—बस यही है,
मेरी पुकार।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के दृष्टि-पथ में हिमालय

श्री रत्नाकर पाण्डेय

कालिदास की उपमा की प्रशस्ति समग्र विश्व के प्रतिष्ठित निर्वन्ध हृदयों ने की है। वर्णनात्मक भावभूमि पर उतरकर कवि ने प्रकृति के परम्पराबद्ध जीवन से कुछ नवल दृष्टि का रस-लास्य ऐसा किया है कि सरस-मन झूम उठता है। कालिदास की नाटकीय सृष्टि या काव्यमय संवेगों का सबन्ध अपने युग की यथार्थ-वादिता पर आधृत है। उनकी विख्याति इसलिये नहीं है कि उन्होंने पुरातन आख्यानकों को अपने हृदय की अन्तस चारुता से रंग कर वातावरण, प्रसङ्ग और परिस्थिति के अनुकूल संदेशवाही रसमयी सृष्टि की है अपितु उनके दृष्टि पथ में जो कुछ भी सुन्दर रमणीय अथवा प्रफुल्लित दिखाई पड़ा है उसपर अपने मन का निर्मल हास उन्होंने बिखेर दिया है। करुण स्थलों की सृष्टि करने में कालिदास की संवेदना की तुलना किसी भी कवि से करना कालिदास के प्रति अन्याय है। कालिदास के भौगोलिक ज्ञान के सम्बन्ध में विद्वानों में विवाद सा रहा है। परन्तु इतना निर्विवाद है कि कालिदास ने एक 'एकलाऽचलो रे' के राही की भाँति सारे भारतीय प्राकृतिक प्रदेशों का पर्यटन किया था। हिमालय की गगन-चुम्बित शृङ्ग-श्रेणियाँ उन्हें प्रिय ही नहीं है, प्रियतर रूप में ही कविने उनसे सम्बन्धांकन नहीं किया है; अपितु प्रियतम के रूप में कालिदास के काव्य ने हिमालय को ग्रथित कर अपने साहित्य काव्य का धवल शीतल हिम अभिशेक किया है। सरिता के तट भी कवि को प्रिय रहे हैं। पर हिमालय की सुषमा का मानवीकरण सिद्ध करता है कि कवि ने जीवन के प्रति जो आस्थामयी वाणी का जनोचित सम्भार संजोया है, उसमें वह कुछ भी इन पर्वतों की सानु-श्रेणियों की क्रिया कलापित कथा को अभिव्यक्ति के लिये शेष नहीं रख पाया है। कवि ने विशाल के लिये लघु दृष्टि और लघु के लिये व्यापक दृष्टिकोण का सहारा लेकर हिम का मंडनात्मक—स्तवन, संचार संजोकर हमारी कल्पना का हिम शिखर, शङ्कर का एकान्त प्रिय स्थल, पार्वती की तपश्चर्या भूमि आदि सब की मनोकामना का जयगान कर सकने में समर्थ सफलता को चूम लिया है। कालिदास के हिमालय सम्बन्धी दृष्टिकोण का उद्घाटन मैं उनके काव्य से ही प्रारम्भ करना उनके प्रति न्यायपूर्ण मानता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार सम्भव का सन्नियोजित कथा-पटल हिमालय है, प्रारम्भ में ही कवि प्रथम सर्ग की सृष्टि करते हुये कहता है कि –

भारत के उत्तर में देव-पूज्य विस्तृत हिमालय है। पृथ्वी के माप का वह पूर्व और पश्चिम में समुद्रतटों तक फैला पृथ्वी के मापदण्ड का मानदण्ड है।[1]

राजा पृथु के कहने से समस्त पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा बनाकर, चतुर दोहक मेरु से दुग्ध दोहक का कार्य सम्पन्न कराकर पृथ्वीरूपी गौ से सब चमकीले रत्न और औषध-बूटियाँ निकाल लीं। इस अलक्ष्य रत्नों से पूर्ण हिमालय की शोभा हिम के कारण अलग नहीं हुई। जहाँ बहुत से गुण हों वहाँ एकाध अवगुणों का पता नहीं चलता वैसे ही जैसे चन्द्रमा की किरणों से उसका कलंक गौण हो जाता है। हिमालय के शैल श्रृङ्गों पर गेरू की अनेक रंगीन चट्टानें हैं। कभी कभी उन शैल-खण्डों पर पहुंच कर मेघ-खण्ड की रङ्गीन छाया पड़ने से सायंकालीन मेघ से रङ्गीन होकर रङ्गमयता बिखेरते हैं। बादलों को देखकर वहाँ संध्या हो जाने के भय से किन्नरियाँ सायंकालीन नृत्य गान के लिये अपना श्रृङ्गार प्रसाधन प्रारम्भ कर देती है। कुछ हिम-शिखर इतने उन्नत हैं कि मेघ भी उनके मध्य तक पहुंचकर स्थिर रह जाते हैं, इन पर्वतों का अर्द्ध गगनांकित भाग ऊपर ही स्थिर रहता है, इसलिये निम्न-समतल पर छाया का आनन्द लाभ करते हुये सिद्धजन अधिक वर्षा से शंकित हो उठते हैं। वे बादलों से ऊपर उठी हुई चोटियों पर रहने लगते हैं। इस समय भी वहाँ सूर्य की किरणों से धूप बनी रहती है। यहाँ स्थिर सिंह जब हाथियों का शिकार कर गमन करते हैं तब उनकी रक्तान्त-नख-छाया-चिह्न हिम-धारा में विलीन हो जाती है। परन्तु उन सिंहों के पंजों से गिरे गज-मुक्ताओं से किरात यह ज्ञात कर लेते हैं कि सिंह गया किधर।

इस शिखर पर ऐसे वंस-वृक्षों के छिद्रमय बाँसों का आधिक्य है जो वायु भर जाने मात्र से ध्वनि करने लगते हैं। लगता है उच्च स्वर से गायन लीन किन्नरों के साथ ये संगत कर रहे हैं। यहाँ के गज अपने कर्ण-पत्रकों के खुलजाने के लिये देवदारु वृक्षों से मस्तक-घर्षण करते हैं तो ऐसी दुग्ध-धारा की सृष्टि होती है, जिसकी तीव्र-गन्ध से समस्त पर्वत प्रदेश सुगन्ध में रसाभोर हो जाता है। यहाँ गुफाओं में रात्रि में चमकने वाली वन्य-वनस्पतियाँ दुर्लभ प्रकाश फेंकतीं हैं। अतः यहाँ किरात-गण जब गुफाओं में अपनी प्रेयसियों

---

1 अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालय नाम नगाधिराजो।
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्यम् स्थितः पृथिवाइव मानदण्डः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संग उन गुफाओं में रस-क्रीड़ा करने आते हैं तब ये वनस्पतियाँ क्रीड़ा लीन-युग्म के सम्मुख बिना स्नेह दीप के प्रकाश किरण फैलाती हैं। यहाँ किन्नरियाँ जमे हुए हिम मार्गों पर चलती हैं तो उनकी उंगलिका और पदांत (ऐंडी) ठंड से मुकर जाती हैं। वे कुछ कर भी तो नहीं पाती। अपने भारी कटि अपरि प्रदेश भार तथा दुग्ध स्तन के बोझ के कारण वे शीघ्रता से चल भी नहीं पातीं। चाह कर भी अपनी मंद गति का त्याग वे नहीं कर पाती।

हिमालय की गुफाओं में दिन में भी निशा रहती है मानों अंधेरा दिन में डरने वाले उल्लूक के समान इसकी गहरी गुफाओं में जाकर छिप जाता है, हिमालय अपने अंक में उसे छिपा लेता हैं। महान लोगों का गुण है कि शरणागत निम्न को भी अपना बनाकर सज्जनोचित व्यवहार करते हैं। वे गायें जिनके पुच्छ से चंवर बनता है, चन्द्रमा की किरणों की भाँति अपने श्वेत-पुच्छ प्रदेश को फैलाती हुई इधर-उधर विचरण करते समय ऐसी प्रतीत होती हैं, मानों गिरिराज नाम की सत्यता चंवर डुलाकर वे सिद्ध कर रही हैं। जब यहाँ की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ काम-क्रीड़ा में लीन रहती हैं, शरीर के हटे हुये वस्त्रों के कारण वे लजाने का अभिनय करती हैं, तब बादल उन गुफाओं के द्वार पर आकर अंधेरे का ओट कर देते हैं। गंगा के झरनों के फुहारों से गर्वित, सर्वदा देवदारु वृक्षों को कंपाने वाला और किरातों के कटि प्रदेशों का मोर-पङ्खी बंध फड़फड़ाने वाली शीतल-मंद-सुगन्ध वायु किरातों की श्लथता का अनुहरण करता हुआ प्रवाहित होती है, और वे किरात मृगों को खोज में इधर-उधर टहलते ही रहते हैं। उच्च सरोवरों में प्रमुदित होने वाले सरसिजों के लिये स्वयं सप्तर्षि गण यजन के लिये स्वयं सप्तर्षि-मण्डल से उतर कर तोड़ ले जाते हैं। उनकी इच्छा के उपरांत जो कमल शेष रह जाते हैं उन्हें नीचे उदित होने वाला सूर्य अपनी किरणों का वितान तान कर खिलाया करता है।[1]

यह है कालिदास की लोकभूमि जिस पर कुमार सम्भव की सृष्टि हुई है। संभोग श्रृङ्गार के वर्णनों की वह अद्भुत सृष्टि हुई जिसे देखकर कालिदास की सरस महत्ता का मानदण्ड स्थिर करना समीक्षकों के लिये कठिन हो जाता है। कालिदास का हिमालय वर्णन कहीं भी निरुद्देश्य और अकारण नहीं हुआ हैं। उसकी अपनी वर्णनात्मक और उपयोगी क्रम-व्यवस्था है। कवि की मानवीय सत्ता के प्रति आस्था का बीज वपन उसकी प्रति पंक्ति में है। हिमालय इसीलिये केवल समुद्रों तक विस्तृत नहीं है कि वह मात्र विशाल है, वह पृथ्वी

---

१ देव कुमार सम्भव प्रथम सर्ग श्लोक १२ से १६ तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मापदंड का, नाप तौल का भी कारण है। चमकीले रत्न और जड़ी बूटियों का प्राचुर्य्य हिम की शोभा से मंडित हैं। खण्डित नहीं। बादल गेरू रंजित हिमालय पर पहुँचकर रङ्गीन धन हो जाते हैं। अप्सराओं का भ्रम भी (शीघ्र संध्या समझ लेने का) सकारण है और वे अपना अपना सायंकालीन शृङ्गार प्रसाधन प्रारम्भ कर देती हैं।

लालबिंदकियों वाले भोज-पत्र विद्याधरियों के प्रेमपत्र लेखन का उपादान बनकर आते हैं। वायुपूर्ण बाँस किन्नरों के गीत के साथ बाँसुरी बजाते हैं। किन्नर और किन्नरियों के मुख विलास के अवसर पर जुगनू कोटरों में प्रकाश का कार्य करते हैं। यह उद्देश्य शीलता कालीदास की वर्णनात्मक भाव धारा की अजस्त्र सिद्धि है। तालों के सरसिज को सप्तर्षिगण पूजा के लिये चुनते हैं, नीचे ढलने वाला सूर्य प्रकृति से आँखें मूँदकर चला नहीं जाता उसे किरणों का वितान ऊपर तान कर शेष पुष्पों को किरण-छाया देनी ही पड़ती है।

कालिदास को दृष्टि में सौंदर्य की सांगोपाग-सृष्टि हुई है। जो कुछ सुन्दर है उसी को कवि देखता है। बाह्य जगत का निर्माल्य मेघमाला जैसी पर्वत श्रेणियों का संवेदनापूर्ण जो वर्णन कालिदास कर गये हैं, विश्व के किसो कवि ने नहीं किया है। हिमालय महान है, नव्य है, सुन्दर है। कल्पना जन्य आनन्द के लिये महानता, नव्यता तथा सौंदर्य यह तीन बंधन हैं जिनमें बँध कर भी कालिदास अपने कवि-किन्नरों की तरह ही उन्मुक्त हैं।

माघ, भारवि, वायरन, शेली, वड्स्वथ सभी ने पर्वतों को अपनी वर्णनात्मक सृष्टि का उपादान बनाया है। परन्तु रैवतक, इन्द्रनील, प्रस्त्रवण, आल्प्स, काकेशस स्किडड पर्वत-पर्वत हैं कोई कालिदास के हिमालय की सृष्टि-सा संतुलित नहीं। पाश्चात् जगत में सौंदर्यवादी के रूप में शेली का स्थिरत्व है। काकेशस के उसके वर्णन को मैं यहां उद्धृत करने का लोभ-संवरण चाहकर भी नहीं कर पा रहा हूँ।

"काकेशस के हिमशिखर नक्षत्रों को विलीन करने वाले सूर्य की तरह शोभित हैं। जल-क्रीड़ा करने वाले भँवरे निरन्तर काकेशस की तराइयों में विनष्ट होते रहते हैं और वे जीवन भी पाते हैं। हिम प्रवाह की वायु का झंकोरा श्रोताओं पर जादूगर सा प्रभाव डालता है। विस्तृत मैदान में शान्ति का साम्राज्य छाया रहता है। आपस में प्रतियोगी की भांति सूर्य की गर्मी से पिघलकर हिमकण गिरते हैं।"

स्किडड-शृङ्गका वर्डस्वर्थ ने भी वर्णन किया है उसे भी देखकर तब हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचे तो सार्थकता की सिद्धि में अधिक सुविधा होगी। 'क्षितिज के निकटवर्ती नीचे ऊँचे पर्वतों के शिखर परतक ऊपर की तरफ दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालने से नीलगगन के तारों के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। क्षितिज के किनारे पीछे से काले रङ्ग की बड़ी चोटीवाला एक पर्वत अभिमान पूर्वक अपना सिर उठाये हुये था।'

कोई कवि पर्वतों की भीषणता दिखाता है, कोई गंभीरता के घेरे में बँध जाता है। कालिदास के बाह्यसौंदर्य वाले दृष्टिकोण का अवदान स्पष्टिकरण और कहाँ सम्भव है! कालिदास की भाँति किसी अन्य कवि ने मूर्तिमयी प्रकृति में सुषमा, शोभा, माधुर्य और सौंदर्य की विविध रङ्गमयता की प्राण प्रतिष्ठा पर्वतीय चित्रों में नहीं की। बायरन प्रकृति जगत की भयंकर विभीषिका में अपने हार्दिक उद्वेलन का दर्शन करता है, वर्डसवर्थ का वर्णन प्रकृति की शक्ति में विश्वमयी महा-माया का चिन्मय विकास करने लगता है, यहाँ तक कि भारतीयता के समर्थक भवभूति को भी प्रकृति में नीरव गांम्भीर्य का ही दर्शन होता है। मात्र कालिदास की ही कवि प्रतिभा की सम्पन्नता है जिसमें हिममण्डित प्रस्तर खण्डों में भी यदि कुछ देखा है तो प्रकृति का स्पन्दन, जीवन की संवेग संस्कारिक और लिरिकल लास्य-मयी उत्सुकता के साथ जय की अनवरत कामना का मोहक संदेश गान का स्वर। पत्थर में प्राण भरना सबका काम नहीं। कई युग की अनवरत साधना के उपरांत ऐसे कवि की सृष्टि होती है।

कालिदास के वर्णनों में प्रकृति भी अपना उद्देश्य लेकर अवतरित होती है। वनराज की वनश्री में वसन्त का वर्णन दर्शनीय है" – बसन्त के आगमन से, असमय में ही सूर्य दक्षिण से उत्तर चला आया। दक्षिण की मलय-वायु इस प्रकार प्रवाहित होती थी मानों अपने पति सूर्य के चले जाने पर दुखी होकर दक्षिण-दिशा दुःश्वास ले रही हो। अशोक-वृक्ष भी पुष्प पाद से तत्काल आच्छा-दित हो गया, झनकारते बिछुयेवाली युवतियों के पद प्रहार की प्रतिक्षा भी उसे नहीं रही। सुखद वसन्त ने नव-कोपलों के पंख लगाकर अम्रमंजरियों के शर निर्माण कर दिये और उनपर स्थिर भौंरे ऐसे लगते थे मानों कामदेव के नाम का अक्षर उन वाणों पर अंकित है।

अपूर्व है हिम-शैल शिखर पर कवि कालिदास के वसन्त को एक झाँकी-दार्श-निक और तटस्थ सौन्दर्यवादी कवि मिल्टन ने भी 'स्वर्ग' वसन्तागमन पर लिखा है। उसका कथन कुछ इस प्रकार है— स्वर्गोद्यान में वसन्त की श्रीख्याति बोलती है। अमृत जल नीलम के हौज से निकल कर मुक्तारन और स्वर्ण रेणु की छाया में चक्कर देकर स्वर्गीय पुष्प पौधों को सिंचित करता है। पहाड़-मैदान हर जगह पुष्पों की शोभा का अपरम्पार पारावार है। अरुणिमा छायादार कुँओं में छाया-हीन खेतों में अनेकानेक आनन्द-प्रद दृश्यों के साथ सुशोभित है। वृक्षों से लदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगन्धित रसों की सृष्टि होती है। मैदान में पशु हरित तृण चर्वण कर रहे हैं। काँटे रहित गुलाब तथा रंग-विरंगे फूल इधर-उधर खजूर के वृक्षों से लदी घाटियाँ दिखाई पड़ रही हैं। छायादार गुफाओं पर अंगूर की लताएँ फैलकर गुच्छों को लटकाये हुये हैं। पास ही करार पर से पानी के झरने झर रहे हैं। पानी एक में हदी से आवेष्ठित झोल में गिरता है। यह जल स्फटिक की भाँति निर्मल है। पक्षीगण अपना सुमधुर गान सुना रहे हैं। वसन्ती पवन का प्रवाह खेत और कुञ्जों के वृक्षों से अलग ही आवाज निकलवा रहा है। चारों ओर हँसी रास का नृत्य रङ्ग है। प्राकृतिक सुषमा इस वसन्त सृष्टि में भी है। दृष्टिकोण का भेद स्पष्ट है। एक दृष्टि भारतीय है दूसरी पाश्चात्य। कालिदास ने अपने वर्णन में प्रकृति के तट पर अपनी कविता का वासन्ती पट उड़ाकर बासुरी बजा दी है जब कि मिल्टन वर्णनात्मक दृष्टि को दबाव देकर ही अपने कवि कर्म की इतिश्री समझ लेता है। कालिदास के वर्णन के सामने मिल्टन का वसंत शिशु-सा लगता है। मैं ऐसा ही समझता हूं, विद्वानों की बातें वे जानें।

'सप्त-पर्णा' में महादेवी जी कहती हैं कि कालिदास ने जीवन सरिता के पुलिनों पर यत्र-तत्र स्फटिक-मरकत के घाट सोपान बनाकर उसके प्रवाह और गहराई में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं किया। किन्तु उनके पारवर्ती कवियों ने चमत्कार स्पर्धा में नदी के तट पर सोने-चाँदी की रेत बिछाना आरम्भ किया। परिणामतः ज्यों-ज्यों जल की गहराई घटने और तल की कठिनता घटने लगी त्यों त्यों कमल सूखने लगा और हरीतिमा तिरोहित होने लगी और अन्त में चमत्कार की चकाचौंध में घाट-सोपान और सुनहली-रूपहली बालुका का विस्तार दृष्टि के लिये मरीचिका-मृग बन गया।

इसी हिमालय पर शिव की समाधि, पार्वती का सेवार्चन, वसन्त की सद्यः प्रादुर्भूति, पुष्प संधान, शिव का पार्वती के प्रति देही और आत्मिक आकर्षण, मदन-दहन, रति-विलाप, पार्वती की आत्म गलानि और तपश्चर्या, शिव की प्रसन्नता से मदन की पूर्ण उत्पत्ति, शिव-पार्वती परिणय, प्रेम आपार तथा कुमार-सम्भव की नाटकीय परियोजना की सृष्टि होती है। यही कुमार सम्भव की पर्वतराज-कन्या का वाल्य तपस्विनी का कैशोयि, नारी की तरुणिमा और दाम्पत्य का रति विलास सब कुछ है।

मनोजनित परिहास के लिये तपस्वी वेश में आये हुये शंकर तपश्चर्या की चरम सीमा 'अपर्णा' गौरी का कुशल-क्षेम पूछने के बहाने उसके मनोवांछित शंकर या पति पर व्यंग करते हैं। पार्वती अपने नयन-शयन से सखी को वर्जित करने का आदेश देती है तपस्वी को, इस पर भी वाचाल तपस्वी पार्वती पर व्यंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि करता है तो वह कह उठती हैं कि हे सखी देख इस ब्रह्मचारी के होष्ठ पुनः कंपित होकर कुछ कहना चाहते हैं, इसे बरज दे यह कुछ न बोले। जो पूज्य जनों की निन्दा करता है केवल वह पापी नहीं होता अपितु श्रवण करने वाले को भी दोष लगता है। या 'मैं ही यहां से उठकर चली जाती हूं' यह कहकर वे उठीं। शिव को कहना पड़ा—'हे कोमलाङ्गी ! आज से तुम्हारे तप का क्रीत-दास मैं हूँ।' पार्वती का श्रम मनुहार सिद्धि के शैल पर सिद्ध पुरुषों की सिद्धात्मा शिव की प्राप्ति है।[1]

जिस नाटकीय परियोजना के बीच इस शृङ्खला की समाप्ति होती है वह कुछ सोचने कहने को बाध्य कर देती है। तपस्या के चरमोत्कर्ष शिखर पर पार्वती उसके निमज्जित सौन्दर्य की कोमल दीप्ति काम के तप्त-दग्धाशंकर का सशीर उपस्थिति शरण नारी की सत्ता का स्तवन-शिखर और उसकी अडिग आस्था का युग संदेशतो है ही पार्वती की सामान्य तपस्या से प्रारम्भ वर्णन अर्पण की स्थिति में क्रम से पहुँचकर उस सन्धि तप-स्थल का संकेत भी करती जिस प्रकार किसी समुद्र की स्थिति के लिये नदियों का किसी शैल से सम्बन्ध की आवश्यकता है। हिमालय की तरल अखण्डता से जल राशि प्राप्त करने के लिये गङ्गा यमुना-सरस्वती सबको सम्बन्धित युग-युग से रहना पड़ा है नदी की वाह्य उर्मिल चञ्चलता का सौन्दर्य अखण्ड हिम-मण्डित हिमालय से जुड़ कर ही अपनी चारुता की रक्षा कर सकता है।

ऊँचस्तर पर यही क्रमशः शंकर और पार्वती हैं। हिमालय उनकी साधना की और जीवन तथा जगत से सम्बन्ध स्थिर करने वाला स्रोत तपस्वीना का अलौकिक लोक है जिसकी स्थापना प्रथम बार बड़े रमणीय धरातल पर कालिदास ने अपने प्राख्यात उपमानों से सिद्ध कर दिया है।

ऋतुसंहार में कलात्मक कविता का भाव जगत अल्प है, परन्तु विविध ऋतुओं के उद्दीपन का प्राचुर्य कवि की प्रेरणामयी काव्य-कला का प्रारम्भ संकेत है।

पर्वतों की चोटियों पर सुन्दर पुष्पों के वृक्ष आच्छादित हैं, उन पर कोयलों की कूक और भौरों की गूँज सुनाई पड़ती है। पथरीले पर्वत सब को आनन्द दान देते हैं।

'मेघदूत' कवि-कालिदास का गीतिकाव्य है। प्रबन्धात्मकता की प्रबोधता का बोझ यहाँ कहाँ ? भार से दबा हुआ मेघ मन्द्राकान्ता छन्द में भारत के आर्यावर्त की पद-यात्रा तद् युगीत बिनोवा-सा कर रहा है। मन्द्र-मेघ-रव-सा इस छंद की अपनी ललित लचक है। मेघदूत में प्रकृति ने अपना आँचल उड़ेलकर

---

१ देखिये कुमार सम्भव पंचमसर्ग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
काव्य के तत्व को उसमें संपृक्त कर दिया है। कवि ने मातृभूमि का शृङ्गारिक-वाणी से चैतन्य-भाष्य किया है।

अतः हिमालय को कवि भूल नहीं सकता। उसका मेघ पथ-श्रम मिटाने के निमित्त गिरिशृङ्ग पर विश्राम करेगा, ऐसी कल्पना कर कवि कहता है हे मेघ जब तुम हिमालय के हिम मण्डित शृङ्ग पर बैठकर अपनी श्लथता का निवारण करोगे, यहीं से गङ्गा जो प्रादुर्भूत हुई है, यहाँ की शिलायें कस्तूरी हरिणियों के बैठने के कारण सदा सुगन्धिदान किया करती हैं, उस समय उस शैल-शृङ्ग पर विराजमान तुम ऐसे प्रतीत होंगे जैसे शंकर के उज्वल साँड के सींगों पर मट्टी के ढूहों से वप्रक्रिया करने से लगे हुये कीच जम गये हों। भयंकर हिम-प्रवाह होने के कारण देवदारु वृक्षों के परस्पर घर्षण से जब जंगल में अग्नि शोखर प्रज्वलित हो जायगी और उसके उड़नशील अग्नि स्फुलिंगों से सुरागायों के लम्बे लम्बे रोए प्रज्वलित हो जायेंगे तब धुवांधार वृष्टि करके उन्हें बुझा देना, क्योंकि भले लोगों के पास जो कुछ होता है वह दीन दुखियों का दुख मोचन के निमित्त ही होता है।[1]

हे मेघ! हिमालय पर जब शरभ नाम के हरिण तुम पर कुपित कुलाँचभर कर तुम पर आक्रमण करें और अपनी शारीरिक क्षति की परवाह किये बिना भी तुम पर सींग से आक्रमण करने को उद्यत हों तो उन पर निरन्त ओलों की वृष्टि करके उन्हें तिर बितर कर देना क्यों कि जो अनाधिकार चेष्टा करें उनको इसी प्रकार प्रशीक्षित करना उचित है। वहीं हिम शैल पर तुम्हें एक प्रस्तर खण्ड पर शंकर के चरणों की छाप मिलेगी, सिद्ध लोग उन चरण चिह्नों पर पूजा के फूल चढ़ाते हैं। हे मेघ! तुम भी इस चिह्न की झुककर नम्रता पूर्वक प्रदक्षिणा करना, श्रद्धापूर्ण लोगों के दर्शन से समस्त पाप कल्मल घुल जाते हैं। जब तुम भी शरीर त्याग करोगे तो शंकर के गण हो जाओगे।

यदि तुम भी अपने मेघ, मंद्र स्वर को कंपित पर्वत की गुफाओं को गुंजायमान कर मृदंग स्वर का संचार करोगे तो शिव संगीत का समस्त अंग पूर्ण हो जायगा। हिमालय पर्वत के आसपास जितने सुहाने स्थान हैं, उन सब का दर्शन करते हुए तुम उस क्रौंचरंध्र के संकरे मार्ग से होकर उत्तर गमन करना जिसमें से होकर हंस मानसरोवर की ओर जाते हैं और परशुराम जिसका छिद्र निर्माण कर अपने नाम को वाण-सा अमर कर गये हैं। उस संकरे मार्ग में तुम उसी प्रकार लम्बायमान हो कर जाना जैसे बालि को छलते समय विष्णु का चरण श्याम हो गया था। वहाँ से ऊपर उठने पर तुम उस कैलाश पर्वत पर पहुंच जाना

---

१ देखिये पूर्व मेघ, मेघदूत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके शृङ्ग शृङ्ग का जोड़ रावण के बली बाहुओं से हिल चुका है। इन्हीं शृङ्गों की धवलता पर देवागंनायें अपना रूप विम्ब दर्शन करती हैं और जिसकी कुमुद जैसी उज्ज्वल चोटियाँ गगन में ऐसे विस्तीर्ण हैं, मानों वह प्रति दिन का शिव का धवल अट्टहास हो। हे मेघ! तुम चिकने घुटे हुये अंजन के समान काले हो, कैलाश सद्यः टूटे हुये करि-दंत सा श्वेत है। अतः जब कैलाश के ऊपर पहुंचोगे उस समय तुम बलराम के स्कन्ध-प्रदेश पर पड़े काले वस्त्र-सा चटकीला प्रतीत होगे। समस्त आँखें तुम्हें ही देखती रह जायगी। इस कैलाश पर शंकर का हस्त बन्धन लिये पार्वती पर टहल रही होंगी, शंकर पार्वती के डर से सर्प-हस्त-बन्धन हटा दिये होंगे। वहीं कैलाश शृङ्गपर सुर-युवतियाँ जड़ाऊ कंगन के हीरों के प्रहार से बाहरी आवरण का छिद्र करके जल को फुहारे उत्पन्न करके तुम्हारा फुहारा बना लेंगी। धूप में तुम से वे जल-क्रीडा में निरत भी होंगी। यदि तुम उनसे न छूट सको तो अपने कर्णमंदी गर्जन-तर्जन से उनसे जान छुड़ा लेना। कैलाश पर्वत अब तब तुम्हारा मित्र हो गया होगा, उसके साथ ललित क्रीड़ाओं से मन बहलाना। तुम मानसरोवर के स्वर्ण कमलों से भरे ताल में जल पान करना। कभी इन्द्र के अनुचर अपने सरखाएरावत के मुख का पट आवरण बनकर उससे खेलना और हो सके तो कल्प वृक्ष के पत्तों को अपने वायु के प्रवाह से ऐसे झकझोरना जैसे नर्तकहाथों में रेशमी उत्तरीय१ धारण कर नृत्य लीन रहता है। मेघ तुम कामचारी हो। अलका अपने प्रेमी कैलास की याद में बैठी है। उसकी गंगा रूपी साड़ी सरक गयी है हो सकता है तुम कैलास के कोण में लवलीन उस अलका को न पहचान पाओगे लेकिन उसे पहचानना। पावस के दुर्दिन में तुम उच्च अट्टलिकाओं में उससे लहराना। तुम्हारे लहराते जल की फुहारों से ऐसी वह सुहावनी लगेगी जैसे मोतियों के जालों से गुथे घुंघराले केशों वाली कोई कामिनी है।२

कालिदास के हिमालयीय दृष्टिकोण से उनके शिवत्त्वपूर्ण शैव सिद्धान्तों पर कुछ कहने के पूर्व रघुवंश के हिमालय सम्बन्धी विराट जीवन्त चित्रों पर दृष्टिपथ फेर लेना आवश्यक है। रघुवंश के नृपति दिलीप जब नन्दिनी की निर्णायक धृति से प्रेरित होकर नहीं, सत्यभावों की परीक्षा देते हैं उस समय दिलीप उसे २२ वें दिन वन में ले जाते हैं और नन्दिनी सद्यः हिमालय की उस गुफा में प्रविष्ट हो जाती है जिसमें सुर-सरिता गंगा की धारा प्रवाहित हो रही है और

१ देखिये पूर्व मेघ — मेघदूत।
२. देखिये पूर्वमेघ—मेघदूत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके तट पर घने हरे-हरे दूर्वादल खड़े झांक रहे हैं। सिंह जब नन्दिनी पर आक्रमण करता है उस समय पर्वतीय दृश्य अंकन में लवलीन दिलीप तवतक अपनी दृष्टि नहीं फेरते जबतक नन्दिनी की आर्त्तवाणी से गुफा का सारा वातावरण भर नहीं जाता। दिलीप जैसे त्यागी और प्रतापी राजर्षि का दृष्टिकोण उसी प्रकार इस करुण आर्त्तवाणी की ओर खिंच जाता है, जिस प्रकार कोई रस्सी सीधे खिंच गयी हो। सिंह दिलीप के सामने झुकता है। वह शंकर का सिंह है। दिलीप से ओजभरी वाणी में वार्ता करते हुये वह कहता है कि तुम्हारे सामने यह देवदारु का विशाल वृक्ष लहर रहा है, उसे शंकर जी अपने सुपुत्र-सा मानते हैं क्योंकि स्वयं पार्वती ने अपने सोने के घड़ों के पयोधर के दुग्ध से सिंचित कर इसे इतना विशाल वना दिया है। एकबार एक जंगली करि के कराभि प्रदेश के घर्षण क्रिया से इसकी थोड़ी-सी छाल छिल गयी थी, पार्वती जी को इतना शोक इस दुष्क्रिया से हुआ था जैसा दैत्यों के बाणों से स्वामी कार्तिकेय को हुआ था। सिंह ने दिलीप को गो की रक्षा से गर्जते हुए स्वर्ग-सा सुख और समृद्धि से भरा हुआ राज-भोग पृथ्वी पर करने की मंशा की थी। राज-सुख पृथ्वी का स्वर्ग है और केवल स्वर्ग-सुख देव-भोग का। दिलीप नन्दिनी की परीक्षा में पूर्ण सफल होते हैं। २

दूसरे नृपति रघु जब इन्द्र-वाजि को अश्वमेध-यज्ञार्थ पकड़ लेते हैं तव इन्द्र उनसे यही कहता है कि हे राजकुमार ! पर्वतों के पंख को छिन्न-विछिन्न करने वाले मेरे क्रुद्ध वज्र के प्रहार को तुम्हें छोड़ आज तक कोई नहीं सह सका। तुम्हारी वीरता पर मैं मुग्ध हूँ। महेन्द्र पर्वत पर रघु के वीर सैनिक युद्ध से विरत होकर पान के पत्ते बिछाकर मदिरालय बनाते हैं और वे नारियल की मदिरा के साथ-साथ शत्रुओं का यश भी पी जाने का सामर्थ्य रखते हैं।१

दक्षिण के मलयाचल पर्वत, पश्चिम के त्रिकूट पर्वत तथा कम्बोज, करबुल आदि के राज-प्रदेशों पर विजय की पताका फहराते हुए रघु अपने असि समूहों के साथ हिमालय पर चढ़ते हैं। घोड़ों की टापों से उठी हुई रक्तल गैरिक-धूलि से लगता है हिमालय की चोटियाँ और भी ऊँची हो जाना चाहती हैं। गुफाओं में लेटे-लेटे सैनिकों की भाँति वलवान सिंह सेना के कर्ण कोलाहल से न घबराकर सामान्य दृष्टि से सैनिकों को देख रहे हैं। हिमालय की उत्पत्ति भोजपत्रों के संघर्षों के मर्मर ध्वनि से पर्वतीय बांसों के छिद्रों में बैठकर वायु बाँसुरी बजा रही

१. देखिये—रघुवंश।

२. देखिये—रघुवंश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और गंगा की फुहारों से शीतल यही वायु रघु की सेवा में लीन है। रघु के सैनिक भी नमेरु के वृक्षों की छाया में पथरीले प्रस्तर खण्डों पर बैठकर कस्तूरी मृगों के बैठने से सुगंधित पीठिका का सुस्ता-सुस्ताकर आनन्द ले रहे हैं। गर्वित देवदारु के वृक्षों में बंधे हुए हाथियों के गले में जो साँकल झनझना रहे हैं वे निशागमन पर प्रकाशित रहने वाली जड़ी-बूटियों की चकाचौंध से दमक उठते हैं। रघु के लिये स्नेह हीन दीपक का कार्य ये जड़ी-बूटियां करती हैं। किरातगण रघु के हाथियों की उच्चता का अनुमान देवदारू पर बंधी सांकलों के चिह्न से करते हैं। पर्वतीय सैनिकों और रघु के सैनिकों में इसी श्वेत-हिमालय पर युद्ध भी होता है। रघु के सैनिक वाण चलाते हैं और पर्वतीय सैनिक पत्थर। लोह और पत्थर के संघर्ष से कभी-कभी अग्नि के स्फुलिंग प्रस्फुटित हो उठते हैं। हिमालय पर भी अपनी विजय-पताका फहराने वाले राजा रघु कैलास पर बढ़ने का साहस नहीं करते। जगत्-पर्वतराज कैलास को व्रीड़ा की उर्मियों से यह सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि एक बार दशानन ने मुझे क्या उठा लिया कि सभी मुझे हारा हुआ समझने लगे। उत्सव संकेत नामी श्रृङ्गार शिखर पर रघु ने धुआंधार वाण छोड़कर किन्नरों को पराजित कर रघु की वीर-गीति गाने के लिये उन्हें बाध्य किया। पर्वतीय नरेशों ने भी रत्नों का विशाल-समूह रघु को भेंट स्वरूप दिया जिसे देखकर रघु ने हिमालय के अतुल धन-धान्य का अनुमान किया तथा हिमालय ने भी रघु के पराक्रम की प्रशस्ति की। रघु लौहित्य नदी को पार कर हिमालय में उतरकर प्राग्ज्योतिष (आसाम) में आये।[1]

इन्दुमति के निधन पर रघु के वंशज प्रतापी अज उसके मृत-शरीर को अपनी गोद में लिटाये हुए उस प्रातःकालीन चन्द्रमा के समान दिग्दर्शित हो रहे थे जिसके अंक में इन्दुमती रूपी मृग की धुंधली छाया हो। अज का हृदय विदीर्ण करने वाला विलाप विश्व में अबतक की प्राप्त शोकान्तिकाओं में अपनी मौलिकता की एक मात्र स्थापना, कालिदास की मृत्यु में भी जीवन देखने के भारतीय सिद्धान्त की आस्था से कर सका है। शोक-लहरियों के उच्छ्वास भी हिमालय की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकते। अज के विलाप के स्वर कहते हैं कि हे सुघर जघन प्रदेश वाली, फूलों से गुँथी और भौंरों के समान श्याम तुम्हारी लटें जब वायु प्रवाह से हिल-हिल उठती हैं तब मेरे मन में यह आशा होने लगती है कि अब तुम अवश्य जी उठोगी। इसलिये हे प्रिये! जिस प्रकार

1 देखिये रघुवंश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात में प्रकाशित जड़ी-बूटियाँ हिमालय की अंधेरी गुफाओं में भी ज्योत्सना का दान देती हैं उसी प्रकार तुम मेरे हृदय के अंधकार पर ज्योत्सना-सी जीकर विचरो। तुम्हारी मीठी बोली कोयलों ने लेली, तुम्हारी मंथर गति कलहंसनियों ने छीन ली। तुम्हारी चंचल चितवन हरिणियों ने ग्रहण कर ली। तुम्हारी तन्विता वायु से हिलती हुई लताओं में पहुँच गयी।

मृत्यु-शोक की परिस्थिति में भी हिमालय का हिमशिखरित अवदान चुकाना कालिदास जैसे कल्याण-कृत्य मानवतावादी कवि के दार्शनिक दृष्टिकोण का ही मृत्यु को एक संस्कार समझकर किया गया विशाल-कृत्य विश्व-साहित्य में परिगणित होगा।

जब राम विश्वामित्र के साथ हिमालय पर्वत के मार्ग से गुजरते हैं उस समय जिस हिमालय के तपोवन में शंकर ने काम को भस्म कर दिया था, वहाँ धनुर्धारी सुदेशी राम ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे काम की सुन्दरता के प्रतिनिधि होकर आये हैं। उसके कार्यों से उनका कोई संसर्ग नहीं। जनक की सभा में वज्र की शक्ति की परीक्षा जैसे पर्वत पर होती है वैसे ही राम की शक्ति की परीक्षा धनुष पर होने वाली थी। यह देखकर सभी नरेश आश्चर्यलीन रह गये। जब राम ने उस पर्वत के समान भारी धनुष पर वैसे ही सहजता से डोरी चढ़ा दी जैसे काम अपने पुष्प-धन्वा पर डोरी चढ़ाता है तो समस्त नरेश और सभासद आश्चर्य चकित रह गये। भारतीय साहित्य लक्षण के आचार्यों ने काव्य के औचित्य की महत्ता स्थिर करते हुए कभी कहा था कि काव्य में औचित्य का पालन तपस्या से भी कठोर है और काव्य की शाश्वतता के लिये अनौचित्य की छाया से बचना कवि का धर्म है। इस सैद्धान्ति तपस्या धर्म का पालन बड़ी सहजता से कवि कालिदास ने अपने पद-पद में किया है। राम की उपरोक्त दो स्थितियों से सहृदय जन कालिदास के औचित्य के गुणों को सहजता पूर्वक आंक सकते हैं। पंचवटी में राम के समीप काम से प्रपीड़ित सूर्पणखा उसी प्रकार इठलाती हुई आती है जिस प्रकार धूप से झुलकसर कोई विषभरी नागिन हिमालय पर उगे हुये चन्दन के पेड़ की छाया में पहुंच जाती है।

रावण ने इन्द्र आदि लोकपालों को विजित कर लिया था। उसने अपना सिर काट-काटकर शंकर के चरणों में चढ़ाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया था और कैलास पर्वत को अपनी उंगलियों पर नचा दिया था। कालिदास के राम ने रावण के पराक्रम को अन्य प्रशस्तिकार कवियों की भाँति सामान्य न समझकर बहुत शक्तिशाली समझा। यह कालिदास के कवित्व की ईमानदारी है। राम के सकल अयोध्यापुरी के नर नारियों के बैकुंठ चले जाने के बाद अयोध्यापुरी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर-देवी अयोध्या नरेश कुश से कहती है कि पहले उत्तम नरेशों के होने के कारण मैं इतनी ऐश्वर्यमानिनी थी कि मेरे आगे हिमालय की अलकापुरी भी फीकी लगती थी। अयोध्या जब पुनः अपने सौन्दर्य की खोई हुई स्थिति को प्राप्त कर सम्पन्न हो जाती है तो ग्रीष्म ऋतु की अलसता का वर्णन करते हुए कवि कालिदास कहते हैं कि गर्मी में जो हिम गलने लगा, वह लग रहा था, दक्षिण-दिशा से सूर्य के लौट आने की प्रसन्नता में उत्तर दिशा ने आनन्द के ठंडे आँसू पानी की ठंडी धारा के मिस हिमालय से बहाए हों। पराग से भरी कुछ पीत वर्ण अर्जुन-मंजरी ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो काम का शरीर भस्म करने के उपरान्त शंकर के हाथ से तोड़ी हुई काम के धन्वा की डोरी हो। कुश युगीन जल विहार का अंकन करते हुए आनन्दवादी कवि कालिदास यहीं तक नहीं बल्कि उतना तक कहने को बाध्य हो उठते हैं कि कुश की रानियाँ सोने की पिचकारियों से जिनके हाथ सुशोभित हैं, सरोवर रङ्ग की बौछार करके उन्हें सरयू के जल से भिंगोने लगीं। उस समय कुश ऐसे लग रहे थे मानो हिमालय के मस्तक शिखर पर से गैरिक रङ्ग का निर्झर प्रवाहित हो रहा हो।

जब दिग्‌विजय के उपरान्त अश्वमेध-यज्ञ कर कुश नृपतियों के नृपति हो गये तब वे पंचम लोकपाल षष्टम् तत्व तथा हिमालय आदि सात कुल-पर्वतों के समान विशाल होने के कारण आठवें कुल पर्वत कहलाने लगे।

इस प्रकार रघुवंश की विराट कथा का समापन हिमालयीय वर्णन से पूर्णतः धवल हिम सा औचित्य की मर्यादा लिये हुए विश्व काव्य गगन में मण्डित है। कवि कालिदास प्रकृति के विभिन्न उपादान से केवल उद्दीपन भाव अन्य कवियों की भाँति ग्रहण कर संतोष कर लेने वाले नहीं, अपितु हिमालय हो या हिमालय से बहनेवाली अजस्र धाराएँ, उन सबसे उन्होंने शाश्वत मानवतावाद के उपादेय मानवीकरण के सौंदर्यवादी दृष्टिकोण से अग-जग व्यापी कश्मीर-शैव-दर्शन की शाश्वत प्रतिष्ठा करते हुए दानवीय दुष्प्रवृत्तियों को विनष्ट कर दैवी नहीं, मानवीय सत्ता की शक्ति के पौरुष की प्रशस्ति की है।

शैव-दर्शन विश्व के शाश्वत कल्याणप्रद दर्शनों का प्रपितामह है। उसके पुरातनवाद पर दार्शनिक अभी एक नहीं हो पाये हैं। उनका सम्बन्ध कहीं से भी जोड़ा जाय, पर सत्य यही है कि शैव-दर्शन जीन्स के शब्दों में जो प्रकृति के नियम सूक्ष्म से सूक्ष्म अणुपरमाणु और विद्युतकणों में व्याप्त हैं वे ही अपनी विशिष्टताओं सहित उच्च से उच्च नक्षत्र लोक तथा आकाश-मण्डल के विराटत्व में भी परिव्याप्त हैं। भारतीय कल्याणवादी दृष्टिकोण का सहारा लेकर इसी को दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कोई प्रकृति का ऐसा नियम है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिग्दर्शित समस्त पिण्ड और अलौकिक ब्रह्माण्ड का नियामक है। इसी का और स्पष्ट शब्दों में हमारे महर्षियोंने तीन विभाजन रेखाओं में कहा है अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यो। या भूलोक, भुव-लोक, सर्वलोक। इन तीनों के परस्पर नियामक सम्बन्धों के स्पष्टीकरण से ही समस्त जगती का नित्य और अनित्य कार्य चलता है। सर्वलोक अथवा द्यौःलोक समस्त जगती के कार्यों की सचेतन पीठि है जिस प्रकार देहातीत सूक्ष्मता का एकमात्र सचेतन प्रतीक मस्तिष्क है उसी प्रकार यह द्यौः-लोक है। इस विराट प्रतिक्रिया के धरातल पर सर्वलोकिनी व्याप्त धृति लोकमंगलकारी संवेदनाओं का करुण हृदय और सृष्टि तक व्याप्त रहनेवाले विराट मानव कल्याण के दर्शन का अगम निगम से परे दृष्टि रखनेवाले अग जग व्यापी कवि बीसों शताब्दियों में एकाध होते हैं। कवि कालिदास इसी कोटि के ब्रह्माण्ड के एक विशिष्ट कवि हैं जिनका काव्य दान जगती के मानव हृदय में करुणा की गंगा और शक्ति और सौंदर्य का हिमालय स्थापित करने की सत्यता रखना है। मैं समझता हूँ कि यदि विश्व के शैल शिखरों का शैल राज भारत का हिमालय है तो कवि कालिदास के दृष्टिपथ की छाया ग्रहण कर सारे विश्व का युग युग तक वह उपजीव्य तथा शालीन कवि कल्पना का वह महानतम् शैल शिखर भी रहेगा।

बंगीय हिन्दी परिषद् का

नया प्रकाशन

अनुदान

नेफा और लद्दाख में भारत के सीमान्तों की
रक्षा में रत भारत के जवानों को
समर्पित है।

मूल्य ३.५० न. पै.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीयता, लोक जीवन और प्राचीन भारतीय साहित्य

प्रो० बद्रीप्रसाद पंचोली

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में जिन मूलभूत प्रवृत्तियों या भावनाओं का योग रहा है उनमें राष्ट्रीयता की भावना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय सभ्यता, राष्ट्रीय जीवन, राष्ट्र धर्म निर्माण राष्ट्र सेवा, राष्ट्र प्रेम, आदि शब्द और उनके पीछे स्थित पवित्र भावनाएँ प्रत्येक व्यक्ति के लिए गौरव की वस्तु होती है! राष्ट्र के अतीत जीवन की सुखद तथा स्वर्णिम स्मृतियाँ, वर्तमान की विविध प्रेरणाएँ तथा भविष्य की मनोहर कल्पनाएँ किसके लिए चिन्तन का विषय नहीं बन जातीं? राष्ट्र के लिए हँसते हँसते फाँसी पर चढ़ने वाले वीर सपूतों के गौरव मण्डित चरित्र की प्रेरक उत्कट राष्ट्रीय भावना ही रही है। कवियों के काव्य की प्रेरणा न्यूनाधिक रूप में राष्ट्रीय भावना भी रहती है। शिक्षित व अशिक्षित, सभ्य व असभ्य सभी लोगों के मन में अपने राष्ट्र का किसी न किसी तरह का स्वरूप विद्यमान रहता है। बौद्धिक वर्ग के लोग उस स्वरूप को अधिक सरलता से स्पष्ट कर सकते हैं किन्तु एक भावुक ग्रामीण के लिए वह 'गूंगे के गुड़' के समान ही अनिर्वचनीय रहता है और कभी कभी उसकी भावुकता चरमस्थिति को प्राप्त कर व्यक्त भी होती है तो वह बुद्धिजीवी वर्ग की अभिव्यक्ति के समान तर्कसंगत नहीं होती फिर भी प्रभावप्रेषणीयता में वह अधिक सफल होती है।

आज एक शिक्षित के लिए राष्ट्रवादी विचार पश्चिम की देन है और १९ वीं शती के अन्त तक भारत में राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान नहीं थी। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी 'हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद' पुस्तक में बड़े ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से उक्त विचार धारा का खण्डन किया है। उनका कथन है कि 'पितृ भूमि के लिए प्रगाढ़ अनुराग सारे संस्कृत साहित्य में व्याप्त है।' जन्म-भूमि के स्वरूप व उसके प्राकृतिक साधनों की विशेषता आदि का उल्लेख सारे संस्कृति-साहित्य में भरा पड़ा है। यहाँ भारतीय लोक जीवन में व्याप्त राष्ट्रीय भावना का परिचय देना मात्र लेखक को अभीष्ट है, साथ ही उस प्रकार की भावना के उपजीव्य प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख होना तो स्वाभाविक ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशिक्षित भारतीय ग्रामीण और उसके राष्ट्र सम्बन्धी विचार :—

बहुसंख्यक भारतीय जो वर्तमान सभ्यता के अनेक उपादानों से अछूते रहे हैं, राष्ट्रीयता को एक भिन्न रूप में समझते हैं और भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ लोगों को इस विषय में भ्रम भी हो सकता है। भारत के एक छोटे से गांव के निवासी के लिए उसका गांव एक चैतन्य सत्ता है। उसके अन्तर्गत पनपने वाली छोटी से छोटी बुराई को वह भयानक से भयानक शारीरिक रोग से कहीं अधिक महत्व देता है और इसीलिए उससे बचने का प्रयत्न करता है। उसका भावुक मस्तिष्क अपने ग्राम की सीमाओं को अनेक देवताओं से रक्षित मानता है। बावन भैरव, ५६ बेताल और ६४ योगिनियां उसके गांव की रक्षा करती हैं। क्षेत्रपाल और कोतवाल आदि देवता उसके गांव पर धर्म पूर्वक शासन करते हैं। अनेक देवता उनको नीरोग कर देते हैं। ग्राम की सीमा पर बालाजी गांव की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करने के लिए रहते हैं। पशुपक्षियों की रक्षा के लिये अन्य देवता हैं। सभी देवताओं से प्रेरणा लेकर ग्राम के वृद्धजन अपना आपसी व्यवहार धर्मसंगत बनाये रखते हैं। आनेवाली पीढ़ी के लिये भी वे सतर्कता पूर्वक नियम बना देते हैं। आत्म संयम और आत्मानुशासन पूर्वक पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग हमारे गांव करते आये हैं। गांव के सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक व्यवहार, उत्सव, विवाह और आत्मरक्षा के लिए आवश्यकता होने पर युद्ध भी वे अपने देवताओं को स्वीकृति व प्रेरणा से ही करते हैं। देवता मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उनसे बातें भी करता है। एक ग्रामवासी के हृदय में चैतन्य सत्ता के रूप में राष्ट्र की इकाई गांव की ऐसी कल्पना विद्यमान होती है।

ग्रामवासी धर्म को चैतन्य मानता है, गांव को चैतन्य मानता है और तदनुरूप ही अपने सहयोगियों को भी, उनके न्याय पर आस्था रखता हुआ वह उनकी वाणी को परमेश्वर की वाणी के रूप में स्वीकार करने को सदैव तत्पर रहता है। कोई विपत्ति आई वह देवताओं के प्रति निवेदन करता है। धर्म-कर्म के प्रति विचिकित्सा उत्पन्न हुई, वह परमेश्वर रूप पंचों का आश्रय लेता है। मानवता का वह सदा समादर करता है, न्याय में विश्वास करता है, सन्तों की वन्दना करता है, असज्जनों का तिरस्कार करता है, पाप से घृणा करता है तथा अल्प में ही सन्तोषलाभ करता हुआ अपने गांव को स्वावलम्बी मान कर चलता है।

यह तो हुआ ग्रामवासी के दृष्टि-कोण में गांव। इससे बड़ी ऐसी ही चैतन्य स्वरूप, देवरक्षित कई गांवों की इकाई की कल्पना भी वह करता है। यह भूमि-क्षेत्र कभी कभी एक सौ से लेकर २१००० गावों तक को अपने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मिलित करता है। उन क्षेत्रों के किसी दुर्जय किले का कोतवाल (भैरव) देवता उस समस्त क्षेत्र पर शासन करता है। बाहर के किसी विशाल आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए कभी कभी नीरोग युवक उसी देवता का नेतृत्व स्वीकार करके युद्ध के लिए कटिबद्ध होते थे।

इससे बड़ी इकाई वह राज्य को मानता है जिसका शासन कोई विशेष देवता करता है जिसका प्रतिनिधि उसका शासक राजा होता है। उस देवता की प्रेरणा से राजा के नेतृत्व में कुलदेवी को साक्षी रखकर सारे राज्य के नवयुवक आत्मरक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार हो सकते हैं।

राज्य से बड़े क्षेत्र के विषय में पूछने पर ग्रामवासी कुछ सतर्कतापूर्वक किन्तु बड़े ही मनोयोग से उत्तर देता है। शताब्दियों से अशिक्षित रहते हुए भी वह जम्बूद्वीप में भारतखण्ड और आर्यावर्त की स्थिति को जानता है। यदि नाम न भी बता सके तो भी वह जानता है कि भारत या भारतखण्ड एक विशाल देश है जिसमें ७ बड़े पहाड़ हैं, ७ बड़ी नदियां हैं, ७ प्रमुख पुरियां बसी हुई हैं, उत्तर में हिमालय है पूर्व में कामाख्या (कामाक्षा) देवी बंगाल में प्रतिष्ठित है, दक्षिण में सेतुबन्ध स्थली है, पश्चिम में कालापहाड़ हिन्दूकुश) नमक का बना हुआ है। इस देश में चारों दिशाओं में सीमाओं पर चतुर्धाम प्रतिष्ठित हैं। सारे देश को वह देवरक्षित ज्योतिर्पीठ या शक्तिपीठ के रूप में जानता है।

देश या राष्ट्र के उक्त स्वरूप को स्मृति-पथ में सुरक्षित बनाएर खने के लिए ग्रामवासियों ने अनेक प्रकार के साधन अपनाए हैं। देश के विभिन्न भागों का दर्शन करके ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीर्थयात्रा की प्रथा है। उत्सवों, देव विग्रह की प्रतिष्ठापना के अवसरादि पर अनेक तीर्थों का जल व मृत्तिका लाना भी एक ऐसा ही कार्यक्रम है। राजपरिवारों में राज्याभिषेक के अवसर पर भी तीर्थों का जल आदि लाने का विधान है। विविध संस्कारों के लिए की जाने वाली क्रियाओं के पीछे भी निश्चय ही कुछ ऐसे विचार हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष कथापुराणादि के द्वारा ग्रामवासी यथासाधन, यथा रुचि उक्त ज्ञान को यथा सम्भव पूर्ण करने व स्थायी बनाए रखने के लिए प्रयत्न करते हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में भूमि, भूमि पर बसनेवाले जन और जन संस्कृति इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है भारत की इस विस्तृत भूमि पर निवास करनेवाले विशिष्ट संस्कृति-सम्पन्न ये ग्रामवासी निश्चय ही राष्ट्रीयता की उदात्त भावना से अनुप्राणित हैं और इस भावना को स्थायित्व देने के लिये सदैव जागरूक रहते हैं। वे इस राष्ट्र को दिव्य वरदान के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करके उसकी रक्षा के लिये तत्पर रहे हैं। इस प्रकार की दिव्यराष्ट्रीयता का स्वरूप उन्हें प्राचीन ग्रन्थों-वेदों उपनिषदादि से सीखने को मिलता है।

राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति :—राष्ट्र शब्द भारत के प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ ऋग्वेद[1] में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। वैदिक इन्डेक्स के लेखकद्वय (मेक्डानल तथा कीथ) ने राष्ट्र शब्द का अर्थ राज्य (Nation) स्वीकार किया है। इसी अर्थ में यह शब्द अन्य संहिताओं[2] में भी प्रयुक्त हुआ है।

'राष्ट्र' शब्द की व्युत्पत्ति रा धातु से है (रा + ष्ट्रन्)। वेद भाष्यकार सायण व स्वामी दयानन्द दोनों ने दानादि गुण विशिष्ट देश या राज्य के रूप में इसका अर्थ स्वीकार किया है (राष्ट्र राति ददाति ष्ट्रनि। रा+त्र बाहुलकात्)। राज सुशोभित होना) तथा रम् (रमण करना) धातुओं से भी यह शब्द व्युत्पन्न हो सकता है। सभी प्रकार से व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ होगा त्याग या दान पर आधारित रमण करने योग्य सब प्रकार से सुशोभित देश विशेष। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य और लोक जीवन में राष्ट्र शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

राष्ट्रीयता और साहित्य :—वैयक्तिक जीवन, राष्ट्र जीवन और विश्व जीवन साहित्य के उत्तरोत्तर विकासशील चरण हैं। वैयक्तिक जीवन का स्वरूप आशा-आकांक्षा, व्यथा-वेदना तथा हास-अश्रु तक ही परिमित न रह कर दया-करुणा, सहनशीलता-समता, सत्य, मैत्री तथा सामाजिकता, उदारता तक विकसित होकर साहित्य में प्रतिष्ठित होता है जिसका परिणाम राष्ट्र जीवन और विश्व जीवन के विकास के रूप में प्रकट होता है। वटबीज में विशाल वटवृक्ष के समान वैयक्तिकता में ही विश्व-जनीनता का भाव विकसित करना साहित्य का काम है। इस रूप में साहित्य जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति राष्ट्रीयता को अपना विषय बनाता है।

राष्ट्रीयता एक ओर स्वयं भेदबुद्धिजनित अनेकरूपात्मक समस्या का हल है तो दूसरी ओर वह विश्व निर्माण-नूतन विश्वसमाज की रचना का सोद्देश्य स्वप्न भी है। प्रथम रूप से जीवन का प्रेय सम्बन्धित है जो त्याग पूर्वक मार्ग को प्रस्तुत करता है। दूसरा श्रेयमय रूप विवेक एवं श्रद्धा पर आधारित है। राष्ट्रीयता एकत्व की ओर बढ़ने का मार्ग है जो दूसरों का कदापि विरोधी नहीं कहा जा

१ ऋग्वेद—४, ४२, १।७, ३४, ११।७, ८४, २।१०, १०९, ३।१०, १२४, ४।१०, १७४, १।१०, १७३।२-५ आदि।

२ अथर्ववेद—१०, २, १२।१२, १, ८।१३, १, ३५।५, १७, १२-१७।८, ९, १३ आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता को विश्वजनीन निर्माणयज्ञ का अंग मान कर अखण्ड मानवता के प्रति आग्रह व सम्मान व्यक्त किया गया है और इसी रूप में वह स्वान्तः सुखाय मात्र न रह कर विश्व-साहित्य का अंग बन गया है। वाल्मीकि व कालिदास का सन्देश, सूर का संगीत, तुलसी की भक्ति इसीलिए केवल भारत की ही वस्तु नहीं है।

विशिष्ट भूखण्ड के निवासियों की संस्कृति ही राष्ट्र व राष्ट्रीयता को जन्म देती है। भारतीयों के लिए राष्ट्रीयता व राष्ट्र का अस्तित्व त्याग के ऊपर आश्रित है। यह सम्पूर्ण भारतीय जाति का गुण है। जाति का गुण होने से इसे जातीयता और राष्ट्र की धरोहर होने से राष्ट्रीयता कहा जाता है। राष्ट्रीयता ही राष्ट्र का जीवन है। जिस तरह अग्नि का धर्म जलाना है, मनुष्य का धर्म मनुष्यता है उसी तरह राष्ट्र का धर्म राष्ट्रीयता है। भारत में इस अपने ढंग की अनुपम राष्ट्रीयता के अनिवार्य परिणाम के रूप सुदूर अतीत काल से ही अखण्ड मानवतावाद का विकास हुआ है। जो स्वाभाविक ढंग का मनोवैज्ञानिक-विकास कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय भावना की मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि :—बालक अस्तित्व में आते ही अपनी उपस्थिति की सांकेतिक सूचना देता है। समझ के भी पहले उसके मानस पटल पर 'अहम्' की रेखाएँ अंकित होने लगती हैं। 'अहम्' की यह भावना मानव के भावी विकास की भूमि तैयार करती है। बालक की हंसने बोलने, खाने, पीने, चलने, फिरने आदि क्रियाओं में उसकी आत्माभिव्यक्ति का परिचय सहज ही मिल जाता है।

किन्तु सृष्टि चक्र अपने लिये नहीं दूसरों के लिए गति करता है। सृष्टि के सभी भौतिक संघातों की सत्ता परार्थ है (संघातपरार्थ त्वाद्-सांख्य कारिका)। अनुकरणक्षम बालक के मन में अपने आसपास के जड़ व चेतन पदार्थों का अनुकरण करते-करते न जाने कब 'पर' की भावना स्वाभाविक रूप से जाग्रत हो जती है। छोटे-छोटे बालकों की दैनिक क्रीड़ाओं में यह भावना देखी जा सकती है। 'पर' की भावना अपने लक्ष्य परम की ओर उन्मुख होती है। बालक का भावुक मन 'परम' की ओर उन्मुख होने के लिये सर्वथा उपयुक्त भूमि है। इस स्थिति में

यजुर्वेद वाजसनेयीसंहिता—९,२३।२०,८।२२,२२।१०,२-३ आदि।
यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता—२,६,१०,३।३,५,७,३।५,७ ४,४, आदि।
यजुर्वेद मैत्रायणीसंहिता—३,२,७।३,७,४।३,८,६,४,६,३ आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अहम्' का अनुवाद अज्ञान रूप में बालक में सोऽहम हो जाता है, जिस स्थिति को प्राप्त करने के लिए योगी भी प्रयत्न-रत रहते हैं। 'अहम्' का त्याग राष्ट्र की 'रा' धातु का अभीष्ट ज्ञान होता है।

दूसरों के लिए कष्ट सहने की क्षमता 'सोऽहम्' सेवी के मन में उत्साह का भाव जाग्रत करती है। उत्साह सभी प्रकार के दक्षतापूर्ण कार्यों का प्रवेश द्वार है जिसे साहित्य में वीर रस का स्थायीभाव माना गया है। 'सोऽहम्' की गति करने वाली भावना के मध्यवर्ती अवस्थान परिवार, ग्राम, राष्ट्र, विश्व आदि हैं। विश्वबन्धुत्व का आत्मनिवेदन 'सोऽहम्' का जनक है।

'अहम्' से 'सोऽहम्' के मार्ग को ही हमारे यहां ब्रह्मचर्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है – ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति[1]। इस प्रकार राष्ट्रीय भावना एक मानसिक स्थिति की द्योतक है जो निश्चय ही आदर्श की ओर अधिक उन्मुख है, पर होती है यह पार्थिव।

राष्ट्रीयता राजनीति की अन्धपरम्परा का अनुकरण मात्र नहीं है और न क्षेत्रगत अन्धविश्वास का नाम ही राष्ट्रीयता है। यह तो अखंड मानवता की ओर उन्मुख होने वाला मानव मन का सहज विकास है। मानववाद एक निराकार कल्पना है तो राष्ट्रीयता एक साकार मान्यता है जो एक भूखण्ड के प्राणियों को अपने समीपवर्ती, सहयोगी अन्य प्राणियों से दृढ़तम सम्बन्ध के द्वारा बांध देती है और विश्वबन्धुत्व की ओर उन्मुख होने को विवश कर देती है। 'एकमेवा-द्वितीयम्' कहने वाले निराकार ब्रह्म-सेवी भी साकार ईश्वर की सत्ता व्यावहारिक रूप से मान कर ही चलते हैं। मानववाद में जाति और देश का आकार सम्मिलित हो जाने से ही राष्ट्रीयता का प्रत्यक्ष स्वरूप निर्धारित होता है।

भारत में राष्ट्रीयता और वैदिक साहित्य :– भारत अध्यात्म प्राण देश रहा है। इसमें राष्ट्रीयता कभी भेदबुद्धि जाग्रत करने वाली नहीं रही तपोजीवी ब्राह्मण का ब्रह्मतेज यशोजीवी क्षत्रिय का क्षात्रत्व, अर्थसेवी वैश्य का औदार्य और सेवाधर्मी शूद्र की निष्काम परायणता की प्रेरणास्त्रोत अधिकारि-भेद के अनुसार एक हो राष्ट्रीयता रही है।

भारतीयों के विषय में कहा जाता है कि उनमें कभी राष्ट्रीयता का सूत्र विकसित नहीं हुआ। भारत के परिवार या छोटे-छोटे राज्य आपस में क्षुद्र स्वार्थों के लिए लड़ा करते थे, किन्तु तथ्य तो यह है कि भारत में राष्ट्रीयता को भिन्नतः समझा गया है। भारत में राजनीति, कला, साहित्य, विज्ञान, आचारशास्त्र,

---

1 अथर्ववेद – ११।३।५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन आदि सभी धर्म के अङ्ग के रूप में विकसित हुए हैं। स्वास्थ्य रक्षा के नियम खान-पान, स्नान, आदि केवल शरीर के ही उद्दिष्ट नहीं, वरन् वे किसी उदात्त उद्देश्य के साधन मात्र हैं।१ पाश्चात्य जगत् के स्नानागार और मुसलमान शासकों के हमाम भारत के सांचे में पवित्र तीर्थस्थान बन गए हैं। पत्थर (नावा) जल (आप्), अश्व (दधिका)। आकाश (पु)। पृथ्वी, अग्नि, विद्युत (इन्द्र), झंझा (पर्जन्य), बादल (मरुत्) उलूखल-मूसल, सीता, (हल में लगाने का फाल), शाला आदि अनेक प्राकृतिक और दैनिक जीवन के उपादान भारत में देव विशिष्ट के अधिष्ठान के रूप में माने गए हैं और उनकी स्तुति की गई है।

देवताओं के अधिष्ठान चैतन्य-विश्व में जीवनयापन करने वाले भारतीय के आनन्द का कोई अनुमान भी क्या लगा सकता है? भारत की नदियां तीर्थ हैं। वीहड़वन वनदेवी का साम्राज्य हैं, हिमालय भारत के शिव का (श्वसुर-आर्य) पूज्य है। यह देवतात्मक सत्ता२ है। सूर्य जगत् की आत्मा है (सूर्यो आत्मा जगतस्तस्थुषश्च), चन्द्रमा सोम का अधिष्ठाता है जिसका पान करके मनुष्य वाजपेयी या सोमयाजी बनता३ है। समुद्र वरुण का साम्राज्य है, आकाश पिता है, पृथ्वी माता है, नक्षत्र वरुण के चक्षु हैं, दिन मित्र (सूर्य) का और रात्रि वरुण का साम्राज्य है, अग्नि भारतीयों का पुरोहित है और इन्द्र (विद्युत) भारत का राष्ट्रीय देवता है।

यह है वैदिक राष्ट्र का स्वरूप, और उसमें निवास करने वाले पृथ्वी-पुत्रों (उद्देश्य विहीन या कर्महीन नहीं) के सहस्त्रों कंठ उद्घोषणा करते थे—

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।

(यजुर्वेद ९।२३)

अर्थात् "अपने राष्ट्र के अग्रगण्य नेता बन कर हम जागते रहें।"

राष्ट्र, बल और ओज का निर्माण जनता का कल्याण चाहने वाले ऋषियों के तप से होता है४। वरुण, बृहस्पति, इन्द्र और अग्नि इस राष्ट्र को अविचल

---

१ शरीर माद्यं खलुधर्म साधनम् - कुमार संभवम् ५।१

(१) अस्त्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। कुमार संभवपूर्वापरै तोयनिधी विगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ १।१

(२) वाजपेये विद्या वासदेवशरण अग्रवाल लिखित 'उरूज्योति'।

(३) अथर्ववेद १९।४१।१

(४) ऋग्वेद १०।१७४।५

(५) यजुर्वेद २२।२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं सुदृढ़ करते५ हैं और इस राष्ट्र के निवासी राष्ट्र में महारथी क्षत्रियों ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मणों, दुग्धवती गायों, बलवान् वृषभों, आशुगामी अश्वों, गुणवती सुन्दरियों प्रचुर अन्न और कालवर्षी घनों का आकांक्षा करते हैं।१ वे सदैव राष्ट्र की शत्रु से रक्षा में प्रवृत्त होने की कामना करते हैं।२

विश्वव्यापी सत्ता का नाम वैदिक साहित्य में ऋत है। इसके तीन विभिन्न मार्गों का३ उल्लेख हुआ है जो प्रजा, राष्ट्र व धर्म की रक्षा करते हैं। तैत्तिरीय-संहिता और शतपथ ब्राह्मण में समस्त राष्ट्र के लिए मंगलकारी राष्ट्रभृत यज्ञ का उल्लेख है जिसकी कल्पना वर्तमान कल्याणकारी राज्य की कल्पना के समकक्ष है। राष्ट्रीयसूक्त में (१०।१२५) ऋग्वेद में राष्ट्र-भाषा का महत्व उल्लिखित है। राष्ट्र में विद्याप्रचार को रोकना अपराध माना गया४ है। राजा को राष्ट्र की पीठ भी कहा गया है४।

इस प्रकार के राष्ट्र की कल्पना कौन कर सकता है? किसके मन में राष्ट्रीयता के इस भाव का जन्म होता है? इसके लिये अथर्ववेद का भूमिसूक्त पठनीय है। जो राष्ट्रीयता का गाथा गान हो नहीं, विविधताओं में पनपी हुई एकता का ऐतिहासिक उद्घोष (मेग्नाकार्टा) है। इसमें व्यक्त मातृभूमि दर्शन का ही विकास परवर्ती दार्शनिक—सम्प्रदायों में हुआ है। इस दर्शन का स्वरूप देखिये—

यामेन्वच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवेरजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभूवन्मातृलभ्यं ५॥

अर्थात् धूल पानी में प्रविष्ट जिस भूमि को बहुविध कर्मशील पुरुष आत्म-त्याग के द्वारा जानते हैं उस भूमि को माता समझने वालों को मातृभूमि के सब पदार्थ प्राप्त होते हैं।

जड़ भूमि को कर्मठ व्यक्ति आत्म त्याग से माता समझ लेता है यही तो राष्ट्र का त्याग-प्रधान स्वरूप है। इसी प्रकार के राष्ट्र का नाम स्वराज्य है। ऋग्वेद६ में एक सूक्त में लोकभाषाओं के गीतों की तरह 'अर्चन्नन् स्वाराज्यम्' टेक

---

(१) ऋग्वेद १०।१७४।१
(२) अथर्ववेद ८।९।१३
(३) अथुर्ववेद ५।१७।१२-१७
(४) यजुर्वेद २०।५-८
(५) अथर्ववेद १२।१।६०
(६) ऋग्वेद १।१८०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस सूक्त के ऋषि[1] राहुगण गौतम हैं। राहुगण शब्द में स्वराज्य की कल्पना का गूढ़ार्थ निहित है। रह्त्यागे धातु से उणप्रत्यय लग कर राहु शब्द व्युत्पन्न होता है। राहु अर्थात् त्यागशीलों में अग्रगण्य उनका समूह राहुगण है। त्याग ही स्वराज्य या राष्ट्र का आधार है। कदाचित पुराणों में इसी राहु के अर्थ का उपबृहण हुआ है। ग्रहण के अवसर पर दान देकर दानी (राहु) अपनी कीर्ती से सूर्य-चन्द्रादि के आलोक को ग्रसित कर लिया करते हैं। इस विचार से बुद्धिवादियों ने केवल अन्धविश्वास मात्र कह कर किनारा काट लिया है।

केवल वैदिक साहित्य में ही नहीं परवर्ती पौराणिक व श्रेण्य संस्कृत साहित्य में भी राष्ट्रीयता के द्योतक उदात्त विचार भरे पड़े हैं। पुराणो में ही गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी इन ७ नदियों, महेन्द्र, मलय सह्य, शक्तिमान, ऋक्ष, विंध्य, पारियात्र इन ७ पर्वतों तथा अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंती और द्वारावती इन सप्त पुरियों की पवित्र भूमि के रूप में भारत के भौतिक स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण किया गया मिलता है। रामायण में 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' ये उद्गार मिलते हैं। कालिदास के काव्यों में इसी तरह के भारत का उद्घाटन किया गया है। भारत के सभी सम्प्रदाओं के साहित्य में अपनी सभी विभिन्नताओं के उपरान्त भी सारा भारत एक भौगोलिक इकाई -एक अविभाज्य समष्टि के रूप में उल्लिखित मिलता है।

इस राष्ट्र को सभी पितृ भूमि और पुण्यभूमि मानते आये हैं। सभी भारत के कोने-कोने में स्थापित तीर्थों को पवित्रता में विश्वास करते हैं। सभी पाप से डरते हैं, अन्याय से लड़ते हैं, धर्म की रक्षा करते हैं। इस देश का शासन दिव्यविभूतियुक्त होता है, यहां प्रजा भी दिव्यगुण विशिष्ट है। भारतीय का जन्म अकस्मात् नहीं होता वरन् विधाता की प्रेरणा से होता है। विष्णु अर्थात् समाज की चेतना उसकी रक्षा करती है और उसकी मृत्यु शिव (कल्याण) के लिये होती है। कर्म उसे देवी मैत्री का अधिकारी बनाता है। कर्म उसके दाहिने हाथ में होता है सफलतायें उसके बायें हाथ में (कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः—अथर्ववेद ७। ५२। ८)। सब दिशायें उसकी हितैषिणी होती हैं। (अथर्ववेद १९। १५। ६) वह शिवसंकल्प होकर सत्य पथ पर चलता है और समान मना होकर जीता है, जागता है। (ऋग्वेद१०। १०१। १

(१) ऋषिवेदार्थ के सांकेतिक नाम है—देखिये लेखक का ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा ऋषि निबन्ध—वेदवाणी वर्ष १५ सं० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों की तपस्या से जिस दिव्य राष्ट्रीयता की उत्पत्ति हुई है भारतीय दर्शन में उसका चिन्तन हुआ, भारतीय धर्म में उसका आदर्श विकसित हुआ और आचार व्यवहार में उसकी सक्रियता स्पष्ट दिखाई दी। लोक जीवन में समस्त अन्धविश्वासों के उपरान्त भी हम उस स्वरूप को पाते हैं। जगत् को देखने की भारत की अपनी दृष्टि है। स्वर्गीया भगिनी निवेदिता ने इस दृष्टि को सही समझा है। उनका कहना है—

यदि नियागरा गंगा पर होता तो उसका मानव द्वारा मूल्यांकन कितने भिन्न रूप में किया गया होता। आनन्द बिहार की यात्राओं के स्थान पर सारे वर्ष पूजार्थी जन-समूह की तीर्थ-यात्रा हुआ करती। आनन्द यान के स्थानों पर आश्रम होते, होटलों के स्थान पर मन्दिर होते और विषय भोग की अधिकता के स्थान पर संयत साधुओं की सरलता और कठोरता होती।

आज राष्ट्रवाद महाकवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों में अतिभोजन की यूथचारिता या बहुत अधिक खाने वालों का समूह बनाकर रहना मात्र रह गया है, परन्तु भारत में जन्मभूमि प्रेम दूसरों को आतंकित करने का, आक्रान्त करने का साधन कभी नहीं रहा। जन्मभूमि के आगे धरती का प्रेम भी कभी अपेक्षित नहीं रहा। मातृभूमि प्रेम तो न्यायशासित स्वराज्य को अन्यायियों से रक्षा करने की प्रेरणा मात्र देता है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' वाक्य में विश्व को आक्रान्त करने की भावना नहीं है वरन् स्वराज्य की भावना मानवमात्र में विस्तार करना ही है जो आज की राजनीतिशास्त्र में व्याख्याता राज्य की परिभाषा से एकान्त भिन्न है। भारतीय राजनीति का प्रेरक यतेमहि स्वराज्ये, स्वराज्य के लिये निरन्तर यत्न करें (ऋ० ५।६६।६) जैसे विचार हो रहे हैं।

भारतीय राष्ट्रीयता का स्वरूप अब भी ग्रामीणों के मानस में जीवित है। दिव्य राष्ट्र की कल्पना उनको सुदीर्घ काल के सामाजिक विकास की अनिवार्य देन के रूप में प्राचीन ग्रन्थों से जिनमें वेद सर्वोपरि हैं ; मिली है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद' में लिखा है—

सुदुर अतीत के धुंधले काल में भी जिस पर ऐतिहासिक ज्ञान से कोई प्रकाश नहीं पड़ता, हम देखते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्रों में जो मानव की सर्वप्रथम वाणी है, राष्ट्रवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का निरूपण विद्यमान है। उस पुस्तक से जो मानवता के प्राचीनतम साहित्यिक अभिलेखों में से है पता चलता है कि हिन्दू समाज और संस्कृति के अत्यधिक बुद्धिमान संगठनकर्ताओं ने जो ऋषि कहलाते थे, अपने मातृदेश की एकता निरूपित करने, बल्कि मातृभूमि को एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीते जागते देवता का रूप देने और उसे उपासक के प्रेमपूर्ण हृदय में बिठाने के लिए ज्ञान व उत्साह पूर्वक यत्न किया था।

सीधेसादे ग्रामीणों ने इसी प्रकार के राष्ट्रवाद को अपने व्यवहार व चिन्तन का विषय बना कर जीवित रखा है। इसमें जो कुछ अन्धविश्वास व अन्य अभाव दृष्टिगत होते हैं वे दीर्घकालीन पराधीनता के कारण पनपे हुए अज्ञान की देन हैं। इस काल में निश्चय ही भारत में राष्ट्रीयता की उपासना एकांगी हो गई थी। जिन लोगों को बता दिया गया कि आक्रान्ता से उनकी राष्ट्रीयता के मानदण्डों—धर्म, भाषा, आदि को हानि की संभावना नहीं है उन्होंने शत्रु का साथ दिया और भारत पर पराधीनता की नींव जमी।

तटस्थ-द्रष्टा भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करके यही कहेगा कि भारत की पराधीनता के कारण आलस्य या आपसी फूट उतने नहीं रहे जितने धर्म, संस्कृति और जाति की गलत व्याख्या से उत्पन्न तत्व थे। भारत का सौभाग्य है कि दुखद अवसरों पर भी अनेक प्रकाश-वर्त्तिकाओं ने राष्ट्रीयता के जातीय स्वरूप का मार्ग प्रदर्शित व आलोकित किया और वह अब तक लोक-जीवन में व्याप्त है। गांव का ग्वाला गायों के पीछे फिरता हुआ जब 'मरुधर देवरा' (देवरा-देवराजमन्दिर) की ऊँची टेर ध्वनित करता है तो निश्चय ही उसके मन में चिर वर्तमान दिव्य राजस्थान का स्वरूप हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठता है।

खेद की बात है कि १९४७ के १५ अगस्त को स्वातन्त्र्य उषा से प्राप्त उल्लास अब तक हमारे जीवन का स्थायी अङ्ग नहीं बन पाया है। योग्य निर्देशक के अभाव में राष्ट्रीयता की छीछालेदर ने यह रूप ग्रहण कर लिया है कि गांवों में एक एक इञ्च भूमि के लिए भाई भाई लड़ मरते हैं। सारे देश में क्षेत्रयता, जातिवाद या भाषावाद का बोलबाला है। यदि हमें वैदिक स्वराज्य, तुलसी व गाँधी के तथा विनोबा के ग्रामराज्य की कल्पना को साकार करना है तो निश्चय ही हमें उन तत्वों का आश्रय लेना होगा जिनसे वैदिक राष्ट्रीयता अब तक लोक जीवन का अङ्ग बनी हुई किसी न किसी रूप में जीवित रही है।

हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हमें प्राप्त हो गया है। पुराने अन्तर्मुख राष्ट्रवाद को अब हमें नवनिर्माण में विकसित करना है। इसलिये आवश्यक हो गया है कि बहुसंख्यक ग्रामवासियों की प्रवृत्ति व उसके मूल प्राचीनतम आधारों का परिचय पाकर उसे सही रूप में स्थायित्व देने का प्रयत्न किया जाय। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में जहाँ अतीत वर्तमान के लिये भार रूप नहीं है जहाँ भूत वर्तमान को जकड़ कर नहीं रखना चाहता वरन् अपने वरदान से पुष्ट करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है उस राष्ट्र का हम स्वागत करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय ही हमारा अतीत हमारे लिए भार बनने वाला नहीं है हमें उससे वरदान लेकर, उत्तम विचार लेकर जातीय व राष्ट्रीय संगठन को दृढ़ करना है। विदेशी आक्रमण के सन्दर्भ में यह और भी आवश्यक हो गया है। इस बात के लिए वैदिक शब्दों में हम अपनी दिव्यमातृभूमि से ही प्रार्थना कर सकते हैं—

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः

हम राष्ट्र में अग्रगण्य नेता बन कर जागरूक रहें।

—यजुर्वेद

—:०:—

प्रकाशन का चतुर्थ वर्ष

अभिनव विचारों का त्रैमासिक

वातायन

(जुलाई, '६४ से मासिक)

के

मूल्यांकन अंक

के बाद

गीत अंक

अप्रेल में प्रकाश्य

एक प्रति ७० न० पै० — वार्षिक ८ रु०

५ डागा बिल्डिंग; बीकानेर

२२, शिवठाकुर लेन,
कलकत्ता-७.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय : भौगोलिक दृष्टि में

श्री लाल बहादुर सिंह

पृथ्वी का मुकुट गिरिराज हिमालय भारतीय संस्कृति एवं जीवन का मेरुदण्ड है। ऋग्वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण एवं कालिदास के नाटकों में हिमालय के अत्यन्त भव्य चित्र अङ्कित किए गये हैं। आधुनिक हिन्दी कविता भी हिमवान की महत्ता को विस्मृत नहीं कर पाई है। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में हिमालय की महत्ता एवं विराट सत्ता के जो अनेक दिव्य चित्र अङ्कित हैं वे उसकी देवतात्मा एवं अलौकिक महिमा के परिचायक हैं। देवादिदेव शिवशंभु का मङ्गल निकेतन यह हिमालय न केवल अपनी पावनता एवं प्राचीनता के लिए सर्वजन पूजित है वरन् हमारे जीवन, सभ्यता, संस्कृति, विचार एवं भावों के स्रष्टा रूप में वंदित है। हमारे मन-प्राण में उसकी व्याप्ति है, वह हमसे सर्वथा अभिन्न है।

नगराज हिमालय को जिस परिपेक्ष्य में हमारे प्राचीन मनीषियों ने देखा एवं परखा है और हमारे साथ उसका अटूट सम्बन्ध निरूपित किया है उसके मूल में है—उसकी विराट आधिदैविक भावात्मक सत्ता। किन्तु यह दृष्टि उदात्त एवं व्यापक भले ही है, समग्र रूप से उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं। यह हिमालय और हमारी संस्कृति एवं विचार धारा को परखने का एक पहलु है, जिसे हम आदर्शवादी दृष्टि कहते हैं। इसमें हिमालय का विशाल भौगोलिक परिवेश और उसकी भौतिक स्थिति समाविष्ट नहीं होती, उसका यथार्थ स्वरूप सर्वथा दूर रह जाता है। हमारे कवियों एवं मनीषियों की दृष्टि में हिमालय का वही उदात्त आदर्श स्वरूप मूर्तिमान हुआ है – जहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ अपार सौन्दर्य-राशि बिखरी हुई है, जिसके कण-कण में असीम शान्ति विद्यमान है। पर यह हिमालय का एक पक्ष है उसका दूसरा पक्ष जिसे वस्तु-स्वरूप कहते हैं वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसी पर दृष्टिपात करना इस लेख का उद्देश्य है। अतः हिमालय की स्थिति एवं उसके भौगोलिक महत्व पर सामान्य दृष्टि से विचार तथा उसकी महिमा का निरूपण ही यहाँ अभिप्रेत है।

भारत के उत्तर में कश्मीर से असम तक लगभग १५०० मील की लम्बाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ३०० मील की चौड़ाई में व्याप्त हिमालय भारत का मात्र रक्षक ही नहीं उसका पालक भी है। इसकी अनुपस्थिति में हम भारतीय जन-जीवन की इस स्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकते। प्राकृतिक दृष्टि से इसकी स्थिति वरदान स्वरूप है। हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी से आनेवाली मौसमी हवाओं का मार्ग अवरुद्ध कर सम्पूर्ण उत्तर भारत में वृष्टि का मूल यही है। यदि उसकी स्थिति न होती तो सारा भारत एक मरुस्थल बन जाता, धरती बन्ध्या बन जाती, धन-धान्य के अभाव में जन-गण की स्थिति असंभव हो जाती। दूसरा महत्वपूर्ण लाभ यह है कि साईबेरिया की ओर से आनेवली शीतवायु का मार्ग अवरोध कर भारत को शीत-लहरियों के प्रभाव से बचाता है अन्यथा भारत भी एशिया के उत्तरी क्षेत्रों की तरह शीत से पूर्ण प्रभावित होता, यहाँ का जल-वायु भिन्न होता, साथ ही जन-जीवन और संस्कृति भी। इस प्रकार पर्वतराज हिमालय हमें प्रकृति के वरदान उपलब्ध कराता है और उसकी विषमता से हमारी रक्षा करता है। इसकी स्थिति के अभाव में भारत भूमि की शस्य-श्यामलता की कल्पना तक सम्भव न होती। अस्तु। कवि की उक्ति—

"परबत वो सबसे ऊँचा हमसाया आसमाँ का !
वह सन्तरी हमारा, वह पासवाँ हमारा।"

पूर्णतया युक्तियुक्त है। यह तो हुई उसकी स्थिति की महत्ता। अब उसकी उपलब्धियों की संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है।

हिमालय अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण हमें प्रिय है ही, साथ ही उसकी असीम करुणा के स्रोत रूप में प्रवाहित अनेक नदियाँ अपने अमिय वारि से भारत भूमि को अभिसिंचित करती हैं। सिन्धु, पंचनद, गङ्गा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियां भारत की वर्तमान स्थिति, जन-जीवन और संस्कृति की आधार शिला हैं। इनके अभाव में हमारी क्या स्थिति होती, संस्कृति और सभ्यता का क्या स्वरूप होता, कहा नहीं जा सकता। नदियों के साथ ही हिमवान की बर्फीली ऊँची ऊँची चोटियाँ अत्यन्न महत्वपूर्ण हैं। उनकी प्राकृतिक सुषमा तो अवर्णनीय है ही, उसके द्रवित होने से नदियों में साल भर जल आता है जिससे वे वर्षभर प्रवाहित होती रहती हैं। उनके जल से सिंचाई तो होती ही है वे नौका गम्य भी हैं अतः यातायात की उपयोगिता भी उनसे सिद्ध होती है। पार्वतीय क्षेत्रों से लाई गई मिट्टी से मैदानी भाग भी उर्वर बन जाते हैं। कवि की वाणी में—

"गोदी में खेलती हैं जिसकी हजारों नदियाँ,
गुलशन है जिसके दम से रश्के-जिनां हमारा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदियों के अलावा इस प्रदेश में अनेक झीलें हैं। ये झीलें या जलाशय हिमालय की प्राकृतिक देन हैं। भूकम्प अथवा हिम नदी की स्थिति ही इनके उद्भव का कारण है। इस क्षेत्र की प्रमुख झीलें हैं - मानसरोवर, राक्षसताल, चायदोकवो, नैनीताल, भीमताल, ऊलर और डल। इन झीलों में अधिकांश का जल मीठा और निर्मल है। इन झीलों का महत्व प्राकृतिक सौंदर्य-निधि की दृष्टि से तो है ही, साथ अनेक नदियों का उद्गम स्रोत भी ये झीलें हैं। अतः इनकी महत्ता द्विधा है।

नदियों और झीलों के अतिरिक्त हिमालय की वन-सम्पदा असीम है। इसके वन-वैभव का जीवन की उपयोगिता की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस प्रदेश में वृष्टि पर्याप्त मात्रा में होती है, साथ ही भूमि ऊबड़-खाबड़ है, अतः कृषि क्षेत्र अल्प हैं। अधिकांश भाग विस्तृत वनों से आच्छादित है। इसके वनों में अनेक प्रकार के पेड़-पौधे पैदा होते हैं जो अपना व्यावसायिक महत्व रखते हैं और आर्थिक समृद्धि में सहायक हैं। इस क्षेत्र में उपलब्ध बहुमूल्य लकड़ियाँ हैं— शाल, देवदारु, शीशम, चीड़ आदि। लकड़ियों के अलावा बाँस और छोटी-छोटी घासें भी पैदा होती हैं जो कागज बनाने के काम आती हैं। इस क्षेत्र में कुछ ऐसी घाटियाँ हैं जहाँ पर्याप्त फल पैदा किए जाते हैं। कश्मीर, कुलू, काँगड़ा और कुमायूँ में सेव, नाशपाती, अंगूर आदि फल काफी मात्रा में पैदा किए जाते हैं। हिमालय के पूर्वी क्षेत्रों में सन्तरे, कटहल आदि पैदा होते हैं। इसके सघन वनों में एक महत्वपूर्ण पेड़ है—शहतूत। इसके बगीचों में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं और उनसे रेशम तैयार किया जाता है।

हिमालय-प्रदेश जड़ी-बूटियों एवं वनौषधियों के लिए अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। अनेक जड़ी-बूटियों द्वारा हमारे देश के वैद्यों ने दुस्साध्य रोगों का निदान ढूंढ़ निकाला है। अतः इस दृष्टि से यह क्षेत्र कम महत्वपूर्ण नहीं। गुप्त जी की एक पंक्ति यहाँ याद आती है—

'औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली।'

यह क्षेत्र अपनी खनिज सम्पदा में भी पीछे नहीं है। महाकवि कालिदास ने तो इसे अनेक रत्नों का जनक कहा है। इसके सुदूर प्रान्त में उपलब्ध प्रमुख खनिज द्रव्य हैं - ताँबा, लोहा, सोना, नीलकान्तिमणि, मरकत मणि, लाल, शिलास्फटिक, जिप्सम आदि। इन खनिज द्रव्यों द्वारा इस क्षेत्र में रहने वाले मानवों का अमित उपकार होता है, उनकी आर्थिक समृद्धि में वृद्धि होती है।

हिमालय प्रदेश में भौतिक उपादानों के साथ ही अनेक जीव-जन्तु भी पाये जाते हैं। एक ओर इसके घने जंगलों में शेर, बाघ, चीता, गैंडा आदि खूँखार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्तु पाये जाते हैं वहाँ दूसरी ओर गाय, भेड़, हरिण आदि पालतू जानवर भी। भेड़ों से ऊन प्राप्त होता है और सुरही गायों से चँवर प्राप्त होता है। ये चँवर अति शुभ और पवित्र माने जाते हैं तथा हिन्दुओं द्वारा मङ्गल अवसर पर प्रयोग में लाए जाते हैं। मृगों से कस्तूरी प्राप्त होती है जिसका उपयोग औषधि निर्माण में किया जाता है। यह क्षेत्र मधुसंचय का अक्षय भंडार है। इस प्रदेश के रहनेवाले मधु का संग्रह कर उसका व्यवसाय करते हैं। इस प्रकार हिमालय के परिपार्श्व में पाये जाने वाले जीव-जन्तुओं द्वारा भारत का अमित उपकार होता है।

ऊपर जिन अवदानों की चर्चा की गई है उनसे कम महत्वपूर्ण जलवायु नहीं। नगाधिराज हिमालय की प्राकृतिक सुषमा जितनी मनोहर है और स्थल-स्थल पर परिवर्तित होती रहती है वैसी ही उसकी जलवायु। यों तो सम्पूर्ण क्षेत्र शीत प्रधान है। शीत और उष्णता में काफी आनुपातिक समानता है। इसकी जलवायु की उत्तमता के द्योतक हैं —इसके स्वास्थ्यवर्द्धक पार्वतीय केन्द्र। शिमला, नैनीताल, मसूरी, कर्सियांग, कालिंपोंग और दार्जिलिंग यात्रियों के आकर्षण-केन्द्र हैं। ग्रीष्मऋतु में यहाँ पर काफी चहल पहल रहती है। यहाँ के शान्त परिवेश एवं सुरम्य प्रकृति स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। यहाँ चिन्तन को गति मिलती है, एकान्त मन को विश्राम मिलता है। इस प्रकार इस क्षेत्र की जलवायु तो महत्वपूर्ण है ही, साथ ही हिमालय के कारण भारत की जलवायु भी प्रर्याप्त अनुकूल है। अस्तु।

सक्षेप में हिमालय की प्रकृति वरदानमयी है। उसकी मधुर स्नेहिल छाया में ही हमारे जीवन की प्रगति और चरम परिणति निहित है। इसकी अनन्त-रूपा प्रकृति ने विविध प्रकार से हमारे मंगल की विभूतियाँ एकत्रित की हैं जिनकी उपलब्धि हमारे जीवन को पूर्णता एवं समृद्धि प्रदान करने में सहायक है। हिमालय भारत के उत्तर में स्थित होकर भारतीय जीवन के साथ ही चिन्तन पद्धति को भी एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। इसके अभाव में हम भारत देश के इस स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सकते, समृद्धि, सभ्यता और संस्कृति तो दूर रहीं। अतः हिमालय के साथ हमारे भावात्मक तादात्म्य के साथ ही वस्तुगत, यथार्थ, एवं अनन्य अविच्छिन्नता भी है। भारतीय संस्कृति का स्रोत, आध्यात्मिक चिन्तन का उत्प्रेरक, जन-मानस का आधार, जातीय एवं राष्ट्रीय जीवन की विभूति हिमालय सर्वतोभावेन हमारा पालक एवं रक्षक है। उसकी रक्षा के लिए तन मन-धन निवारण प्रत्येक भारतीय का परम कर्त्तव्य है। भारत के शीश हिमालय को शत-शत नमस्कार।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगला काव्य में हिमालय

ले० कु०—आशा दास

अनु०—कु० रेखा बोस

बंगाल के उत्तर में है—नगाधिराज गिरिराज हिमालय। शैलराज हिमालय के पास क्षीण देहा बंगभूमि जैसे पितामह के पदप्रान्त में उपविष्टा शिशु दौहित्री है। हिमालय ने बंग देश को केवल प्रभावित ही नहीं किया है वरन् प्रतिक्षण उसके तनुदेह का गठन भी किया है। उसके प्राणों में आशा का संचार किया है, देह में शक्ति दी है और मुख में दिया है—भाषा का माधुर्य। हिमालय वास्तव में इस भूमि के पितामह हैं—जिस पितामह के पदप्रान्त में अवनत हो वह अमृतदीक्षा की प्रार्थना कर सकती है। उसकी इस अमृत पिपासा को हिमालय ने पूर्ण किया है। इस देश के आचार और विचार चिन्तन और मनन, ध्यान और कल्पना सभी हिमालय की अजस्र (आशीष) धाराओं से प्लावित हैं। इन अवदानों को शिरोभूषण कर बंगला साहित्य का महान आविर्भाव हुआ। बंगला का प्रथम साहित्यिक निदर्शन द्वादश शताब्दी में रचित चर्य्यापदं में मिलता है।

ऊँचा-ऊँचा पब्बत, तांहि बसई सबरी बाला,
मोरंगी पीच्छ परहिन सबरी, गीबत गुँजरी माला।
उम्मत सबरो पागल सबरो, माकर गुली गुहाड़ा सोहोरि,
निअ धरनी नामे सहज सुन्दरी ॥
नाना तरुवर मेलिल रे अगणित लागेली डाली,
एकेली सबरी ए बन हिंडई कर्ण कुंडल वज्र धारी।
तिय धाऊ खाट पड़िला सबेरा महासुखे सेज छाइली,
सबर भुजंग नैरामणि दारी पेम्म रात्ति पोहाइली ॥

इस गीति काव्य के रचना काल में कवि शबरपाद ने अवश्य ही पर्वत श्रेष्ठ हिमालय व उसके क्रोड़ में आश्रित पार्वत्य मनुष्य की जीवन-यात्रा को स्मरण किया था।

सुऊच्च पर्वत श्रेणी—उसमें निवास करता है एक सुखी शबर दम्पति। शबरी ने मयूर पुच्छ धारण किया है। उसके गले में गुंजा की माला है, कानों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंडल है। पार्वत्य पोशाक परिधृत उन्मत्त शबर शबरी को बाहु वेष्ठित कर पर्वत गुहा में प्रेम-रात्रि यापन करता है। गगन-स्पर्शी असंख्य तरु-श्रेणी और मुकुलित पुष्प-राशि उसके गृह द्वार को सुशोभित कर रही है। यह गिरिवर अवश्य ही पर्वत श्रेष्ठ हिमालय है। शबर दम्पति का यह जीवन चित्र, पार्वत्य परिवेश में अंकित मानव-जीवन का चित्र है।

हेमवती गौरी – हिमालय दुहिता, भी पर्वत वासिनी है। पर्वत-दुहिता होने के कारण ही वह पार्वती है। गिरिराज-कन्या होने के कारण वह गिरिजा है। हिमालय केवल एक पर्वत ही नहीं है वह उस पार्वत्य अंचल का अधिपति है, महामाया दुर्गति-नाशिनी दुर्गा जिसकी कन्या है। देवादिदेव, महादेव भगवान शंकर जिसके जमाता है, वह स्थावर और अचल निष्प्राण पाषाण नहीं। मनुष्य की तरह ही वह चलत्‌शक्तिमान है। 'मनसा मंगल काव्य' में पर्वत का उल्लेख है। मनसा की आवास भूमि 'सिजुआ' का उल्लेख है। सिद्धों की आवास भूमि 'सिजुआ' का हिमालय के प्रदेश में होना ही स्वाभाविक है। महामाया चंडी के रुष्ट होने पर अगत्या शिव 'मनसा' को सिज वृक्ष के नीचे एकाकी निद्रिता छोड़ आये। फिर शिव की ही प्रचेष्टा से विश्वकर्मा ने सिजुआ पर्वत पर 'देवी मनसा' को राजपुरी का निर्माण किया।

'शिव मंगल काव्य' में उमा पिता हिमालय की पितृ सुलभ कर्त्तव्य निष्ठा का वर्णन मिलता है। हिमालय स्नेहशील, कर्त्तव्यतत्पर पिता है। गौरी को उन्होंने शिव उपासना करने की प्रेरणा दी है, पर छद्मवेश धारी भिक्षु शिव के उमा पाणिप्रार्थी होने पर वे उन्हें पहचान भी न पाये थे और क्रोध में उन्मत्त हो शिव को उन्होंने बन्दी बना लिया था। इस प्रकार देवादिदेव भगवान शंकर को भी हिमालय के हाथ बन्दी होना पड़ा था।

"गिरि बले एई बेटा जन्मेर पागल,
इहारे करिया दंड नाहिं किछु फल।
हाते पात्र दड़ि दिया बन्दी करे राखो,
खेयाल घुचिले कि बा करे बले देखो॥"

शिवायण—रामकृष्ण

वैष्णव साहित्य में पर्वत श्रेष्ठ हिमालय की उपमा बहुत बार दी गई है। अनुवाद साहित्य रामायण, महाभारत एवं भागवत में गौरी जन्म उपलक्ष में गिरिराज हिमालय का उल्लेख है। ऋषि-मुनियों की आवास भूमि के रूप में भी गिरिराज का महत्त्व अनेक ग्रन्थों में मिलता है। शाक्त पदावली में ऊर्ध्व जटाजूट हिमालय ने अपनी भास्वर महिमा के साथ गौरवोज्ज्वल स्थान अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। शाक्त कवियों का हिमालय—स्नेह कोमल पिता हैं; परब्रह्म सनातनी सृष्टिस्वरूपिणी पार्वती के पिता।

चंचल चरणे चले अचल रूपिणी,
तरुण अरुण जेन चरण दूखानि।
जननीर हाथ धरा, हाँटिछे सुधा अधरा,
आनन्दे अधीर धरा धन्य धन्य गनी
अचिन्त्याव्यक्त रूपिणी भजो मन अनुमानी
हिमालयेरि आलये पर ब्रह्म सनातनी
सब सखी सङ्गे खेले काली काली बले
कालिके गिरि बालिके होये छे आपनी

(काजी मिर्जा)

हिमालय के पितृ हृदय की उच्छ्वसित स्नेहधारा कवियों की लेखनी से निःसृत हुई है। पार्वती के पति-गृह गवन के बाद

हिमालय—कि करे प्राण धरे आछो गो रानी!
भवन वन हये रयेछे बिना भवानी॥

अन्यत्र उमा के गृहागमन के उपलक्ष में मेनका के सनिर्बन्ध अनुरोध पर हिमालय ने अपनी असमर्थता भी प्रकट की है।

हिमालय कि करि, अचल
नाहि चला चल
होलाम अचल
अंचलार मतो जीवन चंचल
चंचलेर निधि पेये हारा लाम
मेनका - गिरि! तुमि जे अगति
बूझे न पार्वती
प्रसूतिर अख्याति जगत्मय

उनविंश शताब्दी में हिमालय ने बंग-साहित्य को नानारूप से प्रभावित किया है। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, संजीवचन्द्र चट्टोपाध्याय, विद्यासागर इनको प्रभृति-साहित्य-कृतियों में हिमालय की अपार महिमा मंडित मूर्ति पाठकों को चिर काल तक मन्त्र मुग्ध और अभिभूत करती रहेगी। गीति काव्य के क्षेत्र में कवि बिहारीलाल के गीतों में हिमालय का रूप सर्वाधिक प्रस्फुटित हुआ है। कवि ने गहन आत्म-दृष्टि से हिमालय का दर्शन किया है। इस दर्शन ने, इस अनुभूति ने कवि हृदय में आत्म प्रकाश किया है। काव्य, साधना की अधिष्ठात्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आनन्दरूपिणी कवि-मानस-लक्ष्मी, हिमालय के प्राङ्गण में ही आविर्भूत हुई थीं। यह कवि-मानस-लक्ष्मी, नगाधिराज हिमालय की मानस-कन्या है। वह श्वेत पद्मासना, श्वेत मराल वाहिनी, श्वेत वीणा वादिनी, श्वेत चन्दन चर्चिता—काव्य की अधिष्ठात्री, गिरिराज की मानस दुहिता है।

बंगला काव्य में हिमालय संबंधित सर्वाधिक जाग्रत व रससिक्त वर्णन मिलता है, विश्व कवि रवीन्द्र नाथ के काव्य में। कवि ने शैशव में महर्षि देवेन्द्र नाथ के साथ हिमालय यात्रा की थी। उस समय एक अतीन्द्रीय स्पर्श ने उनके हृदय को आलोड़ित कर दिया था। हिमालय में ही उन्होंने 'चिर सुन्दर' का दर्शन किया था। उसके उत्तुंग शृङ्ग पर रवि रश्मियों में उस सौन्दर्य का जन्म है। मेघों में उसकी पदचाप है। पवन में उसका स्पर्श है। मुकुलित पुष्पों में उसका हास है। हिमालय ने अपने समस्त सौन्दर्य संभार को उन्मुक्तकर बालक रवि के चित्त को स्पर्श किया था। इसीलिये प्रकृति में उन्हें अनन्त के सौन्दर्य का आभास मिला था। इस असीम सौन्दर्यानुभूति को बालक रवि ने अपने मानस में सुरक्षित रखा और उत्तर जीवन में अपनी रचनाओं में यही सौन्दर्य प्राणवन्त हो उठा। कवि के प्रारम्भिक काव्य-ग्रंथ जो कवि बिहारीलाल की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित हैं -बनफूल, कवि काहिनी, रुद्रचंड, भग्नहृदय आदि में पर्वत, पार्वत्य अञ्चल, अरण्य समाकूल प्रदेश, एवं मुक्त प्रकृति के क्रोड़ में उन्मुक्त जीवन का चित्र उपलब्ध है। रुद्रचंड में महाकाल भैरव का जो वर्णन है वह हिमालय के विराट प्रेक्षापट पर अंकित है।

तोमार विशाल काया फेलि छे आँधार छाया
अमावस्या रात्रि रूपे येछे भुवन
जटार जलद राशि चराचर फेले ग्रासि
दशन विद्युत विभा दिगन्ते खेलाय

निर्झरेर स्वप्न भङ्ग नामक प्रख्यात कविता में भी हिमालय का परोक्ष प्रभाव पाया जाता है। क्षुद्र निर्झरिणी गिरि गह्वर में आबद्ध है। उसके चारों तरफ प्रस्तर प्राचीर है। हिमानी से उसकी गति अवरुद्ध है। किन्तु एक दिन नवोदित अरुण-आलोक से उसकी निद्रा भङ्ग हुई। उसमें नवीन प्राण संचार हुआ। आवेग से उसका हृदय तरङ्गायित हो उठा।

जागिया उठिलो प्राण
ओरे उथलि उठिछे बारि ॥
ओर प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुधिया राखिते नारि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थर थर करि काँपिछे भूधर
शिला राशि रशि पड़िछे खोसे ॥
फुलिया, फुलिया फेनिल सलिल।
गरजि उठिले दारुण रोषे ॥

शिला के वेष्ठन से अवरुद्ध इस प्राण चंचल नदी का कवि ने हिमालय के हृदय में ही प्रथम दर्शन किया था। कवि की प्रेरणा-दात्री, सौन्दर्य-लक्ष्मी के साथ उनका मिलन भी शैल-गुहा में हुआ। 'वैशाख' कविता में कवि ने जिस वैराग्य-व्रती रुद्र देवता का आह्वान किया है वह रुद्रदेव हिमालय का ही प्रतीक है। हिमालय की तरह ही वह रुद्र-त्यागी, वैरागी, अनासक्त, सुसंयत और सर्वशुचि है। रवीन्द्र काव्य में हिमालय का, महत्त्व-परिचय, और उसकी विराट महामहिमान्वित स्वरूप का चित्रण बार-बार हुआ है। 'भारत तीर्थ' की पंक्तियों में

ध्यान गंभीर एई जे भूधर
नदी जपमाला धृत प्रांतर

यह ध्यान गंभीर भूधर हिमालय ही है। बंगला काव्य में हिमालय का प्रभाव यहीं समाप्त नहीं होता। प्रत्येक युग में हिमालय ने नित्य नवीन वैचित्र्य, और अपूर्व शोभा सौन्दर्य के साथ विराटत्व-वैराग्यमयी साहित्य के लिये अजस्र सामग्री दी है। बंगला साहित्य में हिमालय के तीन रूप उपलब्ध हैं —

स्नेह शील पिता के रूप में, देवतात्मा के रूप में और अनन्त असीम सौन्दर्य के रूप में।

———

सूचना—

जनभारती का आगामी विशेषांक

प्रेमचन्द—अंक

विद्वानों से सहयोग की आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसौटी पर

चारु चन्द्र लेख*

लेखक—हजारी प्रसाद द्विवेदी
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की नवीनतम कृति चारु चन्द्रलेख ऐतिहासिक परिपेक्ष में लिखा हुआ घटना प्रधान उपन्यास है। वाणभट्ट की आत्मकथा के रचयिता की इस कृति का अपना विशिष्ट महत्व है। उपन्यास का कथा सूत्र उस युग से लिया गया है जब हिन्दू संस्कृति और साम्राज्य पर आन्तरिक और वाह्य प्रहार हो रहे थे। देश में सिद्धों और तान्त्रिकों का बोलबाला था। रानी चन्द्रलेखा का लोकोपकार की भावना में पड़कर विविध तान्त्रिकों, सिद्धों और योगियों की यात्रा में पड़ना और किसी प्रकार निकल आना आदि मुख्य घटनाएँ हैं। उपन्यास की नायिका चन्द्रलेखा के विषय में प्राचीन साहित्य से बहुत कम जानकारी मिलती है। मेरुतुँग के प्रबन्ध चिन्तामणि में इस विषय की अधूरी कथा मिलती है। इस कथा का बाकी हिस्सा एक औघड़ साधु को विचित्र रूप से मिल गया। अघोर नाथ जी द्वारा मिली कथा और प्राचीन साहित्य से जहाँ तक सहायता मिल सकी, उसे लेकर सूत्र और कड़ियाँ जोड़कर द्विवेदी जी ने उपन्यास प्रस्तुत किया है। कथा में कितना भाग सत्य है और कितना प्रक्षिप्त यह संदिग्ध है। ऐतिहासिक वातावरण की पृष्ठभूमि में लोक प्रचलित तथ्यों को अत्यन्त सूझ-बूझ के साथ पिरोया गया है। उज्जयिनी के किसी राजा सातवाहन का प्रमाण कहीं भी नहीं मिलता।

उपन्यास की सम्पूर्ण कथा राजा सातवाहन के मुँह से कहलवायी गयी है। राजा मृगया के लिये जाता है। वहीं एक सन्यासी को खोजती हुई रानी चन्द्र लेखा दिखाई देती है। उस सन्यासी को खोजने का आश्वासन देकर राजा उसे राजधानी ले जाता है। वहीं उनका विवाह होता है। विद्याधर भट्ट आदि की प्रेरणा से राजा और रानी देश का दुख दूर करने के लिये कटिबद्ध होते हैं। इसी बीच सिद्ध नागनाथ पारद मर्दन कर कोटिबेधी रस बनाना चाहता है। रानी

---

* द्विवेदी जी 'ऐतिहासिक-मिथ' के निर्माण में सिद्ध-हस्त हैं। चन्द्रलेखा की पूरी कथा उसी कला का परिणाम है। उसकी कड़ियां अन्यत्र नहीं मिलेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सहायता को तैयार हो जाती है। कोटिबेधी रस के तैयार होने पर रानी के भतीजों की सहायता से कुछ षड़यन्त्रकारी नागनाथ का बध कर देते हैं। रानी को उड़ने की सिद्धि मिल जाती है। वह नागनाथ का शव लेकर गुरु गोरखनाथ के पास जाना चाहती है पर अनेक तान्त्रिकों और सिद्धों के बीच जा फँसती है। अन्त में किसी प्रकार निकाल ली जाती है। राजा, रानी, नारीमाता, विद्याधर भट्ट मैना, बोधा आदि की सहायता से देश का उद्धार करने का अभियान चलता है। पर इस विराट अभियान का अन्त क्या हुआ, रानी चन्द्रलेखा पर व अन्य सभी पर क्या बीता, यह अज्ञात है क्योंकि कथा अधूरी है।

उपन्यास में घटना बाहुल्य है। एक के पश्चात् एक घटना सूत्र में गुम्फित होती जाती है। घटनाओं की विविधता और उलझनों में पात्र उलझे रहते हैं। चरित्रों में विशेष विकास नहीं मिलता। नायिका चन्द्रलेखा का हृदय लोकहित की भावना से ओत-प्रोत है पर वह उसके लिये उचित साधन नहीं खोज पाती है। जनता का दुख दूर करने की ओषधि की चाह न कर वह स्वयं ही उसका दुख दूर करना चाहती है। फलस्वरूप वह विविध योगियों और तान्त्रिकों के चक्कर में पड़ती है। वह सदैव अन्तर्द्वन्द में ही उलझी रहती है। क्या करना है और क्या नहीं, यह नहीं जान पाती। राजा सातवाहन, वीर, पराक्रमी और साहसी राजा है। मैनावती, (मैनासिंह) एवं बोधा सक्रिय पात्र हैं। ये दोनों विषम घटनासूत्र को सम्हाल कर सुलझा देते हैं, पर पात्रों को ऐतिहासिक अस्तित्व प्राप्त नहीं होता।

घटनाओं का आधिक्य होते हुये भी कथा पर्याप्त रोचक है। सम्पूर्ण कथा राजा सातवाहन के मुख से कहलवायी गयी है। भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है, फिर भी कहीं-कहीं विचार पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाते। कथा में कहीं-कहीं आधुनिक विचारों की छाया है। वातावरण पूर्णतया ऐतिहासिक है। तत्कालीन भारतीय जनता पर योगियों और तान्त्रिकों का प्रभाव था। उनको तान्त्रिक शक्ति व सिद्धियाँ जनता को चमत्कृत कर रही थीं। विभिन्न तान्त्रिक सिद्ध एवं अन्य धर्मावलम्बी सम्प्रदाय षड़यन्त्रों में उलझे थे। इन्ही के कारण देश की शक्ति का ह्रास हो रहा था। यह कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं कि हर तान्त्रिक साधना का मनोवैज्ञानिक अर्थ इसमें मिल जाता है।

संक्षेप में चारुचन्द्रलेख, हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत एक कलात्मक एवं महत्त्व पूर्ण कृति है। सुधी पाठकों और साहित्य प्रेमियों को यह उपन्यास निःसन्देह पसन्द आएगा।

—उषा तालवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय

श्रीमती महादेवी वर्मा

प्रकाशक-लोक भारती प्रकाशन

'हिमालय' आधुनिक हिन्दी साहित्य की लोक प्रिय कवयित्री महादेवी वर्मा द्वारा सम्पादित हिमालय सम्बन्धी कविताओं का एक अत्यन्त सुन्दर चयन है। भारतीय संस्कृति का प्रतिष्ठापक, जन-गण-मन का पावन मन्दिर हिमालय सृष्टि के आरम्भ से ही हमारे मनीषियों एवं साधकों की प्रेरणा का स्रोत रहा है। हमारी भावनाओं और विचारों के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध तो है ही, हमारे तन-मन में उसकी व्याप्ति है। अतः वाणी के वरद पुत्रों ने समय-समय पर गिरिराज की वंदना की है, उसके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति अभिव्यक्त की है। प्रस्तुत संग्रह वन्दना के स्वरों का ही चयन है। भारती के उद्यान से विविध पुष्पों का चयन कर कवयित्री ने एक सुन्दर हार के रूप में उसे प्रस्तुत किया है।

पुस्तक के संग्रह की प्रेरणा है—'हमारे राष्ट्र के उन्नत शुभ्र मस्तक हिमालय पर चीनियों का 'पाद-प्रहार' जिसने देश के कोने-कोने में चेतना की लहर व्याप्त कर दी और समवेत स्वर में हिमालय की रक्षा का आह्वान किया।

इस संग्रह में ८३ कविताएँ संकलित हैं। आदि ग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर आधुनिक हिन्दी की नई कविताओं की रचनाएँ इसमें भी संग्रहीत की गई हैं। संकलन में कविताओं की महत्ता एवं क्रम-बद्धता पर पूर्ण ध्यान दिया गया है। 'आर्षवाणी, से संकलन का प्रारम्भ हुआ है और नेमीचन्द जैन की कविता 'सुनोगे ?' से अन्त। संस्कृत, हिन्दी, बंगला एवं उर्दू के प्रसिद्ध कवियों की अनमोल भावनाओं का यह संग्रह अपनी विशिष्ट महत्ता रखता है। धरती की आत्मा के शिल्पी कवियों, साहित्यकारों एवं चिन्तकों के स्वर से ग्रन्थ की महिमा में अभिवृद्धि हुई है।'

'प्राकृतिक परिवेश और संस्कृति' शीर्षक भूमिका अत्यन्त ठोस एवं महत्वपूर्ण है। प्रकृति एवं परिवेश का भावनाओं एवं संस्कृति के निर्माण में कितना व्यापक योग है यह तथ्य भूमिका से स्पष्ट हो जाता है। समग्र रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ अपने सुन्दर संचयन और मुद्रण के कारण अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है। हिन्दी के पाठकों एवं आध्यापकों के लिए इसकी महत्ता स्वतः सिद्ध है। ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है।

—श्री अवनीश त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हिन्दी साहित्य का विश्लेषणात्मक इतिहास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक—अवनीशपति त्रिपाठी एम० ए० बी० टी०।

श्री अवनीशपति त्रिपाठी, हिन्दी के सचेत, जागरूक और सफल अध्यापक हैं। पठन-पाठन से गहरा प्रेम और रुचि रखने के कारण इनकी साहित्यिक सूझ कुछ अधिक निखर उठी है जिसकी प्रतिच्छाया इनकी प्रथम कृति 'हिन्दी साहित्य के विश्लेषणात्मक इतिहास, में ही स्पष्टतः परिलक्षित होती है। अनुभवी और विद्वान अध्यापक ने विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने के निमित्त विषय-वस्तु को अति सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया है। उच्चतर माध्यमिक विद्यालय और प्राक् महाविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये, जो साहित्य-इतिहास के क्षेत्र में अभी प्रथम प्रवेश करने का प्रयास करते हैं, यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। इस दृष्टि कोण से लेखक का प्रयास बहुत प्रशंसनीय है। प्रश्नोत्तर रूप में न लिखकर भी लेखक ने इस पुस्तक को परीक्षोपयोगी बनाने का भरसक प्रयास किया है। एक ही जगह संक्षेप में इतिहास की प्रायः सारी बातें गुम्फित कर दी गई हैं। इसीलिये विद्यार्थियों को अपने प्रश्नों का उत्तर पाने में भटकना नहीं पड़ेगा, ऐसा मेरा अनुमान है। वैसे तो हिन्दी जगत में प्रकाण्ड विद्वानों की अनेकानेक कृतियाँ हैं जिनकी प्रखर प्रभा से वाणी का मन्दिर उद्भाषित हो रहा है किन्तु नये और अबोध विद्यार्थियों की आँखे वहाँ चौंधिया जायगी। इसीलिये अपनी पुस्तक पर परीक्षोपयोगी चमक चढ़ाकर भाई अवनीश ने उनके कार्य को आसान बना दिया है। आशा है—आप मेरे विचारों का स्वागत करेंगे।

— किशोरीरमण तिवारी एम० ए०

जनभारती के विशेषांक

तुलसी विशेषांक	१·२५
भारतेन्दु विशेषांक	१·२५
मीरा विशेषांक	१·००
सुभद्रा विशेषांक	२·००
आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल विशेषांक	२·००
रस विशेषांक (भाग १ और भाग २)	४·००
रवीन्द्र विशेषांक	२·००
प्रसाद विशेषांक (भाग १ और भाग २)	३·७५
निराला अंक (भाग १ और २)	४·२५
हिमालय अंक	३·००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध

लेखक—प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री
प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,

प्रस्तुत पुस्तक प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री के निबन्धों का संकलन है। विभिन्न अवसर पर लिखे गये १६ निबन्ध इस संग्रह में संकलित हैं। कुछ निबन्ध समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं। फिर भी संग्रह रूप में उनका विशेष महत्व है। जिस प्रकार पुष्पों की अपनी सुगन्ध और सुन्दरता की अलग महत्ता होते हुये भी माला रूप में उनकी गरिमा और उपादेयता निश्चित रूप में विशेष होती है-वही स्थिति है इन निबन्धों की, प्रस्तुत संग्रह रूप में।

इस संग्रह के निबन्धों को विवेचन की दृष्टि से दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, प्रथम हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों से सन्वद्ध निबन्ध और द्वितीय बंगला आदि भाषाओं के साहित्य एवं साहित्यकारों से। हिन्दी के जिन महान लेखकों एवं कवियों पर निबन्धकार ने अपने विचार व्यक्त किये हैं उनमें प्रमुख हैं-कवि निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, आ० रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मी नारायण मिश्र, आ०ललिता प्रसाद सुकुल। इन कवियों एवं लेखकों की महत्ता एवं साहित्यिक अवदानों पर संतुलित तथा उदार दृष्टि से विचार किया गया है !

बंगला-साहित्य की वृहत्त्रयी—कवि-लेखक रवीन्द्र-शरत और बंकिम की विशिष्टताओं एवं योगदानों पर विभिन्न निबन्धों में सम्यक प्रकाश डाला गया है। निबन्ध, लेखक के गंभीर अध्ययन एवं सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं। इन दो भाषाओं के अतिरिक्त असमिया भाषा के साहित्य के परिचय से संग्रह त्रिवेणी-सा महत्वपूर्ण बन गया है।

निबन्धों की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं पूर्ण प्रौढ़ है। व्याख्यात्मक एवं निर्णयात्मक शैलियों का पुट इन लेखों में प्राप्त होता है। समग्ररूप में निबन्ध संग्रह साहित्य के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के लिये अत्यधिक उपादेय है। लेख छात्रों को नई दिशा प्रदान करने वाले हैं। वाणी की अर्चना में अर्पित लेखक का यह प्रथम पुष्प भावी माला की पूर्ण आशा प्रदान करता है।

—लालबहादुर सिंह एम० ए०

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Phone : 22-9871
22-6915

With best Compliments from :

Gram : WATCHMETAL

MARDIA METALS CO.

Non-Ferrous Metals Merchants

P-36, INDIA EXCHANGE PLACE,
CALCUTTA-1

Branches :- BOMBAY & MADRAS

For your requirements in—

* Brass and copper pipes, Tubings.
* Rods, Strip, Sheets, Sheathing, Wires.
* Phosphorous Bronze Rods.
* Gun Metals Rods.
* Lead & Zinc Sheets
* Welding Rods etc. etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With the Best Compliments of :—

MODEL PRESS OF INDIA

ART & COMMERCIAL PRINTERS

2/1, GOURDAS BASAK LANE,
CALCUTTA-7.

Telephone : 33-8750

BISHWANATH NANDLAL

40, NETAJI SUBHAS ROAD,
CALCUTTA-1

STOCKISTS :-

NON-FERROUS METALS
&
GENERAL ORDER SUPPLIERS

Phone No. 22-9281

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सुस्वाद केसर युक्त

चाय और कॉफी

के लिए पधारिये ।

चाचा टी स्टाल

४, जगमोहन मल्लिक लेन,

कलकत्ता-७

फोन : ३३-५२६७

हमारे यहाँ हर वक्त हैण्डलूम की—

साड़ियाँ, बम्बई की छपी साड़ियाँ, लखनऊ की कसीदे की साड़ियाँ तथा अरगण्डी पर छपी हुई आधुनिक डिजाइनों की साड़ियाँ थोक व खुदरा

सुभिस्ते दर में मिलती हैं ।

हर किस्म के लहंगे, पेटीकोट वगैरह हर वक्त तैयार मिलते हैं ।

हरमुखराय कालीचरन

२०१-बी, महात्मा गांधी रोड, (सदासुख कटरा बीचकी पट्टी)

कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Phone : 33-2349

HIGH CLASS CLOTH SAREES DEALERS

Shri Kant Stores

KING OF VELVETS

144, COTTON STREET, (Tiwari Katra)
CALCUTTA-7

Phone : 33-6111

Stockists of :—

COTTON, SILK, TERELYNE, WOOLLEN
SUITINGS & SHIRTINGS

Shyam Sundar Narayan Prasad

CLOTH MERCHANTS & TAILORS

P-31 A, Kalakar Street,
Calcutta—7

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The compass beckons forward the pioneer, leads the pathfinder by the hand. The compass tells people where they are going rather than where they have been. The compass is a symbol of planning and progress. Shalimar Paint adopts the compass as its corporate symbol, confident of its ability to chart a true onward course, excited by the prospects of the voyage into the future. To the people at Shalimar Paint the four points of the compass stand for the things they are proudest of—resources, research, know-how, quality-control—the four decisive elements which combine to make Shalimar Paint products unsurpassed in quality and performance.

pathfinders in paintmaking.

SHALIMAR PAINTS

A MEMBER OF THE COURTAULDS GROUP

SPW 740

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगीय हिन्दी परिषद् का नया प्रकाशन

प्रसाद

(प्रसाद साहित्य पर समीक्षात्मक ग्रन्थ)

मूल्य—८·५०

इस पुस्तक के कुछ लेखक—

महाकवि निराला
अचार्य शिव पूजन सहाय
श्री मैथिली शरण गुप्त
श्री वृन्दाबनलाल वर्मा
आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
प्रो० निर्मल तालवार
डा० भगीरथ मिश्र
डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
श्री लालबहादुर सिंह
प्रो० दमयन्ती तालवार
प्रो० शालिग्राम उपाध्याय
डा० राममूर्ति त्रिपाठी
डा० हरीश
डा० सुरेश अवस्थी
डा० कमलाकान्त पाठक
डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
डा० टीकमसिंह तोमर
डा० प्रेम गुप्त
प्रो मनोहर शर्मा
श्री विश्वम्भर 'मानव'
श्री विश्वम्भर 'अरुण'
डा० रामविलास शर्मा
श्री रंजन सूरिदेव

श्री लालबहादुर सिंह द्वारा स्वस्तिक मुद्रणालय २७१ बी, कार्नवालिस स्ट्रीट, से मुद्रित एवं बंगीय हिन्दी परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२ से प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशीलन एवं वैज्ञानिक समीक्षासामग्री से युक्त त्रैमासिक

जनभारती

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

वर्ष १२ अङ्क १ संवत् २०२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

आद्य-सम्पादक

स्व० आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

सम्पादक

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

स० सम्पादिका

प्रो० निर्मल तालवार

सम्पादक मण्डल :

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

डा० भगीरथ मिश्र

डा० विनय मोहन शर्मा

डा० नगेन्द्र

डा० इन्द्रनाथ मदान

प्रो० ए० चन्द्रहासन

डा० पुत्तूलाल शुक्ल

प्रो० एस० आर० नायडू

डा० कन्हैयालाल सहल

डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी

अनुक्रमणिका

लेख	लेखक	पृष्ठ
१ कामायनी में सर्गों का नाम परिवर्तन	श्री रत्नशंकर प्रसाद	१
२ निरालाजी की काव्य शिल्प संबंधी धारणायें	डा० सुरेन्द्रचन्द्र गुप्त	७
३ 'नवीन' जी का 'ऊर्म्मिला' परिशोधन	डा० लक्ष्मीनारायण दुबे	१५
४ हिन्दी राम काव्य परम्परा की नवीन उपलब्धि "राम राज्य महाकाव्य"	प्रो० देवी प्रसाद गुप्त	२२
५ भारत की युग प्रवर्तक परम्परा में तुलसी	प्रो० निर्मल तालवार	३२
६ एकांकी कला का विकास	स्व० आ० ललिता प्र० सुकुल	३९
७ हिन्दी शोध कुछ समस्यायें और सुझाव	श्री ओम्प्रकाश सिंघल	४७
८ आँसुओं की विजय	डा० रामकुमार वर्मा	५०
९ गंगावतरण में प्रकृति चित्रण	प्रो० दमयन्ती तालवार	५१
१० हिन्दी का गीति काव्य	प्रो० रामप्रीत उपाध्याय	५७
कसौटी पर		
फूल और अंगारे		६५
मरने से पहले		६७
मानसी		६८
एक चादर मैली सी		६९
बिखरे चित्र		७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

वर्ष १२ अङ्क १ संवत् २०२१

कामायनी में सर्गों का नाम परिवर्तन

श्री रत्नशङ्कर प्रसाद

कामायनी में सर्गों के नाम-परिवर्त्तन के कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिनकी विवेचना से काव्य के प्रतिपाद्य, उपलब्धियाँ और रस-ग्रहण के उपाय पर्याप्त रूप से आलोकित होते हैं। इस काव्य में निहित लोक-मंगल की प्रेरणा जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों के निदान और उपचार प्रस्तुत करती है और उसकी तत्वार्थ-दृष्टि विश्वोत्तीर्ण होकर भी, विश्व को उसकी समग्रता में स्वायत्त किये विश्वमयी है। अतएव इसमें विश्व से विराग या उसकी उपेक्षा का प्रश्न नहीं अपितु उसके स्वस्थ संचार और उसकी प्रसन्न-प्रगति का सन्देश है। पाण्डुलिपि में हुये ये परिवर्त्तन कवि-दृष्टि और काव्य की अन्तर्धारा की दिशा में कुछ ऐसे संकेत देते हैं जिनसे अनेक भ्रान्त धारणायें निर्मूल हो जाती हैं और सही दिशा पकड़ने में सहायता मिलती है।

वैषम्य से उदित विश्व और उसके नानात्व का एकायन-भाव इस काव्य में प्रतिपादित है। इस एकायनत्व के प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करते प्रारम्भ में ही कहा गया—"एक तत्व की थी प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन"। बुद्धि के स्तर पर आकर जड़ और चेतन के भिन्न विवेक भासमान होते हैं। महाचैतन्य अपने सघनीकरण द्वारा आकुँचित हो जड़ता के आभास देता है—"संकुचित असीम अमोघ शक्ति"। भेद-प्रवण अंकनों वाला यह विश्व अपने नानात्व से उस परम-एकायन भाव में बाधायें उपस्थित करता है। अनुग्रह-शक्ति की प्रेरणा से जड़ाभासमय नाना-विश्ववैचित्र्य चैतन्य-विज्ञान की आत्मज्योति में घुलमिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर एक हो जाते हैं और तब जड़ प्रकृति भी चैतन्यमयी होकर हँसने लगती है— "मांसल सी आज हुई थी हिमवती प्रकृति पाषाणी, उस लास रास में विह्वल थी हंसती-सी कल्याणी।" जड़ सा पड़ा पुरातन पुरुष स्पन्दरूपा-महाशक्ति से आविष्ट होकर नित्य-नवीना महा-गौरी की मानसी लहरों का नर्त्तन देखने लगता है। समस्त दृष्टियों में, जड़ता के प्रत्येक अणु में प्रेम की विमला-ज्योति व्याप्त हो जाती है और इस नानात्व के भीतर निहित एकायन-कला उन्मिष्ट हो द्वयता की भूल सुधार देती है। परिणामतः जड़ और चेतन के आपेक्षिक और परस्पर विरोधी भाव समरस हो एकाकार हो जाते हैं—"तुम सब हो मेरे अवयव जिसमें कुछ नहीं कमी है"। भिन्नभावाभिव्यक्तियों का सर्वांशिक निरसन कर महाचेतना का एकायन-विलास और स्वमात्रता की आत्मानुभूति दोनों आनन्द की अभंग-धारा में उदित हो जाते हैं। नानात्व के जिस प्रश्न को लेकर प्रतिपाद्य, एकायन का यह स्वरूप काव्य के आदि में प्रस्तावित हुआ वह उसके अन्तिम छंद में आकर समाहित होता है। यह समाधान प्रतिपाद्य की उपलब्धि पर प्रस्तुत है—

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था

श्यामल कर्मों और जड़तामय बन्धात्मक ज्ञान (अपर) के दम्भ में राग-मयी चेतना के अभिनिवेश से प्रस्तुत, अद्वय-भाव की विस्मृति से विश्व की विषम वेदना उपस्थित है। जीवन के स्थूल अवयवों की स्वस्थ परिचर्या उतनी ही आवश्यक है जितनी उसके आतिवाहिक अङ्गों की चिन्ता। अङ्गी संसृति-पुरुष के ये दोनों ही अङ्ग कामायनी में पूर्णतः उपचीर्ण हैं। बुद्धि (इड़ा) द्वारा पोषित श्रद्धा-सन्तान, प्रसन्न-मानव यहाँ चेतन का साक्षी है। उसके इस साक्षी भाव का उदय हार्द-ज्योति के अन्तर्प्रवाह में होता है। यह भाव, विधि-निषेधमयी बुद्धि के अपने परम-गन्तव्य तक पहुँचने के अनन्तर उन्मिष्ट होता है जहाँ प्रेममय अन्तर्मिलन में द्वयता घुलकर अभंग-अद्वय का स्वरूप ग्रहण करती है जो आलोक पुरुष है, मंगल है, शुद्ध-प्रकाश का कलोल है और अपनी समस्त सम्भावनाओं में चेतन है। अद्वैत भाव की बाह्यसंवेदनो-ज्झितावस्था में हमारी आपेक्षिक दृष्टि वाले "बाह्य" का निषेध नहीं अपितु वह उस अद्वय-भाव में स्वान्तस्थ रहता है। नानात्व में वह अणुगत, शक्ति के विद्युत्कणों के रूप में विकीर्ण है जिनका समन्वय मानवता की विजय और अभ्युदय के लिये कामायनी में प्रतिज्ञात है। कामायनी के साधन का आसन यह पाणि-पादमय पुरुष और साध्य अखण्ड चैतन्य है। उसकी दृष्टि में उदित यह तत्व-दर्शन ही जीवन है और हमारा समग्र जीवन उस तत्व-दर्शन का आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जीवन से, उसके व्यवहार से पृथक किसी दृष्टि या दर्शन का मूल्य क्या? वह तो एक मिथ्याचार ही है। "किताबीदर्शन" को हमारी परम्परा में कोई स्थान नहीं। जीवन से पृथक दर्शन की कल्पना हमारे लिये विजातीय ही नहीं अग्राह्य भी है। मात्र ग्रान्थज्ञान से तत्वार्थ की उपलब्धि कथमपि सम्भव नहीं। जीवन और उससे पृथक दर्शन की मान्यता वर्तमान मिथ्या-दृष्टि का परिणाम है। कामायनी दर्शन की वस्तु-सत्ता मानव-जीवन और उसकी समस्त वृत्तियों को अंकस्थ करती है। यदि इसकी पुष्टि में कोई आर्षपरम्परा अनुभूति और प्रमाण के बल देनी है तो आपत्ति क्या। जिस प्रकार जीवन और दर्शन किंवा सिद्धान्त और व्यवहार की अलग-अलग देखने और मानने की रूढ़ि चल पड़ी है उसी प्रकार साहित्य और दर्शन को भी एक दूसरे से पृथक ही नहीं परस्पर विरोधी भी माना जाने लगा है। दृष्टि और उसके व्यापार दर्शन से विहीन जो साहित्य स्वयं अन्ध है वह लोक-नयन का प्रकाश क्या दे सकेगा? हमारी प्राणशक्ति इतनी दुर्बल हो गई है कि वह रस समुद्र में गहरे डूबने से भय खाती है और किनारे बैठ कर लहरें गिनने में ही सुख मानती है (ओ तर्कमयी तू गिने लहर)। कामायनी का साहित्य वह दृष्टि देता है जिसमें स्वभाव-दर्शन अपनी सहजावस्था में प्रत्यक्ष है। यह उसकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसे अपनी असमर्थता के कारण हम नहीं देख पा रहे हैं। परिणामतः एक मौलिक भ्रम फैलता जा रहा है। वह दर्शन रसापकर्षक नहीं, जैसा कि कहा जाता है। अपितु उस परम रस का निष्पन्दक है जिसके लिये कहा गया है –"रसौ वै सः"। हां, उस रस की परीक्षा का निकष और उसके ग्रहण का उपाय वैसा नहीं जैसा साधारणतः काव्यशास्त्र में व्यवहृत होता है। काव्यशास्त्रीय नियम और मान्यतायें जीवन के अन्नमय-प्राणमय स्तरों के आधार पर स्थिर हुई अतः उनके आयाम में मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय स्तरों के चिन्तन और उनकी अनुभूति कैसे शक्य है। इसलिये काव्यशास्त्रीय नियमों को यथावत् लागू करने में सबसे बड़ी कठिनाई उनकी यह असमर्थता है। उदाहरण के लिये कामायनी की चिन्ता को लिया जा सकता है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से चिन्ता—"इष्टप्राप्त्यनिष्ट-प्राप्त्यदिजनिता ध्यानापरपर्याया वैवर्ण्यभूलेखनाधोमुखत्वादि हेतुः चित्तवृत्ति विशेष चिन्ता" है। कामायनी की चिन्ता-बुद्धि, मनीषा, मति और आशा आदि के भाव आकलित किये है अतः रहस्य-मीमांसा की दृष्टि से वह रहस्य-शास्त्र अधिक निकट और उपादेय है जो कहता है—"ध्यानंनामात्र यत्संर्व सर्वाकारेण लक्ष्यते भावना चक्षुषा साध्वी सा चिन्ता सर्वदर्शिनी" (शिवदृष्टि)। कामायनी की पंक्ति 'खुली उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें' इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामायनी में यज्ञ, युद्ध और स्वीकृति (सन्धि) क्रमशः कर्म, संघर्ष और निर्वेद सर्गों के पूर्वनाम थे। निश्चय ही ये परिवर्त्तन अपने में कुछ अर्थ रखते हैं।

यज्ञ

कर्म सूत्र संकेत सदृश थी सोम लता तब मनु को
चढ़ी शिंजिनी सी खींचा फिर उसने जीवन धनु को

युद्ध

श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह सत्य बना था
इड़ा संकुचित उधर प्रजा में क्षोभ बना था

निर्वेद

~~स्वीकृति (संधि)~~

वह सारस्वत नगर पड़ा था
क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना
जिसके ऊपर विगत कर्म का
विष विषाद आवरण तना

ऋषि-काल में सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार की संज्ञावस्था कर्म का पर्याय यज्ञ रहा (यज्ञो वे कर्म-शतपथ ब्राह्मण)। कृष्ण-काल में यज्ञ कर्म की सन्तति बन एक प्रतीक हो गया (यज्ञः कर्मसमुद्भवः-भगवद्गीता)। वे ऋषि कर्म मात्र को यज्ञ-दृष्टि से देखते शुद्ध-ज्ञानमयी उषा के आलोक में उस मानसाग्नि को अपनी अन्तर्चेतना में जाग्रत रख विकल्प-मय विश्व और उसके विषयों की आहुति देते रहते थे। तब कर्ममय समस्त जीवन अपनी समग्र वृत्तियों सहित यज्ञ ही था किन्तु जैसे जैसे सिद्धान्त और व्यवहार पृथक हो परस्पर विरोधी होते गये यज्ञ शब्द एक सीमित कर्म-व्यापार का प्रतिनिधि बन कर्मकाण्ड की अर्गला में बन्द हो गया। अतएव कामायनी के उस स्थल पर उदित तत्वार्थ-दृष्टि की सार्वभौम कल्पना की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी अभिव्यक्ति करने में वहाँ यज्ञ शब्द अपने वर्त्तमान परिवेश में उतना सक्षम नहीं जितना कर्म शब्द है। कर्म शब्द की समग्रता यज्ञ शब्द में देखना और मानना अब हमारे लिये सम्भव भी नहीं, कारण आर्यपरम्परा की उस भाववृत्ति से, यज्ञ कल्पना की उस सर्वमयी विशालता से आज हम बहुत दूर जा पड़े हैं।

संघर्ष सर्ग का नाम पहले युद्ध रहा। युद्ध से प्राणियों के आघात-प्रतिघात मय कायिक बाह्य व्यापार की ही अभिव्यक्ति सविशेष होती है, किन्तु कवि-दृष्टि में उन मूल स्फुरणों का अधिक महत्व रहा जो यदा कदा युद्ध में परिणत होते हैं अथच, अन्तर्जगत के स्तर पर विरोधी भावों के द्वन्द्व में सदैव उदित रहते हैं। भावस्तर की अभिव्यक्तियों-वृत्तियों के आतिवाहिक संचार के प्रति कवि पूर्ण रूप से जागरूक है अतः यह देखकर कि मूल और समग्र स्फुरणों को युद्ध में शब्दित कर वांछित आतिवाहिक अभिव्यक्तियों की प्रस्तावना सम्भव नहीं, उसे व्यापक और निरपेक्ष शब्द संघर्ष से परिवर्त्तित किया। प्रतिपाद्य के जितना निकट संघर्ष है उतना युद्ध न था।

युद्ध की परिणति के द्योतन के लिये उसके बाद के सर्ग का नाम सन्धि रहा। किन्तु जैसी व्यापकता और भाव-दृष्टि की सही अभिव्यक्ति युद्ध के स्थान पर संघर्ष से नियोजित हुई, तदनुरूप ही संघर्ष की चरम प्रतिक्रिया निर्वेद ने सन्धि का स्थान ग्रहण किया। सन्धि में विजित और विजेता के मध्य एक सामयिक समन्वय हो जाता है किन्तु वे बीज सर्वथा निरस्त नहीं हो पाते जिनसे संघर्ष का वृक्ष उगता है। अतः संघर्ष की सम्यक् परिसमाप्ति के लिए निर्वेद आवश्यक है। सन्धियों और उनके टूटने से इतिहास के पन्ने भरे हैं किन्तु कलिंग युद्ध के अवसान पर उदित निर्वेद ने अशोक में करुणा की वह तरंग उठाई जिसमें निर्ममता कुछ दिनों के लिये वह गई और संघर्ष शमित हुये।

'बह जा बन करुणा की तरंग (अशोक की चिन्ता, लहर)। संघर्ष की वेदना अपनी अतीतावस्था में अनुभूति-शेष रह निर्वेद के रूप में प्रस्तुत हुई।

कुछ लोग कहते हैं कि प्रसादजी ने इस काव्य का नाम पहले श्रद्धा रखा था। ऐसा नहीं। पाण्डुलिपि के मुखपृष्ठ पर कामायनी (श्रद्धा) अंकित है। श्रद्धा के नाना स्वरूपों में उसका कामगोत्रीय स्वरूप ही कवि को अभिहित रहा, इसलिये यह गोत्रवाची नाम कामायनी व्यवहृत हुआ। सृष्टिमूल काम के वृत्तिसंचार की समग्रता का पूर्ण निदर्शन-पर्यालोचन जैसा कि काव्य में हुआ है कामायनी द्वारा ही शब्दित हो सकता था अतः काव्य का नाम कामायनी कवि की दृष्टि में उस की कल्पना के साथ ही साकार हुआ, किन्तु कामायनी की तत्वशक्ति श्रद्धा है अतएव कोष्ठ में श्रद्धा लिखा गया। एक दीर्घ-आयासमय चिन्तन और उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतियों की मीमांसा का योगफल कामायनी है। श्रद्धा-शक्ति का चिन्तन बहुत पहले ही कवि में उदित हो चुका था। इस प्रसंग में चित्राधार में संकलित प्रबन्ध भक्ति द्रष्टव्य है। प्रस्तुत निबन्ध के लघु आयतन में उपर्युक्त प्रसंगों का समुचित विवेचन सम्भव नहीं, इसे विस्तार की अपेक्षा है। *

जिस प्रकार विशाल वटवृक्ष ग्रीष्म की धधकती ज्वाला की बौछार सहकर भी भी शीतल और सरस बना रहता है, क्योंकि गहराई में से रस खींचता है, ऊपर ले स्तर की ज्वाला उसके लिए कोई खास महत्व नहीं रखती उसी प्रकार प्रसाद जी भी जीवन के गंभीर तल से रस संग्रह कर सकते थे। फेन बुद्-बुद् की भांति क्षण-क्षण में उद्भूत और विलीन होने वाले और ईर्ष्या, द्वेष या अज्ञान से पुष्टि पाने वाले सामयिक कटु उद्गारों को उन्होंने कोई महत्व नहीं दिया।

—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

——

* श्री रत्नशङ्कर जी कामायनी पर एक निबन्ध-माला लिख रहे हैं। प्रस्तुत निबन्ध उसी माला प्रथम सुमन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाजी की काव्य-शिल्प-सम्बन्धी धारणाएँ

— डा० सुरेन्द्र चन्द्र गुप्त,

निरालाजी छायावाद युग के स्वतन्त्रचेता कवि थे। उन्होंने काव्य-क्षेत्र में केवल परम्परानुवर्तन नहीं किया, अपितु उनकी दृष्टि भावना और अभिव्यंजना की दिशा में नवीन प्रतिमान प्रस्तुत करने की ओर प्रवृत्त रही। सत्य तो यह है कि छायावादी कवियों में अभिव्यंजना-धर्मों के सबसे बड़े प्रयोक्ता वही थे, क्योंकि छायावाद के अवसान के बाद भी उनकी प्रवृति इस ओर विद्यमान रही। काव्य-शिल्प के संस्कारक उपादानों (काव्य-रूप, भाषा, अलंकार, छन्द) में से उन्होंने मुख्यतः भाषा और छन्द के विषय में विचार व्यक्त किए हैं, अन्य दोनों तत्वों के सम्बन्ध में उनकी मान्यताएँ अत्यन्त संक्षिप्त हैं। अध्ययन की सुविधा के लिये इन चारों काव्यागों के विषय में उनकी धारणाओं की पृथक्-पृथक् समीक्षा उचित होगी।

काव्य-रूप

निरालाजी ने महाकाव्य की रचना नहीं की, किन्तु खंडकाव्य (तुलसीदास) और गीतकाव्य की ओर उनकी साधिकार प्रवृति थी। स्वरूप-विश्लेषण की दृष्टि से उन्होंने इनमें से केवल गीतिकाव्य के सम्बन्ध में स्फुट विचाराभिव्यक्ति की है। वे संगीत-शास्त्र के मर्मज्ञ थे ('गीतिका' का प्रत्येक गीत इसका प्रमाण है), अतः उन्होंने गीतों में कवित्व और संगीत की समनुरूप योजना पर बल दिया है। इसीलिए उन्होंने संगीत-कला से अनभिज्ञ कवियों को यह परामर्श दिया है कि वे या तो संगीत-शास्त्र का उचित आधार लें अथवा गीति-तत्व के समावेश का विफल प्रयास न करें। उदाहरण-स्वरूप ये उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

(अ) "शब्द-शिल्पी संगीत-शिल्पियों की नकल न करें तो बहुत अच्छा हो। कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है, अतएव उसकी अर्थ-व्यंजना के लिए भाव-पूर्वक साधारणतया पढ़ना भी ठीक है, किसी अच्छी कविता को रागिनी में भर कर स्वर में माँजने की चेष्टा करके उसके सौन्दर्य को बिगाड़ देना अच्छी बात नहीं।"[1]

(आ) "……मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने

१—रवीन्द्र-कविता-कानन, सन् १९५४, पृष्ठ १४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है। दो-एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्द शास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए हैं।......जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है; उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है।"[1]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गीतिकाव्य में चार गुणों की व्याप्ति अवश्य रहनी चाहिए—काव्य-माधुरी, संगीत के नियमों का निर्वाह, मौलिकता, भावानुकूल भाषा। हिन्दी-कवियों के काव्यशास्त्रीय चिन्तन की पृष्ठभूमि में यह कहना अनुचित न होगा कि कवि-विशेष द्वारा गीतिकाव्य के स्वरूप का यह प्रथम तात्त्विक विवेचन है। निराला जी द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं में से मौलिकता और भावानुरूप भाषा का निर्वाह तो कविता का सामान्य गुण है, किन्तु शिल्प-समृद्धि के लिए संगीत का आश्रय लेना गीतिकाव्य की निजी विशेषता है। निरालाजी ने पूर्वोधृत उक्तियों में गीतिकाव्य के अभिव्यंजना-पक्ष (कोमल-कान्त पदावली, संगीत-शास्त्र की अनुवर्तिता, भाव और भाषा का सामंजस्य) पर बल दिया है, उसके भाव-पक्ष (आत्माभिव्यक्ति, एक ही भाव की स्वतन्त्र प्रतिपत्ति) की चर्चा उन्होंने नहीं की है। किन्तु, इसे चिन्तनगत असावधानी मानना उचित नहीं है, क्योंकि किसी भी कवि से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह काव्य-विषयक स्फुट उक्तियों में काव्यांगों का पूर्वापरबद्ध विवेचन करे।

काव्य-भाषा

निरालाजी, हरिऔध और दिनकर की भाँति, रीति को काव्य की आत्मा मानते थे। रस के प्रति उनके मन में अवज्ञा नहीं थी, किन्तु उसके घटाटोप द्वारा भाषा का पूर्ण आच्छादन उन्हें स्वीकार न था। दूसरे शब्दों में, वे भाषा को भाव-दीप्ति में सहायक मानते थे। इसीलिए उन्हें कविता की यह परिभाषा मान्य थी—"कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है।"[2] उन्होंने काव्य-भाषा के विषय में मूलतः यह आदर्श निश्चित किया है कि कवि को भावानुरूप भाषा का प्रयोग करना चाहिए, —अतः उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा में क्लिष्टता का समावेश दोष नहीं है। इस सम्बन्ध में ये उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

(अ) तुलसीदासजी की विनय पत्रिका मास्टरपीस (सर्वोत्कृष्ट) होते हुए भी जनप्रिय और सरल इसलिए है कि भाषा क्लिष्ट होते हुए भी भावों में बड़ी

१—गीतिका, तृतीय संस्करण, भूमिका, पृष्ठ ६।

२—रवीन्द्र-कविता-कानन, पृष्ठ १४०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गम्भीरता है, किन्तु हमलोग सरल लिखते हैं (भाषा), जिसके कारण प्रायः भाव स्पष्ट नहीं हो पाते। इसी कारण लोग कविता को, क्लिष्ट कहते हैं, किन्तु बात बिल्कुल इसकी उल्टी है। उच्च भावों की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप भाषा भी होनी चाहिए।"[1]

(आ) "हमारा यह अभिप्राय भी नहीं कि भाषा मुश्किल लिखी जाय, नहीं उसका प्रवाह भावों के अनुकूल ही रहना चाहिए। आप निकली हुई और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं। भावानुसारिणी भाषा कुछ मुश्किल होने पर भी समझ में आ जाती है।"[2]

(इ) "किसी भाव को जल्दी और आसानी से तभी हम व्यक्त कर सकेंगे जब भाषा पूर्ण, स्वतन्त्र और भावों की सच्ची अनुगामिनी होगी।"[3]

इन उद्धरणों में मुख्य रूप से दो बातों पर बल दिया गया है—(अ) कवि की भाषा भाव-विशेष के अनुरूप परिवर्तनशील होनी चाहिऐ, (आ) गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति में भाषा अनिवार्यतः क्लिष्ट हो जाती है। ये धारणाएँ कवि-समुदाय के लिए नवीन नहीं हैं—बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, हरिऔध, देवी प्रसाद 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, दिनकर, सियारामशरण गुप्त, मिलिन्द आदि कवियों ने भी इसका सम्यक् निरूपण किया है। काव्य-शैली में औदात्त की योजना के लिए यह आवश्यक भी है, क्योंकि अतिव्यवहृत सरल पदावली के प्रयोग से शैली में इतिवृत्तात्मकता आ जाती है। इस विषय में ग्रीक आचार्य अरस्तू का मत भी मननीय है—शैली का पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न हो, किन्तु क्षुद्र न हो। सबसे अधिक प्रसाद गुण उस शैली में होता है जिसमें केवल प्रचलित या उपयुक्त शब्दों का प्रयोग रहता है—किन्तु साथ ही वह क्षुद्र होती है।[4] निराला जी का उद्देश्य प्रसाद गुण की अवमानना नहीं है, अपितु उन्होंने शैली को भावानुरूप सरल अथवा गम्भीर रखने पर बल दिया है। इस सिद्धान्त की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि भावानुसार पद-विन्यास ही भाषा का जीवन है।

भावना और भाषा के समायोग के विषय में उपर्युक्त मत-प्रतिपादन इस

१-महाकवि निराला-संस्मरण : श्रद्धांजलियाँ (सम्पादक—राजकुमार शर्मा), पृष्ठ ५५।

२-विश्लेषण, जनवरी १९५८, पृष्ठ ३, "साहित्य और भाषा" शीर्षक लेख।

३-चयन, प्रथम सं०, पृष्ठ २६।

४-अरस्तू का काव्य-शास्त्र (सम्पादक—डा० नगेन्द्र), अनुवाद भाग, पृष्ठ ५७-५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि माधुर्यादि गुणों की सत्ता इसी पर निर्भर करती है। रीतिकालीन कविता की भाषा माधुर्य गुण के लिए रूढ़ हो गई थी और परवर्ती छायावादी काव्य की प्रवृत्ति भी लगभग यही थी, अतः निराला जी ओजगुणात्मक कविता की रचना के लिए कृतसंकल्प थे—'हिन्दी को मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी जरूरत है।'' [१] एक अन्य प्रसंग में—"मेरे गीत और कला" शीर्षक निबन्ध में—भी उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि प्रसाद गुण के सहयोग से माधुर्य अथवा ओज गुण की भावानुसार निसर्ग योजना होनी चाहिए—"प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय—शक्ति-सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छन्द-लालित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चय रूप से कहा जायगा कि प्राण-शक्ति उस भाषा में है।" [२] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रसाद गुण अथवा अभिधा-शक्ति के विषय में उनकी मान्यता जितनी स्पष्ट है, माधुर्यादि अन्य गुणों के सम्बन्ध में उनके विचार उतने ही अर्द्धव्यक्त हैं। फिर भी, संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि वे प्रसाद गुण को शब्दाश्रित न मान कर भावाश्रित मानते थे, काव्य—में विशेषतः गीतिकाव्य में—विषयानुरूप माधुर्य-व्यंजक पदावली को गौरव देते थे, और हिन्दी-कविता को ओज गुण से समृद्ध करने के प्रति विशेष सचेष्ट थे।

काव्य-भाषा पर विचार करने के प्रसंग में निराला जी ने पद-विन्यास की विशिष्टता अथवा शब्दों के यथाक्रम प्रयोग को आवश्यक माना है। इस विषय में उनकी यह उक्ति पठनीय है—"प्रकृति का पर्यवेक्षण करने वाला ही कवि नहीं हो जाता; उसे और भी बहुत-सी बातों की नाप-तौल करनी पड़ती है। किस शब्द का प्रयोग उचित होगा, किस शब्द से कविता में भाव की व्यंजना अधिक होगी, इसका भी ज्ञान कवियों को रखना पड़ता है।" [३] पूर्ववर्ती कवियों में हरिऔध जी ने भी शब्दों के सजग-सलक प्रयोग को काव्य का जीवन माना था —"—तीसरा कवि-कर्म्म है शब्द-विन्यास। शब्दों की काट-छांट और उनका यथोचित स्थान पर संस्थान। यह कार्य बड़ी ही मार्मिकता का है।" [४] इसमें सामर्थ्यवान् होने के लिए काव्य-शास्त्र और काव्य के अनुशीलन के अतिरिक्त अभ्यास भी विशेष अपेक्षित है। संस्कृत-आचार्यों में भामह ने काव्य-

१—पन्त और पल्लव, पृष्ठ ८०

२—प्रबन्ध प्रतिभा, संवत् १९९७, पृष्ठ २७०—७१

३—रवीन्द्र-कविता-कानन, पृष्ठ ११८

४—रस साहित्य और समीक्षाएं, पृष्ठ ५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनों का उल्लेख करते समय शब्द के मर्म-ज्ञान को ऐसा ही महत्त्व दिया है।[1] आचार्य वामन ने पद-निर्वाचन की इस सजगता को 'अवेक्षण' कहा है— "पदाधानोद्धरणमवेक्षनणम्"।[2] पन्त जी की भाषा की समीक्षा के प्रसंग में निराला जी ने अप्रत्यक्षतः इस बात पर बल दिया है कि कवि को भाषा की प्रेषणीयता में संवृद्धि के लिए, शब्दों को काट-छाँट द्वारा मौलिक आकार प्रदान करने के प्रति जागरूक रहना चाहिए। यथा—"उनकी सहृदयता के स्पर्श से उनके शब्दों में एक अजीब जीवन आ गया है, जो साहित्य का ही जीवन है, जो किसी तरह भी नहीं मर सकता।—शब्दों को जिस सहृदय-दृष्टि से उन्होंने देखा है, अपनी रुचि के अनुसार उसमें जो परिवर्तन किए हैं, वही उनकी मौलिकता है।[3] यहाँ काव्यश्री के सम्वर्द्धन में शब्द-कौशल के महत्त्व को स्वीकार करके रीति को, और शब्दों के आन्तरिक जीवन को महत्त्व देकर ध्वनि को गौरव दिया गया है। इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी जागरूक भाषा-शिल्पी थे।

काव्यालंकार :—

निराला जी के काव्य में अप्रस्तुत-विधान की समृद्धि का अभाव नहीं है, किन्तु उसके स्वरूप-विवेचन के प्रति वे सर्वथा उदासीन रहे हैं। इस प्रसंग में केवल एक उक्ति मिलती है, किन्तु उसमें भी अलंकार का समर्थन न करके आलंकारिक चमत्कारिता का प्रकट विरोध किया गया है। यथा—

> अलंकार-लेश-रहित, श्लेष-हीन
> शून्य विशेषणों से—
> नग्न नीलिमा-सी व्यक्त
> भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी।"[4]

इस उक्ति में न तो अलंकार को काव्य का अनिवार्य धर्म माना गया है और न ही श्लेषादि के शब्दगत अथवा अर्थगत चमत्कार को प्रश्रय दिया गया है। इसी प्रकार विशेषणों के प्रयोग को महत्व न देकर मानों परिकर अलंकार के प्रति मोह का तिरस्कार किया गया है। वस्तुतः इस उक्ति में अलंकार-विधान के प्रति अनास्था न होकर यह व्यंजित है कि अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में होना चाहिए।

१—देखिए 'काव्यालंकार', १।९ तथा १।१०

२—हिन्दी-काव्यालंकार सूत्र, १।३।१५, पृष्ठ ५१

३—पन्त और पल्लव, पृष्ठ ८०

४—परिमल, पंचम संस्करण, पृष्ठ २६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्द-विधान—

निराला जी ने मुख्यरूप से मुक्त छन्द का विवेचन किया है, और इस सम्बन्ध में उनकी धारणाओं से यह प्रमाणित हो जाता है कि उनमें उद्भावक आचार्य की प्रतिभा थी। मुक्त छन्द के विषय में उनकी रचनाओं से ये उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) "मुक्त छन्द"
सहज प्रकाशन वह मन का—
निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।[1]

(आ) "मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।—मुक्त छन्द भी अपनी विषम-गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है, जैसे एक ही अनन्त महासमुद्र के हृदय की सब छोटी-बड़ी तरंगें हों, दूर-प्रसरित दृष्टि में एकाकार, एक ही गति में उठती और गिरती हुई।—इस तरह की (छन्दोबद्ध) कविता अतुकान्त काव्य का गौरव-पद भले ही अधिकृत करती हो, वह मुक्त काव्य या स्वच्छन्द छन्द कदापि नहीं।--मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है। इस पुस्तक (परिमल) के तीसरे खण्ड में जितनी कविताएँ हैं, सब इस प्रकार की हैं। उनमें नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त-छन्द का-सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप-ही-आप आ जाते हैं। मुक्त-छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-साहित्य उसकी मुक्ति।"[2]

(इ) "मैं हिन्दी के जीवन के सम्बन्ध में वर्णों के भीतर से विचार कर चुका हूँ कि किन वर्णों का सामीप्य है। मुक्त छन्द की रचना में मैंने भाव के साथ रूप सौन्दर्य पर ध्यान रखा है, बल्कि कहना चाहिए ऐसा स्वभावतः हुआ, नहीं तो मुक्त छन्द न लिखा जा सकता, यहां कृत्रिमता नहीं चल सकती।"[3]

(ई) "मुक्त-काव्य में वाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को सुख-प्रवाह-सिक्त निर्मल किया करती है, वही इसका प्रमाण है। जो लोग उसके प्रवाह में अपनी आत्मा को निमज्जित नहीं कर सकते, उसकी विषमता की छोटी-बड़ी तरंगों को देखकर ही डर जाते हैं, हृदय खोलकर उससे

१—परिमल, पृष्ठ २६४
२—परिमल, भूमिका, पृष्ठ १४, १८ तथा २१
३—प्रबन्ध प्रतिमा, पृष्ठ २७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने प्राणों को मिला नहीं सकते, मेरे विचार से यह उन्हीं के हृदय की दुर्बलता है।"[1]

इन अवतरणों में मुक्त काव्य के सभी गुणों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इनमें दो बातों पर विशेष बल दिया गया है—(अ) हृदय में उठने वाले भाव-प्रवाह की स्वाभाविकता को अक्षुण्ण रखने के लिए कवि मुक्त छन्द में शिल्प रूढ़ियों से मुक्ति को अनिवार्य मानता है, (आ) बाह्य रूप से लघु-दीर्घ पंक्तियों की विषमता होने पर भी इस छन्द में वर्ण-मैत्री और लय के फलस्वरूप काव्य-गति की अभिनन्दनीय स्वतन्त्रता रहती है। मुक्त छन्द के इस स्वरूप-निर्धारण में भारतीय छंद-शास्त्र में कथित "विषम छंद" और अंग्रेजी कवियों के 'फ्री वर्स' से समान रूप में लाभ उठाया गया है। छन्द रूढ़ियों के त्याग से आलोच्य कवि का अभिप्राय वर्णों अथवा मात्राओं की निश्चित संख्या एवं गण-क्रम के प्रति विद्रोह प्रकट करना है। इसीलिये मुक्त छन्द में चरणों की संख्या एवं विस्तार के विषय में किसी निश्चित नियम को नहीं अपनाया गया है। लघु-दीर्घ पंक्तियों के बाह्य वैचित्र्य का यही रहस्य है, किन्तु उनमें लय-संस्कारों का अभाव नहीं होता। गेय गुण से युक्त होने के कारण इस छन्द में वर्ण-मैत्री अथवा ध्वनि माधुरी पर आधृत विषयानुकूल शब्द-संगठन का आन्तरिक महत्व है। लय का निश्चयात्मक निर्वाह मुक्त छन्द का प्राण है, किन्तु लय-संस्कारों से प्रायः अप्रत्यक्ष रूप से वर्णों एवं मात्राओं के क्रम का भी निर्धारण हो गया है। इस विषय में डा० पुत्तूलाल शुक्ल का निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है—"ये मुक्त छन्द पूर्णतया निश्चित, प्रतिष्ठित शास्त्रीय छन्द के समान ही हैं।...मुक्त छन्द निश्चित लय-आदर्शों के आधार पर चलते हैं। बिना लय या प्रवाह गुण के छन्द का अस्तित्व सम्भव नहीं और जहाँ लय होगी, वहाँ कोई नियम अवश्य होगा।"[2] मुक्त छन्द का आश्रय लेने वाले कवियों के सामने ये नियम भले ही न रहे हों, किन्तु उनकी कविताओं के अनेक चरणों में वर्णों अथवा मात्राओं की समान संख्या फिर भी मिल जाती हैं।

उपयुक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मुक्त छंद का आधार दोषपूर्ण नहीं है। हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में इस छन्द के प्रवर्तन का श्रेय निराला को ही देना होगा। परम्परागत छांदसिक मान्यताओं के प्रति बुद्धिवादियों के आग्रह के फलस्वरूप उन्होंने मुक्त छन्द के महत्त्व को प्रकट करने के लिए अतुकान्त रचना से उसकी विभिन्नता पर भी प्रकाश डाला है। नूतन काव्य-पथ का निर्देश करने के कारण उन्हें

१. पन्त और पल्लव, पृष्ठ ४४

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृष्ठ ४१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ में छन्द-प्रेमियों के वाक्-प्रहारों का भी सामना करना पड़ा। तथापि जन-जागरण की नवीन भूमिकाओं एवं जीवन-संघर्षों की मुक्त अभिव्यक्ति में इस छन्द ने जो सफलता प्राप्त की है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर, मुक्त छन्द के समर्थकों ने उसमें जिन निश्चित लयाधारों का निर्माण किया है, वे विरोध को समाप्त करने की ओर महत्वपूर्ण प्रयास हैं। अतः यह स्पष्ट है कि निराला के मुक्त छन्द सम्बन्धी विचारों का छन्द-शास्त्र के इतिहास में युगान्तरकारी महत्व है।

निराला थे काव्य में रस उनकी सांस्कृतिक चेतना की उपज हैं। यदि वह सांस्कृतिक चेतना सुदृढ़ न होती तो वे विभिन्न रस-भूमियों में जाकर किसी एक की भी मार्मिक अवतारणा न कर पाते। यह कहना कठिन होगा कि उनमें किस रस की प्रधानता है। जैसे प्रकृति की ही कोई वस्तु विकसित होती हुई विभिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व आगे बढ़ा है। उनमें वीर रस की भी योजना है; उनमें सुन्दरतम श्रृङ्गारिक तत्व भी जुड़े हैं। उनके अन्तिम समय के गीत-मूलतः शान्त और करुण रसों से संपृक्त हैं। उनके काव्य को किसी रस-विशेष की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। वे सुन्दर प्रगीतों के उदात्त वीर गीतों के और मार्मिक करुण भावों के स्रष्टा है। वे इन सबके कवि हैं और इन सबको पार भी कर गये हैं।

—–आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नवीन' जी का 'ऊर्म्मिला'-परिशोधन

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

प्रायः प्रत्येक कवि अपने काव्य में समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार परिष्कार एवं संशोधन किया करता है। आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में यह कोई नूतन वस्तु नहीं है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'साकेत' में अनेक परिवर्तन, परिवर्द्धन और परिशोधन किए हैं। उसका प्रथम संस्करण संवत् १९८८ में प्रकाशित हुआ था और द्वितीय संस्करण संवत् १९९२ में। गुप्तजी ने परिवर्तनादि प्रायः इसी बीच किए। स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ने भी आँसू में परिवर्तन किये। 'आँसु' का प्रथम संस्करण १९८२ वि० में साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशित हुआ था। उसका द्वितीय संस्करण १९९० वि० में भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इसमें छन्दों के क्रम में परिवर्तन कर दिया गया।

'नवीन' जी की किसी भी कृति के समान, 'उर्म्मिला' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। अतएव गुप्तजी एवं प्रसादजी के सदृश्य संस्करणों में संशोधन करने का, 'ऊर्म्मिला' में प्रश्न ही नहीं उठता। इसके बावजूद भी, 'नवीन' जी ने पूर्व रूप में ही परिशोधन किया। कवि ने सन् १९३३-३४ से ही काव्य की परिसमाप्ति के पश्चात् ही परिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया था। फैजाबाद कारागृह के उनके सहयोगी श्री 'प्रभाकर' ने 'ऊर्म्मिला' का 'परिमार्जन' करते हुये देखा था। इसके बाद, पत्रिकाओं में प्रकाशित 'ऊर्म्मिला' के काव्यांशों तथा पुस्तकाकार कृति में भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है जिससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि कवि ने परिशोधन-परिवर्द्धन किया है। साथ ही, 'ऊर्म्मिला' की पाण्डुलिपि के प्रकाशन के देने के पूर्व, कवि ने काफी परिष्कार किया था। इस प्रकार कवि का परिशोधन कार्य, कृति के प्रकाशन के पूर्व तक, सतत रूप से, यथा आवश्यकतानुसार, चलता रहा।

"नवीन" जी के परिमार्जन का मूलाधार भाषा सम्बन्धी परिष्कार रहा है जो कि उनकी वृद्धावस्था में बड़ा प्रबल हो गया था। भाषा-शोधन के अतिरिक्त, उन्होंने अन्य परिवर्तन भी किये। 'ऊर्म्मिला' में समग्र रूप में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) अभिव्यंजना-परिशोधन

(ख) भाषा-परिशोधन

(ग) छन्द परिशोधन

(घ) शब्द-परिशोधन और

(ङ) क्रम-परिशोधन।

उपर्युक्त परिष्कारों का सोदाहरण विश्लेषण अधोलिखित रूप में है।

(क) अभिव्यंजना-परिशोधन :—

कवि ने अपनी काव्याभिव्यक्ति को अधिक सशक्त, प्रभावपूर्ण, उपयुक्त एवं सटीक बनाने के लिए 'ऊर्म्मिला' में अनेक परिवर्तन उपस्थित किये। इन परिष्कारों से शैथिल्य का निराकरण हुआ और काव्य में नूतन द्युति आ गई।

(१) मूल रूप : ऊर्म्मिला के पुनीत चरणों की रज, पहुँचावेगी उस पार।
संशोधित रूप : ऊर्म्मिला-पद-पद्मों की धूलि तुम्हें पहुँचावेगी उस पार।

(२) मूल रूप : मैं लघु शिशु हूँ, विद्या बुद्धिविहीन और अज्ञानी वैया नहीं—असंस्कृत है मेरी यह दुर्बल वाणी।
संशोधित रूप : मैं लघु शिशु हूँ, बुद्धिहीन हूँ और निपट अज्ञानी वैयाकरणी मैं न, असंस्कृत है यह मेरी वाणी।

(३) मूल रूप : शुष्क शूल कीर्णित है यत्र तत्र, छिलते हैं गात।
संशोधन : जीवन, शुष्क, शूल-कीर्णित हैं, औ छिलते हैं गात।

(४) मूल रूप : हो निर्विघ्न सुमाला यह तैयार।
संशोधित : सूखन जावे, यह माला हो विघ्न रहित तैयार।

(५) मूल रूप : पाषाणों को, कलित सरणी, तोड़ के ज्यों गई है।
संशोधित : पाषाणों को, त्वरित सरणी, तोड़ के ज्यों गई है।

(६) मूल रूप : सीता के कुण्डल द्वय और ऊर्मिला की वह नथनी।
संशोधित : सीता के ताण्टक, ऊर्मिला की वह सुन्दर नथनी।

(७) मूल रूप : जैसे तात बैठते हैं सुनने वेदों की गाथा,
संशोधित : जैसे तात बैठते सुनने पूत वेद की गाथा।

(८) मूल रूप : और अचल सी बैठी रही कनिष्ठा जनक दुलारी।
संशोधित : और अचल सी रही कनिष्ठा धीरा जनक दुलारी।

(९) मूल रूप : सीता जीजी, आँखों को मूदें ही मूदें बोली -
संशोधित : सीता जीजी, यों आँखों को मूदें मूदें बोली।

(१०) मूल रूप : सरका कमल, नेत्र-विस्फारण वस या तो मेरा है।
संशोधित : बोला कमल, 'नेत्र विस्फारण, क्या यह भी तेरा है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार शब्दों को घटा-बढ़ाकर उपयुक्त शब्द की स्थानापत्ति कर, शैली के रूप में परिवर्तन लाकर और प्रगटीकरण में स्पष्टता तथा सुबोधता के तत्वों को संलग्न कर, कवि ने अभिव्यक्ति सम्बन्धी परिमार्जन उपस्थित किया है। 'सरका कमल, नेत्र-विस्फारण बस यह तो मेरा है' के स्थान पर, 'बोला कमल, नेत्र विस्फारण, क्या यह भी तेरा है ?' परिवर्तन करने से जहाँ अभिव्यक्ति कौशल की श्री वृद्धि हुई है : वहां कथन में लाक्षणिकता भी आ गई। इस प्रकार संशोधित रूप में, काव्य अधिक व्यंजक बन गया है।

(ख) भाषा-परिशोधन :

'नवीन' जी ने सर्वत्र, मूलतः तथा प्रधानतया भाषा शोधन ही किया है। भाषा परिष्कार से जहां एक ओर शिथिलता तथा अनुपयुक्तता मिट गई है; वहां काव्य में निखार एव उभार आया है :

(१) मूल रूप : बनो उन्मत्त सुनाओ अखिल विश्व को उन्मत्तों की तान।
संशोधित : बनों रस-सिक्त सुनाओ अखिल विश्व को निज रस-सिक्ता तान।

(२) मूल रूप : दुध मुंहे बच्चे की फर्य्याद।
संशोधित : दुध मुंहे शिशु का क्रन्दन करुण।

(३) मूल रूप : तेरे आशीर्वचन करें मेरी इच्छा की सम्पूर्ति।
संशोधित : तेरे आशीर्वचन करें मम इच्छा की सम्पूर्ति।

(४) मूल रूप : चतुर कारीगरी का सार यह है।
संशोधित : पुरस्कृत शिल्पविधा सार यह है।

(५) मूल रूप : देखो; होवे हृदय तल की भावना पूर्ण तेरी।
संशोधित : रम्ये; होवे हृदय-तल की भावना पूर्ण तेरी।

(६) मूल रूप : स्निग्धच्छायामय जगह से नीड़से-बोलते हैं।
सशोधित : स्निग्धच्छायामय सधन से नीड़ से बोलते हैं।

(७) मूल रूप : लक्ष्मी सेवी, सकल जग के बाग को हैं संभाले।
संशोधित : लक्ष्मी सेवी, सकल जग की वाटिका को हैं संभाले।

(८) मूल रूप : हो जाता है नगर इनके भी मुखों मुखों से प्रतिष्ठ।
संशोधित : हो जाता है नगर इनके श्री मुखों से प्रतिष्ठ।

(९) मूल रूप : उड़ उड़कर समीर से खेल रहे हैं प्रेम-सने से।
संशोधित : उड़ उड़कर समीर से क्रीड़ा करते प्रेम सने से।

(१०) मूल रूप : तन्तु-नाम के सूत्र-जाल सा अतिशय मृदुल चपल।
संशोधित : तन्तुवाय के सूत्र-जाल सा अतिशय मृदुल चपल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) मूल रूप : बाल-क्रीड़ा के निश्चल भावों की अविरल धारा।
संशोधित : शिशु क्रीड़ा के निश्छल भावों की अविरल-धारा।

(१२) मूल रूप : मानों दशन-मोतियों को ढापे सन्त्री सोते हैं।
संशोधित : मानों ढापे दशन-मोतियों के रक्षक सोते हैं।

(१३) मूल रूप : किन्तु चूमकर, सुनो बात मुझको जरा न बतलाई।
संशोधित : किन्तु, चूमकर, सुनो रंच भी मुझे न बात बतलाई।

(१४) मूल रूप : पक्षी गण में भी बाजी लग गई अतीव अनूठी।
संशोधित : विहगों में भी होड़ लग गई वहाँ अतीव अनूठी।

(१५) मूल रूप : कभी ऊर्मिला की नासिका देख शर्माता शुक था।
संशोधित : कभी नासिका देख ऊर्मिला की सकुचाता शुक था।

(१६) मूल रूप : धनुर्यज्ञ का वर्णन कर तू शर्मायेगी तब क्या ?
संशोधित : धनुर्यज्ञ का वर्णन कर तू सकुचाएगी तब क्या ?

भाषा परिवर्तन के मूल में उर्दू शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों का प्रयोग है। भाषा में माधुर्य, लालित्य तथा औचित्य की अभिवृद्धि के लिए परिवर्तन उपस्थित किए गए हैं। साथ ही अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता अथवा लाघव प्रस्तुत करके, भाषा की सारगर्भिता तथा व्यंजकता की आभा बढ़ाने का भी प्रयास किया गया है।

(ग) छन्द-परिशोधन

कवि ने यत्र-तत्र छन्दों का भी परिमार्जन किया है। इसके द्वारा वह अपने काव्य में भाव-अनुकूलता तथा सौन्दर्य की वृद्धि करना चाहता है।

(१) मूल रूप : खोलो आखें, मुदित मन हो, पुण्य शोभा घनेरी।
संशोधित : खोले आखें, मुदित मन हो, देख शोभा घनेरी।

(२) मूल रूप : स्नेहाकृष्टा विमल नवल ग्रीव में सोहनी सी।
संशोधित : स्नेहाकृष्टा विमल नवला ग्रीव में सोहनी सी।

(३) मूल रूप : सीता और ऊर्मिला ये, पीयूष सरस के कण हैं।
संशोधित : सीता और ऊर्म्मिला मानों सरस अमृत के कण हैं।

(४) मूल रूप : जब उन्नति ललाट पर अलकावलियां उड़ आती हैं।
संशोधित : जब ललाट पर अलकावलियां उड़ उड़कर आती हैं।

(५) मूल रूप : ये जोड़ी के अधरों पे लालिमा विराज रही यों।
संशोधित : इस जोड़ी के अधरों पे लाली राज रही यों।

(६) मूल रूप : तड़प तड़पकर प्रकट किया करती हैं निज व्याकुलता।
संशोधित : तड़प तड़प कर प्रकटाती हैं निज हिय की व्याकुलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) मूल रूप : और चुनौती देने लगी गम्भीर भावनाओं को–
संशोधित : देने लगी चुनौती मानों धीर भावनाओं को,

(८) मूल रूप : लावेगी मधुस्मित युक्त सम्भाषण के रत्नाकर।
संशोधित : लाएगी स्मितियुत सम्भाषण के शतशत रत्नाकर।

छंद परिशोधन में कवि ने अपने भावों की व्यंजना में स्पष्टता तथा मुखरता लाने का सफल प्रयत्न किया है। छंद परिष्कार ने कलागत प्रांजलता भी उत्पन्न की है। छंद शैथिल्य या दोष का निराकरण भी किया जा सका है।

(घ) शब्द परिशोधन

'नवीन' जी ने शब्दों के परिवर्तन में, उनके सटीक, सार्थक तथा कर्ण-सुखद रूपों को प्राथमिकता प्रदान की है।

(१) मूल रूप : मूकभावों का प्यारा प्यार।
संशोधित : मूकभावों का पारावार।

(२) मूल रूप : और, सती, तव पद नख दूर करे मूढ़ाऽहंकार।
संशोधित : और, सती, तव पद नख हर लें मम मूढ़ाऽहंकार।

(३) मूल रूप : नत हो जा, हे नास्तिक मस्तक, उसके मृदु युग चरणों में।
संशोधित : नत हो जा, हे नास्तिक मस्तक, उसके युग श्री चरणों में।

(४) मूल रूप : विराग सुभोग की नगरी पुरानी।
संशोधित : विराग रुभोग की नगरी पुरानी।

(५) मूल रूप : मानो मुग्धा, श्वसुर गृह में, आ गई प्रेम बेली।
संशोधित : मानो मुग्धा, श्वसुर गृह में, पा गई प्रेम बेली।

(६) मूल रूप : तेजस्वी से सुजन पद का युद्ध सेना विभाग।
संशोधित : तेजस्वी है सुजन पद का युद्ध सेना विभाग।

(७) मूल रूप : मंजुलरिंगण की प्रागंण में फैल रही गुंजारें।
संशोधित : चरण-चलन की प्रांगण में फैल रही गुंजारें।

(८) मूल रूप : श्वेत कमल पत्रों में अमल शुभ्रता खेल रही ज्यों।
संशोधित : श्वेत कमल में अमल धवलता रह रह खेल रही ज्यों।

(९) मूल रूप : केश पुंजवेष्टित ललाट ऐसे शोभित होते हैं।
संशोधित : केश पुंज वेष्टित ललाट ये यों शोभित होते हैं।

(१०) मूल रूप : ये चारों चापल्यमयी आँख दौड़ा फिरती हैं।
संशोधित : ये चारों ही चापला आँखें यों दौड़ा फिरती हैं।

(११) मूल रूप : मानो गिर्योत्संगों से चपला नदियाँ गिरती हैं।
संशोधित : ज्यों गिर्योत्संगों से चपला धाराएँ गिरती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) मूल रूप : तब अशक्त सी बंध जाती विदेह वैराग्य खुमारी।
संशोधित : तब अशक्त सी बंध जाती विदेह विराग खुमारी।
(१३) मूल रूप : पइन छोटे सुअमृत कूपों की दुर्गम गहराई है।
संशोधित : इन छोटे मधुरस कूपों की दुर्गम गहराई है।
(१४) मूल रूप : ध्यानी के उन्नत ललाट की धीर सांत्वनाओं को।
संशोधित : ध्यानी के उन्नत ललाट की सहज सांत्वनाओं को।
(१५) मूल रूप : ऐरी ढीठ क्यों न मेरी बातें मन में धरती हो।
संशोधित : ऐ, री ढ़ीठ, क्यों न मम बातें निज मन में धरती हो।
(१६) मूल रूप : मेरा है यह रवे— यों कह सारिका हुई मतवाली।
संशोधित : मेरा है यह रवे—यों मैना बोल हुई मतवाली।
(१७) मूल रूप : एक एक डाली का फूल किये था अर्पणा मन को।
संशोधित : प्रति डाली का फूल किये था अर्पण अपने मन को।

शब्द-परिष्कार के माध्यम से, काव्य श्री की अभिवृद्धि हुई है। कई स्थानों पर श्रुति कटुत्व दोष का निवारण किया गया है। 'शुभ्रता' तथा 'सुअमृत मय' के स्थान पर 'धवलता' तथा 'मधुरस' शब्दों की स्थानापत्ति कर, कवि ने श्रुति-प्रियता की वृद्धि ही की है। अर्थ की सुबोधता तथा सुगम्यता के आधार पर भी ये परिवर्तन अभीष्ट प्रतीत होते हैं। शब्दों के परिवर्तन में वाक्य विन्यास को भी व्यवस्थित किया गया है।

(ङ) क्रम-परिशोधन

ऊर्म्मिलाकार ने यथास्थान शब्द, वाक्य आदि के क्रम में भी परिवर्तन उपस्थित किये हैं। इन परिवर्तनों से काव्यौचित्य की प्राण-रक्षा की गई है।

(१) मूल रूप : अगम सम्पूर्ण भूत के गर्भ सिन्धु में, सज जीवन के साज।
संशोधित : अगम सम्पूर्ण भूत के गर्भ सिन्धु में सज जीवन के साज।
(२) मूल रूप : तब मृदु चरणों में वन्दना यही मेरी इस बार।
संशोधित : यही वन्दना तब मृदु चरणों में मेरी इस बार।
(३) मूल रूप : द्युति विहीन, है खचित शोक-रेखा जिसके आभरणों में।
संशोधित : खचित शोक रेखा है जिसके द्युति विहीन आभरणों में।
(४) मूल रूप : एक एक कुन्तल की यह बारीकी किसने पेखी ?
संशोधित : किसने एक कुन्तल की यह बारीकी पेखी ?
(५) मूल रूप : तब कृष्णा यमुना की दो धारायें गुंथ जाती हैं।
संशोधित : तब कृष्णा यमुना की गुंथ दो धारायें जाती हैं।
(६) मूल रूप : या दो कुन्त निशायें आलिंगन करती लुब्धा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधित : यों दो कुहा निशायें करती आलिंगन लुब्धा हो।

(७) मूल रूप : तब मानो केशों में आंख मिचौनी छिड़ जाती है।

संशोधित : आंख मिचौनी तब केशों में मानो छिड़ जाती है।

(८) मूल रूप : ज्यों ऊषा की गोदी में बिहाग के स्वर सोते हैं।

संशोधित : ज्यों बिहाग के स्वर ऊषा की गोदी में सोते हैं।

(९) मूल रूप : विरतषिता को दूर फेंक देगी विराग की कफनी।

संशोधित : दूर फेंक देगी विदेह की वह विराग कफनी।

(१०) मूल रूप : देखो, मैं बैठी हूँ आँख मींचकर बनकर ज्ञानी।

संशोधित : देखो, आँख मीचकर बैठी हूँ मैं बनकर ज्ञानी।

(११) मूल रूप : हंस हंस झकझोरने लगी उसको सीता सुकुमारी।

सशोधित : झकझोरने लगी उसको हंस हंस सीता सुकुमारी।

(१२) मूल रूप : बैठे बैठे कन्धों पर प्रकटाते प्रेम अचल थे।

संशोधित : प्रकटाते कन्धों पर बैठे बैठे प्रेम अचल थे।

(१३) मूल रूप : दोनों पर्यकों पर बैठ गई इस मृदु उपवन में।

संशोधित : पर्यकों पर बैठ गई वे दोनों इस उपवन में।

(१४) मूल रूप : मुझे बता दे, हे मेरी कल्पने करेगी अब क्या ?

संशोधित : हे मेरी कल्पने बता दे मुझे करेगी अब क्या ?

क्रम-परिवर्तन के द्वारा कवि ने जहाँ वाक्य-शिथिलता को दूर किया है, वहाँ काव्य को व्याकरण-सम्मत भी बनाया है। ये कवि के साधु प्रयत्न हैं।

इस प्रकार 'नवीन' जी ने 'ऊर्म्मिला' में नाना प्रकार के परिवर्तन उपस्थित किये हैं। कवि ने कहीं कहीं पद्यों को घटा भी दिया है। मूल में, प्रथम सर्ग में, यह पद्यांश प्राप्त होता है जिसे प्रकाशित पुस्तक में स्थान प्राप्त हुआ है-

जबाँ दो टूक है तेरी ये इस दिल को हिला डाले,
मेरी फीकी सियाही को जरा फिर से मिला डाले।

उपर्युक्त पद्यांश काव्य के गाम्भीर्य की क्षति करता था और कवि की संस्कृत निष्ठ भाषा के प्रति मोह का भी विरोधी था, अतएव, इसे हटा दिया गया।

कवि द्वारा प्रस्तुत परिशोधन-परिष्कार से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि 'ऊर्म्मिला' में जो परिमार्जन उपस्थित किया गया है, वह अप्रधान है। इन परिवर्तनों के फल स्वरूप, इस कृति की कथा-चरित्र-सृष्टि तथा भाव-व्यंजना में कोई अन्तर उपस्थित नहीं हुआ है। शब्द शैथिल्य, वाक्य शैथिल्य, आदि को दूर करते हुए, सिर्फ काव्य को सजाने-संवारने का प्रयत्न किया गया है। ये परिवर्तन प्रभाव-वृद्धि में सहायक मात्र ही हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राम-काव्य परम्परा की नवीन उपलब्धि "रामराज्य महाकाव्य"

प्रोफेसर देवी प्रसाद गुप्त,

हिन्दी रामकाव्य परम्परा की आख्यायिका का सम्बन्ध प्रमुख रूप से आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण से है। रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य साधना के अमर प्रतीक हैं। यह दोनों ग्रन्थ सहस्राब्धियों से काव्य रचना की प्रेरणा के अक्षय स्रोत रहे हैं। वैसे रामकथा के रूप की उपलब्धि वैदिक वांगमय से ही होने लगती है। रामकथा की प्राचीनता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि एतदविषयक गाथाओं और उपाख्यानों की सृष्टि छठी शताब्दी ई०पू० से ही होने लगी थी १। प्रसार की दृष्टि से रामकथा विश्व व्याप्त है २। किन्तु रामकथा को सम्यक् स्वरूप प्रदान करने का समस्त श्रेय आदि कवि को ही है। विद्वानों का मत है कि—"विश्व साहित्य के इतिहास में शायद ही किसी अन्य कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो; जो प्रभाव की दृष्टि से भारत के आदि कवि वाल्मीकि की तुलना कर सके ३। संस्कृत के राम काव्य के कवियों ने तो रामायण को आधार ग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया ही है, हिन्दी के राम काव्य रचयिताओं ने भी प्रेरणा प्राप्त की है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के प्रणेता गोस्वामी तुलसी दास ने भी आदि कवि के ऋण को साभार स्वीकार किया है। तुलसी के उपरान्त हिन्दी की सम्पूर्ण रामकाव्य परम्परा ने रामायण को कथात्मक आधार के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी में मानस की रचना के अनन्तर रामकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है ४।

राम के आख्यान को लेकर वर्तमान युग में अनेक काव्यों की रचना हुई है। आधुनिक युग के बहुचर्चित प्रबन्ध काव्यों में रामरसायण, श्री रामचन्द्रोदय,

१—हिन्दी साहित्य कोश-पृष्ठ ६४१

२—रामकथा उत्पत्ति और विकास—डा० कामिल बुल्के

३—हिन्दी साहित्य कोश-पृ० ६४६

४—हिन्दी साहित्य कोश-हिन्दी राम साहित्य खंड-पृ० ८९३-८९६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरित्र चिंतामणि, कौशल-किशोर, साकेत, वैदेही वनवास, साकेत सन्त, ऊर्मिला, कैकेयी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में राम का चरित्र और कर्तव्य भारतीय जन जीवन की चेतना में आत्मसात् हो गया है। राम का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति की अनिवार्य विशेषताओं (यथा सत्त्व, शील, मर्यादा आस्था, पुरुषार्थ आदि) का संगम स्थल है। राम के चरित्र में युग जीवन की आकांक्षाओं को परितृप्त करने और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करने की अमोघ शक्ति विद्यमान है। इसीलिए राम की जीवन-गाथा राम काव्यों का प्रतिपाद्य रहा है। अधिकांश काव्यों में 'रामचति मानस' की भांति ही कथा का विकाश हुआ है। हाँ कथा के प्रस्तुतीकरण और निर्वाह सभी में राम काव्यकारों का दृष्टि-कोण भिन्न किंवा मौलिक रहा है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि चरित्र विश्लेषण को केन्द्र विंदु मानकर इन काव्यों में रामकथा का परिधि-विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए साकेत, साकेतसंत, ऊर्मिला, वैदेही वनवास, रावण कैकेयी आदि काव्यों की रचना इनके पात्रों के चरित्र उत्कर्ष के लिए हुई है। आलोच्य महाकाव्य (राम राज्य) इसी परम्परा की रचना है। किन्तु प्रतिपाद्य की दृष्टि से डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के राम राज्य महा काव्य का विशेष महत्व है। राज्य की भाँति राम-राज्य की परिकल्पना भी बहुत प्राचीन है। राम-राज्य शब्द आदर्श राष्ट्र और शासन व्यवस्था का सूचक है। क्योंकि बाल्मीकि और तुलसी के ग्रन्थों में राम-राज्य की व्यवस्था के जिस रूप का अंकन हुआ है वह शासन तंत्रों के इतिहास की अद्भूत और अनोखी वस्तु है। डा० शम्भूनाथ सिंह का मत है—'...तुलसी ने राम राज्य की जो कल्पना की है उसी को महात्मा गाँधी ने लोक तन्त्र और स्वातन्त्र्य के युग में भी अपना आदर्श और लक्ष्य निश्चित किया १। विद्वानों ने रामचरित मानस का मुख्य कार्य और फलागम राम राज्य ही माना है। मानस के महत्वकार्य का उल्लेख करते हुए डा० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि:—'राम राज्य की स्थापना को तुलसी ने कितना महत्व दिया है, इसका तो अनुमान इसी से किया जा सकता है कि राम राज्य की सुख-सम्पदा का वर्णन वाल्मीकि रामायण (उत्तर काण्ड सर्ग ९९) और अध्यात्म रामायण (युद्ध काण्ड २६) में केवल कुछ ही छन्दों में किया गया है, जब कि मानस में उसका वर्णन ११ दोहों (कडवकों) में हुआ है। अतः कथा की केन्द्रीय घटना की महानता की दृष्टि से राम रावण युद्ध, रावण वध और राम राज्य की स्थापना ही मानस का महत्व पूर्ण कार्य है।' अस्तु—

१—हिन्दी महाकाव्य का उद्भव और विकास-पृ०५६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम राज्य की धारणा भारतीय संस्कृति और साहित्य की महत्वपूर्ण उपपत्ति रही है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने इसी महत् कल्पना को राम राज्य महाकाव्य में साकार करने का प्रयास किया है। आज के विश्व जीवन की अनेक विषम समस्याओं में आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना भी एक है। संसार की सभी शासन प्रणालियों और राज्य की व्यवस्थाओं में लोक तंत्र को आज अत्यधिक महत्व दिया जाता है। किन्तु जनहित की भावना, लोकमंगल की साधना, सामान्य जन की सुख-समृद्धि का संवर्द्धन और मानव मूल्यों का संरक्षण इस व्यवस्था के द्वारा कहां तक हो रहा है, आज विचारणीय है। हम विश्व सरकार (World Government) या विश्व राज्य की कल्पना कर रहे हैं। किन्तु राष्ट्र राज्यों का रूप अव्यवस्थित है। आंदोलन और क्रांतियों के द्वारा सरकारों के तख्ते उलट दिये जाते हैं। व्यक्ति समूह के हितों की अवहेलना कर रहा है और बहुसंख्यकों का शोषण कर रहा है। शासकों और शासितों में संघर्ष चल रहा है। व्यवस्था में सर्वत्र ही दमन, शोषण, स्वार्थलिप्सा; प्रवचन, षडयन्त्र और भ्रष्टाचार व्याप्त है। आखिर क्यों? जीवन मूल्यों के विघटन के कारण राज्यादेशों के पतन के कारण, शासक और शासित में भाव-साम्य के अभाव के कारण या सत्ताधारी की दुर्नीति के कारण ऐसे वातावरण में 'राम राज्य' जैसे काव्यों की रचना निश्चय ही महत्वपूर्ण है। ऐसे काव्य प्रेरणा और प्रोत्साहन की वस्तु हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या रामराज्य महाकाव्य वर्तमान जीवन की समस्याओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष समाधान प्रस्तुत करता है? उसमें युग के उन्नत बोध का प्रतिफलन हुआ है? उसमें व्यवस्थाओं के व्यावहारिक आदर्श रूप का अंकन हुआ है? क्या राम-राज्य की रचना सच्चे मानों में राम काव्य परम्परा को विकसित करने में समर्थ हुई है? अथवा प्रस्तुत सृजन हिन्दी काव्य जगत की उपलब्धि है? इन्हीं परिसन्दर्भों में राम राज्य महा काव्य का मूल्यांकन हमें अभीप्सित है। काव्य रूढ़ियों या महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर आधुनिक युग के काव्यों की समालोचना निरुद्देश्य ही नहीं निरर्थक भी है।

'रामराज्य' के सृजन की मूल प्रेरणा कवि को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई थी। काव्य रचना के उद्देश्य में जनसमुदाय का कल्याण और हिन्दी के सौभाग्य की श्री वृद्धि दो प्रमुख कारण थे; जैसा कि कवि ने इस काव्य के भूमिकाभाग में स्वतः स्वीकार भी किया है। निश्चय ही प्रेरणा और लक्ष्य दोनों महान हैं। रामराज्य के रचयिता ने इन लक्ष्यों को प्राप्त भी किया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामराज्य की धारणा यद्यपि कल्पित विचारण (Utopia) है। किन्तु रामकथा की ऐतिहासिकता उसे प्रामाणिकता प्रदान करती है। अतः रामराज्य के प्रणेता ने रामकथा को ही ग्रहण किया है। कथा का प्रारम्भ उस स्थल से होता है जबकि निर्वासित राम सुमंत्र के साथ रथ पर बैठकर बढ़ रहे हैं। इससे पूर्वके करुण प्रसंगों (कैकेयी की वर-याचना और दशरथ मरण आदि) का कवि ने संकेत मात्र ही किया है। दसवें सर्ग में राम के राज्याभिषेक का वर्णन है और इसके पूर्व दूसरे से दसवें सर्ग तक परम्परित रामकथा है। काव्य के दो महत्वपूर्ण सर्ग ११ और १२ हैं, जिसमें क्रमशः भारतीयों के मानवधर्म की घोषणा और रामराज्य की व्यवस्था का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो कथात्मक दृष्टि से इस काव्य की मौलिक उपलब्धि अन्तिम दो सर्ग ही हैं। रामराज्य के कथाचयन हेतु कवि ने प्रमुखरूप से मानस को मुख्य आधार के रूप में ग्रहण किया है। किन्तु कवि की सूक्ष्म, कल्पना और सृजन प्रतिभा के कारण इस काव्य में राम कथा अपने नवीनतम परिवेश में प्रस्तुत हुई है। मिश्रजी ने भूमिका में कहा है कि—"कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है।...... इतिहास में यदि वर्तमान का प्रतिविम्ब न हो और भविष्य के लिये प्रेरणा न हो तो उसे प्रायः काव्य का विषय नहीं बनाया जाता। ग्रन्थाकार ऐतिहासिक कथानक लिखते समय भी अपने युग को कैसे भुला सकता है? परन्तु हाँ, उसका कर्तव्य यह अवश्य होना चाहिये कि वह ऐसी कोई बात न लिखे जो उसके कथानक के युग में न फब सके।" (भूमिका पृ० ९) स्पष्ट है कि मिश्रजी ने रामराज्य महाकाव्य की कथा निर्मिति में इतिहास की परम्पराओं के निर्वाह के साथ साथ युग चेतना का भी प्रतिविम्बन किया है।

रामराज्य के प्रतिष्ठापक और संचालक श्री राम हैं। कवि ने राम के व्यक्तित्व का निरूपण वास्तवदर्शी लोकनायक रूप में किया है। वह उन्हें युग-युग की प्रेरणा का धाम मानता है।—

"त्रेता युग के नहीं, राम तो युग युग के प्रेरणाधाम हैं।
पूर्ण पुरातन चिर नवीन वे, भाव स्रोत हृदयाभिराम हैं॥ (प्रस्तावना-३)

\+ + +

राम ब्रह्म हों, राम विष्णु हों, किन्तु राम नर तो हैं निश्चय।
युग द्रष्टा ही नहीं, आप ही युग कर्ता भी जो निः संशय॥ (सर्ग १२-८२)

राम सुमन्त्र के साथ रथारूढ़ वनगमन कर रहे हैं, उस अवसर पर उनके मनमें विश्वबन्धुत्व के भाव जाग्रत हो रहे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या मेरा बंधुत्व अवध की सीमा में आवद्ध रहे।
क्यों न विश्व का मानव, खग मृग तक मुझ को निजबंधु कहे ॥
बड़ी बात है वह, मुझको तो इस दल भारत का ध्यान।
भरत यशस्वी हों, भारत का सर्वोदयमय हो उत्थान ॥" प्रथमसर्ग (२६,२७)

राम चरित के अनेक गायकों ने राम रावण युद्ध को उत्तर-दक्षिण के संघर्ष की संज्ञा दी है, आर्य और द्राविड़ संस्कृतियों का द्वन्द्व कहा है और विचारधारा को लेकर हमारे देश में बड़ी विषम स्थितियां भी उत्पन्न हुई हैं। दशहरा के अवसर पर उत्तरी भारत के लोग रावण का पुतला जलाते हैं तो दक्षिणवाले राम की प्रतिमा को भी जलाने लगे हैं। मिश्रजी ने रामराज्य महाकाव्य में इस स्थिति का निदान स्वयं राम के द्वारा ही बड़े सुन्दर ढंग से कराया है—

"इसका जन-जन पावन चिन्मय, ग्राम ग्राम है अवध महान,
इसका जन जन स्वजन सृजन है, उत्तर दक्षिण एक समान।

+ + +

दक्षिण यदि विकलांग रहा तो उत्तर की समृद्धि निस्प्राण,
सब अवयव हों स्वस्थ समंजस, तभी स्वस्थ है पुरुष महान।
किसी समय संभव है दक्षिण में भी हों ऐसे आचार्य,
उ-र के दीक्षा गुरु हों जो और बनें आर्यों के आर्य ॥
किन्तु अभी जो अन्धकार है वहाँ प्रकाश जगाना है।
पुरुष परम पुरुषत्व देख ले वह संस्कृति फैलाना है।।,, (प्रथमसर्ग २९-३०-३१)

इसी काव्य के अन्य अनेक स्थानों पर भी उत्तर दक्षिण की एकता की बात कही गयी है। उदाहरणार्थ-सर्ग ६।२७, १०।११, १०।४७ आदि।

राम के उपर्युक्त कथनों में भारत की, विशेषकर उत्तर दक्षिण की एकता का संदेश है। वह दक्षिण में सांस्कृतिक प्रकाश का प्रसार करने के लिये जाना चाहते हैं। इसी सर्ग में कवि ने विदेशियों की कूटनीति के कारण राज्य की अव्यवस्था ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की सन्तुलित प्रगति का उल्लेख किया है। ग्रामीण जीवन के प्रति कवि की अनन्य आस्था है क्योंकि भारत का यथार्थ रूप वहीं रक्षित है।—

नागर ग्राम्यों से बढ़कर हो वैभव में गुण दोष में,
किंतु धनी हैं, ग्राम्य धन्य थे अपने दृढ़ संतोषों में। (सर्ग १।४२)

+ + +

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन आत्मा यदि जग न पाई तो शासन के व्यर्थ सुधार,
नगर बढ़ गये गांव सुखाकर, तो उस बढ़ती को धिक्कार।
नगर बढ़ें पर साथ रही चलें बढ़ायें गांवों को,
वह विकास है, विकसित करदे जो जन २ के भावों को।

राम के चारित्रिक शील और आदर्श विचारण का रूप द्वितीय सर्ग में अंकित हुआ है। राम की मान्यता है कि—"नहीं भोग में, किन्तु त्याग में खिलता जीवन।" आधुनिक शिक्षा के रूप पर व्यंग्य करते हुये कवि ने कहा है कि—

"ज्ञान नक्षत्रों को यदि लिया, आप अपने से रहे अजान।
वुद्धि से भरा तर्क विस्तार, किया संकीर्ण हृदय का मान॥
ग्रन्थ के बोझ, पन्थ के बोझ, खो गई जिनमें मन की शांति।
ज्ञान की साक्षरता वह कौन, ज्ञान है वह तो केवल भ्रांति॥

शिक्षा का उद्देश्य यह है कि :—

"कुजन हो सज्जन, सज्जन शांत, शांत हों भव बन्धन मुक्त।
मुक्त हों जो वे आगे बढें, करें औरों को भी उन्मुक्त।
यही शिक्षा का है ध्रुव ध्येय, न लद चलना उसको स्वीकार।
मनुज की मानवता बढ़ जाय, रचो प्रिये ऐसे रुचिर उपाय,
यही लक्ष्मण! शिक्षा उद्देश्य, इसी से विकसित जनसमुदाय।"

भारतीय संस्कृति को आधार मानकर विशेषता सहअस्तित्व और सर्वजन-हिताय की घोषणा इस प्रकार की है :—

"नहीं चाहते हम कि बढ़े साम्राज्य हमारा
काम्य यही है बढ़े शिवद् संस्कृति की धारा,
गोरे काले लाल कि पीले जग के वासी,
समझें चातुर्वण्य और ही हो सुख रासी।"(सर्ग५-३४)

विज्ञान युग की भौतिक प्रगति के प्रति भी लेखक जागरूक है किन्तु भारतीयता की पुनीत भावना से ओत-प्रोत होने के कारण जीवन के आध्यात्मिक और सर्वोदयी मूल्य ही उसे अधिक काम्य हैं। राम लंका विजय के उपरान्त विभीषण को संदेश देते हुये कहते हैं :—

असली अर्थ मनुजता ही है, सात्विकता जिसके अनुरूप।
राजस तामस चित्त वृत्तियां, कर न सकें उनको अपरूप॥
उन्हें उदात्त बना दो जिससे, निन्द्य निशाचरता मिट जाय।
प्रजा तुम्हारी सच्चे हित में, हो जाय विश्व सहाय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्ग ११ और १२ में रामराज्य की अभूतपूर्वक कल्पना साकार हुई है। ११ वें सर्ग के प्रारम्भ में ही कवि ने कहा है कि राम के राजा होते ही धर्म की घोषणा हुई। इसीमें रामराज्य का रूप प्रकट हुआ है। घोषणा में कहा गया है कि:—

"तभी राष्ट्रीयता होगी सुदृढ़ इस देश की,
जब मित्र-जनों में भी, एक संस्कृति साम्य हो।

कवि ने वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था के नियम पर भी बल दिया है। राष्ट्रीय आचार का उल्लेख करते हुये कवि ने व्यक्ति की स्वाधीनता पर बल दिया है:—

"वही राष्ट्रीय आचार, व्यक्ति का समझा गया,
राष्ट्रीयता विवृद्धयर्थ, जो सहायक हो सके। (११-७८)
राष्ट्र या जाति या व्यक्ति सभी को अधिकार है,
जिये और फूले फले, अविरोधी प्रकार से।
राष्ट्र जाग्रत है तो व्यक्ति जाग्रत जानिये,
राष्ट्र ही सो गया, तो व्यक्ति फूला फला कहां।

रामराज्यकार का मत है कि एक २ व्यक्ति के सुधार से राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। किन्तु राष्ट्र हितार्थ व्यक्ति स्वार्थ का बल ही वांछनीय है:—

"यदि प्रत्येक ही व्यक्ति, अपने को सुधार ले।
तो राष्ट्र का सुसंस्कार, सुसाध्य कितना बने॥
विरोध यदि हो 'राष्ट्रस्वार्थ औ' व्यक्ति स्वार्थ में,
तो राष्ट्रहित में व्यक्तिहित का स्वार्थ त्याज्य है॥

इसी सर्ग में सभी राष्ट्रवासियों के लिये पंच प्रतिज्ञाओं की घोषणा की गई है जिसके अनुसार रामराज्य का प्रत्येक निवासी, सर्वधर्मसहिष्णु, स्वावलम्बी मितव्ययी, सदाचारी और सद्विचारी बनने की प्रतिज्ञा करता है। सर्गांत में मानव महिमा और लोक कल्याण की भावना को सर्वोपरि कहा गया है:—

"मनुष्य में महाशक्ति, जागे सो शिव के लिये,
मनुष्य के लिये श्रेष्ठ यही धर्म है।
मनुष्य ही महासत्य, मनुष्य मन के लिये,
वही परम आराध्य, वही प्रत्यक्ष विष्णु है।
व्यक्ति की प्रेरिका होवे लोक कल्याण भावना।
सनातन सुखोद्रेकी सही वैष्णव भाव है।

द्वादश सर्ग की कथावस्तु मर्मस्पर्शी और करुणापूरित गाथा है जिसमें सीता के निर्वासन और रामराज्य का उल्लेख है। राम राज्य के व्यावहारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप का स्पष्टीकरण भी इसी सर्ग में हुआ है। राम राज्य में राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार, लोक- इच्छाओं की पूर्ति और सर्वजन सम्मान की भावना आदि का वर्णन है। रामराज्य में पंच परमेश्वर के तुल्य था, ग्रामों का जीवन स्वर्ग के समान था, सहकारिता में लोगों को विश्वास था। विज्ञान के आविष्कार भी संहार नहीं, सृजन के लिये होते थे :—

पंचों में परमेश्वर बसते, पंचायती राज सुख छाये,
पाये थे पंचों ने ऐसे पंचशील के तत्त्व सुहाये।
सहकारिता खिली पड़ती थी कृषियों में गृह उद्योगों में।
सामूहिकता को महत्व था, विविध उत्सवों सुख भोगों में॥
गांव-गांव में पूर्ण स्वच्छता, गांव-गांव के सुपथ मनोरम।
गांव-गांव के सुख सुविधामय, देव गृहोपम भवनों के क्रम॥
वैज्ञानिक आविष्कारों के नित्य प्रयोग हुआ करते थे।
किन्तु संहारक बातों पर विज्ञानी निजमन धरते थे॥

इस प्रकार रामराज्य का चित्रण भी कवि ने यथार्थ की भूमिका पर युगीन संदर्भों में प्रस्तुत किया है। रामराज्य के सम्बन्ध में प्रायः यह भ्रांति हुआ करती है कि राजतन्त्रीय व्यवस्था (Monarchy) है जो आज की सर्वप्रिय जनतन्त्रीय व्यवस्था (Democracy) के प्रतिकूल है। किन्तु यहां उल्लेखनीय है कि रामराज्य की शासनव्यवस्था सच्चे मानों में राजा और प्रजा की सम्मिलित व्यवस्था है। राजा तो प्रजा की भावनाओं और इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम मात्र है। यथा :—

"महाराज श्री रामचन्द्र ने रामराज्य इस भांति चलाया।
राजतन्त्र या प्रजातन्त्र है भेद न यह कोई लख पाया॥

कविने उचित ही कहा है कि :—

"रामराज्य वह क्षणिक नहीं था, जिसने मानव मूल्य सिखाया।
असुरों के भी कुटिल वंश से, नर भक्षण निर्मूल कराया॥

यही कारण है कि शताब्दियों के उपरांत भी रामराज्य की धारणा हमारी राज्य-कल्पना का आदर्श है। मिश्र जी ने ठीक लिखा कि—श्रद्धेय महात्मा गाँधी ने रामराज्य और सुराज्य को समानार्थक मानते हुये इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जाग्रत करदी है...रामराज्य एक कल्पना ही सही, परन्तु वह ऐसी कल्पना है जो व्यवहार में भी असीम लाभप्रद हो सकती है।"

यहां तक हमने काव्य की रामराज्य विषयक विचारणा पर विचार किया। कवि की अन्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी को कवि ने पुरुष का पूरक माना है। इसे शक्ति की संज्ञा से संबोधित भी किया है। यथा—

तत्व यदि नर है नारी शक्ति, कहा ऋषि पत्नी ने यह आप।
उभय का होता जब सहयोग, जगत का चलता कार्य कलाप॥
बुद्धि है नर तो नारी भाव, इष्ट हो नर को जग कल्याण।
किन्तु है नारी का यह धर्म, करे वह उत्तम नर निर्माण॥
रही नारी है भावुक सदा, न भावुकता में बहना श्रेष्ठ।
नियंत्रक भावुकता का पुरुष, इसी पुरुष कहाता ज्येष्ठ॥
न कोई हीन न कोई उच्च, उभय का अपना अपना मान।
उभय समझे अपने कर्तव्य, प्रकृति नियमों का रखकर ध्यान॥

राम राज्य के रचयिता के शब्दों में कविता और साहित्य की परिभाषा निम्न प्रकार है :—

"कविता सविता ज्योति शशांक सुधा है।
कविता मंत्रों से वेद प्रवुद्ध हुआ है॥
हित सहित रहे, साहित्य वही सुन्दर है।
जो समुदय अक्षर करे, वही अक्षर है॥

कवि की महिमा और कर्तव्य का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

"कवि चाहे नर को अमर करे स्वर द्वारा।
कवि चाहे जन इतिहास बदल दे सारा॥
जन-जन के अक्षर तत्व जगाता है कवि।
दिक्-काल-बन्ध सब आप भगाता है कवि।

जीवन के प्रति मिश्र जी का दृष्टिकोण यह है :—

"जीवन आशा उल्लास सुखों का घर है॥
जीवन नभ सा विस्तीर्ण न वह नश्वर है॥
इस विस्तृत नभ पर विघ्न मेघ से आये।
यह सम्भव ही है नहीं कि उसे मिटायें॥

इस प्रकार रामराज्य महाकाव्य में राज्य के आदर्श रूप के साथ २ मानवतावादी जीवन दृष्टि का भी विकास हुआ है। कवि ने विज्ञान युग के विकास और ह्रास, प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य में रामराज्य की प्रतिष्ठा का आग्रह किया है। राष्ट्रीय एकता, शाश्वता जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा, ग्राम्य जीवन की महत्ता सहकारिता, पंचशील आदि जीवन प्रेरक प्रवृत्तियों के निरूपण के कारण इस काव्य में रामकथा का युगीन पुनराख्यान हुआ है। 'रामराज्य' काव्य में उत्तर दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अभेद स्थिति का निरूपण निश्चय ही रामकथा के विकास में एक नवीन अध्याय की सृष्टि करता है। एक प्रकार से रामकथा के गायकों की एक त्रुटि का कवि ने मार्जन किया है। उद्देश्य की महानता, विवेचन की गंभीरता, शैली की उत्कृष्टता, शिल्प विधि के समुन्नत स्वरूप, चरित्र विश्लेषण की मानवतावादी पद्धति, पौराणिक कथा तत्त्व के पुनर्मूल्यांकन और कलात्मक औदात्त के कारण रामराज्य महाकाव्य निश्चित ही हिन्दी काव्य जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आज के युग जीवन में ऐसी रचनाओं का स्थायी महत्व है। मिश्र जी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक रहे हैं। उनके कृतित्व से हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष हुआ है। भारतीय संस्कृति की अखण्डता सिद्ध हुई है। रामराज्य से पूर्व कोसर किशोर और साकेत सन्त जैसी अनुपम कृतिओं से वह हिन्दी साहित्य भण्डार की पूर्ति कर चुके हैं। उनका तृतीय महाकाव्य (रामराज्य) हिन्दी जगत में अभिनंदनीय है। भविष्य में भी वे हिन्दी संसार को ऐसी कृतियां प्रदान करेंगे। ऐसी आशा है। हम रामराज्य के कवि की इन पंक्तियों के साथ ही प्रस्तुत प्रसंग की समाप्ति करते हैं:–

"त्रेता युग का रामराज्य वह, कलियुग को आलोक दिखाये॥
जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन स्वप्न सत्य बन जाये॥
अभूत की सीता समृद्धि को, रावणत्व से मुक्त कराकर।
खिल जाये रावणत्व मनुज का, ऐसे योग रचें विश्वेश्वर॥

—:o:—

हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—महर्षि दयानन्द

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है।

—महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की युग-प्रवर्तक परम्परा में तुलसी

प्रो० निर्मल तालवार

तुलसी थे महाकवि, भक्त-शिरोमणि एवं लोकनायक । तुलसी के इन विविध रूपों में कौन सा रूप सर्वश्रेष्ठ है यह कहना बहुत कठिन है, क्योंकि हर रूप में वे अद्वितीय हैं । महात्मागांधी ने समग्र के हर भाग की सुन्दरता को बताने के लिये कहा था—मोर के पङ्ख में कौनसा रङ्ग सबसे सुन्दर है, यह कहना कठिन है। इसी प्रकार तुलसी के अनुपम एवं श्रेष्ठतम रूप को बताना भी सरल नहीं है, किन्तु यदि हम कवि, भक्त एवं युग-प्रवर्तकों की परम्पराओं का विवेचन करके देखें तो तुलसी का वास्तविक मूल्यांकन बहुत कठिन नहीं होगा । साहित्य मन्दिर में तुलसी की प्रतिमा के चरणों पर शताब्दियों से श्रद्धा की पुष्कल पुष्प-वर्षा होती रही है । मानव श्रद्धा चिरकाल से श्रद्धेय की वन्दना एक हाथ में पुष्प और दूसरे में दीप लेकर करती आई है—पुष्प श्रद्धेय के दिए हुए वरदानों के प्रति अपने हृदय की मौन कृतज्ञता को उसके चरणों में उड़ेल देने के लिए और दीप उसकी दिव्यता के आभ्यन्तर रहस्यों को आरती की नाचती हुई रेखाओं में बाँधकर उतार लाने के लिए । पुष्पों की सार्थकता चरण-स्पर्श में दीपों का साफल्य मुखावलोकन में । पुष्पों में झरता हुआ अभिज्ञान और दीपों में लहकती हुई जिज्ञासा लेकर ही श्रद्धेय की प्रतिमा के सम्मुख खड़ी हुई श्रद्धा उसकी आपादमस्तक वन्दना का अधिकार पाती है ।

साहित्य मन्दिर में तुलसी की प्रतिमा के चरणों पर शताब्दियों से फूल चढ़ाये गए हैं । रंग-बिरंगे, विविध सुगन्धमय भावना-पुष्प कल्पना के उद्यान के कोने-कोने से चुन-चुन कर लाये, रच-रचकर सजाये और अंजुलियों में भर-भरकर उस पर बरसाये गये हैं । किन्तु इस प्रतिमा के मुख के सामने ऐसा लगता है, दीपों की संख्या अधिक नहीं रही है । जो दीप जले हैं, उनकी शिखाएँ क्षीण-सी रही हैं । उन दीप शिखाओं के दुर्बल-चंचल प्रकाश में श्रद्धा उस प्रतिमा का अवलोकन कर उसकी दिव्यता के अन्तर्निहित सत्य को सचमुच परख और पहचान पाई है, यह साधिकार कह सकना उसके लिए आज भी कठिन है । समालोचना साहित्य ने तुलसी की आज तक कवि के रूप में समीक्षा करते हुए प्रकांड पांडित्य से परिपूर्ण रस-शास्त्र के पृष्ठों से राशिराशि जटिल-दुरूह परिभाषाओं और व्याख्याओं के क्लिष्ट-कठोर माप-दण्डों को लाकर उनके काव्य के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मापा है और तुलसी की काव्यात्मक महानता को नाना तर्कों और युक्तियों से प्रमाणित और प्रतिष्ठापित कर अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है।

भक्त के रूप में उनका अवगाहन करते हुए उसने युग-युगानुगत भक्ति मार्ग की नवधा परम्पराओं का सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण करके तुलसी के स्थान को मूर्धन्य सिद्ध करते हुए आत्मतोष लाभ किया है।

लोकोन्नायक के रूप में उनका परीक्षण करते हुए समाजशास्त्र के पौर्वात्य और पाश्चात्य; प्राचीन और नवीन विविध मतों और मान्यताओं में निहित आदर्शवाद, यथार्थवाद, उपयोगितावाद और अनेकानेक वादों के तत्वों और तथ्यों का विवेचन कर उन्हें सोलवीं शताब्दी का मानों अग्रदृष्टा और अग्रदूत घोषित कर गर्व और गौरव का अनुभव किया।

किन्तु तुलसीदास के ये विशेषण, कवि, भक्त और लोकोन्नायक हमारे समक्ष कुछ प्रश्न उपस्थित करते हैं। पहला प्रश्न है भारतीय महाकवियों की परम्परा में तुलसी का स्थान कहां है? वाल्मीकि और व्यास को यदि हम इस चर्चा से बाहर ही रखें तो भी कवियों के गणना-प्रसंग में कनिष्ठिकाधिष्ठित उपमाओं के धनी कालिदास, अर्थगरिमा के आचार्य भारवी, पदलालित्य के प्रौढ़ प्रवर्तक दण्डी और सर्व काव्य-गुण सम्पन्न माघ की तुलना में तुलसी का कविरूप क्या अद्वितीय एवं अप्रतिम रह सकता है?

इस प्रश्न का ही एक दूसरा पहलू भी है। क्या बाल्मीकीय रामायण और रघुवंश के शताब्दियों के बाद लिखा जाकर भी स्वीकृतार्थ में काव्य-गुणालंकृतता में रामचरित मानस इनका अतिक्रमण कर पाया है? इस लक्ष्य की ओर क्या तुलसी का कोई गंभीर प्रयास परिलक्षित होता है? यदि उनका आग्रह वास्तव में ऐसा ही था तो उन्होंने अपनी काव्य रचना का माध्यम देवभाषा संस्कृत अथवा रसस्रोतस्विनी ब्रजभाषा के बदले 'भनिति भदेसू' व 'गंवारू' अवधी को ही क्यों बनाया? यदि उनका प्रयास सचमुच इस दिशा में ही था तो उन्होंने राम को अवतार तथा उन्हें घेर कर बैठे हुए अन्य सभी पात्रों को उनके भक्तों के रूप में चित्रित कर उनके चरित्रों की मनोवैज्ञानिक रंगीनियों को निर्मम भाव से मिटा क्यों डाला? यदि कवि ही उनका स्वरूप और काव्य ही उनका स्वधर्म था तो रामकथा के उस प्रसंग पर जिसमें राम को 'सीताविवासन पटो करुणा कुतस्ते' के रूप में संबोधित कर भवभूति ने उत्तर रामचरित में 'एको रसः करुण एवं' की रोमांचक निष्पत्ति की थी—तुलसी ने तमिस्र यवनिका डाल देने का अकाव्योचित आचरण कैसे किया? जिस सीता को कालिदास ने "विवाहधूमारुण लोचन श्रीः और स्तवकभार विनम्रा" की उपमाओं से अलंकृता रमणी के रूप में देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वर्णित किया उसे 'विश्वजननी' का सम्बोधन दे "सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पट तरिय विदेह कुमारी" कहकर उपमाओं के आकर्षण से वे विमुख क्यों हो गए? और तो और कवि-गोत्रीय होकर काव्य की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को ही राम की "दारूयोषित" कहकर पुकारने की धृष्टता उन्होंने कैसे की—ऐसी स्थिति में कवियों की परम्परा में तुलसी को लाना कहाँ तक उचित है, इसे विद्वान जन हो जानें।

दूसरा प्रश्न है—भारतीय भक्त परम्परा का जबकि भारत के युग-सिद्ध भागवत धर्म की स्थापित मर्यादाओं के अनुसार 'सोऽहमस्मि' 'तत्वमसि' या अहं ब्रह्मोस्मि, की अनुभूति से पुलकित आराध्य और आराधक का सारूप्य सायुज्य और सान्निध्य ही भक्ति का चरम और परम भाव माना गया है, उपास्य और उपासक की अन्तरहित अद्वैतता ही भक्तिशाखा के अंतिमवाक्य के रूप में वन्दित हुई है तब "सेव्य सेवक भाव बिनु भव न तरिय उरगारि" और 'मूरख अलखहिं का लखै रामनाम जपु नीच' की विद्रोही पुकार और ललकार मचाने वाले तुलसी उस परम्परा में अपनी गणना कहाँ करवाना चाहते थे? ऐसा आग्रह कहां था उनका?

अब रह जाता है तीसरा प्रश्न—लोकनायक के रूप में तुलसी की क्या उपलब्धियां हैं?

सहस्रों वर्ष पूर्व गौतमबुद्ध ने विश्व को जब बुद्धं सरणं गच्छ और 'धम्मं सरणं गच्छ' का आमंत्रण दिया था तब साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ दिया था-संघं सरणं गच्छ'। बुद्ध के अनेक शताब्दियों बाद जब आदि शंकर ने बौद्ध धर्म के खण्डन और विलयन का भगीरथ संकल्प किया, तब बुद्ध की स्थापित सङ्घ शक्ति की मान्यता को स्वीकार करके ही उन्हें भी चलना पड़ा और सिद्धान्तः निवृत्तिमार्ग के प्रबलतम और श्रेष्ठतम प्रवर्तक होते हुए भी उन्हें व्यवहार में एक प्रवृत्तिमार्गी दार्शनिक संप्रदाय की स्थापना करनी ही पड़ी और भारत की चार दिशाओं में ईंट-पत्थरों से बने हुए चार ज्योतिष-पीठों का निर्माण भी करना पड़ा। शंकर की इस परम्परा को उनके परानुवर्ती रामानुज, निम्बार्क, मधु, वल्लभ सभी अन्य आचार्यों ने, उनके साथ सैद्धान्तिक विभेदों के बावजूद जीवित रखा और विरला ही ऐसा कोई पांचरात्र-धर्म की प्रस्थानत्रयी का प्रामाणिक भाष्यकार होगा जिसने अपने अनुवर्ती एक नये सम्प्रदाय को संस्थापित नहीं किया या उस सम्प्रदाय को जीवित और जाग्रत रखने के लिए उसके लिए किसी संस्थान की सृष्टि नहीं की। यहां तक की सम्प्रदायवाद तथा संस्थानवाद के उग्रतम आलोचक और खण्डक कबीर, नानक और दादू भी अपने बाद अपने ही नामों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल पड़नेवाले सम्प्रदायों और संस्थानों को जन्मने और फैलने से रोक नहीं सके।

सम्प्रदाय और संस्थान से पृथक रहकर लोकोन्नयन की क्रिया असंभव है, अकल्पनीय है। वर्तमान युग में युगावतार गांधी जी तक को लोकोन्नयन के लिए सम्प्रदाय और संस्थान का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। तब तुलसी ही एक ऐसे हैं जिन्होंने अपने को इन दोनों से दूर रखा। न भारत को आज तक तुलसीवाद या तुलसी सम्प्रदाय का शब्द सुनने को मिला, न उसे कहीं तुलसी मठ या तुलसी मन्दिर देखने को मिला।

तुलसी ने 'संघे शक्ति कलीयुगे' इस सनातन सत्य की जान बूझ कर घोर अवहेलना क्यों की? गीता कहती है—"योगः मर्मसु कौशलम्"। यदि लोकोन्नयन तुलसी को कर्त्तव्य कर्म था तो उसके निमित्त संप्रदाय और संस्थान का निर्माण उसकी पूर्ति के कौशल का ही सबसे बड़ा तकाजा था-'योगः' था। तब ऐसे योग से सर्वथा पराङ्गमुख हो जाने और लोकोन्नयन के लक्ष्य को ही संकट में डालकर अपने को 'जोग न जाग प्रबीना' कह कर इतिहास के प्रकाश से दामन बचाते, साहित्य के साथ कृष्णाभिसार करते अंधेरे में आने और अंधेरे में ही निकल जाने में तुलसी का क्या अभिप्राय था? कौन सा अभिष्ट था?

भक्त, कवि और लोक-उन्नायक—ये तीनों रूप भिन्न-भिन्न पहलू मात्र हैं और तुलसी का व्यक्तित्व कौन-सा था, जिसकी वे तीनों भिन्न-भिन्न व्यंजनायें थी? उन्होंने कविता रची, किन्तु काव्य का मोह न रखा। भक्त बने, किन्तु भक्ति की परिभाषा में नहीं बंधे। लोकोन्नयन किया किन्तु लोकोन्नयन के साधनों और यंत्रों को अस्पृश्य माना। साधना के अनेक मन्दिरों में उन्होंने माथा टेका किन्तु साधकों की अग्र-पंक्ति में बैठने का आग्रह कभी भी कहीं नहीं दिखाया। जहाँ भी राम का नाम अथवा राम का काम हो वहाँ अपने इष्ट-देव हनुमान की तरह ही वे सदा विद्यमान रहे, किन्तु सबसे पीछे दूर छद्म वेश में।

"आत्मन्देवात्मना तुष्टः निराशीर्निर्भम त्यक्त सर्व परिग्रहः" ये तुलसी जिनके सभी समारंभ 'काव्य संकल्प वर्जित थे, जिसके लिए सिद्धि और प्रसिद्धि दोनों ही समान थीं, जो 'कृत्वापि न निवध्यते' का ज्वलंत उदाहरण थे—अपने वास्तविक रूप में कौन थे, क्या थे किसलिए आये थे और क्या कर गये।

प्रश्न बड़ा है, इसका उत्तर भी बड़ा ही होगा, किन्तु तब अपनी धृष्टता के लिए क्षमा की पूर्व-याचना करते हुए एक छोटा सा उत्तर देने का दुःसाहस हम भी करेंगे।

तुलसी कवि थे, किन्तु इस शर्त के साथ उनके काव्य में वर्णों, अर्थसंघों, रसों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और छन्दों के साथ - साथ 'मंगलानांच' की सर्वोपरि सृष्टि हो। वे भक्त थे उस राम के जिनकी वन्दना एक और यह कहकर की जा सके कि "वंदेऽहं तम शेष कारण परं रामाख्य मीशं हरिम्" और दूसरी ओर यह कहकर कि—"पाणौ महाशायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंश नाथम्" वे लोकोन्नायक थे किन्तु उनके उन्नयन की दिशा थी मानव में ईश्वरत्व का संचार, जिसे उन्होंने 'हरि भजन' की संज्ञा दी "बिनु हरिभजन न भवतरिय यह सिद्धान्त अपेल"। किन्तु वे यह सब कुछ थे इसलिय कि वे अनेक आधिव्याधियों से पीड़ित, कलुषों और कल्मषों से आछन्न एक जरा-जर्जर युग को परिसमाप्त कर एक नये स्वस्थ स्वच्छ, सबल युग का प्रवर्तन करना चाहते थे। 'नानापुराण निगमागम सम्मतंयदामायणे निर्गदितं क्वचिदन्यतोअपि" के अतुल जलधि का मंथन कर राम-कथा रामनाम और राम-भक्ति के मणिपुंज के वहिर्निगति करने वाले तुलसी के व्यक्तित्व के मंदराचल को बांधकर उसे अलोड़ित कर सके, वह वासुकी नाग का सा स्वधर्म एक ही था—युग प्रवर्तक का।

युग-प्रवर्तन की प्रकिया में अन्तर्निहित दार्शनिक सत्य को उद्घाटित करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से गीता में दो बातें कही थीं, एक तो यह कि धर्म ग्लानि जब-जब होती है, मैं आत्मसृजन करता हूँ—'तदात्मानां सृजाम्यहम्' और दूसरी यह कि धर्म-संस्थापन के लिये मैं युग-युग में संभूत होता हूँ—'संभवामि युगे-युगे।' श्री अरविन्द ने 'ऐसे ऑन गीता' में लिखा है—आत्मसृजन मानव में ईश्वरत्व का प्रवतरण है, संभूति मानव का ईश्वरत्वारोहण। पहली घटना अनेक युगों के बाद ईश्वरीय शक्ति-सम्पन्न अवतारों को जन्म देती है, दूसरी घटना प्रत्येक युग में ईश्वरीय प्रेरणा संचालित विभूतियों को। और तुलसी ऐसी ही एक विभूति थे। उन्हें एक नये युग का प्रवर्तन करना था, और उस प्रवर्तन को शक्ति और प्रेरणा दे सके, इसके लिए उन्हें एक अवतार का आधार ग्रहण करना था। उस अवतार की खोज में वे अनेकों शास्त्रों, महाकाव्यों, इतिहासों और पुराणों के द्वारों पर भटके। जिस युग का वे प्रवर्तन करना चाहते थे उसकी आवश्यकता के अनुरूप उन्हें ईश्वरत्व के बिखरे हुए आंशिक तत्व चतुर्दिक मिले, सम्पूर्ण तत्व एकत्र कहीं नहीं। और तब उन्होंने अनेक अंशों का एक संपूर्ण बनाया। वह संपूर्ण थे राम—तुलसी के राम।

इन राम के पीछे वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति और अन्य कितने महर्षियों और महाकवियों की कल्पनायें और प्रेरणयें छिपी खड़ी हैं, इसका सम्यक अनुमान इतिहास आज तक नहीं लगा पाया है। किन्तु जैसा कि स्वयं तुलसी ने कहा है, इनके पीछे 'क्वचिदन्यतोअपि' है, जो तुलसी का अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसने ही उस राम का निर्माण किया है जो पिछले लगभग ४०० वर्षों से हिन्दुत्व के राम हैं—वह राम जो हिन्दूधर्म के किसी भी एक आध्यात्मिक अथवा काव्यगत शब्द से बड़ा शब्द है, वह राम जो समस्त हिन्दूधर्म का अकेला प्रतीक बन कर खड़ा हो सकता है। इस राम को प्रतिष्ठित तुलसी ने किया, इस राम को वन्दित तुलसी ने बनाया। यह राम ही तुलसी की चरम उपलब्धि है और इस सत्य का सूक्ष्म संकेत दिये बिना वे रह भी न सके—'राम ते बड़ो राम कर नामा'

राम का आधार ग्रहण कर तुलसी ने भारत के जिस नये युग का प्रवर्तन किया, वह इसके इतिहास की सर्वविदित कहानी है। आध्यात्मिक क्षेत्र में इसने गीता के भक्ति-ज्ञान समर्थित कर्मयोग की पुनः प्रतिष्ठा की। धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता और समन्वय की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। नैतिकता के प्रांगण में इसने राजधर्म, समाज-धर्म तथा परिवार-धर्म को सबल बनाया। और काव्य जगत में मर्यादा और शील से समन्वित रस-माधुरी की धारायें प्रवाहित कर दीं। आज हिन्दू धर्म में जो कुछ सत्य, शिव तथा सुन्दर है उसके पीछे तुलसी के राम प्रत्यक्ष अथवा प्रछन्न रूप से खड़े हैं। किन्तु राम का ऐसा रूप बन सके और उन्हें इतनी महिमा प्राप्त हो सके, इसके लिये तुलसी को अपने रूप को छिपाना पड़ा, अपनी महिमा का विलयन करना पड़ा। 'प्रेम गली अति सांकरी या में दो न समाय' का मार्मिक सत्य जितना तुलसी ने पहचाना है उतना और किसी ने पहचाना हो, यह भारत का इतिहास नहीं बताता। इस गली में आकर उन्होंने अपने स्वनिर्मित राम को आगे खड़ा किया और स्वयं उनके पीछे जा छिपे। युग ने राम को सत्य सनातन भगवान मानकर उनकी वन्दना की और तुलसी हिन्दी भाषा के एक सुकवि, सेवक भाव के एक सद्भक्त और सुविचारों का प्रचार करने वाले एक लोकोन्नायक बन कर ही रह गये। निर्मित को गगनचुम्बी बना कर निर्माता भू-गर्भ में समा गया—यह तुलसी की निर्माण-कला का चूड़ान्त प्रदर्शन है।

इतिहास प्रबुद्ध भारत का प्रत्येक युग अनेक कवियों, भक्तों और लोकोन्नायकों से अलंकृत रहा है, किन्तु इसके प्रत्येक युग में युग-प्रवर्तक कोई एक ही हुआ है। इन युग प्रवर्तकों की मूर्धन्य परम्परा में महावीर तीर्थंकर, गौतमबुद्ध, शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के बाद तुलसी का ही स्थान आता है। तुलसी के बाद उसी शृंखला में भारत के अंतिम युग-प्रवर्त्तक बन कर आये महात्मा गांधी। पर गांधी जी ने भी जीवन भर सत्य और अहिंसा का उपदेश दे चुकने के बाद अपनी जीवन संध्या में अपने दुर्बल हाथों से ताल देकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांपते हुए कंठ से गा-गा कर देश को तुलसी से पाए हुए—'रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम' का ही मंत्र सुनाया। इतना ही नहीं गांधी जी ने ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सम्मति दे भगवान' जोड़कर तुलसी के राम को और व्यापक बनाया।

प्रश्न उठता है क्या तुलसी के बनाये और गांधी के बढ़ाए हुए राम आने वाले भविष्यत् में समस्त मानवता को सम्मति देने वाले, समस्त विश्व के राम बन सकेंगे ? गांधीजी के मुख से निकला हुआ अंतिम शब्द 'हे राम' वायुमंडल में घुमड़ता हुआ आज भी सारी मानवता से एक प्रश्न पूछता भटक रहा है, गांधीजी की समाधि पर जलता हुआ दीप आज भी लहक-लहक कर जानना चाहता है कि तुलसी और गाँधी के बाद इस युग-प्रवर्तक परम्परा को महान से महानतर बनाने वाली, उच्च से उच्चतर उठाने वाली नव विभूति कौनसी होगी ? कैसी होगी और सर्वोपरि यह कि वह कब संभूत होगी ?

भविष्य के क्षितिज में नव अरुणिमा अभी दिखाई नहीं देती। युग की भावना को ही शब्दों में साकार करते हुए स्वर्गीया सुभद्रा कुमारी चौहान ने लिखा है :—

"आज हैं संसार की, आशा लताएं शुष्क झुलसी।
हे प्रभो फिर भेज दो तुम एक हुलसी, एक तुलसी।"

——

भारत तभी महान होगा जब उसके पास क्षमा करने के साथ-साथ दण्ड देने की भी क्षमता होगी। क्षमा भी दुर्बल होने पर अक्षम्य है।

— स्वामी विवेकानन्द

❀ ❀ ❀

क्षमा सोहती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन
विषरहित, विनीत सरल हो।

—दिनकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकांकीकला का विकास

(स्वर्गीय आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल)

संसार का साहित्यिक इतिहास यही सिद्ध करता है कि प्रायः हर सभ्य देश में मानव की साहित्यिक, कलात्मक और रागात्मक चेतना पहले पहल गीत के माध्यम से, उसके उपरान्त काव्य के माध्यम से और फिर नाटक के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुई थी। अपने अपने वातावरण और जातीय विकास-क्रम के अनुसार विभिन्न देशों में संगीत, काव्य और नाटक भी विकसित होते रहे हैं। भारतीय नाटक साहित्य की परंपरा भी अत्यन्त प्राचीन है। इसका विकास और इसकी पुष्टि तथा लोकप्रियता हमारे देश की सभ्यता के इतिहास में पग-पग पर चिह्नित मिलती है। जहाँ ग्रीस और रोम जैसे समृद्ध और अग्रशील देशों में वहाँ के कलाविद केवल नाटक के स्वरूप से ही परिचित रहे, वहीं हमारे देश में नाट्य-कला केवल सुपरिचित और सुपूजित ही नहीं रही, वरन् जीवन में कुछ इतनी दूर तक पैठ गई कि उसका स्थान केवल मनोरंजन के माध्यम तक ही सीमित न रह गया अपितु ज्ञान और उपादेयता के निमित्त से उसे पंचम वेद की प्रतिष्ठा और पवित्रता प्राप्त हो गई।

भारतीय जीवन में शायद वेदों से अधिक पूज्य एवं सर्वमान्य और कुछ नहीं है। उनकी परम सिद्ध प्रतिष्ठा यही है कि मानव ज्ञान की समग्रता विविध वेदांगों के माध्यम से उन्हीं में सन्निहित हो गई है। यह मान्यता केवल अनुमान अथवा कल्पना के द्वारा आरोपित आधारों पर नहीं है वरन् वेदों के एक-एक शब्द और संकेत के गंभीर मनन और चिन्तन का फल है कि वेदाध्यायियों को समग्र ज्ञान वेदों में ही देख पड़ने लगा। वेदों की परम पवित्रता का यही पुष्ट आधार है।

इसी प्रकार भारतीय नाट्य-साहित्य की आदि परम्परा से लेकर उसके परम-पुष्ट विकसित काल तक का चिन्तन और मनन भी यही सिद्ध करता है कि भारतीयों ने साहित्य के इस अङ्ग विशेष को मनोरंजन के छिछले स्तर तक ही नहीं रखा वरन् इसे अपने जीवन में वे इतनी दूर तक ग्रहण कर चुके थे कि बड़े से बड़े महत्त्वपूर्ण व्यापार तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाएँ भी नाट्य-साहित्य के माध्यम से देखी, परखी और सराही या तिरस्कृत होने लगी थीं अर्थात् यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना चाहिए कि हमारे देश में जीवन-सरिता की गति तथा उसके मोड़ नाट्य-साहित्य से ही शासित होते थे। नाट्य-साहित्य का युगों का विवेचन स्पष्ट कर देगा कि नाटक, रूपक और उपरूपक के जितने भेद और प्रभेद हमारे यहाँ प्राचीन काल से स्थिर हैं उतने शायद ही किसी अन्य देश में प्राप्त हो सकें। इन भेदों का सामान्य सा अध्ययन भी बता सकेगा कि नाटकीय विधान में बड़े से बड़े आठ और ग्यारह अंकों तक के नाटक जहाँ लिखे जाते थे वहीं विविध रूप और प्रकार के छोटे से छोटे एक अंक और कहीं-कहीं तो केवल तीन दृश्यों तक के छोटे से छोटे उपरूपक, जो अट्ठारह प्रकार तक के माने गए हैं, लिखने की भी परम्परा अभिहित थी।

यह ठीक है कि कालान्तर में जब विविध सामाजिक और राजनीतिक प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण विशेषकर उत्तर भारत में जीवन-विकास की गति अवरुद्ध सी हो गई थी उस काल में जहाँ अन्य भारतीय सांस्कृतिक संस्कार क्षति-ग्रस्त हुए थे वहीं हमारे नाटक साहित्य का विकास भी प्रायः रुक सा गया था और यह अवांछनीय परिस्थिति शताब्दियों तक रही। इस विपन्नावस्था में भी कोई यह तो न कह सकेगा कि नाटक-प्रेम हमारे जीवन से निर्मूल हो गया था क्योंकि हम देखते हैं कि इन घोर अन्धकारपूर्ण क्षणों में भी नाट्य-कला धार्मिक-क्षेत्र में प्रविष्ट होकर, मन्द रूप से ही सही हमारे जीवन में अह्लाद और प्रकाश का संचार कर ही रही थी। विविध लीला प्रदर्शन इसके प्रमाण हैं।

इस समय तक या यूँ कहना चाहिये कि इसके पहले से ही कला निमित्त-वाहिनी हो चुकी थी और उसी के अनुसार नाट्य-कला भी। परम्परागत यह परिपाटी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के हाथों में पड़कर केवल हिन्दी के नाट्य-साहित्य के प्रारम्भ का ही कारण नहीं बनी वरन् सामयिक जातीय सुधार का सफल माध्यम भी बन सकी। आज के प्रायः सभी आलोचक और हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखनेवाले एक मत है कि हिन्दी साहित्य में नाट्य-कला के पुनर्जागरण का श्रेय भारतेन्दु को ही है। वे यदि जातीयता और राष्ट्रीयता के अनन्य भक्त थे तो भारतीय साहित्य के विविध अङ्ग और उपांगों के अच्छे ज्ञाता भी थे, प्रतिभा-सम्पन्न भी थे। नाटक-रचना के ही क्षेत्र में उन्होंने जो कुछ भी हिन्दी साहित्य को दिया है वह नाट्य-कला और कौशल की दृष्टि से भी एकांगी नहीं है। "नाटक" शीर्षक उनका लम्बा निबन्ध नाट्य-साहित्य के गंभीर अध्ययन का प्रमाण है। प्राचीन संस्कृत और प्राकृत नाटकों के हिन्दी अनुवादों के रूप में उन्होंने एक नहीं अनेक उच्च कोटि के पूर्ण नाटक हिन्दी के कोष में संजोए हैं। अपनी मौलिक रचनाओं में भी रूपक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उपरूपकों के अनेक भेद उन्होंने उपस्थित कर दिए हैं। उन्हीं की प्रेरणा से उनके बाद भी हिन्दी में न जाने कितने नाट्य-साहित्य के प्रणेता उपस्थित हो गए थे। साहित्य के इस अङ्ग का प्रणयन उस काल से प्रारम्भ हो कर आज तक अबाधगति से उन्नत होता हुआ चला जा रहा है। देश के कोने-कोने में बैठे हुए मेधावी विचारक और कला-प्रेमी साहित्य के अन्य अङ्गों के साथ ही साथ नाटक के विविध रूपों की सरस सृष्टि करते जा रहे हैं। यह माना कि साधारण रीति से हिन्दी में भी सर्वाङ्गपूर्ण बड़े नाटकों की अपेक्षा छोटे नाटक ही या जिन्हें हम उपरूपकों की कोटि का कहना पसन्द करेंगे, अधिक लिखे जा रहे हैं। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि सर्वाङ्गपूर्ण नाटकों का अस्तित्त्व लोप हो गया है।

उपरूपकों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक आकर्षण केवल यही नहीं है वरन् प्रायः सर्वत्र ही समानरूप से है। इसे देखकर सहसा आधुनिक आलोचक कह बैठता है कि आजकल का जीवन बहुत अधिक व्यस्त है, पाठक को अवकाश नहीं है कि कोई लम्बी चीज पढ़ने में अधिक समय लगा सके। इसीलिए क्या कहानी—साहित्य में और क्या नाटक-साहित्य में उपन्यासों की अपेक्षा लघु-कथाओं तथा नाटक साहित्य में पूर्ण नाटकों की अपेक्षा एकांकियों की अधिक चाह है। जनरुचि को देखकर ही आज का कलाकार उपन्यासों तथा सर्वांगीण नाटकों का सृजन करने की अपेक्षा लघु-कथाओं तथा एकांकियों की रचना को अधिक प्रश्रय देता है। एकांकी तथा लघुकथाओं के अपेक्षाकृत आधिक्य का उपर्युक्त आधार सूक्ष्म सत्य से युक्त भले ही हो किन्तु अधिक महत्व का नहीं माना जा सकता। न तो इसके पीछे ऐतिहासिक परम्परा का आधार है और न कला-सृष्टि में सन्निहित नैसर्गिक सिद्धान्तों का लेश है।

इस रहस्य को भली-भाँति समझने के लिए आवश्यक है कि पहले यह समझ लिया जाय कि सर्वाङ्गपूर्ण नाटकों में और उप-रूपकों में क्या सम्बन्ध है और क्या पार्थक्य है, कितनी समता है और क्या वैषम्य है। नाटक, रूपक, उपरूपक, सभी दृश्य-काव्य के विविध रूप और प्रकार हैं। दृश्य काव्य का मूल तत्त्व प्रदर्शन तत्त्व है। इसे यदि दृश्य काव्य की आत्मा भी कहा जाय तो भी अनुचित न होगा। जिस प्रकार प्राण का प्रत्येक प्राणी मात्र में होना नितान्त आवश्यक है, भले ही वह छोटा हो अथवा बड़ा, उसी प्रकार दृश्य-काव्य के किसी भी रूप और प्रकार वाले काव्य में प्रदर्शन तत्व का विद्यमान रहना भी अनिवार्य है। प्रदर्शन-तत्व वा अस्तित्व स्वयं नाटकीयता के मूल उपकरणों की उपेक्षा करता है। जैसे रस की अल्पाधिक स्थिति और प्रदर्शन के द्वारा उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्ति और उसका संचार, उपयुक्त और अनुकूल वातावरण की स्थापना, पात्र अथवा पात्रों का माध्यम, अभीष्ट के अनुकूल संक्षिप्त अथवा विस्तृत कथा-प्रसंग का निर्धारण। यही कुछ ऐसे दृश्य-काव्य के प्रधान सर्वस्वीकृत सिद्धान्त हैं जो उसे अपने रूप में काव्य के अन्य रूपों से पृथक सत्ता प्रदान करते हैं। यहाँ तक तो बात हुई वाह्य रूप की लेकिन प्रत्येक कला में उसकी सफल अभिव्यक्ति के लिए किन्हीं निर्वाह-तत्वों की भी आवश्यकता होती है। जैसे नृत्यकला में अंग-संचालन तथा भावभंगी निर्धारण, उसी प्रकार विशुद्ध श्रव्य-काव्य में अलंकार, छंद, रस और प्रवाहयुक्त शब्दावली नाट्य-कला दृश्य-काव्य के अन्तर्गत है। इसका प्रधान निर्वाह-तत्व हुआ करता है सफल, सार्थक, पात्र और अवसर के अनुकूल वार्तालाप या कथोपकथन। **किसी भी दृश्य काव्य में चाहे वह जिस कोटि का क्यों न हो—सफलता या असफलता जितनी रंगमंचीय व्यवस्था पर निर्भर रहती है, उससे कम वार्तालाप या कथोपकथन पर नहीं।**

यहां तक तो बात हुई रूप और तत्वों की। अब हमें देखना होगा कि दृश्य काव्य के अन्तर्गत स्वीकृत विविध वर्गों के विभाजन का आधार क्या है। यह किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा या मनमौज के अनुसार नहीं है वरन् जैसा इन विविध स्वीकृत वर्गों के नामों से ही स्पष्ट है कि यह वर्गीकरण जीवन व्यापारों के और नाट्य-कला के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों और उनमें निहित सम्भावनाओं के गम्भीर चिन्तन, सन्तुलन, और उनकी अपेक्षित व्यावहारिकता तथा उपयोगिता पर अधारित है। कौन नहीं जानता कि आए दिन की घटनाओं के घटित होने का नाम ही जीवन है। व्यापक रूप में घटनाएँ भले ही समान धर्म और समान प्रभाववाली हों किन्तु व्यक्ति विशेष की परिस्थिति में घर कर वे भिन्न हो जाती हैं। घटनायें सामान्य या असामान्य, साधारण या असाधारण भी परिस्थिति, काल और व्यक्ति के साथ जुड़ी होकर अपना महत्व अथवा अपनी न्यूनता प्राप्त किया करती हैं। आये दिन के जीवन की विस्मृतिजन्य कोई घटना विशेष महत्व की नहीं मानी जाती किन्तु इसी एक विस्मृति की घटना ने अभिज्ञानशाकुन्तल जैसे महानाटक की सृष्टि के लिए अवसर प्रस्तुत कर दिया। इसी प्रकार देखा जाता है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में साधारणता प्रचुर परिमाण में होती है, असाधारणता अनुपाततः बहुत अल्प और यदा-कदा की चीज है। साधारण जन ही प्रायः पाये जाते हैं, असाधारण व्यक्तित्व के दर्शन कभी कभी होते हैं। इन्हीं तथ्यों को देखकर निर्धारित किया गया था कि सर्वाङ्गीण नाटक की रचना का विषय महत्वपूर्ण घटना, असाधारण व्यक्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और असाधारण परिस्थितियों को लेकर ही किया जा सकता है। स्वभाव से ही ऐसा सर्वांगीण चित्रण अपने विस्तार में अति संक्षिप्त नहीं हो सकता। इसीलिए उसमें तीन से लेकर ग्यारह अंकों तक का विस्तार स्वीकृत किया गया था। काव्य-तत्व की परम सिद्ध प्रेरणा और सफलता रस में मानी गयी है। सर्वांगपूर्ण नाटकों के लिए, उनके निमित्त और उद्देश्य की पूर्ति को लक्ष्य में रखकर विधान किया गया था कि प्रधान रस होना चाहिए श्रृंगार अथवा वीर। आगे चलकर भवभूति ने करुण-रस भी जोड़ दिया था। इस निर्धारण को आज बहुतों ने शायद यह समझ रखा है कि प्राचीन भारतीय या तो अधिक विलासप्रिय थे या कलह-प्रिय। किन्तु ऐसे आलोचक रस-सिद्धान्त से कोरे हैं। वे यही नहीं समझते कि रस-तत्व क्या है, उनका जीवन-व्यापारों में और काव्य-सृजन में कितना अधिक महत्व है। श्रृंगार यदि आदिरस या रसराज माना गया है तो यह उचित ही है। वीर यदि रसराज सहोदर कहा गया है तो यह भी उतना ही सार्थक है। वास्तव में न श्रृंगार की चेतना विलासिता में है और न वीर की संघर्ष या उद्दण्डता में, वरन् श्रृंगार है परम स्रोत मानव की सृजनात्मिकता सहज चेतना का और वीर है अभिव्यक्ति हृदय के भीतर प्रवाहित उत्साह की अजस्रता की। मानव के ये दो वरदान उसे कौन सा पदार्थ सुलभ नहीं कर सकते? वह कौन सा महत्वपूर्ण युग धर्म है जिसकी साधना बिना इन शक्तियों के सम्भव हो सकती है? यही रहस्य है इन दो रसों की इतनी प्रतिष्ठा का।

इनके अतिरिक्त हास्य, रौद्र, भयानक इत्यादि अन्य रस भी, जिनका प्रादुर्भाव हमारे जीवन की विविध घटनाओं में प्रायः हुआ ही करता है,—भले ही इनका महत्त्व श्रृंगार, वीर या करुण और शान्त का सा न हो,—जीवन की विविधता के स्रोत यही रस हैं। किन्तु इनसे सिक्त घटनाएँ सीमाबद्ध हैं। विशेष महत्त्व चाहे न भी हो किन्तु उपयोगी अथवा अनुपयोगी, वांछनीय अथवा अवांछनीय का निर्णय तो देना ही पड़ता है, असावधानी के कारण इन गौण रसों वाली प्रेरणाएँ भी हानिकर तो सिद्ध हो ही सकती हैं किन्तु यदि सावधानी से इनका निर्वाह किया जाय तो कल्याण निश्चित है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है नाट्य-शास्त्र प्रणेता ने उसे पंचम-वेद की संज्ञा दी थी, अन्य कारणों के साथ अवश्य ही एक यह भी था कि यह पंचम वेद अपने अंग और उपांगों के माध्यम से चतुर्वेदों के ही समान मानव को सत् प्रेरणा दे सकने में समर्थ होगा।

उप-रूपकों के प्रायः अट्ठारह भेद स्वीकृत हो चुके थे, ये सभी विस्तार में लघु अर्थात् एक अंक वाले या कभी कभी केवल कुछ दृश्यों वाले ही होते थे, इनकी निर्धारित पात्र संख्या भी कम होती थी, कुछ में केवल एक ही पात्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धारण है। रस के सम्बन्ध में भी इनमें केवल गौण रसों के प्रयोग का निर्देश है। इनके लक्ष्य और इनकी सीमा के अनुसार इनके निमित्त रंगमंच की योजना भी अति साधारण की गई थी। जहाँ उपरूपकों के सम्बन्ध में स्वीकृत विधानों की चर्चा है वहीं एक निर्देश सर्वस्वीकृत रूप में इनमें प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध में भी मिलता है और वह यह है कि भाषा-विषयक सर्वांगपूर्ण नाटकों के लिए निर्धारित उच्च वृत्तियाँ इन उपरूपकों में स्पष्ट वर्जित हैं। विधान है प्रधानरूप से लोकभाषा तथा स्थानीय प्रयोगों से युक्त भाषा का; यह आदेश अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। इससे यह सिद्ध है कि इन उप-रूपकों का क्षेत्र प्रधानतः स्थानीय हुआ करता था। अधिक से अधिक देखे और दिखाए जा सकें, यह भी एक उद्देश्य था जिसके कारण इनका विधान, इनकी परिपाटी और इनके प्रदर्शन से सम्बन्धित आवश्यकताएँ जटिलता से दूर रखी गयीं थीं। सच पूछा जाय तो इनकी आवश्यकताओं के अनुसार रंगमंच सम्बन्धी अथवा प्रदर्शनात्मक जटिलताओं की सम्भावना ही नहीं थी। चूंकि इनमें न शर्त्त थी आदर्श-नायक की और न व्यापक जीवन चित्रण की। इसीलिए कोई भी कलाकार किसी स्थान में बैठकर अपनी देशज भाषा में ही स्थानीय चरित्र को ही लेकर किसी न किसी कोटि के उपरूपक की सृष्टि कर सकता था और स्थानीय व्यक्तियों के द्वारा ही बिना किसी विशेष प्रयास के अपने उपरूपक का प्रदर्शन भी करा सकता था। इनके प्रस्तुत करने में कलाकार की असाधारण पटुता अथवा इसके कौशल-वैशिष्ट्य की भी कोई विशेष शर्त न थी। इस कोटि के उपरूपकों की रचना सर्वांगपूर्ण नाटकों की अपेक्षा सर्वत्र और सब कालों में बहुत अधिक हुई। यदि नाट्य-कला की कसौटी पर इन उप-रूपकों को कसा जाय तो स्पष्ट देख पड़ेगा कि उनमें कला-साधना की अपेक्षा निमित्त विशेष अधिक प्रखर है अर्थात् इनकी सृष्टि में कला का निमित्तवाहक स्वरूप ही प्रधान रहा है। यह कहना गलत है कि प्राचीन काल में सर्वांगपूर्ण नाटक अधिक लिखे जाते थे और आज सर्वांगपूर्ण नाटकों की अपेक्षा तथाकथित कारणों से एकांकी नाटकों का प्रचलन अधिक है। इतिहास सिद्ध कर देगा कि सर्वांगपूर्ण नाटक उप-रूपकों की अपेक्षा सदा ही कम लिखे गए। यदि संख्या के आधार पर ही यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि आज का मानव अधिक व्यस्त है, बड़े नाटक पढ़ने का उसके पास समय नहीं है, इसीलिए एकांकी अधिक लिखे जाते हैं तब तो प्राचीन काल के लिए भी मानव की व्यस्तता वैसी ही माननी पड़ेगी जैसी आज के मानव की। तब फिर आज के इस मानव की विशेषता क्या और ऐसे थोथे तर्क का महत्व ही क्या?

सीधा निष्कर्ष तो यह है कि बड़े और छोटे नाटकों का भेद निहित है उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्निहित सामग्री की बहुलता अथवा न्यूनता पर, उनके क्षेत्र के विस्तार पर, उनके उद्देश्य और आदर्श के स्तर पर और उनके प्रणेता की अपनी सृजन-शक्ति के परिमाण पर।

अब यदि आज के हिन्दी साहित्य के अगणित एकांकी नाम से लिखित और प्रकाशित साहित्य पर विहग दृष्टि डाली जाय तो प्रकाशन और मुद्रण सुविधा के कारण संख्या अवश्य ही बेनाप-तौल मिलेगी किन्तु यदि नाट्य-कला के स्थिर तत्त्वों की कसौटी पर इस समस्त सामग्री की समीक्षा की जाय तो इसमें से कितनी सही अर्थों में नाटक कोटि की ठहरेगी अथवा दृश्य-काव्य के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाली मिलेंगी, यह कहना कठिन है। प्रदर्शन-तत्त्व से हीन, रस सार से शुष्क और कथोपकथन के व्यावहारिक तत्त्व से रहित आज के हिन्दी के एकांकी अपने वास्तविक अर्थ में केवल लघु-कथाएँ मात्र हैं। स्थान और समय तथा दृश्य को ऊपर लिख देना ही किसी कृति को नाट्य-कला से विभूषित नहीं कर सकता। यूं तो कहने के लिए इन एकांकियों में भी वार्तालाप अथवा कथोपकथन का व्यवहार पाया जाता है किन्तु इन हमारे एकांकियों के वार्तालाप में न तो कथोपकथन की सजीवता होती है और न उनमें भाव या भावना-जन्य क्रियात्मकता की प्रेरणा होती है। वे तो बुद्धि से उपजे हुए विचार होते हैं जो बीच ही में जिह्वा झपट कर बाहर फेंक देती है, हृदय तक पहुँचने ही नहीं पाते कि किसी भी प्रधान अथवा गौण रस से अनुरंजित होकर मानव जीवन-व्यापार की किसी चेतना को दर्शकों में भी उत्पन्न कर सकें। दृश्य-काव्य की सबसे बड़ी कसौटी है उसकी अभिनय-शीलता और रंगमंचीय योग्यता। इस कसौटी पर तो आज के ये एकांकी किसी अंश में भी नहीं कसे जा सकते।

तब इन तथाकथित एकांकियों के रचयिता और इनके समर्थक आलोचक प्रतिपादित करने की चेष्टा करते देख पड़ते हैं कि हिन्दी की आधुनिक एकांकी-कला मूलतः पाश्चात्य से आई है इसलिए उसका रूप और व्यवहार बिल्कुल भिन्न है। भारतीय नाट्य-कला से ऐसे व्यक्ति अपना कोई सम्बन्ध ही नहीं बताना चाहते। इनमें से कुछ आड़ लेते हैं आजकल के अति प्रचलित मनोविज्ञानवाद की, किन्तु यह दलील भी बहुत दूर तक साथ नहीं दे सकती क्योंकि क्या पूर्व और क्या पाश्चात्य, क्या आधुनिक और क्या प्राचीन नाटक सम्बन्धी यह मान्यता तो शाश्वत रही है कि सफल नाटक को, चाहे वह किसी कोटि का क्यों न हो, अभिनयशील होना ही चाहिए। मनोवैज्ञानिक चित्रण अपने सफल रूप में और भी अधिक कठिन होता है किन्तु यदि सफल बन पड़े तब तो रस-संचार का जैसा पुष्ट माध्यम वह बन सकता है वैसा तो कोई अन्य माध्यम बन ही नहीं सकता। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच पूछा जाय तो सभी भाषाओं और सभी साहित्यों के रस-सिक्त समर्थ कवि नाटककार और कलाकारों का अमोघ-शस्त्र ही उनका मनोवैज्ञानिक आधार रहा है। लेकिन व्यवहार में यह इतना सस्ता नहीं है कि जिसका निर्वाह यूं ही हो सके।

नाट्य शास्त्र में स्वीकृत प्रदर्शन-तत्व और अभिनयशीलता का गुण दोनों ही मूलतः "क्रियाशीलता," (Action) पर अवलम्बित हुआ करते हैं। यह क्रियाशीलता तीन रूपों में प्रस्फुटित होती है। भारतीय नाट्य-शास्त्र ने "फलागम" का निर्देश करके कथा-प्रसंग में निहित क्रियाशीलता के ऐक्य की स्थापना की है। पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र के अनुसार इसी का विधान हम "Unity of action" में पाते हैं। पात्रों की गतिशीलता इत्यादि के माध्यम से भारतीय नाट्य-शास्त्र ने 'रंग रंजना' का विधान किया था तथा पाश्चात्य नाट्य शास्त्र ने इसे (activity) कहा था। पात्रों के अंग संचालन एवं भाव भंगिमा के माध्यम से भारतीय नाट्य-शास्त्र ने अभिनय और प्रदर्शन तत्त्व की स्थापना की थी। यदि कोई कलात्मक कृति नाटक कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है तो उसमें उपर्युक्त गुण अनिवार्य रूप से अपेक्षित हैं। अन्यथा वह रचना अन्य किसी कोटि की कला भले हो, नाट्य-कला नहीं हो सकती।

रूपक और उपरूपकों में ही छाया-चित्र-प्रतिमा, चित्र तथा पुत्तलिका नृत्य इत्यादि वर्गों का भी विधान है। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकार विशेष के काव्य को जिसे दृश्य काव्य की संज्ञा दी गई है, उसका क्षेत्र केवल चक्षुव्यापार तक ही सीमित नहीं है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत वे भी सभी प्रकार के रूपक और उपरूपक सम्मिलित हैं जिसमें भाव अथवा भावनाओं, विचारों, घटनाओं और परिस्थितियों की अभिव्यक्ति प्रदर्शन और अभिनय के माध्यम से की जाए तथा जिनका ग्रहण किसी भी ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से सम्भव हो। यहाँ दृश्य शब्द केवल चक्षुजन्य ही नहीं है, वरन् दर्शन अथवा अनुभूति का ग्रहण कर्णेन्द्रिय से भी प्रायः वैसा ही सम्भव हो सकता है जैसा कि देखने से। संगीत कला के माध्यम से भी नाटकीय प्रभाव उत्पन्न किया जाता था और आज भी किया जाता है। आज के युग का प्रचलित रेडियो रूपक भी इसी वर्ग का है।

इस प्रकार के सफल रेडियो रूपक भी फिर एक बार यही सिद्ध करते हैं कि नाटक की सफलता एकान्तरूप से अभिनय और प्रदर्शन तत्वों पर ही आधारित है जिन्हें सफल नाटककार शब्द-ध्वनि तथा कलात्मक क्रियाशीलता के माध्यम से उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी शोध: कुछ समस्यायें और सुझाव

श्री ओमप्रकाश सिंघल,

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि हिन्दी शोध की गति प्रति वर्ष तीव्रतर से तीव्रतम होती जा रही है। लेकिन बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हिन्दी के शोधार्थी के समक्ष आने वाली कठिनाइयों को दूर करने का कोई प्रयास सम्बद्ध अधिकारियों के द्वारा नहीं किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख में हिन्दी शोधार्थी के समक्ष आनेवाली दो कठिनाइयों की ओर विशेष रूप से संकेत करना चाहूँगा।

हिन्दी के शोधार्थी का बहुत अधिक समय अपने विषय से संबद्ध पुस्तकों की सूची तैयार करने में ही लग जाता है। हिन्दी शोध में तीव्रगति से होने वाले विकास को देख कर भी किसी विश्वविद्यालय ने हिन्दी में प्रकाशित साहित्य की प्रामाणिक एवं वर्गीकृत सूची तैयार करने की ओर ध्यान नहीं दिया है। संभवतः लोगों ने यह सोचा हो कि माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित "हिन्दी पुस्तक साहित्य" तथा नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित "हिन्दी का उच्चतर साहित्य' पुस्तकें शोधार्थियों के लिए पर्याप्त हैं। नव्यतम प्रकाशित पुस्तकों से परिचित कराने के लिए नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता से वर्ष भर के प्रकाशनों की सूची पुस्तकाकार प्रकाशित हो ही जाती है। अतः किसी नये ग्रन्थ के सम्पादन से क्या लाभ? लेकिन जिस किसी शोध निरीक्षक अथवा शोध-छात्र ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' तथा 'हिन्दी का उच्चतर साहित्य' नामी कृतियों का उपयोग किया है वह जानता है कि ये दोनों पुस्तकें कितनी अपूर्ण, अप्रामाणिक तथा भ्रामक हैं। जहाँ एक ओर लोगों की सम्पूर्ण कृतियों के नामोल्लेख के सिद्धान्त का पालन सर्वत्र नहीं किया गया है वहाँ दूसरी ओर किसी एक लेखक की कृति किसी दूसरे लेखक द्वारा विरचित बतला दी गई है। विश्वविद्यालय के आचार्यों का यह दायित्व है कि वे इस ओर अपना ध्यान देकर हिन्दी के शोधार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने का कष्ट करें।

पुस्तकों के समान ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की सूची तैयार करके प्रकाशित करने की योजना भी अभी तक कार्यान्वित नहीं हुई है। स्व० नलिन जी ने इस दिशा में पग उठाया था परन्तु विधि ने कार्य सम्पन्न होने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व ही उन्हें हमारे हाथों से छीन लिया। नागरी प्रचारणी सभा ने भी पुरानी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की सूची तैयार कराने का कार्य अपने हाथ में लिया था। उस दिशा में कुछ कार्य किया भी गया परन्तु ऐसा लगता है कि अब सारी योजना बट्टे खाते में डाल दी गई है। उस अनुमान का आधार यह है कि इस समय सभा न तो सूचियाँ ही तैयार करा रही है और न तैयार कराई गई सूचियों को प्रकाशित ही कर रही है। मेरा अनुरोध है कि सभा ने जो सूचियाँ तैयार कराई हों उन्हें तत्काल अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने का प्रबन्ध करे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा भी पत्रिकाओंमें प्रकाशित रचनाओं की सूची तैयार करने का कार्य आरम्भ किया गया है। सम्मेलन के अधिकारियों से भी मेरी यही प्रार्थना है कि वे उन सूचियों को अपनी मुख पत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित कर दें जो अब तक तैयार की जा चुकी हैं। पुरानी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की सूची तैयार करने के साथ-साथ आज कल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही सामग्री की वार्षिक विषय-सूची प्रकाशित करने का दायित्व भी किसी न किसी को लेना ही चाहिए। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक उपयुक्त सुझाव यही प्रतीत होता है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्ष भारत सरकार से यह प्रार्थना करें कि जिस प्रकार से नेशनल लाइब्रेरी प्रत्येक वर्षप्रकाशनों की विषयानुसार सूची प्रकाशित करती है उसी प्रकार से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की भी वर्गीकृत सूची तैयार करके प्रकाशित की जाए।

हिन्दी के शोधार्थी की तीसरी कठिनाई है—पुस्तकालयों का अभाव। हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल से सम्बद्ध विषयों पर कार्य करने वाले शोधार्थी को तो अनेक गांवों, मठों, मन्दिरों आदि की धूल फांकनी ही पड़ती है किन्तु जिन विषयों पर आसन लगा कर काम किया जा सकता है उन विषयों के शोधार्थियों को भी आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, कलकत्ता आदि विभिन्न स्थानों की यात्रा करनी पड़ती है। यदि उन सभी स्थानों की यात्रा करने के अनन्तर अपेक्षित पुस्तकें मिल जाएँ तो शोधार्थी को अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिए। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि पुस्तक मिल जाती है किन्तु आरम्भ के आठ-दस पृष्ठ फटे हुए होते हैं। ऐसी अवस्था में शोधार्थी के समक्ष यह समस्या उठ खड़ी होती है कि पाद-टिप्पणी में खंडित प्रति कह कर काम चला ले अथवा उस पुस्तक की खोज में घूमता फिरे। आज के इस अर्थाभावी और समयाभावी युग में एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करना कितना कठिन है, इस बात से कोई भी अपरिचित नहीं है। मेरा विनम्र सुझाव है। सम्पूर्ण देश में आठ-दस पुस्तकालय ऐसे अवश्य होने चाहिए जहाँ पर यथासम्भव प्रत्येक उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लब्ध एवं अनुपलब्ध पुस्तकों का संकलन हो। जो पुस्तकें अप्राप्य हो चुकी हैं उन पुस्तकों की टंकित प्रतियाँ तैयार करा ली जाएँ। उन पुस्तकालयों के संचालन के सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रखा जाय कि पुस्तकें केवल पुस्तकालयों में पढ़ने के लिए ही दी जाएँ। यदि ऐसा न किया गया तो पुस्तकों के खोने व फटने की आशंका अधिक रहेगी।

——

स्वदेशी आन्दोलन के आरम्भ होते ही उपेक्षित मातृभाषा का प्रश्न चर्चित होने लगा; विशेषतः बंगाल में, जहाँ पर कि भाषा, विभक्त बंगदेश के ऐक्य की अमर प्रतीक थी। परन्तु अब भी हिन्दुस्थानी को उसका उपयुक्त स्थान न मिल सका था। परन्तु बंगाल के राजनैतिक नेताओं में से एक पत्रकार स्व० काली प्रसन्न काव्य विशारद ने हिन्दुस्थानी के महत्त्व का सबसे पहले उस समय भी अनुभव किया और एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत की रचना भी हिन्दी में की। इसे सन् १९०५-१९१२ के विदेशी आन्दोलन के दिनों में बंगाली नव युवक कलकत्ता की सड़कों पर तथा अन्यत्र भी गाते फिरा करते थे। गीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार थीं—

"भैया, देश का ई क्या हाल।
खाक मिट्टी जौहर होती सब, जौहर है जंजाल।"

अन्त में यह पंक्ति थी—

"हो मतिमान देशकी सन्तान, करो स्वदेश हित।"

हिन्दुस्थानी के सर्वाग्र न आ सकने का एक कारण यह था कि बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब आदि प्रान्तों की भांति हिन्दुस्थानी क्षेत्र (बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत तथा अन्य प्रदेशों) की जनता राजनीतिक दृष्टि से उतनी जाग्रत नहीं हुई थी। परन्तु महात्मा गाँधी की तीक्ष्ण व्यवहारपूर्ण दृष्टि से हिन्दुस्थानी का महत्त्व छिपा न रह सका; उन्होंने हिन्दी या हिन्दुस्थानी को उत्तर भारत की आम जनता में राजनीतिक चेतना लाने के एकमात्र साधनरूप में पहले पहल देखा। इसके अतिरिक्त, उनके दृष्टिकोणानुसार हिन्दुस्थानी भारत के समस्त जनों को एक सूत्र में बाँधने वाली तथा उनकी एकता का प्रतीक स्वरूप थी।

—डा० सुनीति कुमार चटर्जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँसुओं की विजय

डा० रामकुमार वर्मा

राजनीति के क्षेत्र में अमर रानी लक्ष्मीबाई ने असमय ही अपने प्राण त्याग दिये थे। साहित्य के क्षेत्र में अमर सुभद्राकुमारी ने भी अपने जीवन के मध्य में ही संसार छोड़ दिया। जैसे सुभद्राकुमारी में रानी लक्ष्मीबाई के ही प्राण थे जो अपने प्राचीन संस्कारों में राजनीति और राष्ट्रीयता की भावना नहीं भुला सके। वे प्राण सुभद्राकुमारी का शरीर पाने पर पहले राष्ट्रीयता में स्पन्दित हुए, बाद में उसी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत साहित्य में। लेकिन मैं रानी लक्ष्मीबाई से पूछना चाहता हूँ—'देवि' तुम क्रान्तिकारिणी हो। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये तुम अनेक बार भारत भूमि पर अवतरित हो सकोगी किन्तु जीवन के मध्य में ही संसार छोड़ देना तुम्हें क्यों अच्छा लगता है ? तुम अमरत्व का अनुसरण नहीं करतीं, अमरत्व तुम्हारा अनुसरण करता है, किन्तु तुम अमरत्व के कंकाल को क्यों छोड़ देती हो ? कुछ अधिक जीवित रहकर उसमें अपनी स्फूर्तियों का रंग क्यों नहीं भरती ?

सुभद्राकुमारी संसार में नहीं हैं। क्या केवल वर्षों के ४३ सोपानों में ही उन्हें 'मातृ-मंदिर' का द्वार मिल गया ? यह जीवन-पथ बहुत छोटा था—उनकी सहज संभावनाओं को देखते हुए। जाते समय उन्हें कोई रोक नहीं सका। वे नागपुर से जबलपुर की यात्रा कर रही थीं। कौन जानता था कि उनकी इस छोटी सी यात्रा में उन्हें 'महा-यात्रा' पुकार रही है। क्षत्राणी किसी की ललकार सहन नहीं कर सकती। उसने उस महा-यात्रा के आह्वान को भी स्वीकार कर लिया।

साहित्य के सहस्रों कंठ सुभद्रा के प्रस्थान पर कुंठित हो गए हैं। जो साहित्य उनकी उत्कृष्ठ रचनायें पाकर गौरवान्वित हुआ था वही उनके चले जाने पर स्तंभित है। देखें, वह अपनी सुभद्रा की स्मृति किस रूप में सुरक्षित रखता है।

वे मुझे अपना आत्मीय समझती थीं। उत्साह से अनेक बार उन्होंने मुझसे मेरी रचनायें सुनी थीं और अपनी रचनाएँ मुझे सुनाई थीं। 'मुकुल' उनके काव्य-संग्रह पर दो शब्द लिखते समय मेरे मन में आशा और उमंग थी, आज ये पंक्तियां लिखते समय आँसू मेरी लेखनी का मार्ग रोक रहे हैं।

आज आँसुओं की ही विजय हो ! किन्तु मेरी कामना है कि मेरे इन आँसुओं की आर्द्रता से उनका प्रस्थान-पथ अधिक कोमल हो जाय—उन्हें कोई कष्ट न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगावतरण में प्रकृति चित्रण

प्रो० दमयन्ती तालवार

प्रागैतिहासिक काल में मानव ने जब कोकिल के स्वर को सुन अपनी अलसाई आँखें खोली होंगी, सामने मुस्कराते हुये पुष्पों को घास पर बिखरे हीरक कणों को लहरों पर फिसलती हुई स्वर्ण किरणों को देखकर वह आनन्द विभोर हो उठा होगा और आजतक वह प्रकृति के सुरम्य रमणीय श्रृंगार से आह्लादित होता आ रहा है। प्रकृति को पाकर मानव कलाकार बना। रत्नाकरजी ऐसे ही सिद्ध कलाकार हैं। इन्होंने पौराणिक कथाओं को कल्पना व कला के संयोग से सौन्दर्य प्रदान किया। वे पौराणिक गाथाओं के गायक हैं और उनका अन्तिम गान सुनाई देता है 'गंगावतरण' में। गंगावतरण में गंगा का सांस्कृतिक महत्त्व व उसकी उत्पत्ति का वर्णन है। गंगा का धार्मिक महत्त्व प्राचीनकाल से आजतक मिलता है। वाल्मीकि रामायण, ऋग्वेद, वैष्णव पुराण, देवी भागवत, महाभारत आदि सभी पावन कृतियों में गंगा का पावन रूप वर्णित है। भारत वर्ष में अनेक नदियाँ हैं, परन्तु गंगा के समान किसी का भी महत्त्व नहीं है, इसका कारण है :—

'बहुत नदी निकली पर्वत से, क्या शिव जटा बसी कोई।
कौन नदी हरि के चरणों को जल से धो सुख से सोई।"

गंगा को यह भाग्य प्राप्त हुआ। गंगा का वर्णन युग-युग से कवि करते आये हैं और आजतक कर रहे हैं। रत्नाकर जी ने गंगा का वर्णन कर हिन्दी साहित्य में गंगा की निधि को व्यापक बना दिया है।

साहित्य में प्रकृति वर्णन दो प्रकार का माना गया है :-

(१) अनुभूति भुक्त।

(२) परम्परा भुक्त।

अनुभूति भुक्त वर्णन में मुख्यता अनुभूति की होती है। रत्नाकर जी में यह अनुभूति अत्यधिक है। वे गंगावतरण लिखने के पूर्व कई बार हरिद्वार की यात्रा कर चुके थे और एक बार गंगोत्री भी गये थे।

परम्पराभुक्त वर्णन में प्रकृति वर्णन काव्य परम्परा पर अवलम्बित होता है। परम्परानुसार प्रकृति वर्णन दो प्रकार का होता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) आलम्बनगत प्रकृति वर्णन

(२) उद्दीपनगत प्रकृति वर्णन।

रत्नाकर जी ने इन दोनों रूपों में प्रकृति वर्णन किया है :—

आलम्बनगत चित्रण :— रत्नाकरजी ने गंगावतरण में आलम्बनगत चित्रण को प्रमुखता दी है; प्रकृति चित्रण का आरम्भ अयोध्या की स्थिति से होता है। अयोध्या पवित्र सरयू के तीर पर बसी हुई है। वहाँ की पृथ्वी 'मंजु मुद्रिका मणि' सी सुशोभित है। चारो ओर सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं, सुन्दर पर्वत श्रेणियों ने चारों ओर से अयोध्या को घेर रखा है। वहाँ अनेक सुन्दर वापी, कूप, तड़ाग हैं, किन्तु अयोध्या के सौन्दर्य को सरयू ने जो रूप दिया है, वह अद्वितीय है। सरयू तो अयोध्या का कण्ठहार है :—

'बसुधा-सुभग सिंगार-हार-लर सरयू सोहै।"

कवि ने एक रूपक बाँध दिया है। अलंकार के सहयोग से कवि ने प्राकृतिक दृश्यों में चित्रात्मकता उत्पन्न कर दी है। उत्प्रेक्षा व उपमा का प्रयोग तो कवि ने स्थान-स्थान पर किया है।

एक मनोरम स्थान जो सगर पुत्रों को हय खोजते समय मिला था उसकी शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

'निज सोभा मनु स्वर्ग गाड़ि तहँ धरी धरोहर।'

कवि की पूर्ण प्रतिमा गंगा वर्णन में मुखरित हुई है। गरुड़ के मुख से कवि गंगोत्पत्ति की कथा कहलाता है। गंगोत्पत्ति के प्रसंग में गोलोक वर्णन, रास-वर्णन, लास वर्णन आदि का भी चित्रण है। इन चित्रणों को कवि ने प्रकृति की पीठिका पर ही चित्रित किया है। गोलोक वर्णन करते हुये कवि कहता है कि विधि, हर, हरि तीनों गोलोक में "श्री राधा उत्सव" देखने जाते हैं—किन्तु वहाँ की रम्य सुषमा को देख कर उनके नयन चकित हो जाते हैं, वे चंचलता त्याग देते हैं। वन, उपवन, आराम, ग्राम, पुर, नगर सभी सौन्दर्य के सदन हैं। वृन्दावन की स्थिति तो और भी अधिक रमणीय है। वह वत्तिस संयुक्त वनों के बीच में स्थित है। वहाँ पर गिरिराज गोवर्द्धन अपनी मणिमय छवि से युक्त सुशोभित है। वहाँ दिव्य द्रुमों की पंक्तियाँ दिखाई देती हैं, जिन पर लहराती लतायें लिपटी हुई हैं। 'श्याम बरनि' यमुना भी अपनी चंचलता, मंजुलता, मधुरता से युक्त बह रही है। शीतल वायु मन्दगति से बहती हुई परिमल फैला रही है। मध्यकक्ष में पवित्र अक्षयवट है, जिसका ऐसा सौन्दर्य है :—

" मनु लोक-पति सीस छत्र मानिक-मय छाजत।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चारु चंदोवा ऐसा सुशोभित है मानो 'कोटि चन्द्रद्युति दिव्य लसत।' ऐसे रमणीय स्थान पर श्री कृष्ण रास रचाते हैं। यहीं पर श्री कृष्ण के संग "इक बाल-मनोहर" के रूप में गंगा प्रकट हुई और इस गंगा का स्वरूप है :—

'श्यामा सुघर अनूप—रूप गुनसील सजीली,
मंडित मृदु-मुख-चन्द्र-मन्द मुसक्यानि लजीली,
काम—बाम-अभिराम-सहस-शोभा शुभ धारिनी।'
साजे सकल सिंगार दिव्य हेरत हिय हारिनी।"

यही सुषमा-निकेत गंगा जब ब्रह्मा के कमण्डल से निकलती है तो, विकराल रूप धारण कर लेती है :—

'भरति भुवन भय—भार मचावति अखिल उपद्रव।'

और इस धारा के अपार वेग से जो घोर ध्वनि उत्पन्न हुई उसकी धमक से त्रिभुवन डोल गया। इस समय ऐसा लगता है :—

"महा मेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गरजे।"

"और इसके प्रभाव से भानु तुरंग" चमक कर विपथगामी हो गये। हरि हर के वाहन रोकने से भी नहीं रुकते। चारों ओर ध्वनि प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है। धराधर के हृदय धड़कने लगे। घोर ध्वनि करती हुई गंगा " सगर सुतनि के पाप ताप पर बोलति धावा"—आगे बढ़ती जाती है :—

किन्तु तरल गंगा कब तक कठोर व भीषण रूप धारण करे रहती। उसमें कोमलता, मधुरता, मंजुलता सुकुमारता, सुघरता उत्पन्न हो जाती है। अब उसकी गति में सौन्दर्य आ जाता है। वह इठलाती हुई, बलखाती हुई, लहराती हुई शिवजी की ओर जाती है। इस समय इसकी धारा कैसी है :—

"रुचिर रजतमय कै बितान तान्यों अति बिस्तर
झिरति बूँद सो झिलमिलाति मोतिन की झालर।"

जल की बून्दों को मोती समझना कवि की मौलिकता नहीं है। यही भाव भारतेन्दु की इन पंक्तियों में परिलक्षित होते हैं :—

"नव उज्ज्वल जल धार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति॥"

गंगा जी के इस रमणीय सौन्दर्य को देवगन विमान, हाथी, घोड़ों पर चढ़कर देखते हैं। देवगण आभूषणों से भूषित हैं। इन आभूषणों की आभा गंगा जल में प्रतिबिम्बित होती है। ऐसा लगता है मानों "चहुँ ओर विमलविभाकर" हों। अनेक रूप धारण करती हुई गंगा कभी वेग सहित कभी मन्द गति से सतत प्रवाहित होती हुई अपने लक्ष्य स्थान पर जा रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके वेग को वायु अपनी संचालन शक्ति से नियोजित करती रहती है। जल से जल टकराता है, इससे फेन उफन जाता हैं। यह फेन ऐसा लगता है मानो क्षीर सागर में मोतियों का समूह सुशोभित हो रहा हो।

इस गति से प्रवाहित होती हुई गंगा शिवजी की जटाओं में अवतरित होती है। यहाँ से गंगा राजा भगीरथ का अनुसरण करती हुई सगर पुत्रों को तारने के लिये आगे बढ़ती है। शृङ्ग-शिखरों को तोड़ती-फोड़ती अपना मार्ग बनाती हुई बढ़ी जाती है। इसके प्रवाह में मिल कर ललित "हिम-कन" "तारागन" की भाँक्ति चमकते हैं। ऐसा लगता है मानों वसुधा का विधि ने शृंगार किया है और उसे "सुघर सेत सुख-सार तार-बाने की सारी पहनाई है।"

गंगा अटूट धारा में बह रही है। कहीं वह स्थान पाकर विस्तार बढ़ा लेती है और कहीं संकीर्ण स्थान पाकर अपने को सूक्ष्म बना लेती है। अपने उज्ज्वल प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करती हुई अपने कार्य में संलग्न है। गंगा का उज्ज्वल रूप ऐसा प्रतीत होता है मानो महि देवी का हीरकमय मुकुट हो।

गंगा "दुहूँ कूल" बनाती हुई जब प्रयाग पहुँचती हैतो उसका अनुपम सौन्दर्य पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। गंगा का उज्ज्वल जल यमुना के जल से मिलकर ऐसा लगता है मानो तीर्थ राज पर 'सितासित चमर' दोनों ओर से आकर ढुरते हों। ये दोनों धारायें जब आपस में टकराती हैं तो ऐसा लगता है मानो श्वेत और श्याम घन पंक्तियाँ नभ में सुशोभित हो रही हैं। यही गंगा जब गंगासागर पहुँचती है तो ऐसा लगता है, मानो समस्त प्रकृति उसके स्वागत हेतु शृङ्गार किये खड़ी है। वहाँ जाते ही गंगा ने सम्पूर्ण बातावरण को प्रभावित कर दिया। सगर पुत्रों को मोक्ष मिल गया। सगर पुत्रों के साथ जो वृक्ष, लतायें वन आदि जले थे वे भी हरित वर्ण हो गये। पवन शीतल हो गया, बादल झूमने लगे, फूल बरसने लगे।

कवि गंगा के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अनेक उपमाओं व उत्प्रेक्षाओं द्वारा करता जाता है, फिर भी उसके अनुपम सौन्दर्य को अपनी लेखनी द्वारा बद्ध नहीं कर पाता। अतः अन्त में यह कह कर, कवि सन्तुष्ट होता है :—

"भाषि गंग सम गंग रंग कविता कौ राखत।"

पंडित राज जगन्नाथ ने भी गंगा के अपूर्व सौन्दर्य के लिये अपनी गंगा लहरी में कहा है :—(रूपान्तरित शब्दों में)

'ऐसा तत्त्व विशुद्ध आपका वर्णन वेद न कर पाते
मन वाणी से अगम अगोचर निराकार कह रह जाते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम्बनगत चित्रण के अतिरिक्त कवि ने प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण भी किया है—परन्तु यह बहुत कम स्थानों पर मिलता है। राजा जब भगीरथ साधना के लिये गोकरन धाम जाते हैं, तो उन्हें समस्त प्रकृति में एक प्रेरणा दिखाई देती है। फलित प्रफुल्लित तरुबल्लीको देखकर ऐसा लगाता है—मानों ये कामना सफल होने के सगुन दिखा रहे हैं। सर-सरिता का स्वच्छ जल देख कर राजा को ऐसा प्रतीत होता है। 'मनु मन आसय पूर होनके जोग जतावत।' मकरन्द से अघाये हुये मंजु मलिन्द पुंज का गुंजरण सुनकर राजा को ऐसा लगता है 'मनहु मुदित मन करत तोष के घोष सुहाये।' और पक्षियों का सुमधुर आनन्द नाद सुन कर ऐसा लगता है मानो 'वाँछित जीवन फल प्राप्त होने का धन्यवाद दे रहे हैं।

—उसके अतिरिक्त प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण गंगावतरण होने के बाद मिलता है। गंगा के अनुपम रमणीय सौन्दर्य को निहार कर नगरवासियों की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती। उनके हृदय में तरह-तरह के भाव उत्पन्न होते हैं। कोई उमंगित होकर जल के छींटे उछालता है, एक दूसरे को सभी भीगोना चाहते हैं। इधर से उधर बहती हुई गंगा मानों कौतुक दिखा रही है। इस कौतुक से उद्दीप्त हो कर जन-जन विस्मित है। गंगा की उतंग तरंग रंग प्रतिभा आदि को देखकर कवियों के हृदय में अनेक सुन्दर भावों का उद्रेक होता है। नवीन काव्य रचना का चाव उन्हें उमंगित कर देता है।

कवि ने उपमान के रूप में भी प्रकृति चित्रण किया है। मुख की उपमा कमल व चन्द्रमा से तो स्थान-स्थान पर दी है। इसके अतिरिक्त अनेक सुन्दर उपमान कवि ने खोज डाले हैं। सगर को जब ज्योतिषी यह सूचना देता है कि उनके पुत्र पाताल में हैं तो उनके मुख की प्रसन्नता के भाव दिखाई दिये। कवि ने प्रसन्नता की उपमा इस प्रकार दी है—

"मानो सूखत सालि-खेत पर घन घहराने।"

रास लीला में संलग्न कृष्ण और गोपियों की उपमा कवि वृक्ष व लताओं के आलिंगन से देता है :—

"मनु तमाल पर सोन जुही की लसै माल बर।"

शिव के महान पौरुष की उपमा भी कवि ने प्रकृति के उपकरणों से दी है। शिव का वीर और रौद्र रूप ऐसा है—

"मनहु भानु-सित भानु-किरन-विरचित पटवर की।
झलक दुरंगी देति देह-द्युति शिव शंकर की॥

जल भरकर जाती हुई स्त्रियों के घड़ों से छींटे उछल रहे हैं। ऐसा लगता है

"अरविन्दनि तैं चलत मनहु मकरन्द फुहारे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने प्रकृति का सुन्दर मानवीकरण भी किया है। जिस समय सगर पुत्र योजन-योजन महि बाँट कर पृथ्वी खोदने लगते हैं तो पृथ्वी दुःख से कराह उठती है :—

"मनहु खाई हिय धाइ मेदिनी मर्म बिदारी।
टेरति उच्च विषाद नाद सों हरि दुःख हारी॥

रत्नाकर जी द्वारा किये गये प्रकृति चित्रण को हम अनेक रूपों में देखते हैं, परन्तु उन्होंने जो गंगा के सौन्दर्य का वर्णन किया है—वह अद्वितीय है। सच तो यह है कि गंगा सौन्दर्य, समृद्धि, सौभाग्य, ऐश्वर्य, सुधा एवं शिवत्व की साकार प्रतिमा है।' उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए पंडित राज जगन्नाथ ने कहा है :—

" समृद्धं सोभाग्यं सकल षसुधायाः किमपि त्ने,
भेदेश्वर्यं लीला विजेत जगतः खण्ड परशोः
श्रुतीनां सर्वा वे संस्कृतमथमूर्त सुमनस।
सुधा सौन्दर्य त सलिलमशिव तः शमयतु।"

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का गीति-काव्य

प्रो० रामप्रीत उपाध्याय

गीति काव्य हृदय की रागात्मक अनुभूति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। हृदय सागर के सूने तट पर जब-जब भाव उर्मियाँ आकर टकराती हैं, जब-जब अतीत की सुखद एवं दुखद मादक स्मृतियाँ आलोड़ित और विलोड़ित होती हैं तब-तब हृदय के तार झंकृत होकर सरस गेय काव्य की सृष्टि करते हैं। सुख-दुख की सहज सरल स्वानुभूति ही गीति काव्य का प्राण है और उसकी मधुर अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य का शरीर है। जब थका मन जीवन के सूनेपन में भाव तरु की शीतल स्निग्ध छाया के नीचे कल्पनाप्रिया के साथ विलास करने लगता है और उसके फलस्वरूप जब वहाँ श्रीसुख सौरभ की सघन वृष्टि होने लगती है तब मन विलसित होकर अंगड़ाई लेने लगता है और स्वतः गा उठता है। यहीं गीति काव्य की सृष्टि होती है। संगीत, सौन्दर्य, सच्ची अनुभूति, आत्माभिव्यक्ति, वेदना और कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण ही गीति काव्य का वह धरातल है जहाँ प्राण कोकिल पंचम तान में गा उठता है। सारांश यह कि गीतिकाव्य के लिए निम्नलिखित तत्त्वों की अपेक्षा है—संगीत, वेदना, सुख-दुख की स्वानुभूति, भावकी एकता एवं प्रबलता, संक्षिप्तता, गेयता, सरलता एवं कोमलकान्त पदावली। इन तत्त्वों के अभाव में गीतिकाव्य की रचना हो ही नहीं सकती।

विषय की दृष्टि से गीतिकाव्य के निम्नलिखित भेद प्रभेद हो सकते हैं—प्रेमगीत, करुणागीत, जागरणगीत, संबोधनगीत, व्यंगगीत, धार्मिकगीत, प्रशस्तिगीत, शोकगीत, युद्धगीत, वीरगीत, नृत्यगीत, सामाजिकगीत, उपालंभगीत, गीतनाट्य और सानेट (चतुर्दशपदी गीत)। पर मुख्यरूप से शैली की दृष्टि से इसके दो भेद हैं—लोकगीत और साहित्यिकगीत। लोकगीत बहुत व्यापक एवं सर्वप्रिय होता है। जीवन की समस्याओं से सम्बधित जितने भी सुख-दुख के मादक क्षण हो सकते हैं, सबके लोकगीत हैं। इसमें प्रेम, मिलन, विरह, वेदना, श्रम, लज्जा, लालसा, उल्लास आदि सभी प्रवृत्तियों के मनोरम गीत पाये जाते हैं। मानव मन की जितनी भी रंगीन कल्पनाएँ हो सकती हैं, सबके लोकगीत हैं। इसमें मौलिक भावों की अभिव्यक्ति बड़े ही सहज भाव से हो जाती है। लोकगीत लोकजीवन से सम्बन्धित होने के कारण बड़े ही मधुर होते हैं। ये लोकगीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न रुचि के पोषक होते हैं। कुछ विशेष अवसर इस प्रकार के होते हैं—मेलागीत, हल्दीगीत, विवाहगीत, माड़ोगीत, विदाईगीत, असवारीगीत, रोपनीगीत और झूलागीत। हल्दीगीत का यह उदाहरण जो प्रायः सभी भोजपुरी इलाकोंमें प्रचलित है, विशेष रूपसे द्रष्टव्य है :—

'साठिके चउरा, लहालरि दूबरे, चूमहि चलेली राजा धियरी रे।
चूमि चूमि रामा देलो असीस रे, जियहिं मोर बबुआ लाख बरिस रे ॥'

इन गीतों में जो वेदना, संवेदना एवं अभिव्यंजना है वह भला साहित्यिक गीतों में कहाँ ? लोकगीत अपने मिठास के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके भाव बड़े मर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक होते हैं। वे अपनी चुम्बकीय शक्ति के कारण हृदय पर शीघ्र ही अधिकार जमा लेते हैं।

हिन्दी गीतकाव्य संस्कृत साहित्य की उपज है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं भागवत गीतों में गीतकाव्य के अनेक तत्त्व इधर-उधर बिखरे हुए हैं। बौद्ध-साहित्य की थेरी गाथा अपनी गेयता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कबीर इन थेरी गाथाओं से बहुत प्रभावित हुए हैं। बाल्मीकि रामायण भी अपनी गेयता के लिए प्रसिद्ध है; पर इसे विद्वत् जन ही गा पाते हैं। महाकवि कालिदास की कृतियों के साथ भी यह बात घटित होती है। इस वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के बाद जब हम 'प्रकृति एवं अपभ्रंश' साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें अनेक गीतस्थल दिखलायी पड़ते हैं जिनमें यौवन है, उन्माद है और सबको अभिभूत करने की अनुपम क्षमता। प्राकृत का एक गीत लीजिए—

'जं तंगुलियाहरण-च्छलेणां सुदूरं णिपीड़ियो तुम्हि।
सो मे तह लग्गो च्चिय अज्ज बि हत्थो ण बीसरइ ॥

(नायिका नायक से कहती है कि यह मेरा हाथ उस सुख को आज भी नहीं भूलता जिसे तुमने अंगूठी पहनाने के बहाने दबा दिया था)

संस्कृत गीत काव्य का उच्चतम विकास हमें जयदेव में मिलता है। उनके गीतों की अभिव्यक्ति कोमलकान्त पदावली में हुयी है। इस महाकवि ने विद्यापति, चंडीदास तथा हिन्दी के अनेक गीतकारों को प्रभावित किया है। विद्यापति एक सफल लोक कवि हैं। इनका पद लालित्य, रंगीन एवं कौतूहल पूर्ण कल्पना, सरसता, मधुरता और सुन्दर शब्दचयन किसी भी गीतकार के लिए अनुकरणीय हैं। मिथिला की सघन अमराइयों, महलों, एवं खेत-खलिहानों में आज भी इनके गीत चलते-फिरते लोगों द्वारा मुखरित होते हैं। विद्यापति की भावुकता को समझने के लिए उनका एक विरह छन्द यहाँ प्रस्तुत है —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर वन, कोकिल पंचम गावे रे।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल, पिया निज देश न आवे रे।
चानन चान तन अधिक उतापए उपवन अलि उतरोले रे।
समय वसंत कंत रहु दुर देस जानल विधि प्रतिकूल रे।
दिन दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनु न जानि कि जीव परजंत रे।
विद्यापति कह धिक धिक जीवन माधव निवसन कंत रे।'

इस तरह विद्यापति हिन्दी काव्यगीत के प्रथम प्रणेता हैं। विद्यापति के बाद हिन्दी गीतिकाव्य परम्परा में कबीर का स्थान आता है। इनके गीत विरह की दुखित भावनाओं से ओत-प्रोत हैं और उनमें निर्गुण ब्रह्म की कहानी है। परमात्मा से बिछुड़ने पर आत्मा रोने लगती है। आत्मा और परमात्मा की अनुभूतियों के माध्यम से कबीरने अनेक गीत गाए हैं। एक उदाहरण लीजिए—

मन रे तन कागज का पुतला।
लागै बूंद विनसि जाइ छिन में, गरब करै का इतना।
माटी खोदहिं भींत उसारैं, अन्ध कहै घर मेरा।
आवै तलब बाँधि लै चालै, बहुरि न करिहैं फेरा॥

सूर पर विद्यापति और कबीर दोनों का मिश्रित प्रभाव पड़ा है। सूर के गीतों में भावुकता, विदग्धता और तन्मयता की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। इनके गीतों के विषय, विनय, मिलन और विरह हैं। विरह एवं वात्सल्य वर्णन में तो ये अनूठे हैं। इनकी गोपियाँ कृष्ण के वियोग में रातदिन आँसू बहाती रहती हैं—

"निसदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें श्याम सिधारै।
दृग अंजन न रहत निसि बासर कर कपोल भये कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ उर बिच बहत पनारे।"

तुलसी में भावुकता और तन्मयता तो है पर वह आदर्शोन्मुख है। भक्ति की जञ्जीर से जकड़ा हुआ है। वे विरह के गीत गाने में असमर्थ हैं क्योंकि उनकी सीता आदर्श की मूर्ति एवं स्वकीया हैं, सूर की गोपियों की तरह परकीया और चञ्चल नहीं। यही कारण है कि उन्होंने विरह और मिलन के गीत न गाकर भजन गाये हैं—

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी की गीतावली, कवितावली और विनय पत्रिका के गीत इसी प्रकार हैं। उन गीतों में भक्ति पक्ष की ही प्रधानता है।

मीरा भी एक सुन्दर गायिका हैं। उनकी वेदनाभिव्यक्ति सरल, सरस और मधुर है। मीरा अपने प्रिय के वियोग में रो-रो कर गाती हैं और गा-गाकर रोती हैं—

"श्याम बिन सखि रह्या न जावां।
तनमन जीवन प्रीतम वारया कारे रूप लुभावां।
खान-पान म्हारे फीका लागा नैना रह्या मुरझावां।
निसदिन जोवां बाट मुरारी कबरो दरसन पावां।
बार बार थारी अरजा करश्यूं रेन गया दिन गावाँ।
मीरा रे हरि थे मिलया बिना तरस-तरस जीया जावां॥"

संत कवियों में कबीर को छोड़कर भी अनेक अन्य गीतकार हैं जिनमें प्रमुख रूप से रैदास, मलूकदास, नानक, दूलनदास, दादू दयाल, रज्जब, चरणदास, सहजोबाई और दयाबाई के नाम उल्लेखनीय हैं। इन संत कवियों ने उलटबासियों की मधुमती भूमिका में लौकिकता के धरातल पर अलौकिकता का गान गाया है। इनके गीत गूढ़ और निर्गुण मत के पोषक थे। यही कारण है कि इन कवियों को कबीर, सूर, मीरा आदि जैसी ख्याति न मिल सकी।

रीतिकाल के गीतकारों में रसखान, घनानन्द, बोधा, आलम और ठाकुर हैं। इन गीतकारों ने राधा और कृष्ण की ओट में लौकिक प्रेम के गीत गाये हैं। इनके गीतों का विषय सौन्दर्य, प्रेम, मिलन एवं विरह है। इनकी भाषा ब्रज है। खास तौर से रसखनि को अपने गीतों में खूब सफलता मिली है।

रसिक हृदय 'रसखानि' अपने भगवान श्रीकृष्ण में कितनी अनन्य भक्ति रखते थे, निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है। कवि की लालसा जन्म-जन्म में रस लालित्य के मधुमय परिप्रेक्ष्य में पूर्णरूपेण प्रतिविम्बित हुयी है :—

"मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसु मेरे चरौं नित नंद की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।"

हिन्दी गीत काव्य का वास्तविक विकास आधुनिक युग में ही हुआ। भारतेन्दु युग के गीतकारों में स्वयं भारतेन्दु, कवि सत्यनारायण, और वियोगी हरि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन गीतकारों ने अपने राधाकृष्ण प्रेम को ब्रजभाषा के माध्यम से व्यक्त किया है। इनके गीतों के विषय सामाजिक, धार्मिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय हैं। भारतेन्दु के गीतों में भ्रमर गीत की परम्परा कहीं-कहीं परिलक्षित होती है। इनकी निम्न पंक्तियों में सूर का सा सौन्दर्य छलकता प्रतीत होता है :—

"भौंरा रे रस के लोभी, तेरो का परमान।
तू रस मस्त फिरत फूलन पर, करि अपने मुख गान॥
इतते उत डोलत बौरानो किए मधुर मधुपान।
"हरीचंद तेरे फंद न भूलूं, बात परी पहिचानि॥

द्विवेदी युग के गीतकारों में श्रीधर पाठक, श्री मैथिलीशरणगुप्त, सुभद्रा-कुमारी चौहान और ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि प्रमुख हैं। पाठकजी के गीत प्रकृति प्रेम से सम्बन्धित हैं। श्री गुप्तजी ने कोई स्वतंत्र काव्यगीत नहीं लिखा है बल्कि साकेत और यशोधरा की पंक्तियों में ही कुछ गीत तत्त्व बिखरे दिखाई पड़ते हैं। साकेत का नवम सर्ग गीतों से परिप्लावित है। विरहिणी उर्मिला का एक गीत सुनिए :—

"मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।"

सुभद्राकुमारी चौहान कृत 'झांसीवाली रानी', 'विटियामेरी' और 'पूजागीत' हिन्दी काव्य जगत के श्रेष्ठ गीत हैं।

छायावाद के चार प्रमुख कवि हैं —प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी, और ये चारों उच्चकोटि के गीतकार हैं। प्रसाद ने अपने नाटकों में अनेक अच्छे-अच्छे गीत लिखे हैं। इनके गीत भावमय, मधुमय, वेदनामय और स्मृतिमय होते हैं। गीतिकाव्य की दृष्टि से "अरुण यह मधुमय देश हमारा" "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती" 'वीती विभावरी' और 'लाज भरा सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यों' तथा 'भारत महिमा' बड़े ही आकर्षक हैं। लहर, प्रेम पथिक, और कामायनी में भी अनेक सुन्दर गीत हैं जो गायकों द्वारा गाए जाते हैं। प्रकृति के सुकुमार कवि पंत के गीत सौन्दर्य एवं प्रेम से युक्त होते हैं। एक गीत लीजिए जिसमें एक नायिका नायक को वसंत सा यौवन और फूल सा उन्माद समर्पित करती है—

"नव अंगों का शाश्वत मधुमास लुटाती हो"
बजते निःस्वर नूपुर छमछम, सांसों में थमता स्पन्दन क्रम
तुम आती हो, अन्तस्तल में शोभा ज्वाला लिपटाती हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला एक अच्छे गीतकार हैं। 'गीतिका' के गीतों में संगीतात्मकता एवं भावुकता अधिक है। "तुम और मैं" एक अच्छा दार्शनिक गीत है। इनका एक स्वतंत्र गीत लीजिए जिसमें स्नेह की माँग है—

"मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?
मेरे दुख का भार झुक रहा, इसीलिए प्रति चरण रुक रहा।
स्पर्श तुम्हारा मिलने पर क्या, महाभार यह झिल न सकेगा ?"

महादेवी वेदना की गायिका एवं साधिका हैं। इनके गीतों में लय, तान, तन्मयता और मधुमयता सब कुछ है। इनके गीतों में वेदना मुखर हैं, प्राण आकुल हैं, और दर्शन सशक्त है। इनका एक गीत लीजिए—

तुम्हें बांध पाती सपने में।
तो चिर-जीवन-प्यास बुझा लेती उस छोटे क्षण अपने में।
पावन घन सी उमड़ बिखरती, शरद निशासी नीरव घिरती;
धो लेती जग का विषाद, ढुलते लघु आँसू कण अपने में॥

सारांश यह कि प्रसाद प्रेम एवं सौन्दर्य, पंत प्रकृति, निराला पौरुष तथा महादेवी वेदना की विशेष गायिका हैं। इन छायावादी एवं रहस्यवादी कवियों ने गीति काव्य को भाव एवं शिल्प दोनों दिया।

डा० राम कुमार वर्मा एक सफल गीति चित्रकार हैं। इनका एक सजल अनुहार लीजिए —"प्रिय तुम्हारा स्वर बनूँ मैं।

प्रेम की इस अग्नि से क्यों, धूमसी उठती निराशा ?
क्यों हृदय की भावना को, मिल सकी अबतक न भाषा ?
हों तुम्हारे ये लजीले प्रश्न, तो उत्तर बनू मैं।"

राष्ट्रीय एवं जागरण गीत गाने वालों में श्री दिनकर, नवीन, नेपाली, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, अंचल, सुमन, बच्चन, नरेन्द्र आदि प्रमुख हैं। इन कवियों के प्रेमगीत शुद्ध और भावात्मक होते हैं। दिनकर कृत, आदि संगिनी सुनसान थी, एक प्रसिद्ध गीत है।

"मत मुँह मोड़ अरे वेदरदी, काँटे तनिक निकालेजा।"

'नवीन' का एक सुन्दर गीत है जिसमें कवि ने निर्मोही प्रियतम का वर्णन किया है। नेपाली का —

"तन का दिया प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रात भर'
अंचल का "अब तक प्रिय ! मैं रही तुम्हारी, अब हो गई पराई"

श्री माखनलाल चतुर्वेदी का 'प्राण में रागिनी छा गई, 'सोहनलाल द्विवेदी का 'नयनों की रेशम डोरी से' तथा 'सुमन का प्रणय गीत' प्रेयसि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुहार कहाँ है' गीति काव्य कला की दृष्टि से सुन्दर है। श्री बच्चन हालावाद के गीतकार हैं। ये उमर खैयाम के सफल अनुगामी हैं। इनके गीतों में खुमार, मस्ती एवं जिंदादिली है।" 'इस पार 'प्रिये' मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा" बच्चन का श्रेष्ठ गीत है। नरेन्द्र शर्मा प्रेम के सच्चे गीतकार हैं। इनके गीतों में यौवन का उन्माद ज्वार सा प्रतीत होता है। इनके विरह गीतों में निराशा के क्षण परिलक्षित होते हैं—

"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ?
अब न रोना, व्यर्थ होगा हर घड़ी आँसू बहाना'
आज से अपने वियोगी हृदय को हँसना सिखाना,
अब न हँसने के लिए हम तुम मिलेंगें।"

इन गीतकारों के अतिरिक्त उदयशंकर भट्ट, रमाशंकर सुमन, आरसी, तारा पान्डेय, धर्मवीर भारती, भगवती चरण वर्मा, नीरज, जानकी बल्लभ शास्त्री, वीरेन्द्र मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, सुमित्राकुमारी सिन्हा, शम्भुनाथ सिंह, विद्यावती कोकिल और हँसकुमार तिवारी के नाम उल्लेखनीय हैं। ये प्रगतिवाद के सच्चे गीतकार हैं। ये किसी एक रुचि या वाद के पोषक नहीं, अपितु भिन्न-भिन्न विषयों के सफल गीतकार हैं। इन गीतकारों ने जीवन को बहुत निकट से देखा है तथा यथार्थ के धरातल पर ही उनका गान गाया है। प्रगतिवादी गीतकार छायावादी कवियों की तरह न तो भूत की मादक स्मृति में विस्मृत ही होते हैं और न तो भविष्य की रंगीन कल्पना में डूबते ही उतराते हैं। वे वर्त्तमान से सम्बन्ध रखते हैं तथा उसी के धरातल पर जीते और मरते हैं। वे जीवन की समस्याओं का निदान भौतिक साधनों से ही करना चाहते हैं। वे जीवन को सत्यशील बनाना चाहते हैं। यही उनका काव्य दर्शन है।

आज नयी कविता की बड़ी धूम है। यह उनके शब्दों में एक नया प्रयोग है। जो पहले प्रयोगवाद था, आज उसी ने नयी कविता का रूप धारण कर लिया है। विषय एवं शिल्प की दृष्टि से वस्तुतः दोनों एक हैं। नयी कविता वाले कविता के लिए लय, ताल, स्वर, सूर, मात्रा आदि का बंधन स्वीकार नयी करते। उनका कहना है कि ये आ जाँय, तो ठीक है वरना इन्हें धर पकड़ कर लाने की अपेक्षा नहीं है। इनकी दृष्टि में कविता कल्पना का एक ठोस रूप है। वे प्राचीन परंपरा का अनुगमन न कर एक नये पथ के अन्वेषी हैं। वे मंजिल नहीं, राह के प्रेमी हैं। आज वे अपने नित नये प्रयोगों के द्वारा अपनी साधना का पथ बुहारते चले जा रहे हैं। उनके इस पथ का उद्देश्य क्या है, शायद वे भी इसे स्पष्ट रूप से नहीं जानते। सच यह है कि वे अपनी धुन में मस्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कविता वालों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे अपनी कुंठा, निराशा और रुचि को समाज पर जबरन लादते हैं—पर मेरी दृष्टि में ऐसी बात नहीं है। किसी के नवीन विचार नये उपमान किसी को न रुचे, तो उसका क्या दोष है ? वह तो एक विद्यार्थी की तरह अपनी बात समाज के सामने रखता है। विद्यार्थियों की त्रुटियां क्षम्य होती हैं, यह जानकर आलोचक वृन्द काम लें, तो दोनों की समस्यायें सुलझ जायेंगी। नयी कविता की भूमिका में भी अनेक गीत रचे गये हैं जो बड़े ही सुन्दर, मधुर और आकर्षक हैं। इन गीतकारों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नेमिचन्द्र जैन, रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्र आदि प्रमुख हैं। इन गीतकारों ने जीवन की यथार्थता का गीत तो गाया ही है, साथ ही प्रेम एवं सौन्दर्य से भी अछूते नहीं रहे हैं। वास्तविकता यह है कि ये गीतकार टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों से कहीं अधिक सुन्दर गीतों में ही सफल हुए हैं। गिरिजाकुमार माथुर का "विदा समय क्यों भरे नयन हैं" धर्मवीर भारती का "किसी को प्यार मुझपर पाप कैसे हो", रवीन्द्र भ्रमर का "उजली धुली तुम कौन" और श्रीवीरेन्द्र का "कुहु कुहु कुहक रही कोयलिया" आदि गीत गीति काव्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं। नयी कविता के कुछ गीतकार अपनी सीमा में निश्चय ही असीम हैं। कुछ ऐसे भी अवश्य हैं जिन्हें देखकर नाक भौं सिकोड़ने पड़ जाते हैं। अगर ये गीतकार कुछ अपने अग्रजों की भी बातें मान लें, तो निश्चय ही हिन्दी काव्य संसार में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी।

आज का कवि हृदय प्रदेश को छोड़कर बुद्धि प्रदेश की ओर काफी बढ़ गया है। बौद्धिकता में पूरी तरह से वह जकड़ गया है। कविता बुद्धि नहीं हृदय की दुहिता है। बुद्धिवादी कविता तो केवल ज्ञान की भूख मिटाती है, वह हृदय की प्यास कभी भी तृप्त नहीं करती। अतः भय है कि कहीं विचारों के उहापोह में पड़कर गीति काव्य के ये तत्व बिखर न जाएँ। विचारों के ये पुष्प बिखरे रहने पर माला नहीं बन सकते। अतः हमें चाहिए कि इन तत्वों को जुटाकर सरसता के धागे में पिरोकर इसे माला बना दें ताकि भारती का कण्ठ यह सुशोभित कर सके। निश्चय ही हिन्दी गीति काव्य का भविष्य समुज्ज्वल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल और अङ्गारे

लेखक :- मुनिनथमल

प्रकाशक :— सेठ चांदमल वाँठिया ट्रस्ट

"फूल और अंगारे" मुनिनथमल द्वारा रचित ६० कविताओं का संग्रह है। पुस्तक की भूमिका में कवि ने यह विवेचन किया है कि कवि का जीवन-दर्शन क्या है? कविता क्या है? भाषा की शक्ति क्या है? कवि का जगत क्या है? कवि की कविताओं से प्रसन्न होकर मुनि दुल्हराज ने पुस्तक का नाम दिया "फूल और अंगारे।" नाम बड़ा ही आकर्षक है, और संग्रह की कवितायें इसके नाम की सार्थकता प्रकट करती हैं। फूल और अंगारे—यही जीवन का सत्य है। लेखक के ही शब्दों में —"जीवन के दोनों रूप इसका स्पर्श किये हुए हैं। मृदुता और दाहकता दोनों कठोरता और शीतलता को व्याप्त किये हुए हैं। कविता का संसार इस परिधि से बाहर नहीं है।"

जीवन के इन दो पहलुओं का चित्र उपस्थित करना ही कवि का उद्देश्य है :—

"सच क्या है मैं क्या बतलाऊँ
मिट्टी भी है सोना भी है।
टहनी पर बैठे फूलों को
हंसना भी है, रोना भी है।"

आज के युग में मानव व मानवता का क्या रूप है—कवि ने बड़े ही सहज रूप में इसे प्रकट किया है —

"मानव का विस्तार हो रहा, मानवता बस सिमट रही है।
अपने को खोकर मानव की मति सोने से चिपट रही है॥"

कवि ने अपनी कविताओं में अपने जीवन-सम्बन्धी पुष्ट विचार व्यक्त किए हैं। बिना विश्वास, हृदय और धैर्य के जीवित रहना सम्भव नहीं है। सन्देह मानव को जीवित नहीं रहने देता। जीवन की बाधाओं से जूझना ही मनुष्य का कर्तव्य है। वह हृदय क्या है जो वेदना के तार से जुड़ न जाए। जीवन पथ की सार्थकता इसी में है कि उसमें अनेक बाधायें हो :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पंथ क्या वह पथिक के
सम्मुख जहाँ बाधा न आए।"

मानव जीवन की व्याख्या के अतिरिक्त कवि ने अपने सामाजिक विचार भी अनेक कविताओं में व्यक्त किए हैं। आज विश्व में जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। लोगों के मुँह में शान्ति गान की लय है, पर दिल में अङ्गारे उछल रहे हैं। बड़े लोग छोटों पर अनेक अत्याचार करते हैं—

"छोटों को वे स्वयं सताते
खुजलाता जब उनको गर्व
नैतिकता को वे क्यों माने
पशु बल ही उसका आधार।"

कवि के आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त करनेवाली अनेक कवितायें इस संग्रह में हैं। कवि की 'तुम और मैं' कविता सहसा निराला जी की 'तुम और मैं' कविता की याद दिला देती है। कवि ने बड़ी ही सहज, सरस एवं सरल भाषा में अपने भाव व्यक्त किये हैं। कवि का भाव सराहनीय है।

प्रो० दमयन्ती तालवार

——

लोकप्रिय उर्दू ग़ज़लें

सम्पादक : प्रकाश पंडित
प्रकाशक—हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली

इस १२८ पृष्ठों की छोटी-सी पुस्तक में १०० शायरों के कलाम सजाये गये हैं। सम्पादक की भूमिका 'कुछ गजल के बारेमें' भी गजल के ही समान रंगीन और खूबसूरत है। पुस्तक गालिब (1796-1869) के कलाम से शुरू होती है और नरेशकुमार 'शाद' (1928-) के बाद जोहराबानो 'निगाह' की गजल पर खतम होती है। इन सदियों की कड़ियां जुड़ती चली गई हैं प्रसिद्ध शायरों की प्रसिद्ध गजलों से। गजलगो शायरों की कई पीढ़ियां अपने-अपने जमाने की अदाओं और बयानों के साथ हमारे सामने आती हैं।

सम्पादक ने शब्दार्थ लिखकर गजलों को सहज बनाकर उन्हें समझने वालों की संख्या को निश्चित रूप से बढ़ाया है।

—— प्रो० रामप्रीत उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरने से पहले

लेखक :—मुल्कराज आनन्द प्रकाशक :—हिन्द पॉकेट बुक्स

'मरने से पहले, मुल्कराज आनन्द की एक अनुपम कृति है। १०५ पृष्ठों में लेखक ने वर्तमान समाज के शिक्षित युवकों की करुण कथा का मार्मिक चित्र अंकित किया है। उपन्यास में मानव चरित्र का यथार्थ चित्र खींचा गया है। उपन्यास का नायक है मध्य वित्तीय परिवार का क्लान्त, क्षुब्ध, मृत्यु की छाया से ग्रस्त एम० ए० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण युवक—नूर। उसकी कथा उसके जीवन की मार्मिक अवस्था का चित्रण, समाज की विषमता एवं उसके पिता के नृशंसतापूर्ण व्यवहार को मूर्त रूप देने में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।

नूर के जीवन की कहानी शिक्षित वर्ग की कहानी है, हमारे सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का कच्चा चिट्ठा है। मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ 'नूर' अब मौत से जूझ रहा है। वह आजीवन अपने को, अपनी पत्नी एवं अपने बच्चों को सुखी एवं तृप्त करने के असफल प्रयास में जुटा रहा। आज जब मौत की छाया ने उसको घेर लिया है, उसका वह करुण दुःखद अतीत विजली की भाँति कौंध उठता है। उसके मानसिक विश्लेषण द्वारा लेखक ने कथा को अत्यन्त मार्मिक बनाया है। 'नूर' सही अर्थ में हमारे समाज का 'नूर' है किन्तु वह सामाजिक उपेक्षा, विषमता, अन्याय, पिता की हृदयहीनता एवं निर्दयता का शिकार हो चुका है। समाज, उसके पिता एवं व्यवस्था ने उसके जीवन को टूक-टूक कर दिया है एवं अकाल ही उसे काल का ग्रास बना दिया है। आज हमारे समाज में ऐसे नूरों की कमी नहीं।

लेखक ने सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा समाज की अवस्था पर प्रकाश डाला है। चरित्र की सजीवता, वातावरण का यथार्थ चित्रण, उपयुक्त भाषा एवं प्रगतिशील दृष्टि उपन्यास की विशेषतायें हैं। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहनीय है।

अरविन्द

——

जनवरी १९६५ जनभारती विशेषांक

प्रेमचन्द विशेषांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसी

श्री रत्नशंकर प्रसाद　　　　　　　　प्रकाशक—भारती भण्डार

'मानसी' श्री रत्नशंकर प्रसाद की मुक्तक रचनाओं का प्रथम संग्रह है।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह कवि के विस्तृत चिन्तन, गहन अनुभूति, अमित कल्पना-शक्ति एवं परम्परा प्रेमका परिचायक है। इस संग्रह में समय-समय पर लिखी गई ६० कविताएँ संकलित हैं। इनमें अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का वैविध्य स्पष्ट दृष्टिगोचर है। अधिकांश कविताएँ प्रगीत मुक्तक हैं जिनमें मार्मिक अनुभूति, गीतात्मकता, पद-लालित्य एवं अभिव्यंजना की निपुणता स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रगीतों में—'हे देवि-तुम्हारा दिव्यराग, बजती देव तुम्हारी वीणा, वर्तिका जल चुकी, वेदना की स्वर्ग दूती, ज्वाला जलधर उड़ते हैं,' आदि रचनाएँ, भाव, भाषा, कल्पना एवं शिल्प की दृष्टि से काफी सफल एवं मार्मिक बन पड़ी हैं। कुछ कविताएँ प्रबन्ध का सूत्र लिए हुई हैं—उनमें प्रमुख है—रोशनआरा। यह कविता प्रस्तुत संग्रह की सर्वाधिक लम्बी रचना है तथा ऐतिहासिक परिवेश में नारी हृदय का अन्तर्द्वन्द्व पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है। शिल्प की दृष्टि से यह कविता प्रसाद जी की प्रमुख रचना 'प्रलय की छाया' से मिलती-जुलती है।

बुद्ध-कथा की पृष्ठभूमि में लिखी गई कविताएँ-अवतरण, निष्क्रमण, राहुल, यशोधरा, अम्बपाली एवं निर्वाण आदि बुद्ध की करुणा एवं शान्ति के भाव से परिपूर्ण हैं। 'ब्रज खंड' शीर्षक से कुछ रचनाएँ ब्रजभाषा में भी लिखी गई हैं जिनमें ब्रजभाषा की मार्मिकता, माधुर्य एवं भाषागत विशिष्टता द्रष्टव्य है।

संक्षेप में 'मानसी' कवि-मानस की भाव-मुक्ताओं का मनोहर संग्रह है। संग्रह भाव की दृष्टि से जितना मार्मिक, समृद्ध एवं पूर्ण है कलात्मकता की दृष्टि से भी कवि की सफल अभिव्यंजना शैली का परिचायक है। भाषा भावानुवर्तिनी है, तत्सम शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया है। समग्र रूप में यह कृति कवि के संस्कृति-प्रेम, शैव-दर्शन में निष्ठा एवं ऐतिहासिक दृष्टि का द्योतक है। छायावादी प्रगीत शैली आज भी पूर्ण जीवित है—मानसी इसका सबल प्रमाण है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहनीय है।

लाल बहादुर सिंह

परिषद् का आगामी प्रकाशन—
प्रसाद की कहानियां
लेखिका—प्रो० निर्मल तालवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक चादर मैली सी

लेखक :—राजेन्द्रसिंह वेदी
प्रकाशक :—हिन्द पॉकेट बुक्स
मूल्य १०० न० पै०

'एक चादर मैली सी' उपन्यास को, प्रकाशक की प्रथम पृष्ठ पर घोषणा के द्वारा कि आधुनिक कथा साहित्य की उत्कृष्टतम कृति है—पढ़ने की अत्यन्त ही उत्सुकता हुई। लेकिन घोषणा में और कृति में बहुत अन्तर मिला। उपन्यास में पंजाब के एक गाँव कोटले के लोगों के रहन-सहन, वातावरण, रस्मोरिवाजों को; रानो, तिलोके, मंगल आदि पात्रों द्वारा चित्रित किया गया है। मेरी दृष्टि में इसे आंचलिक कथा साहित्य की संज्ञा दी जाती तो और अधिक सार्थकता सिद्ध होती।

कथानक में कोई विशेष नवीनता नहीं मिलती है। रानो का चरित्र जिस तरह उभरना चाहिए वैसा नहीं उभर पाया। दुर्बलतायें होने के बावजूद भी रानो ने सब कुछ सहा अपने लिए नहीं, अपनी बेटी बड़ी के लिए—मंगल के साथ विवाह करके।

उपन्यास में हैं :—युग व्यवस्था, परिस्थितियां, विवशताओं से दबा हुआ इन्सान और उसके सामने अपने नैतिक मूल्य। एक ही बात स्पष्ट होती है कि झुकना टूटने से अधिक सहज हो गया है। सारी व्यवस्था इस समझौते के लिए तैयार है।

रानो अपनी बड़ी की शादी के लिए अपने को चौधरी मेहरबानदास के घर एक रात अपना सुहाग लुटाने को तैयार है। (पृष्ठ ४६) कितनी बड़ी विवशता है। लेखक ने खुले आम आपकी व्यवस्था के मुँह पर एक तमाचा लगाया है। उफ़ भगवान किसी को बेटी की मां न बनाये।

भाषा में कहीं-कहीं तो तत्सम शब्दों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग हुआ है और बाकी उर्दू फारसी के शब्दों का। वसे सारे उपन्यास की भाषा अत्यन्त ही सरल एवं मुहावरेदार व आचरित्रता की ओर झुकती हुई है। पंजाबी लोकोक्तियाँ मुहावरें गालियाँ तो अनेक जगह मिलेंगी। उपन्यास के अन्त में सारी बिखरी हुई घटनाओं को समेट लेखक ने एक आशामसी समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाया है और यह कार्य एक सफल लेखक द्वारा ही सम्भव हो सकता है, बेदी जी इसके लिए धन्यवाद स्वीकारें।

हर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिखरे चित्र

लेखक–गुरुदत्त
प्रकाशक–साहित्य प्रतिष्ठान, आगरा।

बिखरे चित्र हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार गुरुदत्त का प्रथम कहानी संग्रह है। उपन्यासकार के रूप में गुरुदत्त से हिन्दी का पाठक पूर्ण परिचत है। इस संग्रह से उनके कथाकार स्वरूप से हम अवगत हुए हैं। लेखक ने जीवन और उसके परिवेश से अनेक बिखरे चित्र संग्रहित किए हैं जिनमें सजीवता और यथार्थ के साथ कलात्मकता भी है। बंटवारा, यथार्थवाद, अपनी डफली, तलाक, कचहरी के वराण्डे में—कहानियाँ सामाजिक एवं पारिवारिक यथार्थ पर आधारित हैं और हमारे वर्त्तमान जन-जीवन का अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। बँटवारा कहानी में हमारे टूटते हुए परिवार का सजीव चित्रण है। यथार्थवाद में लेखकों, प्रकाशकों एवं प्रोफेसरों की स्थिति पर व्यंग्य किया गया है। 'तलाक' कहानी में टूटते हुए दाम्पत्य जीवन का सच्चा चित्रांकन किया गया है।

समग्र रूप में इस संग्रह की कहानियाँ लेखक के कथा-शिल्प की परिचायक हैं। घटनाएँ सामाजिक क्षेत्र से ली गई हैं। पात्रों में सजीवता और वास्तविकता है। वातावरण के चित्रण में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। भाषा-शैली की दृष्टि से कहानियाँ पूर्ण सफल हैं। प्रभावोत्पादकता, सोद्देश्यता एवं जिज्ञासा वृद्धि में कहानियाँ पूर्ण समर्थ हैं। संग्रह पठनीय और संग्रहनीय हैं।

किशोरी रमण तिवारी,

जनभारती का आगामी विशेषांक (जुलाई अंक)

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

उनकी जन्म शतवार्षिकी के पुनीत अवसर पर

*

विद्वानों से सहयोग प्रार्थित है, सामग्री १५ जून ६४ तक परिषद कार्यालय में निवेदित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार-पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून १८५६

के अन्तर्गत "जनभारती" नामक समाचार-पत्र से संबन्धित स्वामित्व तथा अन्य बातों का ब्योरा (प्रपत्र-४)

१. प्रकाशन का स्थान ...बंगीय हिन्दी परिषद,
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

२. प्रकाशन की अवर्तिता .. त्रैमासिक

३. मुद्रक का नाम ...श्री लालबहादुर सिंह
राष्ट्रीयता ...भारतीय
पता ...बं० हि० परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

४. प्रकाशक का नाम ...श्रीलालबहादुर सिंह
राष्ट्रीयता ...भारतीय
पता ...बं० हि० परिषद् ; १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

५ सम्पादक का नाम ....डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
राष्ट्रीयता ...भारतीय
पता ...बं० हि० परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता—१२

६. अन्य साभीदार ....बंगीय हिन्दी परिषद्, (एक-मात्र स्वामी)
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

मैं, लालबहादुर सिंह, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सही हैं।

लालबहादुर सिंह
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

२० अप्रैल, १९६४

श्री लालबहादुर सिंह द्वारा राय प्रिंटिंग प्रेस ४२, पथरिया घाट स्ट्रीट, से मुद्रित एवं बंगीय हिन्दी परिषद, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२ से प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रसाद जी की हीरक जयन्ती पर :—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगीय हिन्दी परिषद् का नया प्रकाशन

प्रसाद

(प्रसाद साहित्य पर समीक्षात्मक ग्रन्थ)

मूल्य—८·५०

इस पुस्तक के कुछ लेखक—

महाकवि निराला
आचार्य शिव पूजन सहाय
श्री मैथिली शरण गुप्त
श्री वृन्दावनलाल वर्मा
आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
प्रो० निर्मल तालवार
डा० भगीरथ मिश्र
डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
श्री० लालबहादुर सिंह
प्रो० दमयन्ती तालवार
प्रो० शालिग्राम उपाध्याय
डा० राममूर्ति त्रिपाठी
डा० हरीश
डा० सुरेश अवस्थी
डा० कमलाकान्त पाठक
डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
डा० टीकमसिंह तोमर
डा० प्रेम स्वरूप गुप्त
प्रो० मनोहर शर्मा
श्री विश्वम्भर 'मानव'
श्री विश्वम्भर 'अरुण'
डा० रामविलास शर्मा
श्री रंजन सूरिदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशीलन एवं वैज्ञानिक समीक्षासामग्री से युक्त त्रैमासिक

जनभारती

२६।१२।६४

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

शतवार्षिकी अंक

वर्ष १२ अङ्क २+३ संवत् २०२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

आद्य-सम्पादक
स्व० आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

सम्पादक
डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

स० सम्पादिका
प्रो० निर्मल तालवार

प्रबन्ध सम्पादक : श्री लाल बहादुर सिंह

सम्पादक मण्डल :

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी
डा० रामकुमार वर्मा
पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
प्रो० ए० चन्द्रहासन
डा० भगीरथ मिश्र
डा० पुत्तूलाल शुक्ल
डा० विनय मोहन शर्मा
डा० कन्हैयालाल सहल
डा० नगेन्द्र
डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी

अनुक्रमणिका

लेख	लेखक	पृष्ठ
१ श्रद्धाञ्जलि	श्री सुमित्रानन्दन पंत	१
२ श्रद्धा के फूल	श्री उमाशंकर वर्मा	२
३ दो पत्र	आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी	३
४ खड़ी बोली कविता और द्विवेदीजी	हरिऔध	४
५ गुरुवर	चयन	५
६ आचार्य द्विवेदी	श्री किशोरीरमण तिवारी	७
७ हिन्दी गद्य के महान संशोधक आचार्य द्विवेदी	श्री बैजनाथ राय	१४
८ 'वन्देमातरम्' और आचार्य द्विवेदी	प्रो० निर्मल तालवार	१९
९ आचार्य द्विवेदी एवं कविवर नवीन	डा० लक्ष्मीनारायण दुबे	२८
१० द्विवेदी युग की महत्तम उपलब्धियां	श्री नरोत्तम पाण्डेय	३१
११ पत्र-लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी	डा० स्वर्णकिरण	३९
१२ अनुवादक आचार्य द्विवेदी	प्रो० रामप्रीत उपाध्याय	४६
१३ आचार्य द्विवेदी की शत-वार्षिकी	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी	६०
१४ द्विवेदी जन्मशती समारोह	श्री इन्दुकांत शुक्ल	६८
१५ आचार्य द्विवेदी और डा० दास	श्री रुद्र काशिकेय	७३
१६ 'हंस' का द्विवेदी अभिनन्दनांक	श्री रत्नाकर पाण्डेय	७८
१७ कसौटी पर (पृष्ठ ९८ पर देखिये)		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनभारती

वर्ष १२ अङ्क २, ३ संवत् २०२१

श्रद्धाञ्जलि

भारतेन्दु कर गए भारती की वीणा निर्माण,
किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहु विधि स्वर संधान,
निश्चय, उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण झंकार
अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार।
पंख हीन थी अहा, कल्पना, मूक कण्ठगत गान।
शब्द शून्य थे भाव, रुद्ध, प्राणों से वंचित प्राण।
सुख दुख की प्रिय कथा स्वप्न ! बंदी थे हृदयोद्गार,
एक देश था सही, एक था क्या वाणी व्यापार ?
वाग्मि ! आपने मूक देश को कर फिर से वाचाल,
रूप रंग से पूर्ण कर दिया जीर्ण राष्ट्र कंकाल।
शत कंठों से फूट आपके शतमुख गौरव गान
शत शत युग स्तम्भों में तानें स्वर्णिम कीर्ति वितान।
चिर स्मारक सा, उठ युग युग में, भारत का साहित्य
आर्य, आपके यशः काय को करे सुरक्षित नित्य।

सुमित्रानन्दन पंत

(द्वि० अ० ग्रन्थ से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा के फूल

उमाशंकर वर्मा

हम सदा तुम्हारे चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाएंगे !

ओ मूर्त्तिकार, तुमने हिन्दी को एक नया आकार दिया,
भारत की उर्म्मिल वाणी का तुमने अद्भुत शृङ्गार किया ;
आख्यान तुम्हारा गूँजेगा अविरत जगती के प्रांगण में,
नत सदा रहेंगे कोटि-कोटि उन्नत मस्तक अभिनन्दन में ;
बुझ जाएंगे खद्योत, दिवाकर-से लेकिन चमकोगे तुम,
हे युग-स्रष्टा, जय-गीत तुम्हारे चाँद-सितारे गाएंगे !

आचार्य, तुम्हारी हिन्दी संस्कृति की शोभा वन जाएगी,
युग-युग तक वसुधा पर शाश्वत तव कीर्त्ति-लता लहराएगी ;
तुमने जो ज्योति जगाई थी, हो सकती है वह मन्द नहीं,
कह सके तुम्हारी महिमा को, ऐसा है कोई छन्द नहीं ;
तुमने जो देखा था सपना, वह मूर्त्त हुआ, साकार हुआ,
हे पुण्यश्लोक आलोक, कभी हम तुमको भूल न पाएंगे !

जो उपेक्षिता हो गलियों में नित फिरती थी मारी-मारी,
उस रंकिनि को तुमने रानी का रूप दिया विस्यमकारी ;
तुमने उसकी पूजा कर अपने को भी पूज्य बना डाला,
हो रहा तुम्हारे पद-पूजन में सारा जग अब मतवाला ;
तुमने जो पिला दिया अमृत, वह देगा चिर अमरत्व हमें,

हम सदा तुम्हारे चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाएंगे !

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो पत्र :—

स्वर्गीय गांगेय नरोत्तम शास्त्री जी को आचार्य द्विवेदी द्वारा लिखित—

दौलतपुर (राय बरेली) २०-४-३३.

नमो नमस्ते करुणार्णवाय,

१७ अप्रेल का पो० का० मिला । स्नेहपीयूषपूर्ण वचनों ने आप्यायित किया । मैं कृतार्थ हो गया । जहाँ तक संभव होगा, मैं काशी जरूर जाऊँगा और आपसे मिलूंगा ।

मुझे यहाँ देहात ही में आराम मिल सकता है । परिन्दे अपने घोंसलों ही में और दरिन्दे अपनी माँदों ही में रहना पसन्द करते हैं ।

शेष विनय प्रणत

म० प्र० द्विवेदी

उत्तरात्मक निवेदनमिदम्

१

आसाद्य पत्रं तव पण्डितेन्द्र
मया प्रमोदो नितरामवाप्तः ।
रसज्ञ काव्यज्ञ च विज्ञवर्य्य
कृतज्ञतां मे विपुलां गृहाण ॥

२

कवीश्वरस्त्वं प्रतिभास्थिरस्त्वं
साहित्यशास्त्रे च कलाधरस्त्वंम् ।
इतीव मे सम्मतिमत्र शास्त्रिन्
जानीहि गांगेय-नरोत्तम त्वम् ॥

३

"स्वमातृभाषा विनिबद्धकाव्य—
मेकाधिकं मत्प्रहितं त्वयाऽद्य ।
तत्सर्वमेवातिशयेन रम्य—
मित्येव विद्वन् विनयो मदीयः ॥"

४

क्षीणशक्तिर्जराजीर्णो मन्ददृष्टिरतं बुध ।
पत्रादानप्रदाने च न समर्थोऽस्मि क्षम्यताम् ॥

इति निवेदयति

१०-२-१९३३ द्विवेदी महावीर प्रसादः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

खड़ी बोली की कविता और द्विवेदी जी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जिन दिनों खड़ी बोली की कविता पर आन्दोलन सफलता से चल रहा था, कोई ऐसा संचालक उस समय तक उसको प्राप्त नहीं हुआ था, जो उसका मार्ग प्रशस्त करे और तन-मन से इस कार्य में लग कर वह आदर्श उपस्थित करे, जिस पर अन्य लोग चल कर उसको उन गुणों से अलंकृत कर सकें, जो सत्कविता के लिए वांछनीय होते हैं। सौभाग्य से उस समय प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का-सम्पादकत्व लाभ कर पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी कार्य-क्षेत्र में उतरे और उन्होंने इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयत्न किया। कविता-प्रणाली का मार्ग धीरे-धीरे प्रशस्त होता है, काल पाकर ही उसकी कोई पद्धति सुनिश्चित होती है। कार्य-क्षेत्र में आने पर ज्यों-ज्यों उसके दोष प्रकट होते हैं, उस पर तर्क वितर्क और मीमांसाएं होती हैं, त्यों-त्यों वह परिमार्जित बनती है और उसमें आवश्यतानुसार सरस, सुन्दर और भावमयी पदावली का समावेश होता है। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिस समय अपना कार्य प्रारम्भ किया उस समय हिन्दी खड़ी बोली की कविता का प्रारम्भिक काल था। उल्लेख योग्य दस पाँच पद्य ग्रन्थ उस समय तक निर्मित हुए थे और भाषा एक अनिश्चित और असंस्कृत मार्ग पर चल रही थी। प्रत्येक लेखक खड़ी बोली की कविता रचना का एक अपना सिद्धान्त रखता था और उसी के अनुसार कार्य करता था। ऐसे अवसर पर जिन लोगों ने खड़ी बोली की कविता को उचित पथ पर चलाया, उनमें से पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी अन्यतम हैं। अपनी 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रिका में उन्होंने अधिकतर खड़ी बोली की कविता ही प्रकाशित करने की ओर दृष्टि रखी और अनेक कृत-विद्यों को इस कार्य के लिए उत्साहित करके अपनी ओर आकर्षित किया। मुझको यह ज्ञात है कि जो खड़ी बोलचाल की कविताएं उनके पास उस समय 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिए जाती थीं, उनका संशोधन वे बड़े परिश्रम से करते थे। संशोधित कविता को ही 'सरस्वती' में प्रकाशित करते थे। इससे बहुत बड़ा लाभ यह होता था कि खड़ी बोली की कविता करने वालों का ज्ञान बढ़ता था और वे यह जान सकते थे कि उनको किस मार्ग पर चलना चाहिए। इस प्रणाली से धीरे धीरे खड़ी बोली की कविता का मार्ग भी प्रशस्त हो रहा था। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इतना ही नहीं किया, उन्होंने कुछ खड़ी बोली की रचनाएं भी कीं और इस रीति से भी उन्होंने खड़ी बोली की कविता-प्रणाली जनता के सामने उपस्थित की। उनका 'कुमार सम्भव सार' यद्यपि छोटी पुस्तक है, परन्तु उसकी खड़ी बोली की कविता बहुत परिमार्जित और सुन्दर है। उसका प्रभाव भी उस काल की खड़ी बोली की कविता पर बहुत कुछ पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुवर

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के 'भाव-यज्ञ' के ऋत्विक्' भी थे और 'कर्मशाला के शिल्पी' भी। वे साहित्य-निर्माता थे और साहित्यकार-निर्माता भी। निर्माता की निर्माणकला तभी अनुपात और संतुलन के अर्थ को समझ कर सौन्दर्य सृष्टि करने में सफल मानी जा सकती है जब वह एक परम्परा का निर्माण कर सके, जब वह आस्था को जन्म दे सके। आस्था और निर्माण भावना की उपलब्धि युग को समर्पित करने वाला 'युग निर्माता' की संज्ञा का अधिकारी है। आचार्य द्विवेदी ऐसे ही युग-निर्माता थे।

भारतेन्दु ने एक मंत्र दिया, 'निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।, यह मंत्र बिना गुरु के सार्थक न होता। आचार्य द्विवेदी ने इसका अर्थ समझाया, और इसके प्रति आस्थावान बनाया। 'निज भाषा' की उन्नति करने की ओर समर्थ साहित्यकारों को, ले आने का श्रेय गुरुवर द्विवेदी जी को है। युग के विद्वानों को हिन्दी के चित्र में रंग भरने की प्रेरणा देने वाले वे ही हैं। कितने कवि, कितने आलोचक, कितने कथा-शिल्पी, कितने इतिहास वेत्ता और कितने निबन्धकार हिन्दी को उन्होंने दिए, इसका मूल्यांकन संभव नहीं है। सत्य तो यह है कि आज का हिन्दी साहित्यकार-जगत द्विवेदी जी का ही मानस-पुत्र है। उन्होंने जिस परम्परा को दिया, उन्होंने जिस अवस्था को दिया उसी के सहारे आज भी साहित्य प्रगति के पथ पर बढ़ रहा है।

आचार्य द्विवेदी गुरु थे। अपने दायित्व को वे केवल जानते ही नहीं थे वरन् उसका निर्वाह भी उन्होंने किया। उन्होंने हमें दिये—श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री रूपनरायण पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय, गोपालशरण सिंह, लक्ष्मीधर बाजपेयी, कामता प्रसाद गुरु, इनकी शिष्य-परम्परा के कर्मठ विद्वानों ने गुरुवर के प्रति जो भाव अभिव्यक्त किए हैं, उनमें से कुछ हमारे सामने हैं—

१. हिन्दी लिखने का जो मैंने साहस किया सो भी द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से। साहित्य-परीक्षक यथार्थ में ऐसा ही होना चाहिए…'शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।'—गंगानाथ झा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. द्विवेदी जी का ऋणी मैं भी हूं···द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा और साहित्य की जो सेवा की है, वह साहित्य के इतिहास में अजर और अमर है। उन्होंने सैकड़ों लेखक तैयार कर दिए, जिनसे सहस्रबाहु होकर वे हिन्दी को इस उन्नत दशा में पहुँचाने में समर्थ हुए।—रामनरेश त्रिपाठी

३. यह सच है कि उन्होंने कलम पकड़ कर हमें हिन्दी लिखना सिखाया है और 'ठोंक पीटकर वैद्यराज' बनाया है। —देवीदत्त शुक्ल

४. कवि तो बनाये नहीं जाते, परन्तु कोप-भाजन होने योग्य होकर भी मैं पूज्य द्विवेदी जी महाराज का अनुग्रह-भाजन हो गया। इससे बढ़कर किसी का क्या सौभाग्य होगा ? --मैथिलीशरण गुप्त

५. वे मेरे आध्यात्मिक गुरू थे। उन्होंने मुझे मातृभाषा की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने मुझे बताया कि राष्ट्रीयता, जातीय जीवन के उत्थान और पतन के साथ-साथ भाषा और साहित्य का कितना अटूट संबंध है। उन्होंने हीं मुझे हिन्दी लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया। हिन्दी-सेवा की दीक्षा भी उन्हीं के मुखारविन्द से मुझे मिली।— वेंकटेश नारायण तिवारी

*

उस समय द्विवेदीजी जिस जरूरी काम में लगे हुए थे, उसे छोड़कर गीत गाने की फुर्सत भी तो हो।

द्वि-काल का साहित्य सबसे पहले खड़ी बोली का आग्रह करके चला गद्य और पद्य की भाषा एक करके जनता तक नवीन युग का संदेश पहुँचाना ही उनका उद्देश्य था।

साहित्यिक सामग्री को समाज-व्यापी बनाने का ध्येय लेकर ये लोग निकले थे।

खड़ी बोली को छंदों के सांचे में ढ़ाल देना—एक अनभ्यस्त कार्य कर दिखाना-जब सध गया, तब द्विवेदीजी ने छंद की मशीनरी को भी अपने उसी प्रचार कार्य में लगाया। उस काल की कविता का अलंकार उसकी सरलता और सामयिकता है। हृदय के निष्कपट उद्गार—चाहे वे रूखे उद्गार हीं हों-उसमें भरें हैं......कविता का चोला बदल गया।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी

श्री किशोरीरमण तिवारी, एम० ए०

आचार्य शब्द भारतीय वाङ्मय, भारतीय परम्परा एवं भारतीय संस्कृति के परिवेश में कितनी पवित्रता, कितनी श्रद्धा, कितनी पूज्य भावना संजोये हुए है, यह इसके कोषगत अर्थ से ही स्पष्ट हो जाता है। यह हमारी श्रद्धा, विनम्रता और आदर-भावना का प्रतीक बन चुका है। शब्दकोष के अनुसार इस शब्द का अर्थ है—वेदाध्यापक, वेदोपदेशक, उपनयन के समय गायत्री मन्त्र का उपदेश करने वाला, गुरु, शिक्षक, आचार और धर्म का व्याख्याता, यज्ञ समय में कर्मोपदेशक, पुरोहित, अध्यापक, ब्रह्मसूत्र के प्रधान भाष्यकार, श्री शंकर, रामानुज, मध्व और बल्लभाचार्य, वेद का भाष्यकार, धनुर्वेद का पंडित, विशेषज्ञ और शास्त्र पारांत।

उपर्युक्त सभी अर्थों की व्याख्या करने पर आचार्य शब्द की महत्ता पूर्णरूपेण परिलक्षित होने लगती है। वेद के रचयिता ब्रह्मा कहे जाते हैं और उस पावन ग्रंथ का व्याख्याता तथा उपदेशक हैं आचार्य। हिन्दू समाज के परम पुनीत अनुष्ठान, उपनयन और यज्ञ का भी वही सञ्चालक है। गायत्री मन्त्र का उपदेश देनेवाला भी आचार्य की संज्ञा से अभिहित है। गुरु, अध्यापक, पुरोहित जैसे साधु पुरुष, सज्जन और विद्वान ही आचार्य की श्रेणी में आते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि विलक्षण बुद्धि-सम्पन्न मंगलमय कार्यों का कर्त्ता एवं अधिष्ठाता ही इस उपाधि से विभूषित किए जाने योग्य है। इसी गौरव, महत्त्व, गांभीर्य, गुरुता और दिव्य शक्ति के प्रकाशनार्थ हमारे यहाँ "बिन गुरु होहि न ज्ञान' या 'वलिहारी गुरु आपकी गोबिन्द दियो बताय' आदि कहकर गुरु के गौरव को स्वीकार किया गया है।

जब तक कोई व्यक्ति अपनी प्रभा रश्मि द्वारा समाज के किसी कोने को उद्भासित नहीं करता, जब तक अपनी ज्ञान गरिमा द्वारा दिशा-संकेत नहीं करता और जब तक एक आदर्श की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं करता, वह आचार्य कैसा ? संस्कृत साहित्य में श्री मम्मट, दंडी, भामह और पंडितराज जगन्नाथ आदि आचार्य के गुणों से विभूषित थे। हिन्दी साहित्य में भी पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ऐसे ही आचार्य कोटि में आते हैं। द्विवेदी जी द्वारा निर्मित आधारशिला पर ही आज हिन्दी का गगनचुम्बी प्रासाद प्रतिष्ठित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी प्रमुख रूप से हिन्दी साहित्य में एक आलोचक के रूप में आते हैं। इन्होंने हिन्दी में आलोचना की एक नवीन पद्धत्ति का निर्माण किया। प्राच्य और पाश्चात्य समन्वित सिद्धान्तों की कलमी करके हिन्दी जगत को इन्होंने लोचन करने की नूतन और वैज्ञानिक दृष्टि दी। संस्कृत साहित्य में रचयिता की परिस्थिति और उसके दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए आलोचना करने की परम्परा नहीं है। परन्तु पाश्चात्य साहित्य में विषय-वस्तु का सौंदर्य-निरूपण रचनाकार के दृष्टि-बोध के अनुरूप किया जाता है। संस्कृत आचार्य आलोचना का अर्थ-लोचन करना या देखना से ही लगाते हैं। परीक्षा और समीक्षा शब्द भी इसी अर्थ के द्योतक हैं। लक्षण ग्रंथ इसी बात की पुष्टि करते हैं। किन्तु हिन्दी में आचार्य द्विवेदी के पूर्व समीक्षा की कोई विशेष और निर्दिष्ट परम्परा नहीं मिलती। दोहों या कविता में ही कुछ कवियों और लेखकों के गुण-दोष विवेचित हैं। मिश्र वन्धुओं ने भी किसी परम्परा या निश्चित पथ का पालन नहीं किया है।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि द्विवेदी जी ने किस पद्धत्ति का पालन किया है ? द्विवेदी जी एक ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों ही प्रकार की विचार बल्लरियाँ हिन्दी जगत में पल्लवित हो रही थीं। ऐसी स्थिति में एक समर्थ आचार्य की परमावश्यकता थी जो पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनों पद्धतियों का समन्वय करके एक नवीन और मौलिक शैली का सृजन कर सके। आचार्य द्विवेदी ने ऐसा ही किया। उन्होंने नवीनता के औत्सुक्य और प्राचीनता के मोह दोनों ही भावों को संतुष्ट किया।

अपने युग के सच्चे निर्माता आचार्य द्विवेदी ने इस तथ्य को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से परखा। इसीलिए संस्कृत-आचार्य-पद्धति के अनुरूप आलोचना-ग्रंथ लिखने की पूर्ण शक्ति रखते हुए भी नूतन-पथ के प्रदर्शन निमित्त उन्होंने लक्षण ग्रंथों के सदृश मोटे-मोटे ग्रन्थ नहीं लिखे। साहित्य-विधा की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने आलोचनात्मक कई पद्धत्तियाँ हमें दीं। एक तरफ 'रसज्ञ रञ्जन' और 'नाट्यशास्त्र' आदि लिखकर संस्कृत-पद्धत्ति का अनुसरण किया तो दूसरी तरफ वृहदाकार निबन्ध लिख कर हिन्दी आलोचना को लोचने की नूतन और सूक्ष्म दृष्टि प्रदान की। वर्षों की घोर शृङ्गारिकता से आक्रान्त कविता कामिनी को स्वस्थ और नैतिक शृङ्गार-प्रसाधनों से मंडित करने का देवदूत की भाँति दिव्य सन्देश दिया। हिन्दी काव्य को युग के साँचे में ढालने के लिए आचार्य द्विवेदी ने 'कवि और कविता', 'कविता', 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता', 'आधुनिक हिन्दी कविता' आदि भावपूर्ण लघु निबन्ध लिखे। सम्पादकों, समालोचकों तथा लेखकों आदि लेखों में उन्होंने अपनी आचार्य प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार द्विवेदी जी ने समालोचक, सम्पादक, लेखक और कवि सबका मार्ग-प्रदर्शन किया एवं उनके कार्यों की रूप-रेखा प्रस्तुत की।

इनकी आलोचना से उस युग के सभी आलोचक और सहित्यकार प्रभावित थे। माननीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आलोचना-प्रासाद आचार्य द्विवेदी द्वारा निर्मित नींव पर ही खड़ा है। युग पुरुष द्विवेदी ने आचार्य कामता प्रसाद गुरु, डा० श्यामसुन्दर दास आदि को भी प्रभावित किया। इन सब प्रमुख विभूतियों ने द्विवेदी जी के आचार्यत्व को एक स्वर से स्वीकार किया है। पं० गंगानाथ झा, कौशिक, बाबूराव विष्णु पराड़कर आदि साहित्यमर्मज्ञों ने इन्हें गुरु रूप में देखा है।

आलोचना और समीक्षा के सम्बन्ध में द्विवेदी जी के विचार स्पष्ट थे। हिन्दी कालिदास की समालोचना में सुबन्धु की 'वासवदत्ता' के श्लोक को उद्धृत करते हुए उन्होंने आलोचना के अर्थ, उद्देश्य और प्रयोजन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है—

गुणानामपि निजरुप प्रतिपत्तिः परत एव सम्भवति।
स्वमहिम दर्शन भक्षणोर्मुकुर करतले जायते यस्मात।

द्विवेदी जी ने 'कालिदास और उनकी कविता' में भी आलोचकों के कार्य पर प्रकाश डाला है। उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि कवियों के गूढ़ाशय और काल्पनिक भावों को साधारण पाठक तक पहुँचाने वाला समालोचक ही है। आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल ने ठीक ही कहा है कि—"यदि सही अर्थों में उच्च कोटि का कलाकार होना बरदान है तो वास्तविक आर्थों में आलोचक होना एक महान् तपस्या है जिसमें पग-पग पर आत्म संयम और अडिग विवेक की आवश्यकता पड़ा करती है।" आचार्य द्विवेदी ऐसे ही संयमी और विवेकी थे।

उन्होंने आलोचकों के स्वभाव का भी वर्णन किया है। उनके विचारानुसार समालोचक में न्यायाधीश की भाँति निष्कपटता, निर्भीकता और धैर्य होना चाहिये। उसकी पैनी दृष्टि में 'एक्सरे' की भाँति भीतरी रूप को अभिव्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिये। द्विवेदी जी ने इन कठिनाइयों का अनुभव किया इसीलिये उन्होंने आलोचना का स्वरूप निर्धारित किया।

युग द्रष्टा द्विवेदीजी ने युग की माँगों को पूरा करने के हेतु बृहदाकार आलोचनात्मक ग्रंथों का प्रणयन न करके छोटे-छोटे निबन्ध लिखकर युग की माँग पूरी की। उनके सामने मार्ग-निर्देशन की समस्या थी। उन्हें तो साहित्यिक विधाओं को समृद्ध करना था, भाषा सुधारनी थी, व्याकरण संगत लेखन प्रणाली की स्थापना करनी थी। इसीलिए उन्होंने रेलवे की नौकरी का परित्याग कर माँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारती की सेवा का बीड़ा उठाया। 'सरस्वती' के पावन पद पर समासीन होकर उन्होंने सम्पादक के रूप में जगत गुरु की भाँति हिन्दी जगत के कण-कण में चेतना का स्फुरण किया। उन्होंने भारतेन्दु युग और उससे भी पूर्ववर्ती युग की त्रुटियों को दूर करने के लिए सभी दिशाओं में दौड़ लगानी प्रारम्भ की। भारतेन्दु युगीन मनमानी बागडोर को अपने सबल हाथों में लेकर आचार्य द्विवेदी ने निर्दिष्ट दिशा में चलने का आदेश दिया। उनके आदेश का पालन भी हुआ। और उनके पांडित्य तथा आचार्यत्व का लोहा लेखकों और साहित्यकारों ने माना भी, इसमें सन्देह नहीं।

निबन्ध के क्षेत्र में भी द्विवेदीजी ने हमारा मार्ग-दर्शन किया। उन्होंने निबन्ध लेखन की एक विशेष शैली अपनायी जो हिन्दी निबन्ध की एक निश्चित शैली बन गई। समकालीन और परवर्ती लेखकों ने उस टेकनीक का अनुसरण किया। द्विवेदी जी ने 'संस्कृत-भाषा-टीका शैली' नहीं अपनायी और न पश्चिमीय एसे स्टाइल को ज्यों का त्यों उधार लिया। उन्होंने अपनी ज्ञान गरिमा का मौलिक लेख हिन्दी निबन्ध शैली पर चढ़ाया जिसमें मराठी की प्रौढ़ता एवं गम्भीरता, बंगला की सुकुमारता और अंग्रेजी की स्पष्टता एक साथ परिलक्षित है। उनकी इस टेकनीक में एक शिक्षक और आलोचक का सुधारवादी स्वरूप स्पष्ट है। उन्होंने जो कुछ लिखा सिखाने के लिए, प्रदर्शन के निमित्त नहीं। उनकी शैली पर उनके पत्रकार का आधिपत्य है, भाषा तथा वाक्य-रचना पर सुयोग्य अध्यापक की दृष्टि है एवं विषय वस्तु पर नैतिकता और मर्यादा का सशक्त पहरा है। इसीलिए साहित्यिकता और कलात्मकता की दृष्टि से उनकी कृतियों को परखने पर हमें कहीं कहीं सौन्दर्यभाव दिखाई पड़ता है, पर इसका एकमात्र कारण यही है कि द्विवेदीजी नवीन मार्ग के निर्माण और नूतन विधाओं की परिकल्पना कर रहे थे। और इस प्रयास में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली है।

द्विवेदीजी ने साहित्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि निबन्ध लिखकर निबन्ध-लेखन प्रणाली को बहुत समृद्ध बनाया। उन्होंने भाषा की त्रुटियों, व्याकरण की अशुद्धियों और भाव तथा विषय प्रतिपादन की उच्छृंखलता पर एक अंकुश लगा दिया जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी निबन्ध का समुचित विकास हुआ। 'भाषा और व्याकरण' 'हिन्दी नवरत्न' आदि लेख इसी उद्देश्य से लिखे गये। उपयोगिता की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही आचार्य द्विवेदी ने अपने निबन्धों को पाठकों के पठनार्थ प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने' 'कला कला के लिए नहीं, कला जीवन के लिए' सिद्धान्त का परिपोषण किया। इसीलिए 'सरस्वती' के सम्पादकीय कार्य भार का संचालन करते हुए उन्होंने हिन्दी निबन्ध शैली को विशेष साँचे में ढाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जिसे इतिवृत्तात्मक शैली कहा जाता है। यही इतिवृत्तात्मकता हिन्दी साहित्य का वह ठोस धरातल है जिसपर परवर्ती लेख अडिग खड़े हैं।

किन्तु द्विवेदीजी भावात्मक निबन्ध नहीं लिख सकते थे, बात ऐसी नहीं है। इन्होंने कुछ भावात्मक निबन्ध लिखकर अपनी भावुकता और कलात्मकता का परिचय दिया है। 'कालिदास के समय का भारत' 'साहित्य की महत्ता' आदि इनके इसी कोटि के निबन्ध हैं।

द्विवेदी युग में नाट्य कला और नाट्य शैली का विशेष विकास न हो सका। नाट्य विधा के न पनप सकने के कई कारण हैं। इस युग में भाषा और शैली का निश्चित रूप नहीं बन पाया था। नाटक लिखना बहुत आसान नहीं है। ऐसी स्थिति में लेखकों ने इस ओर कम ध्यान दिया। और कुछ लोगों ने सस्ते किस्म का पैसा कमाऊ नाटक लिखकर संतोष कर लिया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नाट्य साहित्य की श्री वृद्धि में भी द्विवेदीजी ने प्रशंसनीय योगदान दिया। अभिनयात्मक और रंगमंचीय नाटकों के सृजन में द्विवेदीजी का प्रयास चिरस्मरणीय है। इन्होंने इस ओर लेखकों को प्रेरित किया और भाषा शैली तथा अभिव्यक्ति की शक्ति प्रदान की। उन्हीं की प्रेरणा और प्रभाव से श्री मैथिली शरण गुप्त ने 'अनघ', प्रसाद ने 'करुणालय' और सियारामशरण गुप्त ने 'कृष्ण' आदि गीत नाट्य लिखकर इस क्षेत्र में भी स्वर्णिम प्रकाश के आगमन की शुभ सूचना दे दी।

द्विवेदीजी ने कथा साहित्य की विषय-वस्तु को भी बहुत अधिक प्रभावित किया। पौराणिक ग्रन्थों का अनुवाद करके उन्होंने सस्ते तिलस्मी और ऐय्यारी कथानकों को यथार्थ और आदर्श की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया। इस पथ पर चलने के लिए लेखक मचल उठे।

आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' गुलेरीजी की 'उसने कहा था' और विश्वम्भर नाथ शर्मा की 'ताई' आदि कहानियाँ इसी आदर्श एवं नैतिकता का प्रतिफलित रूप हैं। इसी प्रकार भी बहुत सी कहानियाँ और उपन्यास द्विवेदीजी के विचार से आप्लावित हैं। प्रेमचन्दजी के उपन्यासों का आदर्शोन्मुख यथार्थ इन्हीं की प्रेरणा का फल है।

'सरस्वती' पत्रिका में छापने के लिए भेजी जाने वाली रचनाओं को आचार्य द्विवेदी ने अपनी ज्ञान-कैंची से काटा और छाँटा भी है और कुशल शिल्पी की भाँति रचना-शैली और विषय-वस्तु में आवश्यक परिवर्तन लाकर उन्हें अपनी मँजी हुई तूलिका से सँवार दिया है। मुंशी प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा और कौशिक आदि लब्धप्रतिष्ठ लेककों की रचनाएँ द्विवेदी जी द्वारा निर्मित ठोस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भित्तिपर ही आधारित हैं।

आपके आचार्यत्व और पांडित्य का चरमोत्कर्ष कविता के क्षेत्र में अपने पूर्ण कौशल के साथ दिखायी पड़ता है। द्विवेदीजी के समय तक खड़ी बोली हिन्दी कविता के लिए अनुपयुक्त समझी जा रही थी। आधुनिकता के जनक, राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी भारतेन्दु बाबू भी ब्रज माधुर्य को त्यागकर खड़ी बोली की कर्कशता अपना कर कोमलांगिनी कविता कामिनी के रूप में कठोरता का समावेश करना नहीं चाहते थे। खड़ी बोली का कलेवर अभी निर्मित होने को बाकी था। खड़ी बोली को आचार्य द्विवेदी जैसे महारथी की आवश्यकता थी। हिन्दी के सौभाग्य से इसे द्विवेदी जी का प्रसाद मिला। उन्होंने अपने हाथों बोली को सँवारा और काव्य के उपयुक्त सुकोमलता प्रदान की। 'एकोऽहंम् बहुस्याम' की भावना से मचल कर जिस प्रकार ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की उसी प्रकार सेवा और सर्जन भावना से प्रेरित होकर कविजनोचित खड़ी बोली का रूप द्विवेदी जी ने निश्चित किया। हिन्दी खड़ी-बोली कविता को जिसका अभी पिंड रूप ही बन पाया था, जागरूक और सचेत माता-पिता की भाँति पाला-पोषा एवं अपने स्वास्थ्य वर्द्धक बालोपचार से उसे किशोरावस्था तक पहुँचा दिया।

'सरस्वती' के कार्य-भार सम्भालने के पूर्व ही आपने अपनी इस दिव्य प्रतिभा का परिचय दे दिया था। सम्पादक के पद पर आसीन होते ही हिन्दी बातायन में इनकी प्रभारश्मियाँ विकीर्ण होने लगीं। 'कवि कर्त्तव्य' सार्थक निबन्ध लिखकर इन्होंने तिमिराचल मार्ग में सुगमता पूर्वक चलने के लिए कवियों के हाथ में मशाल दे दी। उस युग के कवियों ने गुरु रूप में इनका सम्मान किया और इनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना प्रारंभ कर दिया। इन कवियों की कविताओं में द्विवेदी जी ने यथोचित सुधार करके उन्हें पत्रिका में छापा और उनका उत्साह सम्वर्द्धन किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त एवं अन्य कई कवियों को तो एक प्रकार से अपनी गोद में बैठाकर उन्होंने कविता करनी सिखायी। श्री मुकुटधर पांडेय, रामचरित उपाध्याय, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि ने तो गुरु-आदेश माना ही, किन्तु अयोध्या प्रसाद खत्री, चन्द्रशेखर मिश्र, राय देवी प्रसाद पूर्ण, लाला भगवान दीन और अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध आदि ने भी बोल-चाल की भाषा-खड़ी बोली को कविता की भाषा बनाने का अथक प्रयास किया। फलस्वरूप हिन्दी कविता में देश-प्रेम, समाज सुधार एवं अन्य आदर्श विषयों पर काव्य लिखे गये। प्रो० निर्मल तालवार ने अपने निबन्ध 'आधुनिक हिन्दी कविता' में द्विवेदी युगीन विचार धारा को इस प्रकार चित्रित किया है "देशप्रेम समाज-सुधार तथा हिन्दी प्रेम पर लिखने के अतिरिक्त 'राम' और कृष्ण को पौराणिकता से दूर, नये सामा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिक आदर्शों की अनुरूपता देने का प्रयास किया गया। 'साकेत' के राम और 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण चरित्रवान् नेता और कुशल नागरिक बन गये।" इस उद्धरण की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए द्विवेदी युगीन आदर्श और नैतिकता का रूप दिखाना ही मेरा उद्देश्य है।

आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी के अनेक छंदों का मौलिक ढङ्ग से प्रयोग किया। अतुकांत रचनाओं को प्रोत्साहित किया और हिन्दी के बहुत से अप्रचलित छन्द जैसे गीतिका, हरिगीतिका आदि के प्रयोग में सक्रिय सहयोग दिया। इन्होंने उर्दू के बहरो में भी कविता लिखने का प्रोत्साहन दिया। लालाभगवान दीन, अयौध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि लेखकों ने आचार्य आदर्श का पालन भी किया और 'हरिऔधजी' को इस कार्य में बहुत सफलता भी मिली।

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक शैली में उषा की विकासोन्मुखी लालिमा थी जिसका क्रमशः विकास होता गया और कालक्रम से हिन्दी-प्रांगण उद्भासित होता गया। खड़ी बोली हिन्दी के आकाश में जितने भी नक्षत्र हैं और होंगे उनमें द्विवेदी रूपी नक्षत्र की ज्योति निराली और शाश्वत है। उनकी प्रकाश-रेखा अमिट है, उनके प्रयास श्लाघ्य हैं; उनका पांडित्य स्तुत्य है। खड़ी बोली काव्य गंगा के भागीरथ आचार्य द्विवेदी को शतवार्षिकी की इसी पावन वेला में 'जन-भारती परिवार का कोटिशः नमन है।

"उनको देखने ही से मालूम होता था कि वे उस समय साहित्य के लौह-पुरुष थे। उनकी लौह लेखनी तो प्रसिद्ध थी ही। बड़े बड़े कवियों और विद्वानों को उनके सामने स्वच्छन्दतापूर्वक बोलने का साहस नहीं पड़ता था। उनका व्यक्तित्व ही असाधारण रूप से प्रभावशाली था। यद्यपि उनकी मुखाकृति से गम्भीर और कठोर प्रकृति का आभास मिलता था तथापि उनके हृदय में अत्यन्त करुणा भरी थी। उस करुणा, दया, उदारता तथा सहृदयता का परिचय वे वहीं देते थे जहाँ उचित समझते थे।"

पं० यज्ञकृत शुक्ल (द्वि० ज० अंक सरस्वती)

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-गद्य के महान संशोधक—आचार्य द्विवेदी

(श्री बैजनाथ राय एम० ए०)

ईसा की २० वीं शताब्दी के साथ हिन्दी-गद्य का नया युग 'द्विवेदी युग'—प्रारम्भ होता है। उस समय तक हिन्दी-गद्य को अभी पूर्ण स्थिरता नहीं प्राप्त हुई थी और न ही यह अभी व्यवस्थित हो पाई थी। इसने तो अभी-अभी अपनी बाल्यावस्था पार की थी। अतः इसमें चंचलता का होना स्वाभाविक था। उस समय तक हिन्दी-गद्य की चार शैलियाँ प्रचलित थीं :—(१) संस्कृत गर्भित शैली (२) उर्दू-फारसी-बहुल शैली (३) अंग्रेजी से प्रभावित शैली और (४) भारतेन्दु शैली !

( ) **संस्कृत गर्भित शैली**—भारतेन्दु-युग के जो संस्कृत के विद्वान थे, वे हिन्दी से संस्कृत शैली का प्रयोग करते थे। उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग हिन्दी में करना वे सर्वथा अनुचित समझते थे। इस शैली का प्रचार सर्व प्रथम राजा लक्ष्मण सिंह ने आरम्भ किया एवं स्वयं इस शैली का प्रयोग करके अन्य लेखकों को प्रभावित किया। इस शैली में संस्कृत के तत्सम शब्दों के बाहुल्य के साथ-साथ भाषा को अलंकृत बनाने के लिए कृत्रिमता की भी प्रवृत्ति रहती थी।

(२)**उर्दू-फारसी बहुल शैली**:—इसके समर्थक शिव प्रसाद सितारेहिन्द थे। वे उर्दू हिन्दी में कोई भेद नहीं मानते थे और नहीं मानने के कुछ कारण भी थे। राजा साहब शिक्षा विभाग में काम करते थे। वहाँ उन्होंने देखा कि मुसलमानों का अधिक प्रभाव होने से उर्दू का बोलबाला था। विद्यालयों में भी उर्दू की शिक्षा का ही प्राबल्य था। तत्कालीन अदालत की भाषा उर्दू ही थी। इस स्थिति में उर्दू-फारसी मिश्रित शैली के प्रयोग के लिए वे बाध्य थे, अन्यथा वे विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। उनका 'राजा भोज का सपना' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। चाहे जो हो, पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि राजा साहब ने जो हिन्दी का स्वरूप स्थिर किया, उसी की आधारशिला पर भारतेन्दुकालीन परिष्कृत हिन्दी का विशाल भवन खड़ा हुआ।

(३) **अंग्रेजी से प्रभावित शैली**—इस शैली में अंग्रेजी शब्दों के बाहुल्य के साथ-साथ वाक्य-विन्यास एवं मुहावरे भी अंग्रेजी ढगं के होते थे। अंग्रेजी के मुहावरों के बेतुके अनुवाद से भाषा दबी रहती थी। फिर भी कुछ अंग्रेजी के मनचले लोग इसका उटपटाँग प्रयोग करते ही थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **भारतेन्दु-शैली**— इस शैली का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं किया था। इसमें विषय के अनुकूल स्थानानुसार संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी शब्दों के भी प्रयोग होते थे, परन्तु प्रयोगों द्वारा वे ऐसे सधे **पचे** होते थे कि हिन्दी से भिन्न उनकी कोई सत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती थी, और न वैसे प्रयोगों से भाषा ही बोझिल हो पाती थी। अपितु उसमें अधिक स्वाभाविकता उभर पड़ती थी। हिन्दी की प्रवृत्ति के विशेष अनुकूल यही शैली सिद्ध हुई।

आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मूलतः भारतेन्दु के आदर्श को ही अपनाया तथा उसे अपने साँचे में ढालकर हिन्दी-गद्य को प्रौढ़ रूप दिया। हिन्दी गद्य के विकास के कार्यों को आगे बढ़ाने एवं हिन्दी को अधिकाधिक व्यापक बनाने के लिए उन्होंने ये चार सूत्र निर्धारित किये—

(१) विषयानुकूल एवं जनतानुकूल शैली का व्यवहार (२) उर्दू का सहज रूप स्वीकार करना (३) विदेशी भाषाओं के प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोण (४) भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में अभिवृद्धि का लक्ष्य।

(१) विषयानुकूल एवं जनतानुकूल शैली अपनाने के सम्बन्ध में अन्य लेखकों से कहते थे कि —"हिन्दी में जब कुछ लिखना हो तो भाषा ऐसी लिखनी चाहिए, जिसमें केवल हिन्दी जानने वाले भी सहज से समझ जाएं। संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों से लदी हुई भाषा में पांडित्य चाहे प्रकट हो, पर उससे ज्ञान और आनन्द-दान का उद्देश्य अधिक सिद्ध नहीं हो सकता।"

इस प्रकार वे विषय के अनुरूप एवं जनता के अनुकूल लिखने के पक्षपाती थे। लेखन शैली का जन-भाषा से निकटवर्ती सम्बन्ध बनाये रखने पर वे अधिक जोर देते थे, जिससे जो कुछ लिखा जाय उसे जन-साधारण को समझने में कोई कठिनाई न हो। हिन्दी-गद्य-शैली के सँवारने में यह उनका सबसे बड़ा लक्ष्य था।

(२) आचार्य द्विवेदी जी यद्यपि विशुद्ध हिन्दी के अनन्य उपासक थे, तथापि उर्दू-फारसी के सहज प्रचलित शब्दों को हिन्दी में आत्मसात करने में उन्हें कोई संकोच नहीं था। यही बात वे अपने युग के अन्य लेखकों को भी बतलाते थे। उन्होंने अपने एक पत्र में इसके सम्बन्ध में लिखा था—"उर्दू भिन्न भाषा नहीं, अरबी-फारसी के जो शब्द प्रचलित हों; उन्हें मैं हिन्दी के शब्द समझता हूँ। मेरे लेख इसके प्रमाण हैं।" उनके इस दृष्टिकोण का प्रभाव तत्कालीन लेखकों पर भी पूरा पड़ा। उन्होंने अपने निर्देशक के निर्देशानुसार शैली को मोड़ दिया।

(३) विदेशी भाषाओं के प्रति आचार्य द्विवेदी जी का दृष्टिकोण समन्वयवादी था। उर्दू-फारसी की भाँति वे अंग्रेजी, फारसी, पुर्तगाली आदि भाषाओं के उन शब्दों को, जो जनता द्वारा साधारण बोल-चाल में व्यवहार किये जाते हों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में स्वीकार करते थे, वे इस बात को कदापि स्वीकार नहीं करते थे कि स्टेशन, रेल, पोस्ट-आफिस, हास्पिटल, स्कूल, टेलीफोन या रेडियो जैसे शब्दों के स्थान पर हिन्दी में संस्कृत के पर्यायवाची शब्द व्यवहार किये जायँ।

(४) हिन्दी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में अभिवृद्धि के लिए वे अपने उक्त सूत्र को और अधिक व्यापक बनाने के दृष्टिकोण से कहते थे कि :—

"जिस तरह शरीर के पोषण और उद्यम के लिए वाह्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, वैसी ही सजीव भाषाओं की बाढ़ के लिए विदेशी शब्द और भावों के संग्रह की आवश्यकता होती है। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना बन्द हो जाता है तो यह उपवास सी करती हुई किसी दिन मुर्दा नहीं तो निर्जीव अवश्य हो जाती है"

आचार्य द्विवेदी जी भाषा के कुशल पारखी थे। वे इस तथ्य को भली-भाँति जानते थे कि किसी भी भाषा की सबसे बड़ी शक्ति उसके शब्द-कोष और उसकी लोकोक्तियों के भण्डार में ही है। इसलिए अन्य भाषाओं के ऐसे प्रचलित शब्दों एवं लोकोक्तियाँ को हिन्दी में आत्मसात करने के लिए वे सतत प्रस्तुत रहते थे, जिनके अपनाने से हिन्दी भाषा और अधिक बलवती एवं व्यापक हो। हाँ इतना अवश्य है कि ऐसे प्रयोगों के औचित्य पर भी वे सदा दृष्टि रखते थे, ताकि ऐसा न हो कि अनुपयुक्त प्रयोगों द्वारा भाषा बोझिल एवं दुरूह हो जाय।

हिन्दी-गद्य का द्विवेदी युग इन्हीं उक्त चार सूत्रों को लेकर आगे बढ़ा। तत्कालीन लेखकों ने अपनी भाषा व शैलों में तदनुसार परिवर्तन एवं परिमार्जन किये। इसका आदर्श द्विवेदी जी ने स्वयं अपनी रचनाओं में उपस्थित किया। यदि इस निश्चय के पूर्व की द्विवेदी जी की ही रचनाएँ देखें तो पाएँगे कि उनकी शैली में भी कतिपय दोष विद्यमान थे और उनका सुधार उन्होने स्वयं अपनी परवर्ती रचनाओं में किया। उदाहरणार्थ-हुआ के स्थान पर हुवा; वकालत के स्थान पर विकालत, नहीं के स्थान पर नहिं, सोच-विचार के स्थान पर शोच-विचार इत्यादि। ऐसी अक्षम्य भूलों के लिए वे पूर्ण सावधान हुए तथा अपनी रचनाओं के साथ-साथ दूसरे लेखकों की रचनाओं में भी सुधार किया।

तत्कालीन लेखकों की रचनाओं में प्रायः शब्द रूपों में इस प्रकार की भूलें होती थीं :—इकलौता के स्थान पर एकलौता, सिंहासन के स्थान पर सिंघासन कुटिलता के स्थान पर कुटलता, बेचारे के स्थान पर विचारे इत्यादि।

यही नहीं, उस युग के लेखक व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी बहुत करते थे। लिंग, बचन तथा कारक-सम्बन्धी भूलों की तो उनमें भरमार रहती थी। उदाहरणार्थ—'हमारी संतान' के स्थान पर 'हमारे सन्तान', 'रुपये' के स्थान पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रुपया', 'मत में' के स्थान पर 'मत से' इत्यादि। द्विवेदीजी की लाल स्याही द्वारा ऐसे दोषों का निवारण हुआ और हिन्दी गद्य के पुराने ढर्रे ने अपना वास्तविक रूप ग्रहण किया। भाषा की यह दुर्दशा देखकर उन्होंने उसी समय कामता प्रसाद गुरु से हिन्दी व्याकरण की प्रथम पुस्तक तैयार करवाई, जिसके द्वारा हिन्दी का बड़ा उपकार हुआ। व्याकरण के नियमों से नियंत्रित भाषा अब अधिकाधिक शुद्ध होने लगी। फिर भी यदि कुछ भूलें रह जातीं तो उनके लिये तो द्विवेदीजी सिर पर खड़े रहते थे।

आश्चर्य होता है यह जानकर कि द्विवेदीजी ने इतना गुरुतर कार्य कैसे किया? परन्तु साथ ही जब हमें स्मरण हो आता है कि वे केवल लेखक ही तो नहीं थे, अपितु अपने युग के कुशल निर्देशक, लेखकों के अध्यापक, सरस्वती पत्रिका के सम्पादक तथा हिन्दी-गद्य के महान् संशोधक थे, तो शीघ्र अपनी भ्रान्ति दूर हो जाती है। फिर भी उनकी शक्ति पर आश्चर्य बना ही रह जाता है।

उक्त संशोधनों के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी के शब्द-कोष में भी यथेष्ट अभि-वृद्धि की। एतदर्थ उन्होंने संस्कृत, बंगला, मराठी, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के सुपाच्य शब्दों को चुना तथा यथास्थान प्रयोग किया। हिन्दी के अतिरिक्त उक्त भाषाओं का भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था और तभी तो वे ऐसा कर सकने में समर्थ हुए। इस प्रकार हिन्दी को अधिकाधिक व्यापक बनाने का उन्होंने पूर्ण प्रयत्न किया।

अनवरत इस साधना में तत्पर रहते हुए द्विवेदीजी ने हिन्दी भाषा के सरल एवं व्यावहारिक रूप का विकास किया। उन्होंने यह सारा कार्य केवल स्वयं नहीं किया, अपितु एक ऐसा आन्दोलन चला दिया जिससे कि उस युग के सभी प्रमुख लेखकों का ध्यान भाषा के निर्माण एवं सुधार की ओर स्वयमेव आकर्षित हो गया। वह हिन्दी-गद्य का निर्माण-काल था। उस युग में रचनाओं से अधिक हिन्दी-गद्य-निर्माण का ही महत्व था और यही उस युग की प्रधानता है।

द्विवेदी जी ने केवल लेख ही नहीं लिखे, अपितु लेखक भी अनेक बनाये। मैं ऊपर व्यक्त कर चुका हूं कि वे एक कुशल अध्यापक और सम्पादक थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन भार ग्रहण किया। घूम-घूम कर उन्होंने कितने लेखक बनाये। उन्होंने उन्हें रचनाएँ लिखने की विधि बतलाई, लिखने के बाद भूलों का संशोधन किया एवं तत्पश्चात् 'सरस्वती' में उन रचनाओं को प्रकाशित किया। आरम्भ में उन्हें इस कार्य में बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। क्योंकि अधिकांश रचनाओं में संशोधनों द्वारा आमूल परिवर्तन करना पड़ता था। तो भी वे थकते नहीं थे और न हतोत्साह होते थे। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब लेखकों की संख्या काफी बढ़ गई तो उन्होंने केवल श्रेष्ठ रचनाओं को ही 'सरस्वती' में छापना आरम्भ किया। परन्तु यह नहीं कि शेष रचनाओं को फेंक देते अथवा उन्हें कोई महत्व नहीं प्रदान करते, अपितु प्रकाशित की जाने वाली रचनाओं के समान ही उनका भी संशोधन करते तथा उनके लेखकों के पास उनके दोषों का दिग्दर्शन कराते हुए लौटा देते कि दूसरी बार ऐसे दोष न हों और पुनः उनके परिमार्जित रूप प्राप्त करने पर प्रकाशनार्थ स्वीकार कर लेते थे। इस प्रकार अपने युग के लेखकों को वे सदा उत्साहित करते रहते थे। है कोई आज के युग में ऐसा सम्पादक ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा का ऐसा महान् संशोधक एवं पत्रिका का सम्पादक आज तक न हुआ और न होगा।

यही नहीं, प्रत्युत अपने युग के लेखकों की ये बैठकी भी करते थे और उस बैठकी में सभी के व्यक्तिगत दोषों का दिग्दर्शन कराते हुए आदर्श-पथ निर्देश करते थे, उनसे बराबर लिखते रहने का आग्रह करते थे और कभी-कभी तो अपने सामने ही बैठाकर विभिन्न विषयों पर लिखवाते भी थे। अपने लेखकों की भूलों को काटने में वे किंचिन्मात्र भी दया नहीं दिखाते थे और न ही उन्हें सही रूप बतलाने में। इसी लगन व तत्परता का परिणाम है कि उस युग में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', अध्यापक पूर्ण सिंह, पं० पद्मसिंह शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी प्रभृति उद्‌भट विद्वान हिन्दी साहित्य के विशाल प्रांगण में अवतरित हुए। हिन्दी-गद्य के विकाश में उक्त साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योग रहा। यह सब द्विवेदीजी के अध्यवसाय एवं लगन का ही परिणाम है।

भाषा व शैली के परिमार्जन एवं परिवर्द्धन के साथ ही साथ द्विवेदीजी ने विभिन्न साहित्यांगों के विकास की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया तथा स्वयं अथवा अन्य लेखकों द्वारा साहित्य के उन अंगो की पूर्ति की, जिनका हिन्दी में अभाव था। भारतेन्दु-युग में हिन्दी साहित्य में निबन्ध, नाटक जैसे कुछ ही रूप प्रचलित हो पाए थे। द्विवेदीजी ने जीवन-चरित, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, यात्रा, संस्मरण, आलोचना, व्याकरण आदि गद्य के विभिन्न रूपों की ओर अपने युग के लेखकों एवं पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। इसके फल स्वरूप उक्त सभी अंगो की पूर्ति हुई। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन विधाओं का विकास हुआ। शुद्ध भाषा के साथ-साथ उन्होंने विविध शैलियों का भी विकास किया।

निर्माण की जिन शिखर-सीढ़ियों से उतरती हुई हिन्दी गद्य सरिता मैंदान में आई उनकी प्रत्येक उतराई पर हमें द्विवेदीजी हाथ लगाते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसके अक्षर-अक्षर पर उस महान साधक की साधना झलक रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वन्दे मातरम्" और आचार्य द्विवेदी

प्रो० निर्मल तालवार

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यः'
अथर्ववेद १२-१-१२

भूमि 'माता' है और हम 'सन्तान'। श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्दमठ' के सन्यासी भी अपने को 'सन्तान' कहते थे और सुफला, सुजला, शस्यश्यामला माता की वन्दना करते थे। 'आनन्द मठ' की रचना दैवी-प्रेरणा का परिणाम है और 'वन्दे मातरम्' उसका दिव्य सन्देश।

'आनन्द मठ' की रचना यद्यपि सन् १८८२ में हुई है पर उसकी कथा-वस्तु का समय सन् १७७०-८० है। इस उपन्यास ने जनता के सुत राष्ट्र-भाव को जगाया। चैतन्य होकर उसने प्रश्न किया—'क्या आनन्दमठ केवल कल्पना है ? अथवा, इसका आधार ऐतिहासिक है ?' इस प्रश्न पर वंकिम अधिक समय तक मौन न रह सके। 'आनन्दमठ' उपन्यास के तीसरे संस्करण के समय उन्होंने लिखा—'आनन्दमठ प्रकाशित होइले पौर अनेके जानिते इच्छा प्रकाश करिया छिलेन ओई ग्रंथेर कोनो ऐतिहासिक भित्ति आछे कि ना। सन्यासी-विद्रोह ऐतिहासिक बटे।......ऐतिहासिक उपन्यास रचना आमार उद्देश्य छिलो ना। सुतरां ऐतिहासिकतार भान करि नाहीं। ए क्षणे देखिया शुनिया इच्छा होइयाछे 'आनन्दमठेर' भविष्यत संस्करणे सन्यासी-विद्रोहेर किंचित परिचय दीबो।' स्पष्ट है कि आनन्दमठ की ऐतिहासिक भित्ति सन्यासी-विद्रोह है।

१७५७ सन्—प्लासी-युद्ध के बाद बंगाल में असन्तोष फैल गया था। एक ओर मीरजाफर के अत्याचार बढ़ गए थे, दूसरी ओर अंगरेजों का शासन कठोरतर होता जा रहा था। ऐसे समय में दैवी-प्रकोप होता है। बंगला सन् ११७४ ई० (सन् १७६७-६८) में बंगाल में सांघातिक अकाल पड़ा। उसी अकाल का वर्णन आनन्दमठ में है। उसकी प्रतिक्रिया भी स्पष्ट है। उस समय क्रान्तिकारी सन्यासियोंने विधर्मियों और विदेशियों से देश को मुक्त करने का प्रयत्न किया। मंदिर की हर मूर्ति देश की प्रतिमूर्ति में परिवर्तित हुई। मां काली, भवानी और दुर्गा भारत-भूमि के ही मूर्त रुप हैं। और भारत-माता की भक्ति का मंत्र था 'वन्दे मातरम्।' उस समय बंकिम के सामने सम्पूर्ण राष्ट्र का चित्र नहीं था। अकाल ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल को जर्जरित कंकाल बना दिया था। भवानन्द एक स्थल पर कहते हैं—'देखो, जितने देश हैं, मगध, मिथिला, काशी, कांची, दिल्ली, कश्मीर-किस देश (?) की ऐसी दुर्दशा है कि मनुष्य भूखों मर रहा है और घास खा रहा है, जंगली कांटे खा रहा है, दीमक की मिट्टी खा रहा है... ....''[१] और आनन्द-मठ के 'वन्देमातरम्' गान की पंक्ति—''सप्तकोटिकण्ठ कलकल निनाद कराले'' भी इसी ओर संकेत करती हैं। समय पाकर यह गान राष्ट्र-गान के रूप में विकसित हुआ। क्योंकि उसकी भावना महिम और विराट थी। भवानन्द चांदनी रात में, मैदान पार करते हुए जा रहे हैं। ''चांदनी से छलछलाती शान्तिमयी धरती के मैदान, कानन, पहाड़ी नदी आदि की शोभा देख कर......वे गाने लगे—वन्दे मातरम्! सुजलां सुफलां......।''[२] उनका साथी महेन्द्र कोटि-कोटि भारत-वासियों के समान 'वन्दे मातरम्' का अर्थ नहीं समझा। उसका सहज प्रश्न था—''सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्य श्यामला माता कौन है ?'' फिर कहता है—''यह तो देश है, मां नहीं।' इस पर भवानन्द उत्तर देते हैं—''हम लोग दूसरी किसी मां को नहीं मानते—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। हम कहते हैं जन्मभूमि ही माता है।''[३] और मातृभूमि देवता बनी। मातृभूमि देवता का वन्दना-गीत 'वन्दे मातरम्' परम्परागत धार्मिक गान से भिन्न था।[४] सन्यासियों का अभिवादन-स्वर भी 'वन्दे मातरम्' था। उनके जीवन का लक्ष्य था विधर्मियों और विदेशियों से देश को मुक्त करना। ये सन्यासी वीर थे, सुसंगठित थे। एक महत् आदर्श इनके जीवन का पथ निर्माण कर रहा था। राय साहब जैमिनी मोहन घोष ने सरकारी रिकार्डस् के आधार पर "Sannyasi and Fakir Raiders in Bengal" पुस्तक लिखी है। ये रेकार्ड्स स्पष्ट करते

---

१ आनन्दमठ, पृष्ठ २७—अनुवादक मन्मथनाथ गुप्त।
२ ,, ,, २४— ,, ,, ,,
३ ,, ,, २५— ,, ,, ,,

4 It is not a religious song in the ordinary sense of the term......the Mother conceived is not an ordinary religious deity, but a new entity, the mother Country in which we live and move and have our beings. The mother country is not a mere mass of territory but a living entity working through her sons and fulfiling her mission through them.—"Bande Mataram" & Indian Nationalism Page-7.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि वारेन हेस्टिंग्ज, केप्टन टामस, केप्टन एडवड्स[1] को सन्यासियों का दमन करने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।[2] सन् १७७२-७४ का सन्यासी-विद्रोह ही 'आनन्दमठ' की ऐतिहासिक भित्ति है।[3] इसका विस्तृत वर्णन राय साहब ने अपनी पुस्तक में दिया है। सन्यासियों का संगठन और लक्ष्य केवल उपन्यास की ही कल्पना नहीं है वरन् इतिहास के पन्नों ने भी उनकी वीरता के गीत गाए हैं। अंगरेजी सरकार के इन रेकार्ड्स में भी सन्यासियों की वीरता का परिचय मिल जाता है। उपन्यास में मां के तीन रूप मानों भारत के इतिहास के, भारत के तीन रूप हैं—गौरवपूर्ण अतीत, विदेशियों और विधर्मियो से विपन्न वर्तमान तथा सुखद भविष्य ! इसी मूर्ति की वन्दना 'वन्देमातरम्' में की गई है।

'वन्दे मातरम्' अनेक वर्षों तक उपन्यास के महत्वपूर्ण एवं सुन्दर गीत के रूप में रहा किन्तु उसकी महत् एवं विराट कल्पना धीरे-धीरे साकार होने लगी। सन् १८९६ में कांग्रेस मंच से उसे पहली बार महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वर दिया। मगर भारतीय राजनीति ने शक्ति-मंत्र के रूप में सन् १९०५ में 'वन्दे मातरम्' को ग्रहण किया। हजारों कंठों ने पहली बार ७ अगस्त १९०५ को टाउन हाल मीटिंग (कलकत्ता) के समय इसे गाया और भारतीय आकाश इसके स्वर से गूंज उठा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'वन्दे मातरम्' को 'स्वदेशी आत्मा' कहा है। मंत्र को जन-जन ने ग्रहण किया। उसके बाद प्रति दिन वन्दे मातरम् के उच्च एवं मधुर स्वर से वायुमंडल गूंजने लगा। राजनीति के मंच पर आकर वह 'स्वराज्य-भावना' का बीजमंत्र बन गया। उस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों इसे गाते थे।[4]

राष्ट्रीय-जागरण होने लगा। 'वन्दे मातरम्' उसी जागरण का प्रतीक बना। अक्टूबर १९०५ में 'वन्दे मातरम् सम्प्रदाय' नामक संस्था की स्थापना उत्तर-कलकत्ता में हुई। इसके अध्यक्ष थे कुमार मन्मथ नाथ मित्र, सेक्रेटरी थे श्री सुरेन्द्र चन्द्र समाजपति। राय अमृत लाल मित्र थे इस संस्था के कोषाध्यक्ष। प्रति रविवार को इस संस्था के सदस्य 'वन्दे मातरम्' गाते हुए जनता का ऐच्छिक-

---

१ आनन्दमठ में इन सबका उल्लेख मिलता है।

२ देखिये—Sannyasi and Fakir Raiders in Bengal—पृष्ठ ५०-६३।

३ पृष्ठ—१८७ Congress & the extremist movement—by Dr. P. C. Ghosh.

४ Bande Matram and Indian Nationalist—Page 11, 13, 14 by H- Mukherjce and U. Mukherjee.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुदान ग्रहण करते थे। निश्चित है इस धन का सदुपयोग देश-स्वाधीनता की ओर अग्रसर करने वाले कार्यों में होता था।

संस्था के रूप में ही नहीं 'वन्दे मातरम्' पत्र के रूप में भी साकार हुआ। ६ अगस्त १९०६ को श्री विपिनचन्द्र पाल ने प्रसिद्ध 'वन्दे मातरम्' दैनिक-पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया, और शीघ्र ही श्री अरविन्द घोष उनके निकट सहयोगी बने। यह देश-भक्तों का पत्र था। वे चाहते थे कि उसका हर शब्द देश-व्यापी हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने इसका प्रकाशन बंगला में नहीं वरन् अंगरेजी में किया। 'वन्दे मातरम्' पत्र के माध्यम से देश-भक्तों ने जन-जागरण के जो प्रयास किए हैं वे भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में सदा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेंगे।

कांग्रेस के मंच से जिस गान का प्रसार हुआ, देशभक्तों ने जिसे मंत्र रूप में ग्रहण किया, जो स्वतंत्रता की वाणी बना जो राष्ट्र-जागरण का प्रतीक बना वह 'वन्दे मातरम्' केवल 'सप्तकंठों' और 'द्विसप्त भुजाओं' तक ही कैसे सीमित रह सकता था! उसमें सम्पूर्ण भारत-भूमि की वन्दना होने लगी। भारत-माता की वंदना कर वह गीत राष्ट्र-आरती बना। भारत की सम्पूर्ण-भूमि का गीत भारत के सम्पूर्ण आकाश में गूंजने लगा। वह जन-मन का स्वर हो गया। वह तीस-कोटि कंठ-स्वरों में गूंज उठा और साठ कोटि भुजाएँ भूमि-देवता की वन्दना के लिए उठीं। ऐसे समय में किसी भी जागरूक भारतीय का कर्तव्य उस स्वर को सुविस्तृत और शक्तिशाली बनाना था, माता भूमि-देवता की वन्दना के स्वरों में अपना स्वर मिलाना था। हर भारतीय साहित्यकार का कर्तव्य उस वाणी को भारत के जन-जन तक पहुँचाना था और हर सम्पादक का कर्तव्य अपनी पत्रिका के माध्यम से उसे प्रसारित करना था।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जिन्होंने सरकारी अन्याय देखा ही नहीं सहन भी किया था, जो साहित्य-निर्माता थे और जो थे 'सरस्वती' के समर्थ सम्पादक उन्होंने वन्दे मातेरम् के प्रति अपने कर्तव्य का अपने धर्म का पूर्ण पालन किया। उन्होंने 'वन्दे मातरम्' को संस्कृत रूप देकर भारतीय संस्कृति की वाणी बनाया, हिन्दी रूपान्तर के द्वारा भारत की भावी राष्ट्रभाषा में उस स्वर को सजाया और अंगरेजी की शब्दावली के द्वारा उसे उन लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जो संस्कृत, हिन्दी और बंगला नहीं जानते थे। आनन्दमठ का वन्दे मातरम् संस्कृत और बंगला भाषा का मिश्रण है, साथ ही वह सप्तकण्ठों की वन्दना है, वह द्विसप्तकोटि भुजाओं की शक्ति है। किन्तु राष्ट्र-भक्त महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने वन्दे मातरम् को अपने विराट और महत् रूप में ग्रहण किया और विराटतर एवं महानतर रूप में उसे जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। श्री विपिन चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाल और श्री अरविन्द घोष के पत्र 'वन्दे मातरम्' से पूर्व जनवरी १९०६ में द्विवेदी जी ने 'वन्दे मातरम्' को संस्कृत, हिन्दी और अंगरेजी के शब्द दिए। यह इस महत्वपूर्ण मातृ-वन्दना के प्रति उनकी आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति के साथ ही उनकी देशभक्ति, उनकी राष्ट्रभावना की अभिव्यक्ति भी है। उनके देश-प्रेम का मुखरित रूप भी है। इन कविताओं को उन्होंने अपने कवि-हृदय की गरिमा से सजाया और सम्पादक की कलम से संवारा है।

द्विवेदी जी कृत वन्दे मातरम् का संस्कृत रूपान्तर—

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयज शीतलां
शस्य श्यामलां मातरम्
शुभ्रज्योत्स्ना पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्।
त्रिंशत् कोटि कंठ कलकल निनाद कराले
द्वित्रिंशत् कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले
कथयन्ति जनास्त्वां कथं मातरबलाम्
बहुबलधारिणीं, नमामि तारिणीं,
रिपुदलवारिणीं मातरम्
त्वमेव विद्या त्वमेव धर्म
त्वमेव हृदयँ त्वमेव मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाह्वोर्मे त्वमेव शक्तिः
हृदये मातस्त्वमेव भक्तिः
तवैव प्रतिमा मातर्दृश्यते प्रति मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमल दल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी,
नमामि त्वाम्।
नममि कमलां अमलां अतुलां
सुजलां सुफलां मातरम्
वन्दे मातरम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
धरणीं भरणीं मातरम् ।

इस अनुवाद में 'सप्तकोटि' और 'द्विसप्तकोटि' 'त्रिशत् कोटि' और द्वित्रिशत् कोटि' में परिवर्तित हो गए । इस परिवर्तन ने मातृभूमि का रूप आलोकित करने के लिए १४ कोटि से ६० कोटि हाथों में प्रज्वलित प्रदीप दे दिए, और उसकी आरती सात कोटि कण्ठों के स्थान पर तीस कोटि कण्ठों से होने लगी। यह जन-जागरण के विकास की द्योतक है ।[1] बंकिम की कविता में और इसमें एक लय है । दोनों में समान पंक्तियां हैं । शब्दों में भी अधिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं हुई । केवल ६ पंक्तियों के परिवर्तन से ही कविता 'संस्कृत' भाषा में रूपान्तरित हो गई है । और यह नहीं समझ पड़ता कि उसे बंकिम और महावीर —दो विद्वानों ने लिखा है । यह द्विवेदीजी की अनुवाद-कला की सफलता है । साथ ही कविता अपने अर्थ में गरिमापूर्ण हो गई ; अपने विस्तार में बहुत अधिक व्यापक ।

द्विवेदीजी ने इसे हिन्दी में रूपान्तरित करके जन-साधारण के लिए गम्य बनाया । द्विवेदीजी सहज और सरल भाषा के पक्षपाती थे । और भाषा की सफलता वे इसी में मानते थे कि गम्भीर से गम्भीर भाव भी सहज रूप से उसमें अभिव्यक्त हो सकें ! 'वन्देमातरम्' का हिन्दी अनुवाद उन्होंने किया है ; भारत-माता की वन्दना के स्वर अत्यन्त सरल भाषा में सुलभ करवा दिए । केवल चार छन्दों में १६ पंक्तियों में सम्पूर्ण वन्दे-मातरम् कविता के शब्द और अर्थ स्पष्ट हो गए हैं । इतना ही नहीं वरन् भारत के हर प्राणी के प्रति उन्होंने विश्वास भी प्रकट किया है जो मूल वन्देमातरम् में नहीं है । वे कहते हैं कि भरतखण्ड में एक भी एक पापी प्राणी नहीं है जो अपनी मातृभूमि की महिमा के गान प्रतिदिन न गाये । अतः उनका विश्वास है कि प्रतिदिन प्रति प्राणी मां की वन्दना करता है । 'वन्देमातरम्' का द्विवेदीजी कृत हिन्दी रूपान्तर देखिए—

वन्दे मातरम् !

पानी की कुछ कमी नहीं है, हरियाली लहराती है ।
फल और फूल बहुत होते हैं, रम्य रात छवि छाती है ॥
मलयानिल मृदु मृदु बहती है, शीतलता अधिकाती है ।
सुखदायिनि वरदायिनि तेरी, मूर्ति मुझे अति भाती है ॥

---

१ पहली बार किस राष्ट्र भक्ति में सप्त कोटि का तीसकोटि किया यह विवाद ग्रस्त है ! आज इस प्रश्न का उत्तर खोजना अत्यन्त कठिन है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्दे मातरम् !

तीसकोटि लोगों की कलकल, सुनी जहाँ पर जाती है ।
उसकी दुगुन खङ्गधारा की द्युति विकास जहं पाती है ॥
तिस पर भी 'तू अबला है' यह बात व्यथा उपजाती है ।
हे तारिनि ! हे बहुबल धारिनि ! रिपु तू काट गिराती है ॥

वन्दे मातरम् !

तू ही धर्म, कर्म भी तू ही, तू ही विद्यावाणी है ।
तू ही हृदय, प्राण भी तू ही, तू ही गुणगण खानी है ॥
बाहुशक्ति तू ही मम, तेरी भक्ति महामन मानी है ।
प्रति घट, प्रति मन्दिर के भीतर तू ही सदा समानी है ॥

वन्दे मातरम् !

हे दुर्गे ! दस भुजा तुम्हारी दुर्गति नाश निशानी है ।
हे कमले ! हे अमले ! अचले ! तू सब सुख की खानी है ॥
नहीं एक भी भरतखण्ड में ऐसा पापी प्राणी है ।
कहै न जो नित 'यही हमारी महा-महिम महरानी है ॥'

वन्दे मातरम् !

सन् १९०६ में प्रकाशित होने वाली यह कविता हिन्दी खड़ी बोली की सरलता और ग्रहण शक्ति की परिचायक है । 'खड़ी बोली' तब काव्य के उपयुक्त भी नहीं समझी जाती थी । मगर जिसे खड़ी बोली के काव्य की प्रतिष्ठा करनी थी उसने पावन देश भक्ति के गीत का अनुवाद उसी भाषा में करके एक ओर भाषा की उपयुक्तता सिद्ध की तो दूसरी ओर महिम-वन्दना को जन-मन के निकट पहुँचाने में भी सफलता प्राप्त की ।

१९०६ में संस्कृत, बंगला और हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी अनुवाद भी आवश्यक था । अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार का सरकार समुचित प्रबन्ध कर रही थी । वह शिक्षितों की भाषा बन रही थी । श्री अरविन्द घोष ने अपने दैनिक-पत्र 'वन्दे मातरम्' को इसीलिए अंगरेजी में प्रकाशित किया था कि ये नवशिक्षित उसे पढ़ें । श्री अरविन्द घोष ने भी 'वन्दे मातरम्' कविता का अंगरेजी अनुवाद किया है । किन्तु वह अनुवाद सुन्दर होकर भी सरल नहीं है । आचार्य द्विवेदी ने उसे जनसाधारण के लिए लिखा, अतः उनका अंगरेजी अनुवाद भी हिन्दी अनुवाद के ही समान अति सरल और सहज है ।

अंगरेजी अनुवाद—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Bande Mataram

Hail ! Mother !
Sweet thy water, Sweet thy fruits,
Cool blows the scented South-wind
Green waves thy corn.
Mother !
Land of the glad white moonlit nights
Land of trees with flowers in bloom
Land of smiles land of voices sweet
Giver of joy, giver of desire.
Mother !
Thirty million* voices resounding
Twice thirty million arms in resolve
Uplifting :—
Dare any call thee weak ?
Obeisance to Thee ! O Thou mighty with
multiple might !
Redeemer Thou, Repeller of the enemy's host
Mother !
In Thee all knowledge, Religion Thou
Thou the heart, Thou the seat of life,
The breath of life in the flesh !
O Mother, the strength of this arm Thine,
Thou the devotion in the heart !
Thine the image consecrate,
From temple to temple !
Thee weilder of ten arms Durga. Thou,
Thou the Goddess of wealth bower'd
in the Lotus.

*Thirty million के स्थान पर "three hundred millon" होना चाहिए था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Thou the dispensing wisdom Obeisance to Thee.
Salutation to the ! Holder of wealth Peerless
With thy limpid water and luscious fruit
Mother, Hail Mother !
Verdant, artless, sweet-smiling
Radiant, holding, nourishing,
Mother ! Mother, Hail !!

१९०५-६ का युग 'वन्दे मातरम् का युग' था। हर देशभक्त की वाणी इस वन्दना से पावन हुई थी। पर जिसकी भावना गहरी थी, विचार शक्ति समर्थ थी उसने उस स्वर को अपनी आत्मा के रंग से रंगा भी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ऐसे ही देशभक्त थे जिन्होंने मां की आरती की थाली को अपने प्रदीपों से और अधिक आलोकित किया, वन्दना के स्वर को अधिक उच्च बनाया।

*

"डाक्टर जान्सन की तरह द्विवेदीजी के साहित्यिक कोड़ों की चोट से बहुत से अनधिकार-चेष्टा करने वाले लेखकों को समय-समय पर तिलमिलाना पड़ता था। यह उनकी सृजनात्मक सकर्मक आलोचनाओं का ही पुण्य परिणाम है कि आज हिन्दी-संसार मैथिली शरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, डा० गुलाब राय जैसे अनेक साहित्यकारों के यश सौरभ से सुवासित है।" —'श्री अशोक महाजन' (द्वि० जन्मशती अंक) सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी एवं कविवर 'नवीन'

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' में राष्ट्रीयता, साहित्यिकता तथा पत्रकारिता के बीज बाल्यावस्था में ही वपन हो गये थे। वे दस वर्ष की अवस्था से ही 'सरस्वती', 'प्रभा' एवं 'प्रताप' का मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने लगे थे। 'सरस्वती' उस युग की प्रमुख एवं प्रभावपूर्ण पत्रिका थी जो कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के कुशल सम्पादन में उत्तरोत्तर प्रगति कर रही थी। 'नवीन' जी 'प्रभा' तथा 'प्रताप' के नियमित ग्राहक और पाठक थे। खण्डवा की 'प्रभा' को श्री माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पादन में, 'मध्यप्रदेश की सरस्वती' की गरिमा प्राप्त हो चुकी थी।

अपनी किशोरावस्था में नवीन जी अपनी कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ प्रेषित किया करते थे परन्तु आचार्य द्विवेदीजी उन्हें संशोधित कर, प्रत्यावर्तित कर दिया करते थे। इन किशोर-कृतियों में द्विवेदी युगीन काव्य-प्रवृत्तियों का प्राचुर्य था। जब 'नवीन' जी उज्जैन के हाई स्कूल में पढ़ते थे; उनके अत्यन्त प्रिय सखा और सहाध्यायी 'सन्तू' का प्लेग से देहान्त हो गया। उसीकी प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने एक कहानी लिखी जिसका शीर्षक था 'सन्तू'। प्रस्तुत कहानी में नवीन जी की भाव-धारा उद्दाम वेग से मानो फूट पड़ी है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ यह कहानी भेजी गई। कहानी पढ़कर द्विवेदीजी ने अपने सहकारी श्री हरिभाऊ उपाध्याय से कहा—'इन्हें पत्र लिखकर पूछो कि किस बंगला कहानी का यह अनुवाद किया गया है ?' उत्तर में नवीन जी ने लिखा, 'मैं तो बंगला जानता ही नहीं और यह कहानी मेरी लिखी हुई है, अनुवाद नहीं।' इसके उत्तर में द्विवेदी ने स्वयं एक पोस्टकार्ड लिखकर 'नवीन' के पास भेजा : 'महोदय, कहानी मिली – छापूंगा। — म० प्र० द्विवेदी।' फिर यह कहानी 'सरस्वती' के जनवरी, १९१८ ई० के अंक में प्रकाशित हुई। यह 'नवीन' की सर्व प्रथम प्रकाशित साहित्यिक रचना है और इसी में ही उनका कवि-नाम 'नवीन' सबसे पहले आया है। कहानी में संस्कृत-निष्ठ भाषा और कारुणिकता का मार्मिक आच्छादन है।

इसके पश्चात् आचार्य द्विवेदीजी 'नवीन' जी की प्रतिभा तथा साहित्यिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कर्ष से बड़े प्रभावित रहे। नवीनजी की 'तारा' नामक कविता को 'सरस्वती' के मुखपृष्ठ पर, अप्रैल, १९१८ के अंक में छापा। उनकी 'विरहाकुल' रचना को दिसम्बर, १९१८ में स्थान दिया। इस प्रकार एक ही वर्ष में 'सरस्वती' सदृश्य श्रेष्ठतम पत्रिका में तीन रचनाओं का प्रकाशित हो जाना और मुख-पृष्ठ का गौरव पा जाना, साधारण बात नहीं थी। इससे विद्यार्थी 'नवीन' की 'होनहार-बिरवान के होत चिकने पात' की सिद्धि होने लगी। तदनन्तर 'सरस्वती' में अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उनमें स्वच्छन्दतावादी काव्य का क्रमिक उन्नयन आने लगा।

'नवीन' जी ने अपने सम्पादन काल में कानपुर की 'प्रभा' को छायावादी काव्य एवं स्वच्छदतावादी प्रवृत्तियों का प्रश्रय-स्थल बनाया। वह युग की नवीन चेतना, राष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिक उन्मेषों से अधिक सम्बद्ध थी। 'प्रसाद' जी आदि 'सरस्वती' की अपेक्षा 'प्रभा' को अधिक पसन्द करते थे। 'नवीन' की लेखनी 'प्रताप' में भी ओजस्विता का अजस्र स्रोत प्रवहमान कर रही थी।

प्रखरता तथा निर्भीकता 'नवीन' जी के जीवन-जगत के मूलमंत्र थे। उन दिनों नई कविताओं के विषय, रचना-विधान आदि पर व्यंग्य करते हुए आचार्य द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' में 'सत्कविदास' के छद्म नाम से एक करारा लेख लिखा। इस निबन्ध में यद्यपि 'नवीन' की 'चलो वीर पटुआखाली' कविता की सराहना थी, तथापि नवीन जी का उक्त लेख की कई बातों से मतभेद था और उसका उत्तर उन्होंने 'प्रताप' में दिया। सादर उन्होंने लिखा था कि आप तो हमारी साहित्यिक कृति और रुचि के उन्नायक हैं। तो फिर—

'बिछाया अपना सिंहासन सुहावन दूर क्यों इतना ?
लपट से डरते हो, इसकी जो लौ सी यह उठीं है कुछ ?'

उपरिलिखित निबन्ध के प्रकाशन के कुछ दिन बाद एक बार द्विवेदी जी 'प्रताप' कार्यालय में आये। बैठते ही 'नवीन' जी से पूछा : काहे हो बालकृष्ण। तिनु एक बात हमका के बतावा, तुम्हार इ सजनी, रानी, प्रिये ई को आंय ?' 'नवीन' जी ठहरे हाजिर जवाब : उनका तो स्वर था –खाये पीये लगाया टीका, वही बंभन रहे नीका। चटसे उत्तर दिया, 'अब तुम बूढ़ होइगे हौ, का करिहो इनका मरम जानिकै।' ठहाका लगाते हुए द्विवेदी ने एक घूँसा लगाया 'नवीन' जी को और बोले, 'बड़े मुरहा हौ।'

अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी आचार्य द्विवेदीजी को अपना गुरु मानते थे और विद्यार्थी जी नवीन जी के गुरु थे। गणेशजी ने 'सरस्वती' में कार्य करते हुए, द्विवेदी के चरणों में सम्पादनकला की दीक्षा ली थी। परन्तु 'नवीन' जी की निर्भीकता सदा-सर्वदा अपने निर्द्वन्द्व रूप में अभिव्यक्त हुआ करती थी। वे अपने मत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेद को स्पष्टता तथा निःसंकोच रूप में प्रकट कर दिया करते थे और किसी का भी अंधानुकरण नहीं करते थे। कहना नहीं होगा कि वैमत्य के अवसर पर, नवीन जी ने वीर सावरकर, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू व पुरुषोत्तम दास टण्डन का भी, अपने हृदय में इन महापुरुषों के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए, विरोध किया था।

इन सब घात-प्रतिघातों के पश्चात् भी 'नवीन' जी के हृदय में किसी प्रकार का विकार या गाँठ नहीं बंध पाती थी। वे स्वच्छ तथा निष्कपट हृदय के महा-मानव थे। सन् १६२२-२३ में कानपुर में, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में, आचार्य द्विवेदी स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने अपने भाषण का प्रारम्भिक अंश ही उसमें पढ़ा था और उत्तरार्द्ध का पाठ 'नवीन' जी ने ही किया था।

आचार्य द्विवेदीजी की शुभाशंसा तथा मंगलाशीष सदा 'प्रभा' एवं 'प्रताप' के साथ रहा। द्विवेदी जी की शैली का प्रभावांकन गणेशजी तथा नवीन जी की गद्य-रचनाओं पर देखा जा सकता है। नवीन जी के मानस में द्विवेदी जी के प्रति सदैव सम्मान एवं श्रद्धा का सद्भाव बना रहा। यद्यपि वे स्वेच्छावादी काव्य के पोषक तथा उन्नायक रहे : फिर भी द्विवेदी जी के प्रति उनके मन में कभी भी कोई अमर्यादा, अनैतिकता या निरादरपूर्ण वृत्ति ने अपने नीड़ नहीं बनाये। नवीन जी में वैचारिक उदारता तथा मननशीलता का उदात्त रूप विराजमान था। द्विवेदी जी की मृत्यु के पश्चात्, साप्ताहिक 'प्रताप' में 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी' शीर्षक अपने लेख में, नवीन जी उनके साथ अपने सम्बन्धों का निरूपण करते हुए, द्विवेदीजी के आचार्यत्व, युग-प्रवर्तक रूप, पाण्डित्य तथा साहित्य-परोपकार को पूर्ण मान्यता प्रदान करते हुए, अपनी अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

आचार्य द्विवेदी और कविवर 'नवीन' का सौरभ अब इतिहास के पृष्ठों को सुरभित कर रहा है। अब वे साँचे टूट गये जिन्होंने ऐसे मनीषियों को गढ़ा था। त्याग, बलिदान, ईमानदारी और मर-मिटकर राष्ट्र व साहित्य की सेवा करना, कल्पना लोक की वस्तु हो गई है और उसके स्थान पर विलास, फैशन एवं औपचारिकताओं ने अपने वितान तान लिये हैं। ये ध्रुवतारे हमारे आज के घटाटोप एवं मनोवांछित साहित्य तथा अवसरवादी राष्ट्रीयता के कुज्झटिकाच्छन्न मार्ग में अभी भी स्थिर रूप से आभा बिखेर रहे हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी युग की महत्तम उपलब्धियाँ

'प्रिय-प्रवास' और 'साकेत' तथा आधुनिकता

श्री नरोत्तम पाण्डेय

हर युगमें दो-एक महान प्रतिभाएँ निखर आती हैं, युग को जीवन देती हैं, भविष्य को संजीवनी। युग जीवन्त हो उठता है, भविष्य आशावान। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रतीभा ऐसी ही थी, और हिन्दी का एक युग विशेष (१९०३-२० ई० तक) उनके नाम पर अभिहित है : द्विवेदी-युग।

'सरस्वती का सम्पादक वन १९०३ ई० में आपने हिन्दी-साहित्य में प्रवेश किया। अन्तस्सलिला की अलुत धारा से समग्र हिन्दी-संसार पवित्र हो उठा, परिष्कृत हो उठा।

वह युग यदि स्वतोव्याधातों का नहीं, तो भी अराजकता का था, अव्यवस्था का था। प्रचार के उत्साह में व्याकरण के नियमों की अवहेलना, ग्रामीण प्रयोगों की बहुलता, उर्दू-अंग्रेजी शब्दों की भरमार बढ़ती जा रही थी। नवोत्थान और बंगला के अनुवादों से हिन्दी की निजी शैली नष्ट हो रही थी, उवड़-खावड़ शब्दावलियाँ बढ रही थीं।

द्विवेदीजी ने कार्य-भार संभाला। भाषा के स्वरूप में स्थिरता दी, शैली में आदर्श स्थापित किया। शब्दों में संस्कृत के समास बहुल, तत्सम और सारगर्भित शब्दों के संकलन की प्रवृत्ति वढ़ी, वार्णिक छन्दों से अनुरक्ति हुई। शब्द-शक्तियों के समुच्चय और उचित प्रयोग पर ध्यान दिया गया। 'अलौकिकानन्द दायिनी कविते!' की पुकार की गई, 'रूपोद्यान प्रफ्फुल्ल प्राय लतिका राकेन्दु विम्बानना' का चित्रण।

वह युग पुनरुत्थान और उत्क्रान्ति का था। द्विवेदी-युग को दाय में मिली थी ब्रजीभाषा और 'राधाकृष्ण सुमिरन के बहानें, कवियों को रिझाने' की कविताई। भारतेन्दु ने गद्य में स्वरूप परिवर्तित अवश्य किए थे, कविता के लिए उसी 'तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहुछाए' की पच्चीकारी की। रीति कालीन काव्य-शिल्प कौड़ी पर कसीदा था; भाव-सम्वेदन नारी के अंगों और अंग-विन्यासों में विभ्रान्त चिन्तन। साधारण हाव-भाव ओर उद्दाम शृंगार। रुचि संकीर्ण युग की साधना अब असफल सिद्ध होने लगी थी। नये युग का नवीन तक़ाजा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य सम्पर्क के बढ़ने से नवीन अनुचेतनाएँ पनप रही थीं। सामाजिक दिशा-दृष्टियों में परिवर्तन हो रहे थे। चिन्तन में बौद्धिकता और आचरण में कृत्रिमता बढ़ रही थी। समाज-सुधार और नारी-शिक्षा के आन्दोलन में स्वर प्रखर हो रहे थे। १९०४ में रूस पर जापान जैसे छोटे देश की विजय औद्योगिक विकासों का उद्घोष था, वैज्ञानिक उपलब्धियों का शंख-नाद। वंग-भंग, 'होम रूल' और अन्तत: असहयोग आन्दोलन राष्ट्रीय चेतनाएँ उद्बुद्ध कर रहे थे; विवद्धित अन्तर-राष्ट्रियता—राष्ट्रसंघ' की संस्थापना—विश्व-बंधुत्व का संदेश दे रहे थे। साम्य, स्वातंत्र्य और बंधुत्व युग-ध्वनियाँ थीं; शासन, शिक्षा और राष्ट्रियता मांग। ऐसे परिपेक्ष्य से, सीधी और सच्ची बात है, हमारे कवि और साहित्यकार प्रेरित और प्रभावित कैसे न हों ?

अत: नारी का युगानुकूल मूल्याङ्कन् नर की महत्ता, जो ईश्वरता भी दे सके, सेवा की भावना, सुधार के स्वर, दिशा का प्रेम राष्ट्रीयता के राग और साथ-साथ नैतिकतावादी मर्यादित आदर्श युगीन संवेदनाओं के केन्द्रण रहे, इनका परिणाम 'राधा जैसी सदय हृदया विश्वप्रेमानुरक्ता, 'सच्चे स्नेही अवनि जनके देशके श्याम जैसे' और 'भाव को नव वैभव व्याप्त कराने आया नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया' के रुप में हुआ।

उधर कवीन्द्र रवीन्द्र का 'कवियों की उपेक्षिताएँ' और द्विवेदीजी का 'उर्मिला विषयक उदासीनता' निवन्ध नवीन मंत्र फूक रहे थे। अत: वह एक ऐसा अवसर था जब प्रिय प्रवास', साकेत, बैदेही-वनवास, यशोधरा, जैसी कृतियाँ प्रकाश में आई। हरिऔधजी ने राधा का उदात्तीकरण किया, काव्य में उसे महिम बनाया। उनके व्यक्तित्व में युग की नारी की सेवाभावना, और महत्व व्यंजित हैं। शैली की दृष्टि से प्रिय प्रवास अभूत पूर्व चरण था। यह प्रथम महाकाव्य था। भारत में भारती के स्वर गूंजने की कामना करने वाले गुप्तजी में युगानुकूलता अधिक उभर कर आयी। युग की संवेदनाओं का अच्छा पल्लवन हुआ, भाव में, शिल्प में। उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियों के समीकृत इन्होंने 'साकेत, में किया। शैली में नवीनता लाए। तुकान्त मात्रिक छन्दों में शृंगार आदि के सम्मुख ला, भविष्य को आशाप्रद बनाया। भाषा की सादगी और सचाई के साथ ही गीतिशैली का अनुगमन भी इसमें हुआ। गीतिशैली का विकास द्विवेदी-युग में शुरु हो गया था। दोनों कवि एक ओर धर्माचारी, दूसरी ओर दयानन्द स्वामी और महात्मा गाँधी के आन्दोलनो से प्रभावित रहे। ऐसे परिप्रेक्ष्य में, साकेत तथा प्रिय प्रवास जैसी रचनाएँ ही सामने आ सकती थीं, वस्तु और चरित्र सृष्टि की दृष्टि से। नव-युगके दोनों नवीन महाकाव्य थे, जिनका सजातीय पूर्वादर्श नही रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदीजी आदर्शवादी थे—भाषा हो तो शुद्ध और व्याकरण सम्मत, ग्रामीण शब्दों से मुक्त, उर्दू और अंग्रेजी के असुन्दर प्रयोगों से परे साथ ही वह खड़ी बोली हो, जीवन के अति निकट, जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति। उसमें सरलता हो, अर्थ गम्भीरता हो और सहज प्रवाह हो। छन्दों के लिए दुराग्रह नहीं, भावों को साध सकें, ऐसे छन्दों का प्रयोग। वर्णिक और मात्रिक दोनों का प्रयोग स्वीकृत।

काव्य के विषय भी किसी प्रयोजन से युक्त। द्विवेदीजी का युग कला की साधना बिना प्रयोजन के नहीं कर सकता था। कला के माध्यम से युग-धर्म से अभिज्ञ जनता को चैतन्य करना था। कैसी नारी और कैसे पुरुष युग-धर्म का आदर्श बन सकेंगे इसकी खोज आवश्यक थी। जनता राम और कृष्ण से सुपरिचित थी। अतः द्विवेदीजी की ओर उनके युग की सम्पूर्ण आदर्शवादिता और नीतिमत्ता को लेकर राम और कृष्ण ने नवजीवन प्राप्त किया।

अस्तु भाव, शिल्प एवं युग के विचार से, युग के आदर्श से, द्विवेदी युग की बहुल और विविध उपलब्धियों में प्रिय-प्रवास और साकेत ही महत्तम हैं।

'प्रिय प्रवास' कृष्ण-भक्ति-काव्य में नहीं, कृष्ण-काव्य में नई कड़ी है, और 'साकेत' है राम-काव्य में, राम-भक्ति-काव्य में नहीं। प्रस्तुत कृतियों में सनातन कथानक नवीन कलेवर में प्रस्तुत किया गया है, अतः प्रचुर आधुनिकता इनमें विद्यमान है—वर्ण्य में, नायक में, रस-विधान में और शिल्प में। परम्परा की घिसी-पिटी लीक से हटकर भी इन कवियों ने चरित्रों में विकृतियाँ नहीं आने दीं, नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा द्वारा युग-सापेक्ष संस्पर्शों से उन्हें उदात्त बनाया, जन-मन के सन्निकट लाया, फिर भी मानवतादर्श को अपदस्थ नहीं होने दिया।

वर्ण्य की दृष्टि से, 'समुत्सुक युवा, युवती 'गृह-बालिका' से 'बिपुल वृद्ध वयस्कों' तक का कृष्ण के प्रति अनन्य अनुराग, उनके वियोग में अशेष व्यथा और वियुक्तों द्वारा संस्मरण-गुण कथन का ही अंकन 'प्रिय प्रवास' में हुआ है। राधा के व्यष्टि-प्रेम की समष्टि में परिणति और लोक-सामान्य धरातल पर उसकी संस्थापना, राधा के देवी स्वरूप का अंकन और उदात्तीकरण कवि का लक्ष्य रहा है।

पुराणों में, आराधना से एकान्त अनुग्रह प्राप्ता, गीत-गोविन्द की 'प्रथम समागम लज्जितया पटु चाटु शतैरनुकूलम्' की आकाँक्षिणी, विद्यापति की 'वचन की चातुरी लहु-लहु हास' से धरनी पर चाँद का प्रकाश करने वाली और चंण्डीदास की 'श्याम नाम'[१] सुन आकुल-व्याकुल होने वाली राधा 'हरिऔध' के प्रतिभा-

१ 'सेई केवा सुनाइल श्याम नाम
काने भितरे दियामरमे पाशि लागे
आकुल करिल मोर प्रान।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारस के स्पर्श से कह उठती है :—

"प्यारे आवें **सुवयन** कहें प्यार से गोद लेवें
ठंडे होवें नयन, दुःख हो दूर, मैं मोद पाऊँ।
ये भी हैं भाव मम उर के, और ये भाव भी हैं,
प्यारे जीवें, जग हित करें, गेह चाहे न आवें।"

राधा के उदात्तीकृत हृदय में विश्व-प्रेम उमड़ पड़ता है। वह प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व में प्रिय-दर्शन करती है उसे न तो 'बूझत श्याम कौन तू गोरी ?' के रूपक की आवश्यकता है, और न 'मधुवन तुम कत रहत हरे' के उपालम्भ की। राधा दीन-दुखियों की सेवा करती है, उन्मना बालिकाओं का मनोरंजन। राग तत्त्व की व्यापकता और सम्प्रसार से वह अपना कष्टक्लेश भूल जाती है, गोपाङ्गना की सेवा में लीन हो जाती है। उस प्यार वंचितासे—

"आटा चींटी विहगगण थे वारि औ अन्न पाते
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीरादि में भी
पत्तों को भी न तरु-वर के वे वृथा तोड़ती थीं
जी से वे थीं नित रहती भूत-सम्बर्द्धना में।"

अस्तु परिवर्तित संदर्भ में, 'राधा जैसी सदय हृदय विश्व प्रेमानुरक्ता' के उदात्त चरित्र की अपेक्षा भरत भुवि के अंक में की गई है—

'सच्चे स्नेही अवनि जन के देश के श्याम जैसे
राधा जैसी सदय हृदया विश्व-प्रेमानुरक्ता।
हे विश्वात्मा! भरत भुवि के अंक में ओर आवे,
किन्तु ? ऐसी व्यापी विरह-घटना किन्तु कोई ना होवे।

इस भरत वाक्य से भी स्पष्ट है, राधा की उदात्त व्यापी विरह घटना ही 'प्रिय प्रवास' का प्रतिपाद्य और वर्ण्य है।

'साकेत' के वर्ण्य का केन्द्र साकेत ही है। चंचल कलम अगर कभी चित्रकूट भी गई है, तो

'सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा
सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा।'

'प्रिय प्रवास' की तरह साकेत भी चरित्र काव्य है, उर्मिला की चरित्र-सृष्टि इसकी प्रभावान्विति। अस्तु, प्रारम्भ में, परोक्ष ही सही, पूर्वराग की योजना की गई है। राम वनगमन, मेघनाद वध और उर्मिला-लक्ष्मण के मिलन से इसकी समाप्ति है। 'साकेत' का वर्ण्य एकाधिक दृष्टियों से परम्परा के प्रति साहित्यिक और सामाजिक उत्क्रान्ति का उद्घोष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत में रोम-रोम पर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड प्रकट कर मां को अद्भुद-अखंड रूप दिखाने वाले ईश्वर की नरता का संस्थापन नहीं है, इसमें लोकोत्तर गुणों द्वारा नर की ईश्वरता प्राप्ति का प्रतिपादन है।

'राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए हो नहीं, सभी कहीं हो क्या ?'

वैचारिक दृष्टि से, उर्मिला और लक्ष्मण राज-परिवार के हो के भी सामान्य लोक जीवन निभाते हैं। 'मानस' के राम की भाँति केवल विरहावस्था में ही खग-मृग और मधुकर श्रेणी से प्रश्न कर लोक-भूमि को स्पर्श नहीं करते। वे आरम्भ से ही संयुक्त भारतीय परिवार के सीधे और सच्चे प्रतिनिधि हैं।

युग चेतना के सजग प्रभाव से वनगमन के समय प्रजा की भद्र अवज्ञा, सैनिकों को उर्मिला की सत्याग्रह [१] और अहिंसा की शिक्षा, किसानों, चरखा-तकली और स्वावलम्बियों के प्रति सहानुभूति, और अपने पैरों पर खड़ी सीता को अपनी कुटिया में राजभवन बनाने की उक्ति में तत्कालीन गाँधी युगीन बौद्धिकता है।

'औरों के हाथों, यहाँ नहीं पलती हूँ
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूं
श्रमवारि बिन्दुफल स्वास्थ्य शुक्त फलती हूँ
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ
तनु लता सफलता स्वाद आज ही पाया
मेरी कुटिया में राजभवन बन आया।'

अतः साकेत और प्रिय प्रवास—दोनों में आर्य समाज और गाँधीवाद के प्रभाव परिलक्षित हैं। वर्ण्यों की आधुनिकता की विवृत्ति के वावजूद भी इन काव्यों में मानवतादर्श अपदस्थ नहीं हो पाया है—उदात्त हुआ है।

'प्रिय प्रवास' प्राचीन भारतीय साहित्य.शास्त्र के अनुसरण पर प्रणीत महा-काव्य है, साकेत' आचार्य शुक्ल के लिए 'महा' नहीं, 'बड़ा' प्रबन्ध काव्य, डा० नगेन्द्र को जीवन-काव्य' विश्वनाथप्रसाद मिश्र को एकार्थ काव्य रहा है। आ० नन्ददुलारे बाजपेयी और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे **महाकाव्य** माना है। नायकत्व के विचार से महाकाव्य का नायक देवता या धीरोदात्त, उच्चकुलोद्भव क्षत्रिय होना चाहिए। 'साकेत' और 'प्रिय प्रवास' इस दिशा में भी उत्क्रान्ति ही है। दोनों के नायक धीरललित हैं। 'उदात्त' से 'ललित' नवीन चरण है। प्रिय प्रवास का नायकत्व श्री कृष्ण को 'वकास्त'-सा है, साकेत का नायक आचार्य बाजपेयी

१ प्रकारान्तर में यही भाव प्रिय प्रवास ५।६७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरत को मानते हैं, डा० प्रतिपाल सिंह राम को ही। डा० कमलाकांत पाठक ने लक्ष्मण का नायकत्व स्वीकारा है और ठीक स्वीकारा है। इन मतान्तरों के मूल में सत्य है, इन दोनों में नायकत्व गौण है, नायिकत्व प्रबल व प्रधान। निर्द्वन्द्व भाव से 'प्रिय प्रवास' की नायिका राधा है, साकेत की उर्मिला। उपेक्षिता उर्मिला का प्रकाश्य, राधा के प्रणय भाव का औदात्य इन कवियों का लक्ष्य रहा है। ये दोनों कथा प्रधान नहीं, चरित्र प्रधान काव्य हैं, नायिकत्व प्रधान है, नायकत्व प्रधान नहीं। नायिकाएँ नवोढ़ा हैं—वियुक्ता हैं। दोनों में आस्था के स्वर प्रखर हैं, लोकहित के लिए त्याग की भावना मुखर। 'प्यारे जीवें जगहित करें, गेह चाहे न आवें' में राधा का असीम-अनन्य त्याग जागृत है।

'आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की विश्व के काम आऊँ
मेरा कौमार व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।' में कितनी अगाध आस्था है ?
'उर्मिला की गौरवोक्तियाँ, गर्वोक्तियाँ नहीं,' भी इसी संदर्भ में विवेच्य हैं—

'देवर तुम निश्चिन्त रहो मैं कब रोती हूँ
किन्तु जानती नहीं, जागती या सोती हूँ
जो हो आँसू छोड़ आज प्रत्यय पीती हूँ
जीते हैं वे वहाँ, यहाँ जब मैं जीती हूँ।'

अथवा, मुझे फूल मत मारो।

मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो।
नहीं भोगिनी मैं यह कोई, जो तुम जाल पसारो।
बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह—यह हर नेत्र निहारो।
रूप दर्प कन्दर्प तुम्हें तो मेरे पति पर वारो।
लो मेरी यह चरण धूलि उस रति के सर पर बारो।'

इन उभय युग काव्यों में रोना-जल्पना ही बहुल है, तथापि आस्था के ये कतिपय स्वर समस्त कारुण्य प्रसंगों को प्रखर कर देते हैं।

असादृश्य की दृष्टि से, उर्मिला को तोष है, यौवन और उन्माद भले न रहे, मिलन में पद धोने का अवसर अवश्य मिला है। राधा ? उस रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय लतिका को विश्वप्रेम की वेदी पर अपने को परिसमाप्त कर देना पड़ा है—कुम्हला देना पड़ा है—'ऐसी विरह व्यथा किन्तु कोई न होवे।'

यह नायिकत्व-प्राधान्य आधुनिकता भी कुछ कम नहीं है।

वीर, शान्त और शृङ्गार रसों के स्वीकार होने पर भी वीर रस महाकाव्यों के लिए रूढ़-सा हो गया था। 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' में शृङ्गार अंगी रस के रूप में आधुनिकता है, कामायनी में चरमोत्कर्ष। दोनों में मूलतः पूर्वराग की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना है, मुख्यतः और महत्त्वतः विप्रलम्भ की विशद वर्णना। साकेत के प्रारम्भिक सर्ग में उर्मिला-लक्ष्मण का पूर्व राग है, 'प्रिय प्रवास' में तो दिवस के अवसान के समय ही गगन की लालिमा में गोकुल-गाँव के आबाल-वृद्ध-नारियों का राग रञ्जित हो उठता है— फिर राधा के राग की बात ही क्या ?

शिल्प-दृष्टि से दोनों खड़ी बोली के काव्य हैं। प्रियप्रवास की खड़ी बोली समास वहुला, संस्कृत बोझिल, दुरूह और कृत्रिम है ; साकेत की चलती फिरती व्यावहारिक। साकेत में 'रीता' दिन बीतने पर 'शाम' आ जाती है ; 'प्रियप्रवास' में दिवस के अवसान के समीप होने पर गगन कुछ लोहित हो चलता है, तरु के शिखरों पर कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा राजने लगती है। साकेत में बनवासी फूल की भेंट भली है, प्रियप्रवास में रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय लतिका का शब्दाडम्बर।

साकेत की छन्द योजना में 'भल्ला हुआ जो मारिया' की परम्परा का स्वाभाविक विकास है, यह हिन्दी के अनुरूप है। प्रियप्रवास के वार्णिक अतुकान्त छन्दों का प्रयोग कर्ण-कटु लगता है।

प्रवन्ध-शिल्प दोनों का शिथिल है। आदि, मध्य, अवसान का अभाव है। उक्ति चमत्कार और आकर्षण की कमी बराबर खटकती है। नाट्य संधियों को स्पष्टतः ढूँढ़ लेना दुष्कार्य है। साकेत के प्रथम आठ सर्गों की कथा अव्याहत है, 'नवम् सर्ग में उर्मिला के विलाप का वर्णन करते हुए कथातंतु को छोड़ बैठा है।[1]' अन्तिम दो सर्गों में कथा प्रवेश पूर्ण है। प्रियप्रवास की कथा तो पूर्णतः ऋजु है। वस्तु-योजना आकर्षण हीन है, शैली वही 'फिर-फुर' की। स्थान-संकलन का उचित निर्वाह हुआ है।

संस्कृत की संश्लिष्ट विधा में प्रियप्रवास का अलंकार वैभव श्लाघ्य है। अनु-प्रास के अतिरिक्त—

'जल जल किसका है छार होता कलेजा
निकल-निकल आहें क्यों किसे बेधती हैं।'

में 'वीप्सा' का अच्छा उदाहरण है।

'तिमिर की यह भूतल व्यापिनी
तरल धार विकास विरोधिनी
जन समूह विलोचन के लिए

बन गई प्रतिमूर्ति विराम की, में मूर्त्तीकरण की चेष्टा है। साकेत का काव्य वैभव भी उच्चस्तरीय है।[2]

---

१ आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
२ कन्हैयाप्रसाद सहल—सा० का काव्य वैभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त शब्द-शक्तियाँ बहुलांश अभिधा और व्यञ्जना ही है। 'क्वणित मंजु-विषाण' तथा 'रणित शृङ्ग' अच्छे उदाहरण हैं। 'पोरों में कब ईखकी विपुलता है ग्रंथियों की भली' में लोकोन्मुख नवीन प्रयोग है।

"साकेत में महाकाव्य-संबन्धी नया आदर्श और प्रतिमान स्थिर करने का प्रयत्न जान-बूझकर भलेही न किया गया हो, परन्तु महाकाव्य विषयक क्रमागत व्यवस्था और परिपाटी से अनजाने में ही इतनी दूर चला गया है, कि आधुनिक युग का नया साहित्यिक प्रवर्त्तन उसे स्वभावतः अपने विकास की कड़ी मानकर चलता है।'[1]

द्विवेदीयुग के उस परिप्रेक्ष्य में भी जब खड़ी बोली का काव्य-शिशु व्रजभाषा के कोमल-क्रोड़ को छोड़ नवीन पंथ प्रशस्त कर रहा था, और पथभ्रान्त तथा कर्णकटु दोष आरोपित कर 'बुढ़भस' की खिल्ली उड़ानेवाले लठैत मुस्तैद थे, प्रिय-प्रवास' और 'साकेत' में युग सापेक्षता और आधुनिकता स्पृह्य न रही, गृहीत हुई।

१ आ० नन्ददुलारे वाजपेयी।

*

महामान्य आचार्य द्विवेदी का युग करता वन्दन है,
धन्य-धन्य स्वर्गीय आत्मा, श्रद्धा से अभिनन्दन है।
बहुसंख्यक लेखक कवियों के नेता या निर्माता थे,
स्वयम् बड़े विद्वान विज्ञ थे, सत् साहित्य विधाता थे।

(द्वि० ज० अंक स०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र-लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी

डा० स्वर्ण किरण

पत्र-लेखन एक कला है। अन्य कलाकारों की भांति पत्र-लेखक को भी सजग रहकर साधना करनी होगी यदि वह पत्र-लेखन कला की रचना करता है। पाश्चात्य साहित्य में अलेकजेंडर पोप, जोसेफ एडिसन, डिलैनी, जेम्स टॉम्सन, सैमूएल जाँन्सन, होरेस वालपोल, विलियम कूपर, विलियम ब्लेक, चार्ल्स लैम्ब, लार्ड बायरण आदि अनेक लेखक हो गए हैं जिन्होंने पत्र लेखन को कला का रूप दिया है। इसमें पत्र को प्राप्त करने वाला गौण है और प्रमुख है लेखक के जीवन, जगत, साहित्य, कला, प्रेम, दर्शन, सम्बन्धी विचार। ऐसे पत्रों का महत्व वैयक्तिक-साहित्यिक निबन्धों की तरह होता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जीवन, जगत साहित्य, कला आदि विविध विषयों पर अपने विचार, अपने निबन्धों और कविताओं में व्यक्त किए हैं। पत्र-लेखन को उन्होंने कला के रूप में अपनाने की चेष्टा नहीं की है। उनके पत्र केवल उनके विचारों की अभिव्यक्ति नहीं है वरन् वे उनके चरित्र की, कर्त्तव्य निष्ठा की, सरलता की, सम्वेदना की, सच्ची अभिव्यक्ति हैं। पत्र उनके लिए खाली क्षणों की रचना न होकर व्यस्त कार्य-क्रम में एक आवश्यक कर्म के रूप में रहे हैं। उनकी रचना के पीछे 'पत्रावली, के प्रकाशन का आग्रह नहीं था, प्राप्ति कर्त्ता ही प्रमुख था। पत्रावली का प्रकाशन हुआ, यह महत्व की की बात है। किन्तु इन पत्रों का अध्ययन इसलिए महत्व का नहीं है कि द्विवेदी जी की पत्र-लेखन कला को जाने; वरन् यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि हम द्विवेदी जी को निकट से देखें, उनके चरित्र को जाने, उनकी कर्त्तव्य-निष्ठा को समझें, उनकी ग्राम-वासियों के प्रति स्नेह-भावना को अनुभव करें। उनके आडम्बरहीन सरल व्यक्तित्व के दर्शन करें। उनकी परिस्थितियों से परिचित हों। उनके पत्र उनके जीवन के प्रतिबिम्ब हैं।

जार्ज जीन नाथन ने लिखा है—'प्रभावपूर्ण पत्र का एक ही अनुच्छेद, लेखक के सुप्रकाशित लक्ष्य को अभिव्यक्त करने वाले सम्पूर्ण कृतित्व से, प्रायः अधिक कहने में समर्थ है।'[1] यह कथन सिद्ध करता है कि पत्र एक समर्थ साधन है

(1) A single paragraph in an impulsive letter will often tell more about a man than a whole work calculated by him to the same ostensible end. — A second Treasury of the world's great letters. Prefece.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके लेखक के व्यक्तित्व को जानने का। द्विवेदीजी के सब पत्रों का अध्ययन प्रस्तुत कर सकना इस लेख में सम्भव नहीं है किन्तु उनके व्यक्तित्व को मुखरित करने वाले कतिपय पत्रों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पं० श्रीधर पाठक से द्विवेदीजी का घनिष्ट सम्बन्ध था। ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली में भी इन्होंने काव्य रचना की। 'उजड़ ग्राम' और 'एकांतवासी योगी' की प्रशंसा उन्होंने सरस्वती सम्पादक होने से पूर्व ही की थी। [२] और 'काश्मीर-सुषमा' की प्रेरणा में द्विवेदीजी का योग अवश्य रहा है। अपने पत्र में उन्होंने लिखा है—" 'सरस्वती' के मैनेजर न आये तो न सही। यदि कभी हम आवेंगे तो हम खुद ही आप से काश्मीर के फोटो ले लेंगे। पर सिर्फ फोटो से क्या होगा। उन पर कुछ लिखना भी तो चाहिए।" इसके आगे ही फोटो शब्द के व्याकरण के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है "फोटो का बहुवचन फोटो ही हो तो अच्छा। और कुछ अच्छा न लगेगा।" इससे स्पष्ट होता है कि पाठक जी ने अपने पत्र में 'फोटो' की व्याकरण पर जिज्ञासा की होगी, अथवा बहुवचन में कुछ दूसरा रूप रखा होगा।" व्याकरण की ओर द्विवेदीजी की दृष्टि प्रारम्भ से ही रही है। भाषा के जीवन के लिये व्याकरण आवश्यक है। पाठकजी को ही अपने पत्र में उन्होंने लिखा है—"बोलने में व्याकरण के नियमों का यदि अनुशरण न किया जाय तो विशेष आक्षेप की बात नहीं। पर लिखने में ऐसा अच्छा नहीं। संस्कृत क्यों अब तक निर्दोष बनी है? उसकी रचना व्याकरण-अनुसार होती है, इसलिए। पालि और प्राकृतआदि भाषाएं क्यों लोप हो गईं? उनका व्याकरण निर्दोष नहीं।"[3] व्याकरण की त्रुटि उन्हें असह थी। और इसको वे क्षमा नहीं कर सकते थे। आलोचकों के 'मरखतेपन' और 'कुटिल कटाक्षों' की ओर दृक्पात भी नहीं करते थे। पर 'व्याकरण का विषय महत्व का है। इससे इस दफा जबाब देना चाहिए।" [४] व्याकरण के प्रश्न पर तो वे हरिश्चन्द्रजी की त्रुटियों को भी क्षमा न करेंगे! [५]

द्विवेदीजी सिद्धान्तवादी थे। उनकी गम्भीरता प्रसिद्ध है। पर उनके पत्र उनके सहज विनोद प्रिय रूप को भी प्रकट करते हैं। तर्क और विनोद से युक्त पत्र हैं—"आपका 'रहिमन-विलास' हम आज देखते थे। उसका ८५ वां पद्य विचारणीय है। दांत, केश, नख, मनुज अपने ही स्थान पर शोभा पाते हैं, यह समझ में नहीं आया—मनुज की शोभा यदि अपने ही घर में हुई तो कोई प्रशंसा

(२) देखिये—द्विवेदी पत्रावली, पृ० ५७

(३) द्विवेदी पत्रावली—पृष्ठ ५९, (४) वही पृ० ६९ (५) पृ० ७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात नहीं—नख से कोई शोभा अंगुलियों की नहीं होगी—दांत, केश दूसरी जगह जा नहीं सकते —काटने से उनकी गिनती कूड़े में होगी ! [६]

द्विवेदीजी को भाषा को व्याकरण सम्मत रूप देने के लिए अथक प्रयास ही नहीं करना पड़ा, वरन् कितनी कटु आलोचनाओं को भी हंस कर प्रभाव हीन बनाना पड़ा है। तथा कथित आलोचकों को अपने लेखों द्वारा—गंभीर एवं हास्यपूर्ण निबन्धों द्वारा राह पर लाने का प्रयास उन्होंने किया है । श्री पद्मसिंह शर्मा को उन्होंने एक पत्र में लिखा है—"हमने दो एक व्यंग्यपूर्ण और हास्य रसानुयायी गद्य-पद्यमय लेख लिखे हैं, उनका संबंध ऐसे लोगो की समालोचनाओं से है जो कुछ नहीं जानने पर सब कुछ जानने का दावा करते हैं।"

द्विवेदी जी जैसे धीर गम्भीर व्यक्ति को, युग के आचार्य को, सरस्वती के समर्थ सम्पादक को किस वातावरण में कार्य करना पड़ा, इसे उनकी इन पंक्तियों से जाना जा सकता है—"इस समय समालोचनाओं की ज्वाला जल रही है,.........हमसे अभी कुछ न लिखाइए, नहीं तो प्रलय हो जाने का डर है, आपको नूह बनना पड़ेगा।" [७] और यदि प्रकाशकीय अन्याय, अनवधानता के खिलाफ़ महावीर प्रसादजी का जिहाद देखना हो तो पत्रावली के पृष्ठ १५३-५५ पर उनका पत्र पढ़ें ।

द्विवेदीजी स्पष्टवादी थे। और मित्रों से भी वैसी ही वेतकलुफ़ी एवं अनौपचारिकता की आशा करते थे। और यदि कोई मित्र उनके आदेश को पालन न कर सकने की अपनी विवशता को संकोचवश औपचारिक भाषा में व्यक्त करता, तो द्विवेदी का उत्तर होता था—"वह नोट हमने लिख लिये है' आप कष्ट न उठाइएगा।" नोट के लिए अभी कुछ उपयुक्त सूझा नहीं; क्या लिखूं वाह, क्या आप भी बहाने बाजी करने लगे ? साफ इन्कार लिखा कीजिए।[८] और उनकी स्पष्टवादिता देखिए—"मैं सम्मेलन में शरीक नहीं होना चाहता और न सम्मेलन के दिनों में काशी में रहने की इच्छा है। इसीसे मैं उसके बाद आना चाहता हूँ। आपका उसके पहले ही बुलाने का क्या अभिप्राय है ? सो साफ लिखने की कृपा कीजिए।........[९]

द्विवेदीजी के पत्र उनके उपयोगितावादी दृष्टिकोण के सूचक हैं। वे पत्रों में व्यर्थ का विस्तार पसन्द नहीं करते थे। वे कभी-कभी एक पंक्ति के पत्र भी लिखते थे। देखिए द्विवेदी पत्रावली के पत्र संख्या—६७, ८८, ११४ आदि। लम्बे पत्र भी उन्होंने लिखे हैं (पत्र सं० ११५, १७५) किन्तु वे आवश्यक थे। उनमें व्यर्थ के वाक्य नहीं मिलते।

---

(६) पृ० ६६ (७) पृ० ७१. (८) पृ० ७३. (९) पृष्ठ १४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैमुएल जॉनसन ने लिखा है A man,s letters are only the mirror of his heart, what ever passes within him is there shown undisguised in its natural progress, nothing is invented; nothing distorted ; you see systems in their elements, you discover actions in their motives...द्विवेदी जी के पत्रों में उनकी स्वाभाविकता, निश्चलता, व्यवस्था प्रयोजन, आशय का और उनकी परिस्थितियों; उनके वातावरण, उनकी कर्मठता का प्रतिबिम्ब सहज ही देखा जा सकता है। स्थल-स्थल पर उनकी आत्मीयता विश्वास, सहानुभूति, परोपकार-प्रवृत्ति, पर-दुख-कातरता की अभिव्यक्ति उनके पत्रों में मिलती है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की आँखों का कष्ट जानकर उन्होंने लिखा—"आपकी आँखों का हाल सुनकर दुःख हुआ। उनकी रक्षा का खूब ख्याल रखिये।" और परिवार के व्यक्तियों की व्यथा भी शान्त-धीर द्विवेदी जी की लेखनी से अव्यक्त नहीं रह सकी—"१६ जून की रात को मेरे यहाँ चोरी हुई।... १० रोज हुए, न चोरी का पता न चोरों का। जूता, टोपी तक मेरी गयी। धोती मात्र रह गयी। नंगा बैठा हूँ। कुटुम्बियों की प्रायः यही हालत है। कानपुर से पहनने के कपड़े मंगाने हैं। मैं शान्त हूँ। संसार ही नाशवान है, चीज वस्तु की कौन बात। पर कुटुम्बियों को बहुत कष्ट हुआ है।"[१०]

परिवार को दुखी देख वे दुखी हुए पर 'शान्त' रहे। उस दुःख का निवारण करने की व्यवस्था में वे सक्षम थे। किन्तु अपने ग्रामवासियों का कष्ट उनको इस सीमा तक व्यथित कर देता है कि वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन तक को उस कष्ट की पीड़ा पहुँचा कर उसके निवारण की भी व्यवस्था करते हैं। अपने आयुर्वेदिक एलौपैथिक और होमियोपैथिक ज्ञान का उपयोग वे करते ही थे, मुफ्त दवा भी बाँटते थे, किन्तु वे अपनी सीमा जानते थे कि पूरे ग्राम की रक्षा वे रोगों से न कर सकेंगे। उन्हीं के प्रयास से दौलत पुर में अस्पताल खुल सका। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन से सीधा परिचय न होने के कारण उन्होंने 'उसी फिरके' के एक सज्जन (एडवोकेट पं० गुरुदयाल त्रिपाठी) को माध्यम बनाया था। उन्हें पत्र लिखते-लिखते नये रोगी की दवा में व्यस्त होना पड़ा। उनकी विकलता और उन गरीब रोगियों के प्रति संवेदना व्यक्त हुई है—"यहां तक लिख चुकने पर लोकई चमार की दुलहिन सिर पीटते आयी। उसका चौदह वर्ष का लड़का बीमार है। हैजे के दस्त आ रहे हैं। उसे अर्क कपूर दिया। न फायदा होगा तो क्लोरोडिन दूँगा।"—द्विवेदी जी सच्चे अर्थों में मानव थे। उनकी मानवता ने

(१०) पृ० १४५

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके दुःख का क्षेत्र व्यापक बना दिया था। संकीर्ण वैयक्तिक दुःख उनकी व्यथा का कारण कभी नहीं बना। उस गरल को वे नीलकंठ की भांति सहज-पान कर लेते थे। कुटुम्ब की पीड़ा उन्हें कष्ट पहुँचाती थी पर समाज और गाँव के कष्ट उन्हें विकल कर देता था। वह उनके लिए असहनीय था। उसे दूर करने के लिए वे समर्थ लोगों से याचना करने में भी संकोच न करते थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को तीन वर्ष तक उन्होंने औषधालय के लिए लिखा, न खुलने पर एडवोकेट त्रिपाठी की सहायता ली। और ग्राम को औषधालय देने में समर्थ हुए। बाद में भी निश्चिन्त नहीं हुए जब तक वहां योग्य डाक्टर की व्यवस्था नहीं हुई। इसके लिए आवश्यकता होने पर वे खुशामद को भी महत्व देते थे।[११] लोक कल्याण की इस बलवती भावना और कर्मशीलता ने उन्हें असाधारण बना दिया है।

द्विवेदी जी के पत्रों में औपचारिकता का प्रायः अभाव है। अपने अभिन्नों से तो वे कुछ छिपाते ही नहीं थे। और सहज हृदय से वे पत्र लिख देते थे। श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री देवीदत्त शुक्ल, श्री पद्मसिंह शर्मा आदि को लिखे पत्र इसके प्रमाण हैं। इससे भिन्न भी उन्होंने इन्हीं मित्रों को पत्र लिखे हैं, उनमें द्विवेदीजी विचारक के रूप में प्रकट होते हैं। तत्कालीन समस्याओं के प्रति वे अत्यन्त सचेष्ट थे। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी के प्रति दिखलाया गया उपेक्षा भाव उनके लिए असह्य था। उनके ही शब्दों में इस उपेक्षा का उत्तर देखिये। ऐसा प्रतीत होता है मानों आज भी वे 'हिन्दी के गुमराह लिक्खाड़ों' को क्रोध से देख रहे हैं, और आज के आलोचक वर्ग से कह रहे हैं 'इनकी खबर तो ले लिया कीजिए।' पत्र है—

'हिन्दी के पत्रों और पत्रिकाओं को कुछ समय से एक संक्रामक रोग हो रहा है। इनके सम्पादक उर्दू की नई-पुरानी दूषित कविताएँ छाप रहे हैं। कुछ हिन्दी के कवि भी उर्दू के बहरों में फात-फूत कर रहे हैं। उधर उर्दू वाले हिन्दी के दोहों और चौपाइयों तक की दाद नहीं देते। वही अरबी-फारसी की बहरें और एक ही छन्द में बेतुकी कई तरह की बातें। बिस्मिल जी भी खूब जोर बाँध रहे हैं। पुराने उर्दू कवि तो हिन्दी को अछूत समझ रहे हैं। आपको भी ये बातें खटकें तो कभी-कभी हिन्दी के गुमराह लिक्खाड़ों की खबर ले लिया कीजिए।............'

केवल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं वे हर क्षेत्र में सजग थे। और दूसरों को भी सजग होने की प्रेरणा देते थे। अपने एक पत्र में उन्होंने श्री मैथिलीशरण गुप्त जी को लिखा — दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया में भारतीय प्रवासियों

११ पृ० २१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और निवासियों की जो दुर्दशा हो रही है, आप जानते ही हैं। उस विषय पर दो एक कविताएँ लिखिए। समय सूचकता बड़ा भारी गुण है। समयानुकूल कविता का बड़ा असर होता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी आचार्य थे और सम्पादक थे। अतः उनके पत्रों में भी उनके इन समर्थ रूपों का प्रतिबिम्ब परिलक्षित है—' 'अभी मैं कुछ भी संशोधन न करूँगा। पुस्तकाकार छपाने के पहले जब आप पुस्तक को दुहरावें तब उचित संशोधन कर दीजिएगा।'

एक ही छन्द दो, तीन, चार सर्गों में भी महाकवियों ने प्रयोग किया है। आप भी ऐसा ही करें। जो छन्द खूब मंजे हुए हों उनका प्रयोग अधिक कीजिये। 'क्षमा छाया तले नत था, निरत था'—यह छन्द बुरा नहीं। 'वह पारायण, हे नारायण'—भी मजे का है। 'पर श्री कमला-सी कल्याणी'—पढ़ने में अच्छा नहीं लगता। वसन्ततिलका, वंशस्थ, उपजाति, इन्द्रोपेन्द्रवज्रा, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी आदि भी रखिए। पर रखिए वही जो आसानी से बन जाय। और पढ़ने में अच्छा मालूम हो। गणवृत्तों की अपेक्षा मात्रावृत्त बनाने में कम परिश्रम पड़ेगा। क्यों न एक सर्ग सवैया छन्द में लिखा जाए ?×

आचार्य द्विवेदी की पत्र लेखन शैली का एक नमूना और है। द्विवेदी-पत्रावली का पत्र-संख्या ११८ में अंक देकर १४ बातें लिखी गई हैं। हर बात बहुत संक्षेप में हैं, पर हर वाक्य में द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की एक झांकी प्रकट होती है। वे आचार्य, सम्पादक, समालोचक, भाषा-सुधारक, के अतिरिक्त उनके अन्य अनेक रूप भी इस पत्र में स्पष्ट हैं। अपने दायित्व को किस प्रकार समझते थे और दूसरों पर कितना विश्वास करते थे। अपनी 'नेकनामी और बदनामी' दूसरों के हाथ छोड़ देना उनके इस सहज विश्वास का ही मूर्त रूप है।

द्विवेदी जी के पत्र हमें केवल 'द्विवेदी पत्रावली' में ही उपलब्ध हुए हैं।* उनके सैंकड़ों पत्र अभी भी उपलब्ध हो सकते हैं। प्राप्य पत्रों के आधार पर भी द्विवेदी जी की सबल प्रतिभा के दर्शन हम कर सकते हैं। आत्मीयता, मर्यादावादिता, निर्भीकता, न्यायप्रियता, विनोद प्रियता, सामाजिकता, नीतिमत्ता, स्पष्टभाषिता, परदुःखकातरता, सहज विश्वास, संयम आदि गुण इनके पत्रों में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। वाल्टर रैले ने लिखा है—The chief interest of a study of the great letter written is that it introduces

× पृ० १३५-३६।

* काशी नागरी प्रचारिणी सभा में द्विवेदी जी के २८०१ पत्र सुरक्षित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

us not to literary works, but to person......it keeps a more delicate image alive and presents us with a subtler likeness of the writer than we can find in the more formal achievements of authorship. द्विवेदी जी के पत्रों में यही अनौपचारिकता मिलती है। यद्यपि द्विवेदी जी के अधिकांश उपलब्ध पत्र 'निजी' कोटि में नहीं आ सकते, वे सम्पादक की कलम से लिखित—विश्लेषणात्मक, आश्वासनात्मक, परामर्शात्मक हैं, पर उनसे स्पष्ट है कि द्विवेदी जी का व्यक्तित्व कैसा था। इन पत्रों के द्वारा उनकी शाब्दिक मितव्ययिता, सचेत समय सेवा, कर्त्तव्य-निष्ठा, भाषा-सुधार, साहित्य-सेवा, आदि का सहज ही पता चल जाता है। उनकी सरल शैली, उनकी सरलता की द्योतक है, और उनकी महत्वपूर्ण चर्चाएँ उनकी सबलता की परिचायक हैं। वे मर्यादावादी पत्र-लेखक थे। उनकी मर्यादा साहित्य और समाज का बल बनी। इसी मर्यादा ने युग पर उनके नाम की मुहर लगाई है।

*

हमारे पास आज जो कुछ भी नवीन है, जो कुछ भी इस युग का है, उसमें आचार्यजी का दान है। शायद समय की गति १०० या ५० वर्ष बाद आचार्य की किसी पुस्तक का बहुत ऊँचे साहित्य में स्थान न दे, लेकिन कोई भी साहित्य का इतिहासकार या विद्यार्थी शताब्दियों बाद भी यह विस्मृत नहीं कर सकता कि आजकल का हिन्दी-साहित्य आचार्य की तपस्या का निगूढ़ रुप है।,

—साप्ताहिक प्रताप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवादक-आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी

प्रो० रामप्रीत उपाध्याय

आचार्य द्विवेदी कवि, निबंधकार, समालोचक, सम्पादक, वैयाकरण, शैलीकार और एक श्रेष्ठ अनुवादक थे। वे एक ऐसे महापुरुष थे जिन में सभी गुण अपने आप पैदा हो जाते थे। साहित्य की समस्त विधाओं का सहज और सरल ढंग से जितना उन्होंने खंडन और मंडन किया, भाषा का संशोधन और परिमार्जित जितने मनोबल के साथ उन्होंने किया, विषय और शिल्प का विस्तार जितने अध्यवसाय से उन्होंने किया उतना कोई भी कलाकार बीसवीं सदी के दो दशकों में नहीं कर पाया। यही कारण है कि उनके परिवर्ती आलोचकों ने उन्हें आधुनिक युग का जनक माना है। प्रस्तुत निबन्ध में उनके केवल 'अनुवादक' रूप पर प्रकाश डाला जा रहा है।

आचार्य द्विवेदी के साहित्यिक जीवन को अध्ययन सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बांटा जा सकता है। क—अनुवादक (गद्य और पद्य) ख—काव्यकार (संस्कृत, ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली) ३—आलोचक और ४—सम्पादक। उन्होंने अनुवाद को एक कला माना है तथा इस कार्य को उन्होंने बड़े पुनीत भाव से सम्पन्न किया है। उन्होंने संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं का मनन किया और उनके भाषा-भावगत सौंदर्य को हिन्दी खड़ी बोली में रूपांतरित करके हिन्दी प्रेमियों को प्रदान किया। उन्होंने अनुवाद को साधारण भाषान्तर न मानकर एक सुन्दर सृजन के रूप में स्वीकार किया है। 'रसज्ञ रंजन' नामक पुस्तक के 'कवि कर्त्तव्य' शीर्षक में उन्होंने अनुवाद के सम्बन्ध में अपना भिन्न मत प्रगट किया है—"संस्कृत और अंग्रेजी काव्यों का अनुवाद हिन्दी में करने की ओर भी कवियों की रुचि बढ़ने लगी है। परन्तु स्वतन्त्र कविता करने की अपेक्षा दूसरे की कविता का अनुवाद अन्य भाषा में करना बड़ा कठिन काम है। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब डालने ही में पहले कठिनता उपस्थित होती है; और यदि बिना दो-चार बूंद इधर-उधर टपके वह दूसरी शीशी में चला भी गया तो इस उलट-फेर में उसके सुवास का विशेषांश अवश्य उड़ जाता है। एक भाषा की कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दूसरी भाषा में अनुवाद करने वालों को यह बात स्मरण रखनी चाहिए। बुरा अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है; क्योंकि अनुवाद के द्वारा अनेक गुणों का ठीक ठीक परिचय न होने के कारण पढ़ने वालों की दृष्टि में वह हीन हो जाता है।

इसलिए किसी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करने के पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितांत आवश्यक है। सच तो यह है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है; दूसरा नहीं।"

आचार्य द्विवेदी के इन अनुवादों के पीछे अनेक कारण हैं। जिस समय उन्होंने अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी खड़ी बोली में अनुवाद किया, उस समय हिन्दी में वैसे ग्रन्थ नहीं थे जो जन सामान्य की रुचि को परिष्कृत और तृप्त करते। शिक्षा की वैसी मौलिक पुस्तकें नहीं थीं जो साधाारण जन के लिए कल्याणप्रद सिद्ध हो सकें। अगर कुछ थीं भी तो उनकी भाषा कुछ ऐसी दुरुह थी कि लोग पढ़ कर समझ नहीं पाते थे। जिस समय उन्होंने संस्कृत काव्य ग्रन्थों का अनुवाद किया विशेषतौर से जब उन्होंने कालिदास, भारवि, भट्टनारायण और पंडितराज जगन्नाथ की रचनाओं पर लेखनी चलाई. उस समय इनके अनुवाद थे, पर वे अपने आप में अपूर्ण थे। उनकी भाषा कुछ ऐसी विचित्र और नीरस थी कि पाठक पढ़ने में आनन्द नहीं उठा पाते थे। कुछ टीकाकारों ने तो ऐसा किया था कि अनुवाद करते समय उन्होंने भाषा एवं भाव की रमणीयता पर बिल्कुल ही विचार नहीं किया था। यही कारण है कि श्री द्विवेदी जी ने इस महत् कार्य को अपने हाथों में लिया और इसे बड़े मनोबल के साथ पूर्ण किया।

इन ग्रन्थों के अनुवाद का दूसरा कारण यह है कि जिस समय ये अनूदित हुए, उस समय संस्कृत भाषा हीन समझी जाती थी। स्वयं भारतीय ही इसके अध्ययन में अभिरुचि नहीं रखते थे। संस्कृत भाषा में लिखित होने के कारण वे इसके महत्त्व को समझ भी नहीं पाते थे। अतः श्री द्विवेदी जी ने इनका अनुवाद कर इनके महत्त्व को तो दर्शाया ही, साथ ही खड़ी बोली में अनूदित कर सबके लिए पठनीय बना दिया। इन कवियों और उनके काव्यों को अनुवाद के लिए चुनने का उनका एक मात्र उद्देश्य यही था कि भारतीय अपने गौरवशाली अतीत से परिचित हो जायँ तथा उन्हीं आदर्शों का अनुसरण कर वे प्रगति पथ पर बढ़ चलें। इस सम्बन्ध में डा० उदयभानु सिंह के मत द्रष्टव्य हैं :—"उनकी अधिकांश कविताओं का उद्देश्य है 'कान्तासम्मित उपदेश'। अपने कवि जीवन के आरंभिक वर्षों में हिन्दी पाठकों को संस्कृत की काव्य माधुरी का आस्वादन करने, संस्कृत के सुन्दर वर्णवृत्तों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हिन्दी में प्रचलित करने और अतिश्रृंगारिक काव्यों को सबके पढ़ने योग्य बनाने के लिए उन्होंने संस्कृत के वैराग्य शतक, श्रृंगारशतक, गीतगोविंद, महिम्नस्तोत्र, ऋतुसंहार और गंगास्तवन के छन्दोंबद्ध अनुवाद किये।" इन अनुवादों के मूल में उनका एकमात्र सिद्धान्त था—

हिन्दुओं को अपने भव्य अतीत की ओर उन्मुख करना तथा संस्कृत साहित्य के सौन्दर्य से परिचित कराना। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में जिन काव्यों का पद्यानुवाद किया है, वे अनुवाद सरस और सरल हैं जो उनके अध्यवसाय के परिचायक हैं। वे मौलिक काव्य-सा आनन्द देते हैं। जिन काव्यों का उन्होंने गद्यानुवाद किया है वे पठनीय हैं। वे जनसाधारण की कलुषित मनोवृत्ति का परिष्कार तो करते हैं, कल्पना और आनन्द की सुन्दरभूमि भी प्रस्तुत करते हैं। इस विषय में डा० उदयभानु सिंह ने इसी को स्पष्ट करते हुए लिखा है—उपर्युक्त उत्तम और लोकप्रिय काव्यों (रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, वेणीसंहार, किरातार्जुनीय, गंगालहरी आदि) के गद्यानुवाद का उद्देश्य था तिलिस्मी, जासूसी और ऐयारी आदि उपन्यासों के कुप्रभावों को रोकना और आख्यायिका रूप में सुन्दर पठनीय सामग्री देकर हिन्दी पाठकों की पतनोन्मुख रुचि का परिष्कार करना। ये अनुवाद असंस्कृतज्ञ हिन्दी पाठकों को कालिदास, भारवि, भट्टनारायण आदि महाकवियों की रचना, विचार-परंपरा और वर्णन वैचित्र्य के साथ ही साथ भारत की प्राचीन, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक व्यवस्था से भी परिचित कराते हैं। ये मनोरंजक भी हैं और ज्ञानप्रद भी।"

आचार्य द्विवेदी ने अंग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद निम्नलिखित दृष्टि से किया था—आर्थिक आवश्यकता, विषय की उपादेयता, नवीनता एवं लोक कल्याण की भावना! 'स्वाधीनता' 'शिक्षा' और सोहागरात के अनुवाद उनकी आर्थिक आवश्यकता के परिणाम हैं। अनुवाद कार्य से धनप्राप्ति भी होती थी और हिन्दी की सेवा भी। 'स्वाधीनता' नामक गद्यानुवाद पर उन्हें राजा कमलानन्द सिंह द्वारा पाँच सौ रुपये का पुरस्कार मिला था। इस पुरस्कार के लिए उन्हें पहले ही कह दिया गया था। एक दूसरे राजा (छत्रपुर के) ने कहा था कि वे अगर किसी सुन्दर अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद करें, तो उन्हें पाँच सौ रुपये पुरस्कृत किये जायँ। इसके फलस्वरूप उन्होंने हर्बट स्पेंसर कृत 'एजूकेशन' पुस्तक का अनुवाद 'शिक्षा' के नाम से प्रस्तुत किया। पर खेद है कि छत्रपुर के राजा ने कह कर भी श्री द्विवेदी जी को उत्तम पुरस्कार नहीं दिया था। राजा के व्यवहार से श्री द्विवेदी जी को इतना क्षोभ हुआ कि उन्होंने सदा के लिए इस प्रलोभन वृत्ति का परित्याग कर दिया। उनकी निम्न पंक्तियाँ इस तथ्य पर अच्छा प्रकाश डालती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमें चाहे कहीं से पुरस्कार या परिश्रम का बदला मिले चाहे न मिले; हिन्दी की सेवा हम जरूर करेंगे। पर इस तरह करें जिसमें यथासम्भव भोजन वस्त्र की हमें तकलीफ न हो अतएव हम ऐसी ही किताबें विशेषकर के लिखेंगे जिनकी कुछ विक्री हो जिनसे हमें काफी आमदनी भी हो।" राजा के दुर्व्यहार की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि "हमें ऐसा परिताप हुआ है कि शायद आज से हम कभी दरबार में न जायँ और किसी समर्पण के बखेड़े में न पड़ें।" लगता है कि जिन-जिन पुस्तकों को उन्होंने लोगों को समर्पित किया है उनमें भी यही बात है। सम्भवत: अधिक धन कमाने के लिए ही उन्होंने 'सुहाग रात' नामक पुस्तक का अनुवाद किया था जिसे उनकी धर्मपत्नी ने प्रकाशित नहीं होने दिया।

विषय विस्तार और महत्वपूर्ण विषयों को हिन्दी में लाने के लिए भी श्री द्विवेदी जी ने अनुवाद कार्य किया है जो बहुत सुन्दर है। मराठी और बंगाली ग्रन्थों का जो उन्होंने छायानुवाद प्रस्तुत किया है वह केवल शब्द विषय और रुचि के विस्तार के लिए हैं। इन भाषाओं से प्राय: उन्होंने आख्यायिका विद्या को ही चुना है। इस तरह आचार्य द्विवेदी ने अपने अनुवादों द्वारा संस्कृत की गरिमा बंगला की मधुरिमा, मराठी की गम्भीरता और अंग्रेजी की व्यापकता एवं उपादेयत, हिन्दी प्रेमियों को दी।

आचार्य द्विवेदी ने कुल २२ ग्रंथों का अनुवाद किया जिनका काल क्रम निम्नप्रकार से है।

पद्य अनुवाद

क्रम सं—पुस्तक काल	(अनुवाद)	
१—विनय विनोद—	१८८९	ई०
२—विहार वाटिका—	१८९०	,,
३—स्नेह माला—	१८९०	,,
४—श्री महिम्नस्तोत्र—	१८९१	,,
५—गंगालहरी—	१८९१	,,
७—सोहागरात—	१९००	,,
८—कुमार सम्भव—	१९०२	ई०

गद्य अनुवाद

क्रम संख्या—पुस्तक—काल अनुवाद	
१—भामिनी विलास—	१८९१ ई०
२—अमृत लहरी—	१८९६ ,,
३-बेंकन विचार रत्नावली	१९०१ ,,
४—शिक्षा	१९०६ ,,
५—स्वाधीनता	१९०७ ,,
६—जलचिकित्सा	१९०७ ,,
७—हिन्दी भारत	१९०८ ,,
८—रघुवंश	१९१२ ,,
९—वेणी संहार	१९१३ ,,
१०—कुमारसम्भव	१९१५ ,,
११—मेघदूत	१९१७ ,,
१२—कीरातार्जुनीय	१९१७ ,,
१३—प्राचीन पंडित और कवि-	१९१८
१४—आख्यायिका सप्तक-	१९२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब इन ग्रन्थों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पद्यभाग—१—विनय विनोद —यह भतृहरि के 'वैराग्य शतक' का दोहों में अनुवाद है। यह उपदेशात्मक मूलक काव्य है। इसकी रचना अभ्यासार्थ तथा स्वान्तः सुखाय के लिए की गयी थी। इसमें शान्त रस की प्रधानता है। ओज, प्रसाद आदि गुणों की न्यूनता होते हुए भी उसमें माधुर्य की मनोहरता परिलक्षित होती है। इसके मूल में अनुवादक की सौन्दर्यमूलक प्रवृत्ति काम करती है। यह अनुवाद मूल पद्य सा आनन्द प्रधान करता है।

(२) विहार वाटिका यह संस्कृत वृत्तों में जयदेव के 'गीतगोविन्द' का संक्षिप्त भावानुवाद है। इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता है। इसमें सुन्दर अलंकारों की योजना है। इसमें माधुर्य की सरिता प्रवाहित होती है। इसमें दोहा और हरिगीतिका छन्द के अतिरिक्त स्त्रगधरा, शार्दूल विक्रीड़ित, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, शिखरिणी, भुजंगप्रयात, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, नाराच, चामर, वसंततिलका, उपजाति, उपेन्द्रबज्त्रा, इन्द्रबज्त्र, इन्द्रवंशा आदि छन्दों का प्रयोग है।

(३) स्नेहमाला—यह भतृहरि के 'शृङ्गार शतक' का दोहों में अनुवाद है। इसमें सुन्दर अलंकारों की योजना है। यह शृङ्गार रस प्रधान है। इसमें दोहों का प्रयोग है।

(४) श्री महिम्न स्तोत्र—यह संस्कृत के महिम्न स्तोत्र का संस्कृत वृत्तों में सटीक हिन्दी अनुवाद है। इसके अधिकांश पद शिखरिणी, मालिनी, भुजंगप्रयात, तोमर और प्रज्झटिका छन्द में हैं।

(५) गंगालहरी—यह पंडित राज जगन्नाथ कृत 'गंगालहरी' का सवैयों में अनुवाद है। भाषा, भाव एवं पठनीयता की दृष्टि से यह ग्रन्थ उत्तम है।

(६) ऋतु तरंगिणी-यह कालिदास कृत ऋतु संहार का सुन्दर वर्णन है। इसमें आद्योपान्त शब्दालंकार ठूंस-ठूंस कर भरे गये हैं। भाषा के मोह में पड़कर श्री द्विवेदीजी ने कहीं कहीं सुन्दर भावों की उपेक्षा कर दी है। भावाभिव्यक्ति में असमर्थ यमकच्छटामयी पदावली का एक उदाहरण लीजिए-

'सुबिच कैरव राज हीं, सत सना रसना रस लाज हीं।
सुनत सारस गानहीं, वधिक बान न वानन तानहीं॥

इसमें प्रसाद गुण का अभाव है। शब्दों के कलेवर में भावों की आत्मा भर गई है। एक उदाहरण लीजिए-

"सुपक्क जम्बुफल गुच्छकारी, इतै उठी श्याम घटा करारी।
महावियोगानलदग्ध बाला, उतै परीमूर्छित ह्वै बिहाला॥"

इस ग्रन्थ में प्रकृति के अनेक रंग रूपों का आलंबनगत चित्रण है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद श्री द्विवेदी जी ने वसंततिलका, मालिनी, द्रुतविलम्बिन, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि में किया है। इसमें रस विरोध हो गया है जिस पर उन्होंने ऋतुतरंगिणी, की भूमिका में काफी खेद प्रगट किया है—"इसमें बहुत सा संस्कृत वाक्य प्रयोग होने से रोचकता में विरोध हुआ है परन्तु असाधारण छन्द होने के कारण नियत स्थान में शुद्ध हिन्दी शब्द को योजना नहीं हो सकी। इस न्यूनता का मुझे बड़ा खेद है।"

(७) सुहागरात :—यह अंग्रेजी कवि 'बाइरन' के 'ब्राइडल नाइट' का छायानुवाद है। इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता है। यह अप्रकाशित है। इसमें पचास पद हैं। इन पदों में एक नववधु ने अपने प्रथम रात की रति क्रीड़ाओं को अपनी अन्तरंग कुमारी सहेली के सम्मुख व्यक्त किया है। ऐसी अश्लील रचना आचार्य द्विवेदी ने किन परिस्थितियों में की थी, यह चिन्तनीय है। इस पुस्तक को लेकर उनकी भर्त्सना भी हुयी थी जिसका उन्हें बड़ा क्षोभ था। उन्होंने इस ग्लानि को धोने के लिए अनेक बार जनसमूह के सामने आँसू बहाये थे। सच है, पहाड़ जैसा पाप भी पश्चाताप के आँसुओं से धुल जाता है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में जब उनका अभिनन्दन किया गया था तब उन्होंने भाषणोपरांत 'सोहाग रात' पर निम्नरूपेण प्रकाश डाला था—"ऐसी पुस्तक जिसके प्रत्येक पद से रस की नदी नहीं तो बरसाती नाला जरूर बह रहा था। नाम भी मैंने ऐसा चुना जैसा कि उस समय उस रस के अधिष्ठाता को भी न सूझा था।...... आजकल तो वह नाम बाजारू हो रहा है और अपने अलौकिक आकर्षण के कारण निर्धनों को धनी और धनियों को धनाधीश बना रहा है।.........अपने बूढ़े मुँह के भीतर धंसी हुई जबान से आपके सामने उस नाम का उल्लेख करते हुए मुझे बड़ी लज्जा मालूम होगी पर पापों का प्रायश्चित करने के लिए आप पंच समाज रूपी परमेश्वर के सामने शुद्ध हृदय से उसका निर्देश करना ही पड़ेगा। अच्छा तो उसका नाम था या है—'सोहाग रात'। श्री द्विवेदी जी की पत्नी ने उसे जीते जी प्रकाशित नहीं होने दिया और उनकी मृत्यु के बाद द्विवेदी जी ने उनकी रुचि का ख्याल कर कभी प्रकाशित नहीं कराया। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए उन्होंने पुनः कहा था—"मेरी पत्नी ने तो मुझे साहित्य के उस पंक पयोधि में डूबने से बचा लिया, आप भी मेरे उस दुष्कृत्य को क्षमा कर दें; तो बड़ी कृपा हो।"

(८) कुमार संभव सार—यह महाकवि कालिदास के 'कुमार संभवम्' के प्रथम पांच सर्गों का पद्यात्मक सारांश है। कालिदास के भावों को खड़ी बोली में भाषाबद्ध करना आचार्य द्विवेदी ही जैसे महान व्यक्ति का काम था। उसमें मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपेण शृंगार रस की प्रधानता है। इस ग्रन्थ की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने यह कार्य क्यों किया। भूमिका में उन्होंने इसके विषय पर भी अच्छा प्रकाश डाला है—"कुमार संभव में १७ सर्ग हैं। पर सात तक का ही प्रचार अधिक है। कारण आठवें सर्ग से लेकर अन्त तक अश्लील और रौद्र रस का वर्णन है। कोई कहता है कि सात तक कालिदास ने लिखा है और बाद में किसी अन्य ने।

अगर कालिदास ने सम्पूर्ण काव्य लिखा होता तो इसका नाम तारक-वध या और कुछ रहता। कारण १७ वें सर्ग में कुमार ने तारक का वध किया है। आठवें सर्ग में शिवपार्वती का शृंगारिक वर्णन है। 'कुमार संभव' की कथा कालिदास ने शिवपुराण से ली है। ऐसा करने में कवि ने कहीं-कहीं शिव-पुराण के श्लोकों के पूरे चरण के चरण वैसे ही रख दिए हैं। पद योजनाओं और भावों को ले लेने के प्रमाण तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक सभी कहीं विद्यमान है।........इस काव्य के प्रथम पांच सर्ग ही सर्वोत्तम हैं। इसी लिए हमने उन्हीं का अनुवाद किया है। बहुत कम अवकाश मिलने के कारण तृतीय और पंचम सर्ग का ही पूरा अनुवाद करके प्रथम द्वितीय और चतुर्थ सर्ग के अनुवाद में हमने मूल का आशय मान लिया है।" श्री द्विवेदी ने इन श्लोकों का अनुवाद बड़ा सुन्दर किया है। उदाहरण के लिए पंचम सर्ग का ५८ वाँ श्लोक लीजिए—

मूल—यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे
न वेत्सि भावस्थमिमंकचं जनम्।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया,
रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः॥"

अनुवाद—बड़े-बड़े विद्वजन तुमको कहते हैं अन्तर्यामी,
फिर क्यों नहीं जान लेते हो मेरा मनोभिष्ट स्वामी।
अपने ही कर से शंकर का चित्र बनाय हृदय हारी,
उनका उपालंभ करती थी, इसी भाँति यह सुकुमारी।"

इस अनूदित ग्रन्थ के अन्त में श्री द्विवेदी जी ने पद्य में अपना परिचय भी दिया है जो बड़ा ही मनोरम है—

"राय बरेली के अन्तर्गत सुरसरि तट दौलतपुर ग्राम,
श्री हनुमन्त तनय जिसमें थे राम सहाय द्विवेदी नाम।
उनके एक मात्र सुत मैंने यह कुमार संभव का सार,
अब के कवियों को प्रणाम कर किया यथामति किसी प्रकार॥"

इन अनूदित पद्यग्रंथों को पढ़ने से मौलिक काव्य जैसा ही आनन्द आता है। संस्कृत के इन काव्य ग्रंथों को भला साधारणजन कैसे पढ़ते और समझते? श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी ने बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय के लिए ही इन पद्य ग्रंथों का पद्यात्मक अनुवाद किया।

गद्यानुवाद :—१—भामिनी विलास—इसके मूल लेखक संस्कृत के प्रकांड विद्वान पं० राज जगन्नाथ हैं। श्री द्विवेदी जी ने इसका सटीक हिन्दी अनुवाद किया। यह ग्रन्थ अनुवादक की प्रारंभिक गद्य प्रतिभा पर अच्छा प्रकाश डालता है। भामिनी विलास प्रसंगानुसार कहे गये पद्यों का संग्रह है। यह चार विलासों (खण्डों) में विभक्त है—प्रस्तावक, शृङ्गार, करुण और शांत। इस संग्रह को हम अनमोल वचन के रूप में ले सकते हैं। ये वचन समोपयोगी और आनन्दायक हैं। एक किंवदन्ति है कि पं० राज जगन्नाथ ने इसका नामकरण अपनी स्त्री के नामानुसार किया था। बात चाहे, जो भी हो, यह ग्रन्थ सचमुच में रसोद्रेक करने वाला है।

इस सुन्दर ग्रंथ का अनुवाद श्री द्विवेदी जी ने निश्चय ही हिन्दी प्रेमियों के रसानन्द के लिए किया था। जिस समय श्री द्विवेदी ने यह कार्य किया उस समय हिन्दी में इसका और कोई अनुवाद नहीं था। इस पुस्तक की भूमिका में श्री द्विवेदी जी ने लिखा है—"भामिनी विलास का पद्यात्मक भाषान्तर करके प्रति श्लोक का भावार्थ पद्य में लिखने का मेरा विचार था परन्तु इसके लिए जैसी परिस्थिति चाहिए वैसी न होने से केवल गद्य में करना पड़ा। श्लोकों की योजना कई हस्त-लिखित तथा मुद्रित पुस्तकों को एकत्र करके ठीक की गई है।··· ···जहाँ-जहाँ नूतन छन्द आये हैं, वहाँ उनके नाम भी लिखे हैं; लक्षण विशेष उपयोगी न होने के कारण नहीं लिखा गया।" पुस्तक की महिमा बढ़ाने के लिए श्री द्विवेदी जी ने इसके कलापक्ष को भी खूब सँवारा है। पुस्तक की भूमिका में श्री द्विवेदी जी ने मूल कृतिकार का भी संक्षिप्त जीवन परिचय और काव्य परिचय दिया है, जिससे ग्रंथ की उपादेयता निश्चय ही बढ़ गई है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि "प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिखने में जो जो मुझे आवश्यक समझ पड़ा और जो जो जगन्नाथ राज के विषय में वार्त्ता मिली सो सो मैंने समावेशित की। ऐसा करने में अन्य विषयों का भी संक्षिप्त विवेचन होता गया है क्योंकि अगामी भाव से उनका भी कुछ न कुछ इस लेख से सम्बन्ध है। यह उपक्रम, पुस्तक के परि-माण से विशेष दीर्घावयवयी हुआ, तस्मात् अब वाचकों से क्षमा माँग मैं यहीं समाप्ति करता हूँ।"

२—अमृतलहरी :—

यह लघुगद्य ग्रन्थ पंडितराज जगन्नाथ कृत 'यमुना स्तोत्रम्' का समूल भावा-नुवाद है। इस ग्रन्थ की रचना श्री द्विवेदी ने जनजीवन को संस्कृत काव्यों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दानुभूति कराने के लिए ही की थी। संस्कृत भाषा में लिखित होनेके कारण इसका रसास्वादन सभी नहीं कर पाते थे। इस गद्य में भावगत तथा शिल्पगत सौन्दर्य तो नहीं है पर भाषा विकास की एक निश्चित परंपरा इसमें देखी जा सकती है। भाषा असंगत होते हुए भी भावानुकूल है। अन्य भाषाओं में इसके अनुवाद थे पर हिन्दी में इसका कोई सुन्दर अनुवाद नहीं था। इस कार्य को सम्पन्न करके श्री द्विवेदीजी ने जनजीवन का बड़ा कल्याण किया था।

३—**बेकन विचार रत्नावली**—आचार्य द्विवेदी ने प्रसिद्ध विद्वान बेकन के विचारात्मक निबन्धों को संकलित कर सन् १९०१ ई० में इसका हिन्दी में अनुवाद किया ताकि साधारण लोग भी प्रसिद्ध विद्वान के विचारों से लाभ उठा सकें। अनुवादक ने पाठकों की सुविधा के लिए निबन्ध के कतिपय पात्रों एवं स्थानों की भी परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रत्येक निबन्ध के ऊपर संस्कृत के एक दो श्लोक हैं जो सूत्र का काम करते हैं। लगता है कि ये श्लोक निबन्ध के सार स्वरूप दिए गए हैं। इस ग्रन्थ की भूमिका में श्री द्विवेदीजी ने बेकन का जीवन परिचय, उसकी रुचि और मान्यताओं का भी वर्णन किया है। जो निबन्धों के अध्ययन में काफी सहायक सिद्ध होते हैं। ३७ वर्ष की आयु में ही बेकन ने निबंधों को प्रकाशित करवाया था। इस ग्रन्थ की भूमिका में श्री द्विवेजी ने लिखा है कि ये निबन्ध लोगों को इतने अच्छे लगे कि बेकन के जीवन काल ही में इनका अनुवाद लैटिन, फ्रेंच, इटालियन आदि भाषाओं में हो गया। अंग्रेजी विद्वान इन निबन्धों को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं और बेकन के कथन का समय-समय पर वार्त्तालाप करने में दृष्टान्त दिया करते हैं। बेकन ने सब ५८ निबन्ध लिखे हैं; उनमें से केवल छत्तीस का हमने अनुवाद किया है; शेष बाइस निबन्धों का विषय बहुशः ऐसा है जो एतद्देशीय जनों के तादृश रोचक नहीं है, इसीलिए हमने उनको छोड़ दिया है। ये निबन्ध जिस भाषा में हैं वह कुछ-कुछ प्राचीन अंग्रेजी भाषा से मिलती है। अतएव बेकन का आशय समझने में कठिनाई पड़ती है। फिर उसके लिखने की प्रणाली ऐसी टेढ़ी और विषय विवेचना ऐसी गम्भीर है कि अंग्रेजी का परिमित ज्ञान रखने वाले हम ऐसों के लिए उसके लेखों का अनुवाद करना साहस का काम है। तथापि, जब तक अंग्रेजी का पारदर्शी कोई विद्वान इस काम को योग्यता से नहीं सम्पादन करता तब तक अनेक त्रुटियों के रहते भी, हमने इस अनुवाद को सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित करने में कोई हानि नहीं समझी।" इस ग्रन्थ में श्री द्विवेदीजी ने कहीं कहीं पर शब्दों का अर्थ न लिखकर भाव लिखा है। किसी-किसी स्थल को अनावश्यक समझ कर छोड़ भी दिया है। निबन्धों के ऊपर लिखे गये श्लोकों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक बात हम ने और भी की है। वह यह है कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से एक एक और कहीं-कहीं दो श्लोक प्रत्येक निबन्ध के शिरोंभाग में उद्धृत करके निबन्ध और श्लोकों की एक वाक्यता हमने दिखलाई है।" इस तरह श्री द्विवेदीजी ने ऐसे अनमोल वचनों का भावानुवाद कर हिन्दी प्रेमियों का बड़ा भारी कल्याण किया था।

४—शिक्षा—यह पुस्तक प्रसिद्ध तत्त्ववेता हर्बर्ट स्पेंसर कृत 'एज्यूकेशन' का अनुवाद है। श्री द्विवेदीजी ने यह अनुवाद सन् १९०६ ई० में किया था। यह पुस्तक इतनी शिक्षाप्रद है कि उस युग में अनेक अन्य प्रान्तीय भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके थे। श्री द्विवेदीजी ने इसकी महत्ता को परखा और बिना किसी मौलिक ग्रन्थ का इन्तजार किए ही इसका हिन्दी में अनुवाद कर दिया। यह पुस्तक समाजोपयोगी है। इसके अनुवाद में श्री द्विवेदीजी ने कुछ खास व्यक्तियों एवं स्थानों का परिचय देकर अपने स्वतन्त्र विचारों का पालन किया है। तथ्यकी पुष्टि के लिए सुन्दर उदाहरणों की समुचित योजना है। भाषा भावानुकूल, सरस और सरल हैं। इसमें कुल छत्तीस निबन्ध हैं।

५—स्वाधीनता—यह जान स्टुअर्ट मिल कृत 'लिबर्टी' का अनुवाद है। इसका अनुवाद श्री द्विवेदी जी ने उस समय किया था जब देश को जागृति के लिए ऐसी ही पुस्तक की अपेक्षा थी। इस ग्रन्थ में एक सुन्दर प्रस्तावना; मूल लेखक की जीवनी तथा व्यक्ति के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का वर्णन है। जहाँ तक इसके शिल्प का प्रश्न है, अनुवादक ने इसमें अपनी स्वतंत्र राय रखी है। भाषा सरल, सुगम और हिन्दी उर्दू मिश्रित है। ऐसे अनमोल ग्रन्थ का भावानुवाद कर अनुवादक ने निश्चय ही अपने राष्ट्र की आवश्यकता को समझा है। अनुवादक को इस कार्य निमित्त पाँच सौ का पारितोषिक भी मिला था।

६—जल चिकित्सा—इसके मूल रचयिता जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर लुई कोने हैं। उन्होंने इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया और पुनः श्री द्विवेदी जी ने इसका अनुवाद हिन्दी में किया। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह पुस्तक पठनीय है।

७—हिन्दी महाभारत—श्री द्विवेदी ने सन् १९०८ ई० में 'संस्कृत-महाभारत' का हिन्दी में अनुवाद किया ताकि साधारण पाठक भी इसके अध्ययन से लाभान्वित हो सकें।

८—रघुवंश—सन् १९१२ ई० में श्री द्विवेदीजी ने उपमा-सम्राट कवि कालिदास के रघुवंश का हिन्दी में अनुवाद किया ताकि साधारण जन अपने अतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गौरव को स्मरण कर पुलकित हो सकें। लोचन पद्धति पर इसकी समीक्षा की गई है। इस काव्य पर चार दृष्टिकोणों से विचार किया गया है-सौन्दर्य, इतिहास, जीवन और तुलना। इस ग्रन्थ की भूमिका में श्री द्विवेदीजी ने लिखा है—"इस अनुवाद में प्रत्येक पद्य का आशय विस्तारपूर्वक लिखा गया है। आवश्यकता के अनुसार विस्तार कहीं अधिक है और कहीं कम है। जहाँ थोड़े ही शब्दों से कवि का आशय अच्छी तरह समझाया जा सका है वहाँ विशेष विस्तार नहीं किया गया है। पर जहाँ विस्तार की आवश्यकता थी वहाँ अधिक शब्द प्रयोग करने में संकोच भी नहीं किया गया है।"

प्रत्येक सर्ग की कथा अलग है पर कहीं कहीं कोई पद्य अपने पड़ोसी वाले पद्य को प्रभावित करता है। जहाँ अधिक शृंगारात्मक भाव हैं, उन्हें अनुवादक ने सुन्दर शब्दों में विना भाव को क्षत विक्षत किए ही बदल दिया है ताकि परिवार के सभी सदस्य पढ़ सकें। इस तरह श्री द्विवेदी ने अनुवाद करने में स्वतन्त्र राय बरती है। उन्होंने अपने अनुवाद के सम्बन्ध में भूमिका के अन्त में निवेदन किया है—'मतलव यह कि इस अनुवाद में शब्दार्थ पर कम ध्यान दिया गया है और भावार्थ पर अधिक। स्पष्ट शब्दों में कालिदास का आशय समझाने की चेष्टा की गई है। शब्दों का अर्थ लिख देने से ही संतोष नहीं किया गया। महाकवियों के प्रयुक्त किसी किसी शब्द में इतना अर्थ भरा रहता है कि उस शब्दार्थ का वाचक हिन्दी शब्द लिख देने ही से उसका ठीक-ठीक बोध नहीं होता। उसे स्पष्टतापूर्वक व्यक्त करने के लिए कभी-कभी एक नहीं अनेक शब्द लिखने पड़ते हैं। अनुवादक को इस कठिनता का पद-पद पर सामना करना पड़ा है। यद्यपि उसने उसे हल करने की यथाशक्ति कोशिश की है, तथापि वह नहीं कह सकता कि कहाँ तक उसे सफलता मिली है। उसकी सफलता तथा विफलता का निर्णय इस अनुवाद के विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे।" अनुवादक ने भूमिका में कालिदास की जीवनी, उनके सिद्धान्तों एवं रचनाओं का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। कालिदास की शेक्सपियर से तुलना भी की गई है। सारांश यह की यह अनुवाद हर दृष्टि से पूर्ण है।

९—वेणीसंहार-सन् १९१३ ई० में श्री द्विवेदी ने संस्कृत कवि भट्ट नारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक का आख्यायिका के रूप में अनुवाद किया। यह अनुवाद मनोंरंजक है।

१०—कुमार संभव—यह कवि कालिदास कृत कुमार संभव का गद्यात्मक अनुवाद है। इस अनुवाद की भाषा शुद्ध और प्रांजल है।

११—मेघदूत-सन् १९१७ ई० में श्री द्विवेदीजी ने कालिदास के 'मेघदूत'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हिन्दी अनुवाद कर अपने संस्कृत प्रेम का परिचय दिया था। मेघदूत एक विरह-प्रधान काव्य है। इसमें वियोग वर्णन के साथ जो प्रकृति का वर्णन है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। श्री द्विवेदी ने इसका अनुवाद कर हिन्दी पाठकों एवं प्रेमियों को एक सुन्दर कल्पना एवं आनन्द भूमि प्रदान की है।

१२–किरातार्जुनीय—इसके मूल लेखक अर्थ-सम्राट भारवि हैं। आचार्य द्विवेदी ने इसका गद्यानुवाद किया है। इसमें अठारह सर्ग हैं जिनमें युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, व्यास, द्रोपदी आदि का चरित्र चित्रण, प्रकृति वर्णन, अप्सरालोक वर्णन और अन्त में शिवार्जुन का भीषण युद्ध वर्णन है। भीषणयुद्ध के पश्चात् शिवसेना की हार होती है। शिवजी अपने असली रूप में आते हैं तथा अर्जुन पर प्रसन्न होते हैं। अर्जुन शिव की स्तुति करते हैं। पुनः अर्जुन युद्धिष्ठिर के पास लौट जाते हैं। इस ग्रन्थ का यही कथानक है। इसमें भातृ प्रेम, स्वामी प्रेम तथा पति-प्रेम का सुन्दर चित्रण है। किरातुर्जुनीय का अनुवाद गुजराती, मराठी, बंगला आदि में हो चुका था। केवल हिन्दी में बाकी था जिसे द्विवेदी जी ने पूरा किया। इस अनुवाद के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"हमारा यह अनुबाद न तो परीक्षार्थी छात्रों के लिए है और न संस्कृत सीखने की इच्छा रखने वाले और लोगों ही के लिए। संस्कृत के पारदर्शी पंडितों के लिए तो यह हो ही नहीं सकता इस बेचारी गंवारु भाषा में किए गए अनुवाद से उनका क्या सम्पर्क ! यह तो केवल उन लोगों के लिए है जो हिन्दी पुस्तकें पढ़ने के प्रेमी हैं और जिनके लिए 'किरातार्जुनीय, की कथा से परिचय प्राप्त करने का और कोई साधन ही नहीं। ऐसे महाशय जब उपन्यास तक पढ़ने की कृपा करते हैं तब वे और कुछ नहीं तो इसे कथा कहानी की पुस्तक ही समझकर एक वार पढ़ जाने की उदारता दिखा सकते हैं। संभव है, यह भी दो घड़ी उनका मनोरंजन कर सके।" पुस्तक की भूमिका में श्री द्विवेदी जी ने भारवि के जीवन एवं कलित्त्व पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। इस अनुवाद ने हिन्दी काव्य को वीर रस की अच्छी भूमिका दी है। यह अनुवाद पठनीय और प्रशंसनीय है।

१३—प्राचीन पंडित और कवि—इस ग्रंथ में श्री द्विवेदीजी ने प्राचीन पंडितों एवं कवियों का सुन्दर परिचय प्रस्तुत किया है। इसमें भवभूति जैसे प्रकांड कवियों का चरित्र है। इस ग्रन्थ में अनुवादक ने अनेक भाषाओं में लिखित श्रेष्ठ काव्य कारों के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व का आकलन किया है। पुस्तक पठनीय है। इसमें चरितात्मक निबन्ध हैं। यह आठ निबन्धों का लघुसंग्रह है। इसका प्रकाशन सन् १९१८ ई० में कामरशल प्रेस जुही कानपुर से हुआ था। इसके निबन्ध निम्न प्रकार से हैं—भवभूति, लोलिम्बराज, फारसी कवि हाफिज, बौद्धाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीलभद्र, मधुरवाणी, सुखदेव मिश्र, हरिविजय सूरि, और आचार्य दिङ्नाथ (बौध साधु)। ये आठों हमारे चरित्रनायक हैं और इन चरित्रों के अध्ययन एवं अनुकरण से भारतीयों का नैतिक बल अवश्य बढ़ेगा, शायद इसी दृष्टिकोण को लेकर श्री द्विवेदीजी ने इनका अनुवाद किया था। फारसी के प्रसिद्ध कवि हाफिज के पद्यों का अनुवाद जो श्री द्विवेदीने प्रस्तुत किया है, उसका एक नमूना यहाँ प्रस्तुत है :—

मूल—"दिल शौके लबत मुदाम दारद ।
यारब ज लवत चि काम दारद ॥ "

अनुवाद—"मन में तेरे अधर की रहत निरंतर चाह,
कौन हेतु जाने हरी कछू न याकी थाह । "

मूल—"हाफिज चु दमे खुसस्त मजलिस ।
अस्बाबे तरब तमाम दारद । "

अनुवाद—"हाफिज सौ क्षण धन्य है कटै जो प्रीतम संग ।
सब सुख साज सजें रहें बाढ़ै हिए उमंग ॥ "

लोलिम्ब राज एक बौध कवि हैं। इनके काव्य सौन्दर्य का एक उदाहरण लीजिए—

मूल—"येषां न चैतो ललना सु लग्नं
मग्नं न साहित्य सुधा समुद्रै ।
ज्ञास्यन्ति ते किं ममहा प्रयासा—
नन्धा यथा वार वधू विलासान् ॥ "

अनुवाद—जिन्होंने साहित्य रूपी सुधा-समुद्र में डुबकी नहीं लगाई, और जिनका मन ललनाओं में लीन नहीं, वे इस ग्रन्थ की रचना करने में होने वाले मेरे परिश्रम को उसी प्रकार न जान सकेंगे जिस प्रकार नेत्र हीन पुरुष वार वनिताओं के हाव-भाव को नहीं जान सकते।" इसी प्रकार अन्य ६ विद्वानों के अनमोल वचनों का भी हिन्दी में अनुवाद है। पुस्तक जीवन को सुन्दर बनाने के लिए एक सुन्दर सम्बल है।

१४—आख्यायिका सप्तक—इसमें श्री द्विवेदी ने अन्य भाषाओं की अख्यायिकाओं की छाया लेकर सात आख्यायिकाओं की रचना की है। ये सात कहानियाँ में हैं—१-विद्यावल्लभ की विद्वता, २-पंडित और पंडितानी, ३-बनावटी नाम, ४-राज कुमारी हिमांगिनी ५-महारानी चन्द्रिका और भारत वर्ष का तारा ६-तीन देवता ७-काकतालीय घटना। इन आख्यायिकाओं की सामग्री बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत भाषाओं की भिन्न-भिन्न पुस्तकों से ली गई है। इन कहानियों में कल्पना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण है। इन कहानियों के कथानकों के सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी ने भूमिका में लिखा है कि "वे सजीव से हैं और बहुत कुछ सत्यांश के आधार पर स्थित हैं। समाज में इस तरह के चित्र देखे गये हैं और अब भी कहीं कहीं देखने को मिलते हैं। पहली तीन आख्यायिकाओं में जो शब्द चित्रहैं उनका सम्बन्ध साहित्य, लेखकों, पाठकों और सम्पादकों से है। उनके पाठ से साहित्य प्रेमी और साहित्य सेवी मनोंरंजन के साथ ही साथ शिक्षा भी ग्रहण कर सकते हैं। आख्यायिका चार और पाँच का सम्बन्ध समाज सुधार और देश भक्ति से है उनमें स्त्री शिक्षा, परोपकार, समाज सेवा, मातृभाषाभक्ति, सत्यपरता और देश हितैषिता आदि का महत्व दिखाया गया है।

पिछली दो आख्यायिकाओं का सम्बन्ध प्राचीन भारत की समाजिक व्यवस्था से है। उनसे और और बातों के सिवाय यह भी विदित होता है कि संस्कृत भाषा से पुराने पंडित आख्यायिकाओं और उपाख्यानों की रचनाओं में भी प्रवीण थे। उनकी कही हुई कल्पित कथाओं में विलक्षणता भी होती थी और उनसे सदुपदेश की प्राप्ति भी हो सकतीं थी। अतएव, आशा है, इस आख्यायिका सप्तक से और कुछ नहीं तो पाठकों का घड़ी भर मनोरंजन और होगा।" इस तरह इस सप्तक से मनोरंजन और उपदेश दोनों प्राप्त हो जाते हैं। संक्षेप में आचार्य द्विवेदी के अनुवाद -ग्रन्थों का यही इतिहास है।

द्विवेदीजी के अनुवाद अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, बंगला, मराठी आदि भाषाओं से हैं। वे सोद्देश्य किए गये थे। और निश्चित ही आज से ६५ वर्ष पूर्व किए गए इन अनुवादों का महत्व आंका नहीं जा सकता। द्विवेदीजी की उदारनीति के ये परिचायक हैं। जिस भाषा को वे राष्ट्र-व्यापी बनाने की कल्पना करते थे उसे समृद्ध करने का एक साधन अनुवाद भी है। इस साघन का उपयोग करके युग-द्रष्टा द्विवेदीजी ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

*

हिन्दी की उतनी लोक-प्रिय सेवा और किसी महारथी ने नहीं की जितनी कि इस महापुरुष के द्वारा हुई है। हिन्दी का इतिहास द्विवेदीजी से इतनी घनिष्टता के साथ सम्बद्ध है कि अकेले द्विवेदीजी के जीवन के साथ वर्तमान हिन्दी का विकास, उसी तरह लिपटा हुआ है, जिस तरह किसी बड़े वृक्ष के साथ लताएँ लिपटी हुई होती हैं। —

रमाशंकर अवस्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की जन्मशती

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

अतिशय हर्ष का विषय है कि आज हम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की जन्मशती मनाने को एकत्र हुये हैं। यह जयन्ती अखिल भारतीय स्तर पर मनाई जा रही है। उत्तर भारत के अनेक नगरों और गाँवों तक में द्विवेदी जी की जयन्ती मनाने का उपक्रम हुआ है और हम शीघ्र ही इस संवाद को सुनेंगे कि साधारण जनसमाज से लेकर शिक्षित समुदाय और पडित मंडली तक में यह जयन्ती कितने स्वाभाविक और सहज उत्साह से मनाई गई है। वास्तव में यह हिन्दी के और उत्तर भारत के एक युग पुरुष की जयन्ती है और इस दृष्टि से इसका राष्ट्रीय महत्व है। हमें यह ज्ञात नहीं कि इसकी योजना केन्द्रीय और प्रादेशिक शासनों द्वारा, जो अपने को राष्ट्रीय कहते हैं, क्रियान्वित की गई है या नहीं ? यदि ऐसे आयोजन किये गये होते, तो उसकी सूचना हमें अवश्य मिलती। ऐसी सूचनाओं के अभाव में हम यही कह सकते हैं कि शासन-सत्ता की ओर से कोई सुसंगठित आयोजन इस निमित्त नहीं किया गया। इसे हम हिन्दी साहित्य और उसके महान व्यक्तित्वों के प्रति अपनी राष्ट्रीय सरकार की असावधानता कहें या उपेक्षा या अवहेलना, समझ में नहीं आता। सरकारी और अर्ध सरकारी माध्यमों से इस प्रकार के आयोजन नये नहीं हैं और अपने देश में भी इनकी परिपाटी अज्ञात या अनजानी नहीं है। ऐसे राष्ट्रीय महत्व के अवसरों का उपयोग न करना शासन-सत्ता की किसी प्रशंसनीय प्रवृत्ति का परिचायक तो नहीं ही है। यह हमारी सांस्कृतिक रुचि और प्रगति के अविकसित होने का भी एक प्रमाण है।

हिन्दी साहित्य के साथ शासकीय शक्ति की अपेक्षा जनशक्ति का अधिक सक्रिय सहयोग रहा है और आज के देशव्यापी उत्सव से इस बात की पुष्टि होती है कि जनशक्ति आज भी हमारे साथ है और हमें उसका यथेष्ट गर्व और गौरव भी है। आचार्य द्विवेदी जन समाज के अपने व्यक्ति थे और जीवन पर्यन्त जन-जीवन की भूमिका पर ही कार्य करते रहे थे। उन्होंने कभी महापुरुष या अति-मानव कहलाने की इच्छा नहीं रखी। उनके साहित्यिक कार्य का प्रमुख लक्ष्य सामान्य समाज तक भारतीय साहित्य और संस्कृति की निधियों को पहुँचा देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने पंडितों की भाषा न अपनाकर सामान्य पाठक की समझ में आने योग्य भाषा अपनाई। उनकी शैली में भी सरलता और स्पष्टता थी। उच्चतर पांडित्य की बातों को भी वे बोधगम्य बनाकर सरस्वती के पाठकों के सम्मुख रखा करते थे। कुछ लोग उनके इस साहित्यिक कार्य में गांभीर्य और पाण्डित्य की कमी बतलाते हैं, परन्तु द्विवेदी जी का लक्ष्य कुछ और था। वे कोरे साहित्यिक न थे वरन् युगजीवन के परिष्कारक साहित्यकार और मनीषी थे। उनकी रुचि सिद्धांतों के ऊहापोह में उतनी नहीं थी, जितनी व्यावहारिक तथ्यों को सामान्य जनसमाज तक पहुँचाने में थी। द्विवेदी जी के समस्त कार्य और उनकी साहित्य-साधना को ठीक-ठीक समझने के लिए हमें उनके इस लक्ष्य को ध्यान में रखना होगा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी भी यद्यपि भारतीय समाज के नव-जागरण की प्रेरणा से प्रभावित थे, परन्तु उनके सम्मुख नवीनोन्नयन की कोई सुनिश्चित रूपरेखा नहीं थी। यही करण है कि उस युग के लेखक अपनी रुचियों और शैलियों में अधिक भिन्नता और विविधता रखा करते थे। भारतेन्दु युग के लेखकों की शैली, विचारधारा और वक्तव्यों में एक केन्द्रीयता की अपेक्षाकृत कमी थी। उस समय जो पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई थीं, उनमें लोक-रुचि के उन्नयन का उतना ध्यान नहीं था, जितना वैयक्तिक रुचियों के प्रकाशन का था। कदाचित् इसीलिये भारतेन्दु युग की पत्रिकाएँ स्थायित्व न ग्रहण कर सकीं।

आचार्य द्विवेदी जी का कार्य अधिक व्यवस्थित, संगठित और लोक परक था। उनके सम्मुख राष्ट्रीय जीवन के विविध पक्षों का एक साथ समाहार करने की अधिक स्पष्ट रूपरेखा थी। 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने इस रूपरेखा को साकारता देकर हिंदी साहित्य में नये युग का समारम्भ किया। इतिहासज्ञों ने इसे साहित्य का द्विवेदी युग कहा है। किसी व्यक्ति के नाम से युग विशेष का उल्लेख इतिहास की एक असाधारण और आश्चर्यजनक घटना है। द्विवेदी जी की भाषा शैली, लेखन प्रणाली जिस प्रकार सुसमन्वित है, शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति में ऐसी शैली और विचारधाराओं का समन्वय देखा गया हो।

भाषा के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदीजी का महत्व अपरिमेय कहा जायगा। इसके पूर्व हिन्दी भाषा का अपना कोई प्रतिमान नहीं था। उर्दू फारसी से भरी, संस्कृत के अपरिचित प्रयोगों से भरी, ग्रामीण और क्षेत्रीय शब्दावली से भरी विविध अस्त-व्यस्त रूप दिखाई देते थे। व्याकरण की शिथिलता ही नहीं, नियम-हीनता भी हमारी भाषा में व्याप्त थी। इन सबको एक व्यवस्थित सांचे में ढाल कर लोकप्रिय और व्यावहारिक साहित्यिक भाषा का निर्माण द्विवेदी जी ने किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी इस भाषानीति और भाषा-स्वरूप पर बहुत सी टिप्पणियां लोग किया करते हैं। परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं कि किसी भाषा को विस्तार और व्यवस्था देने के लिये कोई न कोई समन्वय मार्ग निकालना ही पड़ता है। द्विवेदी जी की भाषा-नीति और उनका भाषा स्वरूप इसी समन्वय का प्रतीक और प्रतिनिधि रहा है, जिससे अतिवादियों को संतोष नहीं होता, पर जो भाषा के राष्ट्रीय स्वरूप के लिये वांछनीय है।

द्विवेदी जी उर्दू और फारसी प्रयोगों के विरोधी नहीं थे। उनकी अपनी भाषा में ऐसे प्रयोग बहुतायत से मिलते हैं, परन्तु वे हिन्दी और उर्दू का अन्तर समझते थे। समझते क्या थे, इस अन्तर का उन्होंने निर्देश किया था और तभी हिन्दी की अपनी स्वतंत्र सरणी बन सकी थी जो उर्दू के रास्ते से भिन्न थी। किसी भाषा में दूसरी भाषाओं के प्रयोग आते हैं और आने चाहिए, परन्तु उर्दू और हिंदी की खिचड़ी तैयार करने के द्विवेदी जी पक्षपाती नहीं थे। आज भी हम उर्दू और हिन्दी को एक में मिलाने की आवाजें सुना करते हैं, परन्तु उनका प्रयोजन कुछ और ही है। एक समय था, जब उर्दू वाले हिन्दी को सभ्य मानने को भी तैयार नहीं थे। उसे गंवारू जबान कहा करते थे। जब द्विवेदी जी और उनके समान लेखकों के कारण हिन्दी देशव्यापी भाषा का पद पाने लगी, जब उस के बोलने और पढ़ने लिखने वालों की संख्या राष्ट्रव्यापी हो गई और जब हिन्दी साहित्य में युगीन भारतीय चेतना का संपूर्ण प्रतिफलन होने लगा, संक्षेप में जब हिन्दी राष्ट्रीय संस्कृति की वाहिका बन गयी, तब उसे फिर से विघटित करने के ये प्रयोग किये जाने लगे हैं। भाषाओं के इतिहास का कोई भी जानकार इस नयी मिलनेच्छा के अर्थ को समझ सकता है। यदि किसी एक व्यक्ति का नाम लिया जाय, जो नवीन हिन्दी भाषा को उसका वर्तमान समृद्धिशाली स्वरूप देने में सबसे अधिक सहायक हुआ है, तो वह पुण्य नाम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का ही होगा।

विचारों के क्षेत्र में द्विवेदीजी को आकलनकर्त्ता कहा जाता है और उनमें मौलिक विचारों की कमी बताई जाती है। परन्तु यह दृष्टि बहुत एकांकी और एक सीमा तक भ्रान्तिपूर्ण है। द्विवेदीजी अपने विचारों में इतने आस्थावान और अडिग रहे हैं कि प्राचीन और नवीन, भारतीय और विदेशी, समीप की और दूरवर्ती भाषाओं में व्यक्त किये गये विचारों को एक मौलिक सांचे में ढाल सके। यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता है कि समस्त बिखरी हुई विचार राशि को वे अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक समाहित स्वरूप दे सके। सारा इतिहास और उसकी समस्त विचारणायें जब एक व्यक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भी इतने सार्थक रूप में रखी जा रही हो तब उस माध्यम में मौलिकता न देखना विलक्षण हेत्वाभास है। द्विवेदीजी की प्रतिभा ग्राहिका प्रतिभा थी, परन्तु वह लक्ष्य-निष्ठा भी थी। यदि वे केवल आकलनकर्ता होते तो उनके विचारों में कोई समग्रता न पायी जाती। परन्तु द्विवेदीजी के विचारसुसमन्वित और समग्र हैं। उनमें किसी प्रकार की अस्पष्टता या दुरूहता नहीं है। विचारों के क्षेत्र में द्विवेदीजी की मौलिकता इसी समन्वय और समग्रता की भूमि पर देखी जा सकती है। मूल रूप में लक्ष्यनिष्ठ होने का कारण द्विवेदीजी अनेकांतवादी न बन सके। पर अनेकांत न बनना मौलिक प्रतिभा की कमी का परिचायक कभी नहीं कहा गया। द्विवेदीजी भारतीय समाज के बुद्धिजीवी और प्रगतिशील युग के स्रष्टा और प्रतिनिधि थे। वे अतिमानवीय तथ्यों और रहस्यमूलक भावनाओं की अपेक्षा प्रत्यक्ष और गोचर स्थितियों के द्रष्टा थे। उन्होंने अपने निबंधों और पुस्तकों में वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक की जिन विचारधाराओं का उल्लेख किया है वह सबसे पहले उनकी बुद्धि और विवेक की कसौटियों पर कसी गई हैं। द्विवेदीजी की लेखन शैली तार्किक और बुद्धि सम्मत है। उनके जीवन में लोक-दृष्टि और युग-दृष्टि का भी सम्यक योग है। इस भूमिका पर उनका समस्त लेखन एक समन्वय सूत्र में बंधा हुआ है। उनके समस्त साहित्यिक निर्माण में उनका व्यक्तित्व व्याप्त है। यह एक स्वत: मौलिकता है, जिसे आंख ओट नही किया जा सकता।

साहित्यिक विचारधारा के क्षेत्र में द्विवेदीजी ने एक नयी दृष्टि का संचार किया है। उन्होंने रीतिकालीन काव्य की दरबारी पद्धति का प्रख्यान किया। उनकी श्रृङ्गारिक और अतिवादी पद्धतियों का प्रतिवाद किया। नवीन काव्य में नवीन युग चेतना और भावों के औदात्य का उन्होंने पक्ष लिया। प्राचीन काव्य-शास्त्र में साहित्य का मुख्य उद्देश्य आनन्द की सृष्टि करना कहा गया है। काव्य की आत्मा रस ही आनन्द का पर्याय है। परन्तु रीतिकालीन कवियों ने इस आनन्द मूलक 'रस' को एक संकीर्ण दायरे में पहुँचा दिया था। आचार्य द्विवेदी जी ने काव्य और उसकी आत्मा रस को विशद बनाने का प्रयत्न किया है। उनकी रस समन्धी व्याख्या को हम थोड़े विस्तार में देखेंगे।

यहां हम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की वाग्विलास पुस्तक की 'निवेदन', शीर्षक भूमिका में आई हुई इन पंक्तियों को उद्घृत करते हैं-इनसे तत-सम्बन्धी द्विवेदीजी के विचारों का कुछ आभास मिलता है। वे लिखते हैं—

'मनुष्य का हृदय अनेक विकारों का आकार है। यों तो वे सुप्त अवस्था में रहते हैं, पर कारण उपस्थित होते ही जाग्रत हो उठते है। उनके जागरण से मनुष्य तदनुकूल व्यवहार करने लगता है। यह जागरण जितना ही उद्याम या प्रबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है—मानवीय व्यवहार भी उतना ही कठोर हो जाता है। इन जाग्रत विकारों का ही नाम 'रस' है। काव्य शास्त्र में इन्हीं की संज्ञा रस है। इनकी प्रेरणा से जो काम होते हैं उनके कुछ चिह्न भी मनुष्य में प्रगट हो जाते हैं। चाहें तो आप इन्हीं को अनुभाव कह सकते हैं।

रस विषयक इस संक्षिप्त उल्लेख की ओर दृष्टिपात करते ही हमें कुछ बातों का अनायास परिचय मिलता है। पहली बात यह है कि इस उद्धरण की शब्दावली शास्त्रानुमोदित या परमपरागत नहीं है। नवीन विवेचना की भूमिका पर ही इसमें विचार किया गया है। मनुष्यों के हृदय में वासना रूप से कतिपय मनोभाव अप्रगट रूप से विद्यमान रहते हैं। व्याख्यान के द्वारा वे सुप्त भाव प्रसंगानुकूल जाग्रत होते है और काव्यास्वाद की सृष्टि करते हैं-यह काव्यास्वाद ही 'रस' है। वासना रूप में संस्थित इन अस्थायी भावों का जागरण कवि के काव्यवैशिष्ट्य के अनुसार कभी अतिशय तीव्र और कभी अपेक्षाकृत मंद हो सकता है, परन्तु प्रत्येक स्थिति में आस्वाद की भूमिका तो समरस रहती है। द्विवेदीजी ने आस्वाद के एक दूसरे पक्ष पर भी ध्यांन दिलाया है। मानवीय व्यवहार का काव्यास्वाद से प्रभावित होना और तदनुरूप बन जाना। जिस काव्य में यह प्रेरणा शक्ति जितनी अधिक होगी—मानवीय व्यवहार उससे उतना ही अधिक प्रभावित होगा—रस संबंधी यह विवेचना शास्त्रीय शब्दावली में अभिव्यक्त न होकर भी नवीन है रस की शास्त्रीय धारणा आवरण भंग जनित आत्म तत्व के उन्मीलन पर आश्रित है—रस विशुद्ध आनन्दमूलक होता है। आनन्द ही काव्य की चरम-उपलब्धि है। परन्तु द्विवेदी जी आनन्द का उतना आग्रह नहीं करते, जितना काव्यास्वाद के पश्चात् होने वाले मानवीय व्यवहार का करते हैं। रस की यह उपयोगितावादी व्याख्या द्विवेदी जी से ही आरंभ होती है और आगे चलकर यह अनेकानेक रूपों में परिणत होती है।

काव्य के स्वरूप और कवि कर्तव्य के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने कई लेख लिखे हैं। कवि कर्तव्य संबंधी विचार अधिकतर संस्कृत ग्रंथों के आधार पर निरूपित हुए हैं, परन्तु कविता के स्वरूप और प्रभाव के सम्बन्ध में कई नवीन तथ्यों का उल्लेख किया गया है। मिल्टन के सुप्रसिद्ध विचार का अनुमोदन करते हुये द्विवेदी जी ने काव्य में सरलता या सादगी, जोश या प्रभविष्णुता और असलियत या तथ्यपरता का अनुमोदन किया है। सादगी का संबंध उन्होंने भाषा प्रयोग से माना है और काव्य की भाषा को बोलचाल की भाषा के अधिक समीप रखने का प्रस्ताव किया है। काव्यभाषा संबंधी द्विवेदी के ये विचार वर्ड्सर्थ के विचारों से मिलते-जुलते हैं। जोश या प्रभविष्णुता हृदयपक्ष से सम्बन्धित है। कृत्रिम कल्पना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अतिरंजित अर्थ व्यंजना को छोड़कर कवि को हार्दिकता का सरल मार्ग अपनाना चाहिये। आलंकारिकता की अपेक्षा भाव सौंदर्य पर उनका अधिक आग्रह था। असलियत से उनका अभिप्राय वक्तव्य वस्तु की यथातथ्यता से है जो जीवन और जगत के सूक्ष्म निरीक्षण से प्राप्त होती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य के ये तत्व नई युग-चेतना से सम्बन्धित हैं और प्राचीन व्याख्याओं से अधिक संबंध नहीं रखते।

साहित्य की व्यावहारिक भूमिका पर द्विवेदी जी लोकप्रियता, लोक रंजकता और चमत्कार के पक्षपाती रहे हैं। उन्होंने अपने अनेकानेक निबंधों में प्राचीन कवियों और उनके काव्य को बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। इन निबन्धों में द्विवेदी जी की शैली अधिक आत्मीय है। संस्कृत और हिन्दी के पुराने कवियों के रोचक उद्धरणों को देखने पर द्विवेदी जी की मर्म ग्राहिणी प्रतिभा का नया साक्षात्कार होता है। काव्य के चमत्कार के सूचक उद्धरणों से पाठक स्वभावतः अधिक मात्रा में प्रभावित होते हैं और लेखक के आशय को हृदयंगम कर लेते हैं। द्विवेदी जी के इस काव्य विवेक और सटीक और प्रभावशाली उद्धरणों की क्षमता अत्यन्त असाधारण थी। यद्यपि यहाँ हम आचार्य द्विवेदी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की लेखन शैली का अन्तर नहीं दिखा रहे हैं, परन्तु प्रसंगवश यह कहना आवश्यक है कि आचार्य शुक्ल के निबन्धों में गांभीर्य अधिक है किन्तु लोक-रंजकता अपेक्षाकृत कम है, जबकि द्विवेदी जी के निबंधों में यह दूसरा पक्ष अधिक परिपुष्ट होकर आया है। इस लोकरंजक पक्ष के निर्माण का कौशल जितना द्विवेदी जी में था, आधुनिक युग के शायद ही किसी अन्य लेखक में पाया जाता हो।

आधुनिक काव्य और साहित्य की विवेचना करते हुए द्विवेदीजी अधिक प्रखर हो गये हैं। प्राचीन संस्कृत कवियों के सम्बन्ध में वे जितने सहृदय हैं, आधुनिक लेखकों और कवियों पर उनकी आलोचना उतनी ही अधिक तीव्र हो गई है। आधुनिक साहित्य की आलोचना में उनका सबसे अधिक ध्यान भाषा की शुद्धि के प्रति रहा है। लेशमात्र भी स्खलन उन्हें सह्य नहीं था। इसे कुछ लोग भले ही अतिरिक्त कटु कहें, परन्तु उस समय की यह आवश्यकता थी कि खड़ी बोली के प्रयोग शुद्ध और परिनिष्ठित हों। उनमें व्रजभाषा या अन्य प्रादेशिक भाषाओं की पदावली का योग न हो। इस सामयिक कर्तव्य की पूर्ति करते हुए द्विवेदीजी किसी प्रकार की छूट नहीं देना चाहते थे। यहाँ उनका साहित्यिक प्रहरी और नियामक का स्वरूप अधिक प्रत्यक्ष हुआ है। द्विवेदी जी का दूसरा आक्षेप शृङ्गारिकता के आधिक्य के प्रति था। यहां उन्होंने रीतिकालीन कवियों की तो भर्त्सना की ही है कालिदास जैसे महान सांस्कृतिक कवियों को भी नहीं छोड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। "कालिदास की कविता" शीर्षक अपनी पुस्तक में जहाँ उन्होंने उनके गुणों का भरपूर आलेख किया है, वहीं उनके उच्छल श्रृङ्गार के प्रति अपनी विरुचि भी प्रदर्शित की है। द्विवेदी जी उन रीतिवादी प्रतिमानों को स्वीकार नहीं करते थे, जिनमें कविता रसों और अलंकारों की वाहिका मात्र कही गई थी। इसी पुरानी परिपाटी का अनुवर्तन करते हुये जिन लोगों ने कवि के रूप में बिहारी, देव या केशवदास की श्रेष्ठता का उल्लेख किया है, और उन्हें सूर और तुलसी की समकक्षता में रखा है, द्विवेदी जी ने उनके विचारों का प्रतिरोध किया। इस प्रकार हम देखते है कि साहित्य और समीक्षा-आदर्शो में आचार्य द्विवेदी जी एक सुनिश्चित धारणा के प्रवर्तक हैं। द्विवेदीजी के अन्य सहकारियों ने ही नहीं, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रशस्त लेखकों ने उनके आदर्शों का बहुत दूर तक अनुवर्तन किया है। द्विवेदी जी के इस साहित्यिक और वैचारिक नेतृत्व के कारण उनके युग को द्विवेदी-युग की अभिधा दी गई थी।

साहित्य और भाषा के क्षेत्रों में द्विवेदी जी का यह नेतृत्व उनकी पत्रकारिता के माध्यम से सम्पन्न हुआ था। अतएव उनके पत्रकार रूप की अभ्यर्थना करना हम सबका कर्त्तव्य है। द्विवेदीजी के पूर्व हिन्दी पत्रकारिता अपनी प्रयोगावस्था में थी। द्विवेदी जी ने उसे वयस्कता और प्रौढ़ता प्रदान की। हिन्दी पत्रकारिता से उन्होंने कोई गौरव-लाभ नहीं किया, उनसे पत्रकारिता गौरवान्वित हुई है। भारतीय पत्रकारों में श्री सी० वाई० चिन्तामणि, श्रीनिवास शास्त्री, रामानन्द चटर्जी, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि के साथ द्विवेदी का शुभनाम महत्व का अधिकारी है। वही निष्ठा, वही निर्भीकता, वही बहुज्ञता जो उन लोगों में थी, द्विवेदी जी में भी थी। बल्कि विशुद्ध परिश्रम और जानकारी की भूमिका पर द्विवेदी जी इनमें से अधिकांश के आगे थे। मासिक प्रकाशनों के क्षेत्र में 'सरस्वती' का प्रकाशन और सम्पादन, ऐतिहासिक महत्व की घटना बन गयी है। 'सरस्वती में विषय -वैविध्य के मध्य एक समग्र अन्विति रहा करती थी और वह अन्विति द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की अन्विति थी। बहुरूपता में एकरूपता का इतना विशिष्ट उदाहरण अन्यत्र कठिनाई से मिलेगा। वर्त्तमान समय में अनेक महापुरुषों की स्मृति में अनेकानेक शासकीय आयोजन किये गये हैं। (पिछले वर्ष महाकवि रवीन्द्र नाथ की शत वार्षिकी के उपलक्ष में समस्त देश के प्रमुख नगरों में रवीन्द्र भवनों का निर्माण हुआ है जिन में नाट्यमंच और अन्य साहित्यिक और कलात्मक अनुष्ठानों'की स्थायी व्यवस्था की गई है।) पत्रकारिता के क्षेत्र में द्विवेदी जी का अपूर्व वैशिष्ट्य हमें प्रेरित करता है कि हम यह मांग करें कि देश के मुख्य भागों में पत्रकारिता की शिक्षा के लिये नवीन संस्था निर्मित हों और उन समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थानों को पत्रकारिता के द्विवेदी संस्थान का अभिधान दिया जाय। इस प्रकार का निर्णय अत्यन्त समयोचित और समीचीन है। द्विवेदी जी की स्मृति-रक्षा के प्रति यह हमारा एक न्यूनतम कर्त्तव्य है। हमारे इस प्रस्ताव की पूर्ति शासकीय अधिकारियों द्वारा किस रूप में और किस सीमातक होगी इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। परन्तु राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली शासन सत्ता को एक आवश्यक सुझाव तो दे ही सकते हैं।

द्विवेदीजी के व्यक्तित्व और उनके चारित्रिक गुणों के सम्बन्ध में हम बहुत कुछ पढ़ते और सुनते रहते हैं। हम अन्य अनेक महापुरुषों के चरित्रों से भी परिचित हैं। ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं जब अत्यन्त सामान्य परिवार का एक ग्रामीण व्यक्ति अपने निजी प्रयास और अध्यवसाय से इतने बड़े समुदाय का इतने दीर्घ समय तक नेतृत्व कर सका हो। द्विवेदीजी के पास राजनीतिक या सामाजिक नेताओं का सा पार्टी या दल संगठन का बल भी नहीं था। न उन्हें किसी बड़े कोष पर कोई अधिकार था। लेखनी उनका साधन थी। श्वेतपत्र उनके उपादान थे। पाठक समुदाय उनका सम्बल था। सरस्वती की आराधना उनकी साधना थी। जन जीवन की जागृति उनका ध्येय था। राष्ट्रीय चेतना का अभ्युदय उनका लक्ष्य था। एक निःसाधन और निःसबल व्यक्ति के आत्मोत्थान का इतना बड़ा उद्योग एक अचम्भा है। इस उद्योग की सम्पूर्ण सफलता एक चिर स्मरणीय और चिर प्रेरणाप्रद तत्व है। आज आचार्य द्विवेदी का स्मरण करके हम एक ऐतिहासिक महत्व के कार्य को सम्पन्न कर रहे हैं। हमारी कामना है कि उनके दिव्य प्रकाश से हम सबकी आत्माएँ चिर दिन तक प्रकाशित होती रहें।

———

प्रसाद हीरक जयन्ती पर
बंगीय हिन्दी परिषद् की अनुपम भेंट :—
'प्रसाद'
प्रसाद पर समीक्षात्मक ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जन्मशती समारोह : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

लेखक—श्री इंदुकांत जी शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के भीष्मपितामह स्व० आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी[1] की जन्मशती समारोहपूर्वक वर्ष भर मनाने का निश्चय कर नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ने हिन्दी भाषा और साहित्य पर द्विवेदीजी के अशेष ऋण का स्मरण और उनकी पुण्यस्मृति में श्रद्धासुमनार्पण अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझा। सभा का यह विश्वास सही निकला कि उसके द्वारा आयोजित यह जन्मशती समारोह हिन्दी के साहित्यकारों तथा अध्येताओं का उस महामना के प्रति समवेत जयघोष है। कहना न होगा कि सभा को इस पावन अनुष्ठान में देश के कोने-कोने से हिंदी हितैषियों द्वारा जो प्रोत्साहन, समर्थन, सहयोग एवं सुझाव मिले उन्हीं के पुंजीभूत बल पर यह यज्ञ इतने उल्लास और निष्ठा के साथ प्रारम्भ हुआ तथा उसके प्रथम चरण का समापन बड़े भव्य रूप में १५ मई १९६४ को सभा के प्रांगण में आचार्य द्विवेदी जी की कांस्य प्रतिमा का पं० सुमित्रानन्दनजी पंत द्वारा अनावरण के साथ हुआ।

१५ वर्ष पूर्व बम्बई के शिल्पी श्री खानविलकर द्वारा गढ़ी इस मूर्ति के दाता ने अपना नाम गुप्त रखने का आदेश दिया था। यह मूर्ति सभा द्वारा पसंद किये गये फोटोग्राफ के अनुसार बनी थी। यह तथा अन्यान्य फोटो सभा को स्व० पं० रमाशंकरजी अवस्थी, संपादक दैनिक 'वर्तमान' कानपुर, (अब अस्तंगत) ने दे कर अपने प्रति द्विवेदी जी की वत्सलता न्याय प्रमाणित की थी।

सभा से आचार्य द्विवेदी का बहुविधि और सुदीर्घ सम्बन्ध था। द्विवेदी जी के अनेक उपकारों और दानों से सुसम्पन्न तथा कृतज्ञ सभा के लिये यह अवसर अनेकशः स्पृहणीय एवं महार्घ था। अतएव द्विवेदीजी की कीर्ति के अनुरूप तथा उनके दाय की विशेष उत्तराधिकारिणी के रूप में हिंदी सेवी इस आद्या संस्था ने अपने दायित्व एवं हर्ष को सहस्रगुणित रूप में अनुभव कर तदनुरूप कुछ करना चाहा।

सभा की प्रबंध समिति ने अपने १८ कार्तिक, २०२० वि० के अधिवेशन में यह समारोह मनाने का प्रस्ताव पारित किया। समारोह की योजना बनाने के लिये एक मंडल संगठित किया गया। लगभग ३० वर्ष पूर्व सभा द्वारा प्रकाशित

(१) अध्यक्षीय भाषण में श्री भक्तदर्शन के शब्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ' की उज्ज्वल परम्परा को अब एक अखिल भारतीय पर्व का रूप देना स्थिर हुआ। द्विवेदीजी के युग विधायक प्रकृतित्व एवं गम्भीर व्यक्तित्व की कीर्ति तथा उपादेयता जैसे भी संबर्धित हो वह सब करने तथा कराने का निश्चय इस मंडली ने अपनी कई बैठकों में किया।

कार्य की आतंकजनक गुरुता और समय की अत्यल्पता के बीच सेतु बनाय इस मंडल का उत्साह जिसके सहारे जल्दी ही, द्विवेदीजी की जन्म तिथि; १५-५-६४ का कार्यक्रम मंगलमय रूप में संपन्न हो गया। छायावाद की महत्त्रयी के कृती कवि, 'सरस्वती' के स्नेहभाजन तथा 'द्विवेदी पदक' से पुरस्कृत पं० सुमित्रानन्दनजी पंत ने हमारी प्रार्थना पर द्विवेदीजी की प्रतिमा का अनावरण करना स्वीकार कर हमारी महत्वाकांक्षा को सफल कर दिया।

प्रात:काल वेद पाठ तथा मंगलगान के अनन्तर पं० करुणापतिजी त्रिपाठी, साहित्य मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, ने पंतजी का स्वागत किया। पंत जी ने सहस्रों की उपस्थिति में अपने भाषण के बाद जब हिंदी के 'लौहपुरुष'[1] की मूर्ति अनावृत की, सभा का मंडप स्थल तालियों से गूंज उठा। पंतजी ने अपने भाषण में कहा कि :—

"लंगड़ाती खड़ी बोली को खड़ा कर अपने बल चलना द्विवेदीजी ने सिखलाया, उन्होंने अनेक लेखकों को निखारा तथा हिन्दी के सर्वाङ्गीण विकास का पथ प्रशस्त किया। हिन्दी की महती शक्ति को द्विवेदी जी ने इतना पहले पहचाना था। उनकी मूर्ति का अनावरण भारतीय जनजागरण और एक शती के इतिहास का अनावरण है। हमारी एक शती के संघर्ष, संकट और मनोरथ उनकी प्रतिमा में प्रतिबिंबित दीखते हैं।

विदेशी भाषा और संस्कृति का हम पर इतना प्रभाव है कि हम अपनी भाषा और संस्कृति का प्रकाश नहीं देख पाते। विदेशी भाषा का व्यवहार वैसा ही है जैसा अपने खेत में अन्न न उगा कर आयात हुये अन्न से काम चलाना। ठीक है कि पाश्चात्य विज्ञान ने हमारे वहिर्जगत का कोना-कोना आलोकित किया है, भौतिक सुविधायें बढ़ गई है। परन्तु हमारे मानस का, आभ्यंतर का दर्शन जो प्रकाश कराये वह भारत के पास ही है। भारतीय संस्कृति आज की मरणप्राय मानवता को नवजीवन दे सकती है ! भारतीय चैतन्य को विश्व में मुखरित करने का काम हिंदी करेगी।

नगर की अनेक संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने द्विवेदीजी की मूर्ति पर माल्यार्पण किया।

(१) यह संज्ञा पंतजी ने अपने भाषण में दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायंकाल द्विवेदीजी के पत्रों, उनकी संपादित पांडुलिपियों तथा उनके द्वारा सभा को प्रदत्त विविध विषयक तथा अनेक भाषायी पुस्तकों की अमूल्य निधि की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया श्री लक्ष्मीनारायण जी 'सुधांशु' अध्यक्ष बिहार विधान सभा, ने। तदनन्तर सभा भवन में श्रद्धांजलि समारोह की अध्यक्षता केन्द्रीय उपमंत्री शिक्षा विभाग, नई दिल्ली, श्री भक्तदर्शनजी ने की। श्रद्धांजलि अर्पित करनेवालों में प्रमुख थे आचार्य बीरबल सिंह, उपकुलपति काशी विद्यापीठ, पं० सुरतिनारायण जी त्रिपाठी, उपकुलपति, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, तथा श्री पं० शिवनन्दन लालजी दर, कुलसचिव, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय। द्विवेदीजी की प्रतिभा तथा उनकी हिन्दी सेवा पर सर्वप्रथम एक सुचिंतित व्याख्यान डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी ने दिया जिन्होंने इस समारोह का उद्घाटन भी किया। हिन्दी प्रयोगों के सम्बन्ध में द्विवेदीजी के नियामक रूप पर एक संक्षिप्त किंतु सारगर्भित भाषण श्री बेढब बनारसी ने किया जिसमें उन्होंने अपने से ही सम्बन्धित एक संस्मरण का उल्लेख किया। आकाशवाणी इलाहाबाद ने दिन भर के कार्यक्रम को जिस त्वरा से संपादित कर देश में उसके प्रसार की व्यवस्था की तदर्थ वह धन्यवादाई है।

सुधांशु जी ने नेताओं की अंग्रेजी परस्ती की निंदा की तथा द्विवेदी जी के अप्रतिभ कार्यों की चर्चा की। श्री भक्तदर्शन जी ने अध्यक्षीय भाषण में केन्द्रीय सरकार द्वारा हिन्दी के हित में किए जाने वाले अनेक कार्यों का उल्लेख किया और कहा कि द्विवेदी जी हिन्दी पत्रकारिता के जनक और उन्नायक थे। उनकी विद्वता आचारशीलता तथा प्रतिभा से उन्हें सहज ही आचार्यव मिला। यह आज कल के आचार्यत्व से भिन्न कोटि का आचार्यत्व था। आज तो एम० ए० में प्रथम श्रेणी पाना दुष्कर है परन्तु आचार्यत्व (पी०-एच० डी०) पाना बहुत सरल। ४० प्रतिशत भारतीय हिन्दी भाषी हैं। ३०-३५ प्रतिशत और भी लोग—आसाम, बंगाल, काश्मीर, महाराष्ट्र, गुजरात आदि के—हिन्दी बोल समझ लेते हैं। इसीलिए इसका राजभाषा का पद पाना उचित है। अन्त में आपने बताया कि द्विवेदी स्मारक डाकटिकट अगले वर्ष चालू हो जायगा।

शारदीय नवरात्र में इस समारोह का त्रिदिवसीय कार्य के रूप में द्वितीय चरण चलेगा। उसके प्रमुख अङ्ग हैं वर्तनी सम्मेलन, संगीत गोष्ठी, काशी की साहित्यिक यात्रा, पत्रकार सम्मेलन, प्राचीन काव्य पाठ, विद्वत्समादर (पुरस्कार, पदक वितरण) तथा कवि संमेलन।

द्विवेदी शती सम्बन्धी कुछ ऐसे भी संकल्प सभा ने किए है जो द्रव्य साध्य हैं। किन्तु सभा इस द्रव्य संग्रह के लिए कृतसंकल्प और आश्वस्त है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ के सस्ते संस्करण का प्रकाशन।

२—द्विवेदी जी के पत्रों का संपादन प्रकाशन।

३—द्विवेदी ग्रंथावली का कई खण्डों में सर्वसुलभ मूल्य में प्रकाशन।

४—द्विवेदी-शोध-संस्थान की स्थापना जिसमें हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर शोध कराने की व्यवस्था हो।

सभा ने पत्र पत्रिकाओं से द्विवेदी विशेषांक तथा भारत सरकार से डाकटिकट निकालने का अनुरोध किया है। इसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। यत्र तत्र द्विवेदी जी के जो शतवार्षिकी उत्सव हो रहे हैं उनसे सम्पर्क रखकर उनके आयोजकों के तथा पत्र-पत्रिकाओं को उचित परामर्श एवं सामग्री साहाय्य देकर भी सभा अपना कर्त्तव्य पूरा कर रही है।

हमें आशंसा और मंगलकामना के अनेक संदेश मिले। साथ ही निम्नलिखित महानुभावों ने अपने सत्परामर्शों से हमें लाभान्वित किया। श्री लक्ष्मीनारायण जी 'सुधांशु', श्री कामाख्या प्रसाद जी त्रिपाठी (मंत्री, आसाम), श्री सत्यनारायण सिंह जी, सूचना एवं प्रसार मंत्री, नई दिल्ली, श्री लालबहादुर शास्त्री, निर्विभागीय मंत्री, नई दिल्ली, श्री त्रिभुवननारायण सिंह जी सदस्य योजना आयोग, नई दिल्ली, श्री भक्तदर्शन जी उपशिक्षा मंत्री, नई दिल्ली, श्री रघुनाथ सिंह जी, संसद सदस्य, नई दिल्ली, श्री लक्ष्मीचन्द्र जी जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता, श्री कल्याणमल जी लोढ़ा, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, डा० हरवंश लाल जी, अध्यक्ष, आधुनिक भाषा विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय तथा श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय शिक्षा मंत्री, राजस्थान।

इस समारोह की अविस्मरणीय विशेषता थी नवीन तथा प्राचीन पंक्तियों के साहित्यकारों का संगम। द्विवेदी युगीन लेखकों जैसे पद्मश्री श्री रामचन्द्र जी वर्मा, श्री शांतिप्रिय जी द्विवेदी, बाबू ब्रजरत्नदास जी, श्री कृष्णदेव प्रसाद जी गौड़ से लेकर वर्तमान पीढ़ी तक के प्रतिनिधि साहित्यकार एवं पत्रकार एकत्रित थे। साथ ही शिक्षा-शास्त्रियों से लेकर समान के सभी उद्बुद्ध वर्गों के अग्रणी भी सम्मिलित थे।

समारोह की इस विरल सफलता का सारा श्रेय सभा की निर्मल साहित्यसेवी परम्परा को है, उस परम्परा के ध्वजवाही, नवीन पीढ़ी के साहित्यकारों को है,

तथा सभा के तपोनिष्ठ और कर्तव्यपरायण मंत्री, पुराने साहित्यकार एवं विद्वान श्री पं० शिवप्रसाद जी मिश्र 'रुद्र काशिकेय' तथा उनके सहयोगियों को है, और काशी के प्राचीन-अर्वाचीन उन सभी साहित्य-सेवियों को है जिन्होंने प्रतिमा के पीठिका-मंडल के निर्माण का सारा व्यय वहन कर अपनी निस्वार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाशयता का पुनः प्रमाण दिया।

समारोह मण्डल के संयोजक श्री पं० सुधाकर पांडेय जी का उल्लेख मैं जानबूझ कर अन्त में करूँगा। सारी योजना की परिकल्पना तथा रूपायित करने का अथक संकल्प लेकर अहर्निश व्यस्त रहना, बाधा एवं विक्षेप के अप्रत्याशित अवसादों को अस्पृश्य बनाये रख कर अनवरत अध्यवसाय द्वारा इस यज्ञ के यशोमय समापन का भार जैसे केवल उन्हीं पर था। कार्य अकेले उन्होंने न किए हों, और भले ही उन्हें सबका सद्भाव और सहयोग सुलभ रहा हो, परन्तु सभी कुछ के पीछे उनकी प्रेरणा और उनका परिश्रम स्पष्ट परिलक्षित थे। नई-पुरानी पीढ़ियों के इतने सौमनस्यपूर्ण संमेलन के कारण तथा व्यवस्था-कौशल के भी कारण सभा का यह साहित्यिक समारोह बहुत दिनों तक याद किया जायेगा।

*

आधुनिक हिन्दी साहित्य के लिए यदि विविध सड़कों का निर्माण भारतेन्दु ने किया था, तो उन्हीं सड़कों को पक्की बनाकर उन्हें राज-पथ का गौरव प्रदान करने का श्रेय श्री द्विवेदी जी को ही है।

—आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

*

सामयिक साहित्य में कविता की जो उनकी विरासत है, वह अधिकांश में शब्दों का स्वच्छ वसन धारण करके खड़ी हुई सतोगुण की सन्यासिनी की प्रतिमा है—उसमें काव्य-कला का वास्तविक जीवन-स्पन्दन कहीं-कहीं ही मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य द्विवेदी और डा० दास

श्री रूद्र काशिकेय

बात सन् १९३३ की है। प्रेमचन्द जी 'हंस' का काशी अंक प्रकाशित करने जा रहे थे। स्वभावतः उन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से भी दो शब्द लिख देने का आग्रह किया और द्विवेदी जी ने 'जहं बस सम्भुभवानी' वाले सन्त-सिद्ध लहजेमें काशी की स्तुति[1] करते हुए 'हंस' को श्री वृद्धि का प्रशस्त आशीर्वाद दिया। इस प्रकार उन्होंने दिखा दिया कि कतिपय काशीवासियों से उन्हें भले ही कुछ शिकायत रही हो, काशी के प्रति उनके मन में कोई दुर्भावना नहीं थी। इसी तरह २७ दिसम्बर, सन् १८९७ ई० से अपने निर्वाणकाल तक 'सभा' के मान्य सदस्य बने रहकर 'सभा' की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले कार्यों में सदैव हार्दिक योग देकर एक हजार रुपये के साथ ही अपनी साहित्यिक सम्पत्ति रिक्त काशी नगरी प्रचारिणी सभा को प्रदान कर उन्होंने भलीभांति प्रमाणित कर दिया कि 'सभा' के किसी अधिकारी से भले ही उनकी पटरी न बैठती रही हो, स्वयं 'सभा' के प्रति उनके प्रेम में कहीं कोई कमी नहीं थी। फिर भी हिन्दी जगत के समस्त सभा और द्विवेदी जी के मतभेदों का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर[2] इतना अधिक प्रचार किया गया है कि वह प्रसंग आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास का महत्वपूर्ण अंग बन

---

१ 'यस्यं सदैव भुवनत्रय संस्तुतायां
विश्वेश्वरौ वसति शैलसुता समेतः।
काशी च सैव विबुधाधिप भक्ति भूमि—
'हंस'—त्रियं' बहु विधां वितनोतु नित्यम्॥'
'हंस' वर्ष ४, संख्या १

२ 'उससे स्पष्ट है कि 'सभा' के अधिकारी क्यों उनसे चिढ़े और उनके साथ स्वर्गवासी हो जाने पर भी वैसी प्रवृत्ति बनाये हुए हैं'—'सभा' और 'सरस्वती',
....'द्विवेदी जी ने निश्चय कर रखा था कि जिस नागरी
प्रचारिणी सभा ने उनके संग इतना अन्याय किया है उसके अहाते में वे पांव न धरेंगे।—
'हिमालय', पुस्तक संख्या १२। पृ०—५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। छोटी-सी बात बतंगड़ हो उठी है। यद्यपि मूल में थोड़ा सत्य अवश्य है परन्तु वह भट्टभणन्त और चरण-चाटुकारिता की शाखा प्रशाखाओं के घटाटोप से इस प्रकार छोप लिया गया है कि सत्य का प्रकाश सर्वथा उसी में छिप गया है। तथ्य की कुल्हाड़ी से सारा झाड़-झंखाड़ साफ कर उस सत्य का स्वरूप प्रकट करना ही पड़ेगा।

स्पर्धा और द्वेष, मानव-मन की ऐसी दो प्रवृत्तियाँ हैं जिनकी आकृतिगत समानता प्रायः भ्रम उत्पन्न कर देती है। स्पर्धा के भाव को इसीलिए कभी-कभी द्वेष भाव समझ लिया जाता है। इस पर विचार नहीं किया जाता कि आकृति गत समानता होते हुए भी स्पर्द्धा और द्वेष की प्रकृति में गहरा अन्तर है। परन्तु आकृति तो सहज ही दिखाई दे जाती है, प्रकृति का ही पता बड़ी कठिनाई से चलता है। स्पर्द्धा का भाव श्रेयस्कर है, द्वेष का भाव अमंगलजनक। फिर भी न जाने किस भ्रमजाल में पड़कर हिन्दी-संसार के समक्ष आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और डा० श्यामसुन्दर दास की वैयक्तिक स्पर्द्धा 'सभा' 'सरस्वती' का संघर्ष सिद्ध की गई, उसे 'सभा' से द्विवेदी जी का झगड़ा करार दिया गया। इसे झगड़ा बताने वाले, इस झगड़े का प्रचार करने वाले कौन लोग थे, उनलोगों का इसमें क्या स्वार्थ था, इन सब बातों की छान-बीन तो किसी शोध छात्र का काम है, यहाँ तो इतना ही कहा जा सकता है कि यदि वास्तव में कोई झगड़ा था तो उस झगड़े के मूल में न कोई साहित्यिक समस्या थी और न कोई सैद्धान्तिक प्रश्न। केवल दो महापुरुषों के स्वाभिमान के पाषाण प्राचीर परस्पर टकरा गये थे। उससे कटु वचनों की कुछ चिनगारियाँ भी चिटक उठी थीं। पिशुनता के पंखे से कपट की हवा देकर उसकी लपट बढ़ाने का भी दुष्प्रयत्न किया गया था परन्तु परिणाम वही हुआ जैसा कि संस्कृत के किसी सूक्तिकार ने कहा है कि सज्जनों का क्रोध दुर्जनों के स्नेह के समान होता है अर्थात् पहले तो होता ही नहीं, होता भी है तो देर तक ठहरता नहीं, देर तक ठहर भी गया तो परिणाम में विपरीत फल देता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और डा० श्यामसुन्दर दास का पारस्परिक क्षोभ भी सज्जनों का सात्विक आक्रोश था। इसीलिए उसका परिणाम अमंगलजनक न होकर हिन्दी के लिए श्रेयस्कर ही हुआ।

आँखों देखा और कानों सुना सत्य है कि एक कमली पर दस साधु एक साथ लेट तक सकते हैं परन्तु एक ही सिंहासन पर दो राजा एक साथ बैठ भी नहीं सकते। दल के अन्तर्गत अनुयायियों की संख्या अनन्त रह सकती है परन्तु दलपति दल का नेता—का स्थान तो एक समय में एक ही आदमी ग्रहण कर सकता है। कुछ-कुछ ऐसी स्थिति आचार्य द्विवेदी जी और डा० श्यामसुन्दर दास जी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी थी ।

आचार्य द्विवेदी और डा० दास दोनों ही हिन्दी के तुल्यवल महारथी थे। दोनों का स्वाभिमान हिमालय के समानान्तर सिर ऊँचा किए खड़ा रहता था। दोनों की जीवन-गति एक ही सिद्धान्त-सरणि पर चलती थी। साहित्य-कानन के ये दोनों ही केसरी इस शेर के कायल थे कि—

'रहम पर गैर के जीना कैसा ?
ज़िन्दगी का यह क़रीना कैसा ?'

ऐसी स्थिति में उस समय दोनों न एक साथ सभा में रह सकते थे और न एक साथ 'सरस्वती' में ही। यही स्वाभाविक भी था। यदि इसके विपरीत कुछ हुआ होता तो वह अस्वाभाविक तो होता ही, अमनोवैज्ञानिक भी हो जाता।

सन् १९०० ई० में प्रयाग के इण्डियन प्रेस ने 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ किया था। इनके लिए सभा ने ही इण्डियन प्रेस के स्वामी को सहयोग और सहायता दी थी। उक्त प्रेस के स्वामी स्व० चिन्तामणि घोष के १३ जनवरी सन् १९०५ की तिथि वाले 'सभा' को प्रेषित पत्र में एक वाक्य है—'सरस्वती का जन्म सभा की सहायता से हुआ था।' यही नहीं 'सरस्वती' के प्रथम पृष्ठ पर यह भी छापा जाता था कि' काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित, 'सभा' ने ही 'सरस्वती' के लिए सम्पादक समिति संघटित किया था जिसके सदस्य थे सर्वश्री कार्तिक प्रसाद, किशोरी लाल गोस्वामी, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' राधाकृष्ण दास और श्यामसुन्दर दास।

यह स्वभाविक था कि काशी में बैठकर प्रयाग से प्रकाशित होने वाली पत्रिका के सम्पादन में अनेक कठिनाइयाँ आयें। यही हुआ भी और इसके लिये 'सम्पादक समिति' के स्थान पर सन् १९०३ ई० में 'सरस्वती' के सम्पादन के लिए आचार्य द्विवेदी जी बुलाये गये। इस व्यवस्था से डा० श्यामसुन्दर दास के 'अंह' को धक्का लगना भी स्वाभाविक ही था। बहु प्रचारित 'द्विवेदी-दास' संघर्ष का मूल और सर्वप्रथम कारण यही घटना थी। आनुषंगिक कारण अन्य भी हो सकते हैं जैसे अल्हड़ साहित्यकारों की विनोदी प्रकृति।

जहाँ तक अल्हड़ विनोदी प्रकृति का प्रश्न है वह दो कलाकारों, विद्वानों या कवियों को आपस में लड़ाकर उनकी प्रतिभा का चमत्कार देखना चाहती है। ऐसी विनोदी प्रकृति वालों का उद्देश्य साधु और निर्दोष हुआ करता है परन्तु उनकी कार्यविधि कभी-कभी अनर्थ की जननी भी बन जाती है। शमसुल उलमा मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने उर्दू के सुप्रसिद्ध मर्सियागो शायरों अनीस और दबीर के प्रसंग में लिखा है कि उस समय लखनऊ में एक मण्डली ऐसी भी थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दो गुणियों को लड़ाकर तमाशा देखा करती थी। यह मण्डली फिर मैदान में आई और एक दल अनीस का समर्थक बन कर 'अनीसिया' कहा गया और दूसरा दबीर का पक्षपाती दबीरिया।'

सौभाग्य या दुर्भाग्यवश उस समय 'अनीनिया दबीरिया' मण्डली जैसा एक गुट काशी में भी मौजूद था। इस गुट के सदस्यगण प्रायः तरुण, धनी, परम स्वतंत्र, न सिर पर कोई और यदि कहा जाय तो कुछ हद तक अल्हड़ अविवेकग्रस्त भी थे। नीति वागीशों का अभिमत यह है कि यौवन, धन, प्रभुत्व और अविवेक में प्रत्येक अकेले भी महा अनर्थकारी हो सकता है, फिर वहाँ क्या होगा जहाँ ये चारों तत्व एक साथ वर्त्तमान हों? इस प्रश्न का कि वहाँ क्या होगा उत्तर यही है कि होगा जो आचार्य द्विवेदी और आचार्य श्याम सुन्दर दास के पारस्परिक सम्बन्ध में हुआ।

डा० श्याम सुन्द्रर दास का ध्यान 'सरस्वती' से हट चुका था। उनका उर्वर मस्तिष्क हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए कोई नया साधन ढूँढने, कोई नयी योजना बनाने में व्यस्त था। रायकृष्ण दास के शब्दों में धीरे-धीरे सन् १९१० की ग्रीष्म ऋतु आई। श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अनुष्ठान आरम्भ किया। इस योजना ने हिन्दी जगत में एक अपूर्व उत्साह और उद्वेलन उत्पन्न कर दिया किन्तु साथ ही, जैसा सभी सदनुष्ठानों में होता है, एक और विरोधी भी खड़ा हो गया।'

राय साहब के ही शब्दों में उस विरोध की पद्धति यह रही कि चारों ने सोचा कि सम्मेलन के अवसर पर द्विवेदी जी काशी बुलाये जांय—'सभा' में वह आवेंगे ही नहीं और इस प्रकार सम्मेलन का मूर्तिमान विरोध हो जायगा।

वस्तुतः यह 'सम्मेलन' का नहीं श्यामसुन्दर दास जी के "मूर्तिमान विरोध" का आग्रह था जो इस प्रकार चरितार्थ किया गया कि द्विवेदी जी काशी आये परन्तु सम्मेलन के स्थल-नागरीप्रचारिणी सभा नहीं गये। विरोधियों की मनो-कामना पूरी हुई। उन्होंने यह सोचकर सन्तोष की सांस ली कि काशी में आकर भी द्विवेदी जी सम्मेलन में न जायँ, इससे बढ़कर कलंक की बात सम्मेलनवालों के लिये दूसरी नहीं हो सकती। और 'सम्मेलन' कोई दूसरे नहीं, स्वयं श्यामसुन्दर जी और 'यारो' को द्विवेदीजी द्वारा 'सम्मेलन' का वहिष्कार अभीष्ट नहीं था, श्यामसुन्दर दासजी का अपमान इष्ट था। यह इष्ट-सिद्धि आगे चलकर भी कब-कब और किस प्रकार से की गई यह किसी दूसरे लेख का विषय है। यहाँ तो इतना ही कहना यथेष्ठ होगा कि 'सभा' और 'सरस्वती' को 'पाली' बना कर आचार्य द्विवेदी और डा० दास को निरन्तर लड़ाते रहने का सपना जिन लोगों ने देखा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्ततः हाहाकारी निराशा ही उनके हाथ लगी। सं० १९७९-८०वि० में आचार्य द्विवेदी जी 'सभा' के अध्यक्ष और डा० श्यामसुन्दर दास उसके प्रधान मन्त्री रहे। 'इण्डियन प्रेस, द्वारा प्रकाशित किसी पाठ्य-पुस्तक की प्रतिद्वन्दिता में कहीं अन्यत्र से निकलने वाली पाठ्य-पुस्तकों की समालोचना आचार्य द्विवेदी जी और डा० दास सरस्वती में एक ही स्वर से करते रहे और डा० दास की कृतियां इण्डियन प्रेस से ही प्रकाशित होती रहीं।

इन तथ्यों के प्रकाश में स्पष्टतः देखा जा सकता है कि सम्भवतः हिन्दी जगत के नेतृत्व के प्रश्न पर आचार्य द्विवेदी और डा० दास में क्षणिक मतभेद हो गया था। फलतः थोड़ी देर के लिये दोनों ने परस्पर एक दूसरे की ओर से परम नरमी के साथ आँखें फेर ली थीं फिर भी बकौल शायर—

'तूने फेरी लाख नरमी से नजर,
दिल के आईने में बाल आ ही गया।'

इसी क्षुद्र 'बाल' को लोगों ने विकट 'बबाल' बना डाला और द्विवेदी जी की मृत्यु के बाद में उस बबाल को जिलाये रखने का प्रयत्न किया। काश ऐसा करने-वाले कैंची न होकर लेई हुये होते ! इसीलिये तो श्री किशोरी दास बाजपेयी के शब्दों में कहना पड़ता है कि 'यह हिन्दी—संसार है।'

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस का द्विवेदी अभिनन्दनांक

श्रीरत्नाकर पाण्डेय

समस्त हिन्दी भाषा भाषी विश्व ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की सत्तरवीं वर्षगांठ २ मई सन् १९३३ का अत्यन्त उत्फुल्ल वातावरण में आयोजित किया था। उस अवसर पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने आचार्य द्विवेदी जी को 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया' और प्रयाग में अभूतपूर्व द्विवेदी मेला का आयोजन हुआ था। उस अवसर पर हिन्दी और भारतीय साहित्य की विख्यात संस्थानों तथा पत्र पत्रिकाओं ने द्विवेदीजी के प्रति अपनी श्रद्धेय भावनाओं को अर्पित किया था। इस ऐतिहासिक अवसर पर हंस ने भी द्विवेदीजी को अपनी श्रद्धास्पद भावना अत्यन्त सीमित साधनों के होते हुए भी अभिनन्दनांक प्रकाशित कर निवेदित करने का यत्न किया। इस अभिनन्दनांक में हिन्दी के अनेक लेखकों और निर्माताओं का आन्तरिक निदर्शन सम्पादक को प्राप्त हुआ। युग प्रवर्तक साहित्यकार की सांस्कृतिक स्तुति के लिए यह विशेषांक प्रकाशित किया गया था। देश और समाज में अभिनन्दनीय साहित्य की व्यापक महत्ता उस समय तक स्वीकृत हो चुकी थी जब द्विवेदीजी की प्रेरणा और कर्मनिष्ठा से हिन्दी का प्रभावशाली उत्कर्ष दिनोंदिन शिखर पर प्रतिष्ठित हो रहा था।

'हंसवाणी' में प्रेमचन्द ने लिखा है', 'हम हिन्दीवालों पर द्विवेदीजी का बोझ लदा हुआ है। हम कुछ बोले तो कैसे ? हमारे लिए इन्होंने वह तपस्या की है जो हिन्दी साहित्य की दुनियां में बेजोड़ ही कही जायेगी। किसी ने हमारे लिए इतना नहीं किया जितना इन्होंने। ये हिन्दी के सरल सुन्दररूप के विधायक बने, हिन्दी साहित्य में विश्व साहित्य के उत्तमोत्तम उपकरणों का इन्होंने समावेश किया। दर्जनों कवि, लेखक और सम्पादक बनाये। जिसमें कुछ भी प्रतिभा देखी उसी को अपना लिया और उसके द्वारा मातृभाषा की सच्ची सेवा कराई। हिन्दी के लिए इन्होंने तन मन धन सब कुछ अर्पण कर दिया। हमारी उपस्थित उपलब्धि इन्हीं के त्याग का परिणाम है।' [१]

इस विशेषांक द्वारा हिंदी के लौह पुरुष द्विवेदी कों निष्ठा और समृद्धि का स्तवन अनेक विख्यात लेखकों की सजीव रचनाओं तथा भाव भीनी श्रद्धाञ्जलियों

१—हंस द्विवेदी अभिनन्दाङ्क हंसवाणी पृ० सं० १०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्भव हो सका था। इस अभिनन्दनाङ्क में कुल चौबीस रचनाएँ हैं। अनेक व्यक्तिपरक निबन्ध और कवितायें द्विवेदीजी के व्यक्तित्व से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं।

प्रकाशित रचनाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

पद्य—'आचार्य देव के चरणों' में, मैथिलीशरण गुप्त, निबन्ध—'संस्मरण नहीं श्रद्धापात्र', श्री देवीदत्त शुक्ल, २—'श्रद्धास्पद द्विवेदीजी'—श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे, ३—'आचार्य द्विवेदीजी,—श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, ४—'संस्मरण—श्री रूपनारायण पाण्डेय, ५—'साहित्यिक महापुरुष'—श्री रामकिशोर मालवीय, ६—'आचार्य द्विवेदीजी'—श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ७—'द्विवेदीजी का सौम्य वर्तावं'—श्री राहुल सांकृत्यायन, ८—श्री द्विवेदीजी के साथ डेढ़मास'—श्री नरदेव शास्त्री, ९—'एक प्रश्न और उसका उत्तर'—श्री श्रीनाथसिंह, १०—'पुष्पांजलि'—सदाशिव रघुनाथ भागवत, 'हंसवाणी'—प्रेमचन्द।

द्विवेदीजी के सम्पर्क में श्री मैथिली शरण गुप्त ने काव्याभ्यास की प्रेरणा पाई थी। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के माध्यम से गुप्तजी की पद्य गरिमा को उभारा और उन्हें राष्ट्रकवि बनने का श्रेयस अभ्यास कराया। गुप्तजी ने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक अपने को 'अबुधजन' मानकर द्विवेदीजी का वंदना करने में अत्यन्त गौरव का अनुभव किया है! जिस समय हिन्दी का विविध बुध समाज द्विवेदीजी का अनेक प्रकार से अभिनन्दन कर रहा था उसी समय गुप्तजी ने भी 'हंस' के इस अभिनन्दन के प्रथम पृष्ठ पर लिखा था—

"गंगा का अस्तित्व प्रथम भा गया निहारा,
श्रमज सलिल है किन्तु भगीरथ का यह सारा।
इसी भाँति सरस्वती की जो ध्रुव धारा,
उसके अर्थ समर्थ सभी कुछ तुमने वारा॥"[1]

इस पद्यमें द्विवेदीजी के विराटत्व का समर्थन हुआ है, परन्तु इस काव्य रचना का शिल्प प्रपद्यता के भार से अत्यन्त बोझिल प्रतीत होता है।

'सरस्वती' के स्व० सम्पादक श्री देवीदत्त द्वारा लिखित 'संस्मरण नहीं श्रद्धा-पात्र' नामक निबन्ध में द्विवेदीजी के निकट रहकर के उनके बहुमूल्य क्षणों की विशेष रूप से चर्चा की गई है। शुक्लजी ने द्विवेदीजी के समीप रहकर यह समझ लिया था कि महान व्यक्ति के निकट रहकर ही मनुष्य किस प्रकार देवता बन जाता है। द्विवेदीजी के उदात्त और आदर्श चरित्र की मंगलमयी प्रेरणा से लेखक ने व्यक्तिगत मनोजगत की अनेक उद्भावनायें इस निबन्ध में व्यक्त की हैं। शुक्लजी

१—'हंस' द्विवेदी अभिनन्दनांक, अप्रैल १९३३ पृष्ठ सं० २१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शब्दों में—"मुझे उनकी 'सरस्वती' जब पढ़ने को मिलती थी तो सबसे पहले मैं उनका ही लेख खोज कर पढ़ता था, उनका सब का सब एक-एक अक्षर तक पढ़ता था। मैं उन्हें अन्य पाठकों की भाँति हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ लेखक मानने में आनन्द की उपलब्धि भर कर लेता था। उनके विरुद्ध लिखे गये लेखों को भी ढूंढ़कर पढ़ता था। उनके विरोधियों के सम्बन्ध में कही गई कठोर बातों को भी सुनता था, पर इन सबका मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था।"[1]

वास्तव में द्विवेदीजी के अर्न्तजगत में सम्वेदना की नदी प्रवाहित रहती थी। कहा नहीं जा सकता कि द्विवेदी जी के दृढ़ आत्म विश्वास ने कितने लोगों को उनका पक्षपाती बना दिया था। शुक्ल जी के लेख में एक अनुयायी लेखक की विविध भावना और प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है।

इसी अभिनन्दनांक में स्व० लक्ष्मण नारायण गर्दे ने 'श्रद्धास्पद द्विवेदीजी' नामक निबन्ध लिखा है। 'सरस्वती' के माध्यम से द्विवेदीजी ने हिन्दी की सरस्वती की धारा को प्रवाहित किया था। 'सरस्वती' से अज्ञात और उपेक्षित अनेक लेखकों को हिन्दी में गौरवशाली प्रतिष्ठा तब तक नहीं मिली थी। इसलिये अन्य अनेक हिन्दी भाषाओं के प्रेमियों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर हिन्दी के रत्न-जटित सिंहासन पर द्विवेदी जी ने उन्हें बैठाना प्रारम्भ किया। उन्होंने निः स्वार्थ त्याग के कारण अपने जीवन में ही प्रतिष्ठा-सम्मान प्राप्त किया था। स्वर्गीय श्री गर्दे जी अहिन्दी प्रान्तीय होकर भी हिन्दी पत्रकारिता की शोभा थे। अपने प्रारम्भिक जीवन के एक संस्मरण के आधार पर उन्होंने द्विवेदी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कई संस्मरणों की अभिव्यक्ति की है, "सन् १९११-१२ में मैंने काशी से महात्मा टालस्टाय के लेख का अनुवाद 'सरस्वती' में शुद्ध करके छापने के लिये भेजा था। वह लेख उन्होंने लौटा दिया, पर मुझे उसका दुख नहीं हुआ, कारण लौटे हुए लेख में द्विवेदी जी के हाथ के वे अक्षर मुझे मिले जो अन्यथा नहीं मिल सकते थे। वह भाव मिला जो अन्यथा नहीं मिल सकता था। वे दर्शन मिले जो अन्यथा नहीं मिल सकते थे, यह बहुत बड़ा लेख था। द्विवेदीजी के हाथों का करेक्शन है। क्या सुन्दर करेक्शन है! तबीयत फड़क उठती है और उन्हीं के हाथों के अक्षर हैं। पर करेक्शन करते-करते दिमाग परेशान हो जाता है, क्योंकि टालस्टाय के अत्यन्त सूक्ष्म विचार और भाषा, ऐसे लेखक की जो अभी लेखक नहीं है, न जाने क्या समझकर लिख डाला है, वह करेक्शन देख कर मुझे प्रसन्नता हुई। मुझे उसे देख कर मजेदारी भी आ गयी और फिर लेख के ऊपर यह राय पढ़ी कि लेख समझ में नहीं आया इसलिये लौटा दिया जा रहा है। यह राय क्या थी, उस अनुवाद

१ हंस द्विवेदी अभिनन्दनांक, अप्रैल १९३३, पृ० सं० ३-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इज्जत देना था। यह बड़ों की विनय है।" इस उदाहरण से सिद्ध है कि अपनी सम्पादन नीति से विलग असंतुलित सामग्री को द्विवेदी जी 'सरस्वती' के लिये कभी भी नहीं स्वीकार करते थे, फिर भी नवीन निर्माण के लिये उनका संकेत और श्रम स्तुत्य कहा जायगा। श्री गर्दे जी ने अपने इस निबन्ध में आचार्य जी के प्रसंशात्मक आशीर्वाद को अपनी प्रेरणा और राह दिखानेवाली दीप-ज्योति मानकर स्वकृतित्व का एक ज्वलंत दृष्टांत देने का अभ्यास किया है।

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ ने अपनी व्यंग प्रधान शैली में आचार्य द्विवेदी जी के सम्पादक, समालोचक, कवि, हिन्दी निर्माता आदि विविध स्वरूपों पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुये द्विवेदी युग के सम्बन्ध में कहा है कि सत्रह वर्षों की 'सरस्वती का इतिहास अनेक श्रेष्ठ लेखकों तथा कवियों के साहित्यिक जीवन और उनके विकास का युग है। वास्तव में द्विवेदी जी ने हिन्दी के लिये जो कुछ भी किया है उसके उपकार से जब तक हिन्दी भाषा है तब तक हिन्दी वाले उऋण नहीं हो सकते। सर्वसम्मत सत्य के आदर पर गौड़ जी ने सर्व श्री मैथिली शरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक, राय देवी प्रसाद पूर्ण, प्रभृति उच्च श्रेणी के कवियों को द्विवेदी जी के प्रोत्साहन और परिश्रम का प्रतिफल माना है। बड़े-बड़े आदर प्राप्त लेखक भी द्विवेदी जी की प्रेरणा, शैली और संशोधन की देन हैं यथा सर्व श्री पद्म सिंह शर्मा, कामता प्रसाद गुरु, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, महेन्द्र लाल गर्ग माधव राव सप्रे, हरिश्चन्द्र राम दिवेकर, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि।

सदैव आचार्य द्विवेदीजी प्रतिभाओं के उपासक थे। अनेक प्रान्तों में बिखरी हुई हिन्दी की प्रतिभाओं को देश और समाज के सामने लाकर उन्होंने खड़ा किया। सभी की उन्होंने अनेक प्रकार से बौद्धिक सहायता दी। सभी लोगों को उन्होंने बहुत ऊपर उठाया। अनेक महत्त्वाभिमानी लेखकों के दरम्यान द्विवेदी जी ने लेखक के क्षेत्र में नव निर्माण का कार्य सर्वथा अपने मौलिक और अनोखे आचार्यत्व के ढंग से किया। स्वर्गीय पं० रूपनारायण पाण्डेय ने 'संस्मरण' नामक रचना में सन् १९१३ में अपने जीवन के काशी धर्ममहामण्डल की स्मृति के आधार पर लिखा है कि काशी के भारत धर्म महामण्डल की मुख्य पत्रिका 'निगमागम चन्द्रिका' का संपादन कार्य उन दिनों उन्हीं को संभालना पड़ता था। काशी में पहली बार 'सरस्वती' में अपनी कविता छपवाने की ललक उनके मन में जगी। 'सरस्वती' में 'हे हंस' शीर्षक दो रचनायें लिखकर उन्होंने डरते-डरते

१ हंस द्विवेदी अभिनन्दनांक, अप्रैल १९३३, पृ० सं० ३-४

१—हंस अगस्त-सितम्बर, सन् १९३३, पृष्ठ ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी की सेवा में भेज दीं। द्विवेदी जी को दोनों रचनायें पसन्द आ गयीं। अतः उन्होंने एक अप्रसिद्ध नवीन लेखक को 'सरस्वती' में केवल स्थान ही नहीं दिया अपितु एक पत्र लिखकर 'सरस्वती' में कविता लिखने के लिये प्रोत्साहित किया। इतना ही नहीं द्विवेदीजी के संशोधनों से पं० रूपनारायण पाण्डेय ने काव्य रचना के निमित्त प्रेरणा और संस्कार भी हासिल किये।

श्रीयुत धर्मवीर एम० ए० ने 'लेखक निर्माता को भेंट' नामक सत्य घटना पर आधारित 'फीचर' में एक सम्पादक और एक जर्मनी से लौटे हुये इंजीनियर मित्र के वार्तालाप को प्रत्यक्ष करते हुये द्विवेदीजी की जन-प्रशस्ति की है। उनके कथनानुसार -- 'सम्पादक फिर धीरे से बोले, कालेज की लाईब्रेरी से मैं द्विवेदी जी द्वारा संपादित छः मास की फाइल ले आता था। उनमें से सब लेख ध्यान से पढ़ता था लेकिन इनमें से जो संपादकीय नोट और अनसाइंड लेख रहता, उनका मैं बाकायदा अध्ययन करता, शब्द निर्वाचन, वाक्य रचना और मुहावरों का मैं खास ख्याल रखता। इनमें मुझे जो शब्द नये मिलते उन्हें नोट बुक में नोट कर लेता था। लगातार छः मास तक मैं ऐसा करता रहा। इस बीच 'सरस्वती' की सभी फाइलों का मैंने विधि पूर्वक अध्ययन कर डाला। छः मास के बाद एक प्रकार से मुझे स्वयं पर विश्वास हो गया। तब सरस्वती में एक लेख लिखकर प्रकाशनार्थ भेजा।"

उस सम्पादक का वह पहला लेख ही 'सरस्वती' में स्वीकृत हुआ। द्विवेदीजी ने उस लेख में केवल एक सुधार किया था। 'मुहइया' की जगह मुद्रण के समय परिवर्तन कर दिया गया था।[1] इस लेख के सम्पादक को मनिआर्डर द्वारा आनरेरियम भी द्विवेदीजी ने भिजवाया। फिर कभी उक्त सम्पादक-लेखक ने हिन्दी में लिखने में कभी कोई दिक्कत नहीं महसूस की। उन्होंने द्विवेदीजी को गुरु और सम्पादक निर्माता मान लिया। इञ्जीनियर और संपादक के इस सत्य वार्तालाप को संस्मरण के नूतन, शिल्प में श्री भारती ने ढालकर गद्य के क्षेत्र में एक नवीनता को जन्म दिया है।

द्विवेदीजी के विशिष्ट प्रयत्नों से खड़ी बोली का काव्य सुगम और उद्बोधक हुआ। सार्दूल विक्रीडित, सुगमधारा, मालिनी, शिखरिणी आदि छन्दों का प्रचलन द्विवेदीजी के प्रयत्न से हिन्दी काव्य के क्षेत्र में अपनाया गया। मराठी के लेखक श्री सदाशिव रघुनाथ भागवत् ने द्विवेदीजी से प्राप्त एक पत्र का हवाला देते हुये शिखरिणी छन्द में 'पुष्पाञ्जलि' नाम की रचना की है—

१—हंस द्विवेदी अभिनन्दनांक अप्रैल १९३३, पृ० सं० १३।
२—हंस द्विवेदी अभिनन्दनांक, अप्रैल १९३३, पृ० सं० १२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"निवासी यू० पी० तुम हमजनों के जनक हो,
विरागी होकर परम अनुरागी तुमहि हो।
द्विवेदीजी असि सकल सुख-राशि महर हो,
महाराष्ट्रियों की यह मधुर पुष्पांजलि गहो।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहन राय, गोखले और तिलक आदि ने सामाजिक सुधारों में जो परिवर्तन कार्य किया था, उससे कहीं अधिक सफलता नव युग के साहित्य को परिवर्तित और विकसित करने में आचार्य द्विवेदीजी ने पायी थी। अंग्रेजी साहित्य में जॉनसन ने अपनी भाषा की उन्नति के लिये जो कार्य किया था उससे भिन्न और अधिक मान्य परम्परा में 'युग भाषा' को स्थिर करके आचार्य द्विवेदी ने देश की अभिव्यक्ति शक्ति को प्रांजल बनाया और उच्चादर्श की ओर मोड़ा। शुद्ध हिन्दी भाषा लिखने और पढ़ने की सबसे अच्छी शिक्षा आचार्य द्विवेदी ने अपने प्रत्येक कार्य द्वारा दी है। फरवरी सन् १९३२ में श्रीज्योति प्रसाद 'निर्मल' ने प्रयाग में पहली बार द्विवेदीजी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया। उन्होंने द्विवेदी जी के उसी दर्शन प्रसंग को 'आचार्य द्विवेदी जी' नामक संस्मरण में लिपिबद्ध किया है। हिन्दी के अनेक लेखकों की कृतियों पर द्विवेदीजी द्वारा लिखित हलचल मचाने वाली जानकारियों की चर्चा इस लेख में है। द्विवेदी जी से एकाध प्रश्न करके श्री निर्मल ने उनकी मनोभावनाओं का स्पष्टीकरण उनके द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर लिखा है—"मैंने कहा पण्डितजी आजकल पूंजीपतियों का राज्य है, प्रकाशक और लेखक का बड़ा विचित्र रूप दिखाई पड़ रहा है।" आचार्य कुछ उत्तेजित होकर गरजते हुये गम्भीर स्वर में बोले—'जिनको एक मुट्ठी नाज पर बसर करना है, उसका पूंजीपति क्या कर सकते हैं? आपको यदि जीवित रहना है तो जो उचित हो उसे निर्भयता पूर्वक कहिए। यही मैंने नन्ददुलारे से भी कहा और आपसे भी कहता हूँ।"

द्विवेदीजी की हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में दृढ़ मान्यता थी कि भाषा ऐसी हो जो साधारण पढ़े-लिखे भी समझ लें, हिन्दी जिन विदेशी शब्दों को आसानी से ग्रहण कर सके उसे तुरन्त अपने में मिला लेना चाहिये। जिस समय हिन्दी के दिग्गज साहित्यकारों में भाषा के प्रश्न पर एक सैद्धान्तिक निर्णय नहीं हो पा रहा था, उस समय द्विवेदीजी पर कुछ लोगों ने भाषा को नष्ट करने का आरोप भी लगाया, परन्तु सत्य सबके सामने धीरे-धीरे आने लगा और द्विवेदी जी की सच्चाई और अडिगता हिन्दी भाषा में 'नवीन युग' बन कर अवतरित हुई। स्व० राहुल सांकृत्यायन ने 'द्विवेदी जी का सौम्य वर्ताव' नामक संस्मरण में १३-१४ दिसम्बर

१— 'हंस' द्विवेदी अभिनन्दनांक, अप्रैल १९३३, पृष्ठ संख्या ८७-८८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १६१४ मकर सक्रान्ति के समय प्रयाग में बीत रहे अपने समय की चर्चा करते हुए कहा है कि उन दिनों वे किसी ऐसे प्रबन्ध के लिये चिन्तित थे जिससे उनका निर्वाह होता रहे और अध्ययन भी चालू रहे। व्याख्यान भी उन्होंने कम नहीं सुना। लेकिन केवल छः रुपये उनकी जेब में जब रह गया, तब उन्हें अर्थ की चिन्ता ने आ घेरा। एक मित्र ने परामर्श दिया कि किसी प्रेस में प्रूफ संशोधन का कार्य उन्हें कर लेना चाहिए। उस समय राहुल जी केवल बीस वर्ष के नवयुवक थे। फिर भी उसी समय उर्दू मिडिल की डिग्री हासिल करके उन्होंने लघु सिद्धान्त कौमुदी के अनेक अध्यायों को कंठस्थ कर लिया था।

अपने मित्र के परामर्श पर विचार कर वे सीधे 'इण्डियन प्रेस' बिना किसी सिफारिश के पहुँचे। पता लगाते हुए उस कमरे में पहुँच गये जिसमें एक प्रौढ़ और वयस्क सज्जन बैठे थे। राहुल जी के शब्दों में "पास जाते ही उन्होंने बड़े कोमल स्वर से पूछा—'आप क्या चाहते हैं?' मुझे स्मरण नहीं कि उत्तर में मैंने क्या कहा, यह भी याद नहीं कि प्रूफ आदि की जानकारी के विषय में भी पूछा गया—हाँ अन्त में उन्होंने जो वाक्य कहा वह बहुत ही प्रिय था—'दो-तीन दिन पूर्व मैंने एक आदमी रख लिया, यदि आप पहले आये होते तो जरूर आपका ख्याल करता।' भाव यही था शब्द चाहे दूसरे रहे हों।' द्विवेदी जी के एक मिनट की मधुर व्यावहारिकता ने स्व० राहुल के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा का अमिट भाव उत्पन्न कर दिया। यद्यपि वे कभी इण्डियन प्रेस में कृतिकार्य नहीं हुये। द्विवेदी जी द्वारा छोटों के प्रति सरल वर्ताव करने की शिक्षा का आजन्म स्वर्गीय राहुल ने पालन किया।

आचार्य द्विवेदी जी राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के प्रतिष्ठित पुजारी थे। वे सन् १६०६ में श्री पद्मसिंह शर्मा के परामर्श से ज्वालापुर विद्यालय में प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से स्वास्थ्य सुधार के लिये गये। वहाँ लगभग डेढ़ मास तक द्विवेदी जी भी रहे। द्विवेदी जी अपने मस्तिष्क पर भार डालने वाले अनगिन कार्यों की अधिकता के कारण 'अनिद्रा' से पीड़ित थे। परन्तु ज्वालापुर विद्यालय में अस्वस्थ्य रहकर भी उन्होंने 'सरस्वती' का संपादन कार्य निष्ठापूर्वक अनवरत जारी रक्खा। श्री नरदेव शास्त्री ने 'द्विवेदी जी के साथ डेढ़ मास' नामक संस्मरण में यह सिद्ध किया है कि छोटे से छोटे और बड़े से बड़े लेखों को आद्योपान्त सावधानी से पढ़ना और उसको ठीक करना, प्रत्येक पत्र का उत्तर देना, रद्दी से रद्दी लेखों को अच्छा से अच्छा रंग रूप देना इसके अभिप्राय को स्थिर रखते हुए संपादित करना इन्हीं सब कामों में द्विवेदी जी का अधिकांश

१—'हंस' द्विवेदी अभिनन्दनांक, अप्रैल १६३३, पृ० संख्या ८३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय व्यतीत होता था। द्विवेदी जी हिन्दी और भारतीय साहित्य जगत के अद्वितीय सम्पादक थे। उन दिनों 'सरस्वती' के लिए अमेरिका से भी लेख आया करते थे। द्विवेदीजी अपने द्वार पर आये हुए रद्दी से रद्दी लेख का आदर करते थे और 'सरस्वती' में उसे पूर्णतः सम्पादित करके तब मुद्रित करने का आदेश देते थे। 'सरस्वती' के प्रारंभिक अंकों को पढ़कर लगता है कि आरम्भ से अन्त तक एक ही कलम से सारी रचनायें लिखी गयी हैं। द्विवेदी जी के समय में 'सरस्वती' की संपादन नीति और प्रणाली कभी किसी भी कारण से च्युत नहीं हुई। उन्होंने निकट मित्रों को भी अपनी संपादन नीति के कारण रुष्ट कर दिया था। श्रीपद्म सिंह शर्मा की 'सतसई संहार' नामक लेखमाला एक वर्ष तक सरस्वती के कार्यालय में पड़ी रही। वह नहीं छपी। द्विवेदी जी के उपरान्त जब श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी 'सरस्वती' के संपादक नियुक्त हुये तभी उस लेखोंको 'सरस्वती' में छपने का सौभाग्य प्राप्त हो सका था। बात यह थी कि नीरस लेखों की शैली में द्विवेदी जी परिवर्तन चाहते थे और शर्मा जी अपने लेख के एक अक्षर को भी इधर से उधर देखना पसन्द नहीं करते थे। अन्त तक हिन्दी के दो अडिग स्वाभिमानी निर्माता अपनी बातों पर दृढ़ रहे। श्री नरदेव शास्त्री ने द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की प्राञ्जलता और प्रतिदिन की उनकी कार्य करने की मुस्तैद प्रणाली के अनेक उदाहरण देकर अपने संस्मरण को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है।

वर्तमान युग की आवश्यकता को ध्यान में रख कर ही द्विवेदी जी ने हिन्दी का नवीन स्वरूप अपने आचार्यत्व के आदर्श से नियोजित किया था। हिन्दी का भविष्य सुदृढ़ और शास्वत बनाने के लिये युगनिर्माता और पथ प्रदर्शक का कार्य करने में वे सदैव सबसे आगे रहते थे। श्री श्रीनाथ सिंह ने 'एक प्रश्न और उसका उत्तर' नामक जिज्ञासात्मक तार्किकता की प्रशस्ति करते हुये उनके पूज्य व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सिद्ध किया है कि 'रामायण' के समान कोई मौलिक ग्रंथ हिन्दी में न लिखने पर भी द्विवेदीजी ने कभी भी कोई ऐसी रचना नहीं की जिसे लोग उनके न रहने पर भूल जाँय। द्विवेदी जी ने कभी इस बात की परवाह नहीं की कि जो कुछ भी वे लिखें वह अमरत्व-पद पर ही प्रतिष्ठित हो। उन्होंने वर्तमान के लिये जिस उपयोगी तत्त्व की आवश्यकता महसूस की उसके निर्माण में अपना जीवन लगा दिया। वास्तव में युग प्रवर्तक साहित्यकार के लिये यह आवश्यक भी है कि अपने युग की आवश्यकताओं को पहले वह समझ ले और उपयोगितावादी बुद्धि का सहारा लेकर उसे पूरा करने का प्रयत्न करे। भविष्य के लोग अपनी फिक्र अपने आप कर लेते हैं। बीते दिनों की उपयोगिता और उपलब्धियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक और साहित्यिक चुनाव आवश्यकतानुसार भविष्य के लोग कर लेते हैं। द्विवेदीजी ने वर्तमान काव्य की आवश्यकता को समझ कर ही कभी भी कालिदास के मेघदूत अथवा तुलसीदास के रामचरित् मानस जैसी अमर कृति का निर्माण करने का साहस नहीं किया। उनकी एकमात्र धारणा थी कि वर्तमान समय के लिये उन कृतियों का स्थायी महत्व होकर भी सबसे अधिक आवश्यकता खड़ी बोली के परिष्कार और संस्कार की है। वे भाषा के आचार्य थे, परन्तु वे भाषाचार्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की एकरूपता साहित्य में स्थिर कर सके इसीलिये द्विवेदी जी को लोगों ने साहित्य का भी आचार्य घोषित किया।

इस विशेषांक से महत्वपूर्ण सामग्री द्विवेदी जी के सम्बन्ध में श्री शिवपूजन सहाय ने धारावाहिक रूप से 'हंस' के तीन आगामी अंकों में लिखी है। उसके सम्बन्ध में एक निवेदन आवश्यक है। श्री शिवपूजन सहाय की आज तक प्राप्त समस्त, संकलन, रचनावली और उनपर २० अगस्त सन् '६४ तक प्रकाशित समस्त विशेषांकों में भी इस धारावाहिक निबन्ध का नाम तक कहीं भी देखने को नहीं मिला है, "श्री शिवपूजन सहाय ने सभा के प्रधानमंत्री से द्विवेदी जी के अभिनन्दनार्थ एक सुन्दर ग्रन्थ निकालने का अनुरोध सन् १९३२ में किया। इसी वर्ष द्विवेदीजी सत्तरहवें वर्ष में पदार्पण कर रहे थे।"[१]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपना संकलित ग्रंथ भण्डार काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सुरक्षित रखने के लिये प्रदान कर दिया था। द्विवेदीजी द्वारा प्रदत्त सभा के ग्रन्थों के अतिरिक्त बहुमूल्य सामग्रियों के कई बण्डल हैं। सभा की दस बड़ी आलमारियाँ इन सामग्रियों से कस कर भरी हुई हैं। २ मई सन् १९३३ की शाम को सभा के पिता डा० श्यामसुन्दर दास की अध्यक्षता में सभा ने द्विवेदी जी के सम्मान में ऐतिहासिक समारोह करके उन्हें अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया था। उस अभिनन्दन ग्रंथ के प्रेरक और श्रमकर्मी के रूप में शिवजी ने बड़ा योगदान दिया था। उसी समय सभा के संस्थापक डा० श्यामसुन्दर दास ने द्विवेदी जी को एक पत्र लिखकर उनके द्वारा प्रदत्त समस्त सामग्रियों के अवलोकन के लिये आदेश प्राप्त कर लिया। उस समय सभा के प्रधानमन्त्री राय कृष्णदास ने संग्रहालय में कार्य करने की अनुमति श्री शिवपूजन सहाय को दी थी। द्विवेदी जी द्वारा सुरक्षित 'सरस्वती' की प्रेस कापी, चिट्ठियाँ और कतरनों से सिर्फ एक दर्जन बण्डल के आधार पर जो तथ्य द्विवेदीजी के विराटत्व के सम्बन्ध में प्राप्त हुये थे उनमें शिव जी ने अपनी दृष्टि गड़ा गड़ा कर इस लेख को 'हंस' के तीन अंकों में धारावाहिक

१ — द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ भूमिका पं० रामनारायण मिश्र (सभापति का वक्तव्य) पृ० सं० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से लिखा है। शिवजी ने संग्रहालय के सम्बन्ध में यह लेख द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ के लिये लिखा था, वह किसी कारण से न छप सका। यह वही लेख है। सरसरी निगाह से वे जिन बण्डलों को देख सके और उनसे जो सदुपयोगी नोट ले सके उनका सिलसिलेवार कथन 'हंस' के मई, जून, जुलाई १९६३ के तीन अंकों में 'आचार्य द्विवेदी जी' नामक निबन्ध में प्रकाशित है।

'अभिनन्दन ग्रंथ' में काम करते समय शिवजी ने द्विवेदी जी द्वारा रचित समस्त कृतियों की नामावली को श्री देवीशंकर शुक्ल भूतपूर्व सरस्वती सम्पादक) की सहायता से तैयार किया था। अभिनन्दन ग्रंथ में द्विवेदी जी के सम्बन्ध में जो लेख श्री यज्ञदत्त शुक्ल ने लिखा है, उसमें भी द्विवेदीजी की कृतियों का एक विवरण है। उस मुद्रित सामग्री को मुद्रण में जाने के पूर्व श्री शिवजी ने अपनी अनेक प्रत्यक्ष जानकारियों के आधार पर पूर्ण किया था और उसे द्विवेदी जी के पास भेज कर यत्र-तत्र उनसे संशोधन भी कराया था। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी की शायद ही ऐसी कोई पुस्तकाकार या महत्वपूर्ण कृति हो जो इस नामावली में छुट गई हो। द्विवेदीजी की सबसे प्रामाणिक पुस्तक नामावली की सूचना जब तक कोई अन्य सामग्रा प्राप्त नहीं हो जाती इसे ही मानना पड़ेगा।

एक दूसरे बंडल में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बन्धित द्विवेदी जी के पत्र और कागजात हैं।

हिन्दी व्याकरण में सटाऊ और हटाऊ विभक्ति का सैद्धांतिक वाद—विवाद सन् १९०९ से कई पत्रों में उठाया गया। द्विवेदी जी के संग्रहालय में इस सैद्धांतिक झगड़े से सम्बन्धित वेंकटेश्वर समाचार, अभ्युदय, भारत-जीवन, भारत-मित्र, हितवार्ता आदि पत्रों के सन् १९०९ के समस्त अङ्क सुरक्षित हैं। इन संग्रहीत विभिन्न पत्रों में सर्वश्री सत्यानन्द जोशी, अमृतलाल चक्रवर्ती, तथा अन्य कई विद्वानों की विभक्ति सम्बन्धी तार्किक विचारधारा लिपिबद्ध हुई है। द्विवेदी जी विभक्ति को विलग करके लिखने के पक्षपाती थे। उनके समर्थकों में सर्वश्री भगवान दास हालना, रामचन्द्र शुक्ल एवं लाला भगवान दीन थे। सटाऊ लिपि के पक्ष में सर्व श्री पं० गोविन्द नारायण मिश्र, अमृतलाल चक्रवर्ती, अम्बिका प्रसाद बाजपेयी तथा जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि थे। 'हितवार्ता' में प्रकाशित सभी लेख श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है। उन्होंने शुक्ल जी, लाला जी एवं हालना जी के लिपि-सिद्धान्त का विद्वतापूर्वक सहज शैली में खण्डन किया है और अपने पक्ष के समर्थन में 'हितवार्ता' के सम्पादकीय मन्तव्यों का उपयोग करने में भी नहीं चूके हैं। 'भारतमित्र' में श्री अमृतलाल चक्रवर्ती ने अपने सम्पादकीय वक्तव्य में विभक्ति सम्मेलन का प्रस्ताव पेश किया है। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र के सात अगस्त १९०९ के अङ्क में श्री अम्बिका दत्त व्यास के एक पोस्टकार्ड का ब्लाक छपा है। जिसमें उन्होंने सटाऊ विभक्ति का प्रयोग किया है। ३१ अगस्त, १९०९, के 'भारतमित्र' में मिर्जापुर निवासी श्री बदरीनाथ शर्मा ने व्यास जी के पोस्टकार्ड का खण्डन किया है। अभ्युदय में २३ और ३० जुलाई तथा छः अगस्त तीन अंकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अत्यंत युक्तिपूर्ण और संग्रहणीय लेख धारावाहिक रूप से छपा है और सितम्बर के तीन अंकों में 'किसी साप्ताहिक' में श्री भगवानदास हालना का भी धारावाहिक लेख छापा गया है। पं० गोविन्द नारायण मिश्र की सटाऊ लिपि के तर्कों पर इस लेख की उक्तियाँ हृदयग्राही कही जा सकती हैं। 'वैंकटेश्वर समाचार' के सग्रंहीत अनेक अङ्कों में पक्ष-विपक्ष में कई लेखकों ने लिखा है। इन विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों की अनेक प्रवृत्तियों में व्यक्तिगत आक्षेप की मात्रा भयंकर होकर भी अपवित्र नहीं है। पण्डितों का शास्त्रार्थ और युग का साहित्यक वायुमण्डल दोनों मिलकर आधुनिक हिन्दी साहित्य की अनेक सरस और कहानियाँ भी अपने में समेटे हुए हैं। कहा जा सकता है कि हिन्दी में तुलनात्मक समीक्षा का प्रारम्भिक स्वरूप इन्हीं लेखों के माध्यम से पहली बार साकार हो सका। द्विवेदी जी के निबन्धों में हिन्दी के प्रति अत्यन्त अनुराग तो छिपा ही है, भाषा की परिष्कृत सजीवता के पक्षपाती होने के कारण उनके द्वारा समर्थित विलग लिखने की मान्यता आज हिन्दी में प्रमुख रूप से प्रतिष्ठा पा सकी है।

कठिन परिश्रम करके श्री शिवजी ने द्विवेदी जी द्वारा 'सरस्वती' के प्रारम्भिक अंकों की छान-बीन द्विवेदी संग्रहालय में किया है। उसका संक्षिप्त विवरण भी 'हंस' में प्रकाशित हुआ था। सन् १९०३ से ही द्विवेदी जी 'सरस्वती' के संपादक हो गए थे। 'विविध विषय' शीषंक से स्वयं वे सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखा करते थे। जनवरी १९०३ की 'सरस्वती' में उनके द्वारा लिखे गए सम्पादकीय टिप्पणियों की प्रारम्भिक शब्दावलियाँ नीचे दी जा रही हैं।

जिन्होंने बाल्यकाल से अपनी मातृभाषा हिन्दी में अनुराग प्रगट किया, जिन के उत्साह और अश्रांत श्रम से नागरी प्रचारणी सभा (काशी) की इतनी उन्नति हुई, हिन्दी की दशा को सुधारने के लिए जिनके उद्योग को देखकर सहस्त्रशः साधुवाद दिए बिना नहीं रहा जाता, जिन्होंने विगत दो वर्षों में इस पत्रिका के सम्पादन कार्य को बड़ी ही योग्यता से निवाहा, उन विद्वान बाबू श्यामसुन्दर दास के चित्र को, इस वर्ष (सरस्वती के) आदि में प्रकाशित करके सरस्वती अपनी कृतज्ञता प्रगट करती है। इस टिप्पणी के बाईं ओर बाबू श्यामसुन्दर दास का भव्य रंगीन चित्र मुद्रित हुआ है जिसके नीचे सुप्रसिद्ध पद्य लिखा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मातृभाषा के प्रचारक, विमल बी० ए० पास,
सौम्य, शील निधान बाबू श्यामसुन्दर दास ॥"[1]

सन् १९०३ की 'सरस्वती' के समस्त अंकों को द्विवेदी जी ने जितने कठिन परिश्रम से सम्पादित किया है और जितनी तन्मयता से लेखों का परिष्कार किया है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य सम्पादन कला का इतिहास 'सरस्वती' से प्रारम्भ होता है। इस साल के अंकों में द्विवेदी जी की विरचित अनेक रचनायें भी हैं। विविध विषयों से सम्बन्धित अदभुत् विषयक लेख ९ आख्यायिकायें,२ कवितायें ४ जीवन चरित्र,१५ स्फुट विषय, १३ विज्ञान-विषय, १३ साहित्य विषय, ५ तथा कार्टूनों के नीचे ९ परिचयात्मक पद्य भी हैं। इन पद्यों की रचना कवि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखी है। कवि के रूप में भी द्विवेदी जी का आचार्यत्व अलग नहीं हो पाया है। यही द्विवेदी जी द्वारा लिखित कोर्टून के शीर्षकों की विशेषता मानी जायगी। द्विवेदी जी के कठोर श्रम और सम्पादन नैपुण्य का अनुमान इसी से आसानी से लगाया जा सकता है कि सन् १९०३ की सरस्वती के कई अङ्कों के लेखक सर्वश्री राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास श्रीधर पाठक, राय देवी प्रसाद पूर्ण, बाबू श्याम सुन्दर दास, कन्हैयालाल पोद्दार, काशी प्रसाद जायसवाल और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति युग के महान साहित्य निर्माता हैं। परन्तु इनमें से सभी लेखकों की मूल पाण्डुलिपि में द्विवेदी जी ने अपनी बारीक पेंसिल से न जाने कितने सुधार और परिष्कार किए हैं। उन लेखकों की रचनाओं को द्विवेदी जी ने 'युग वाणी' के रूप में 'सरस्वती' के क्रोड़ में संवारा और दुलारा है। द्विवेदी जी ने सभी लेखकों की रचनाओं को अपने सम्पादन नीति के मार्ग पर किसी न किसी प्रकार से चलाने में बेजोड़ सफलता प्राप्त की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की एक मात्र प्रसिद्धि पहली कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा श्री काशी प्रसाद जायसवाल की एक मात्र कविता 'स्वर्ण' सितम्बर, १९०३ की 'सरस्वती' की रचनात्तमक निधि है। सन् १९०३ में ही मुग्ध कर देने वाली कहानी 'स्वर्ग की झलक' निकली है। जहाँ 'बंग-महिला' की दुलाईवाली कहानी के उल्लेख का प्रश्न है वह सर्व विदित है। परन्तु 'स्वर्ग की झलक' में श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के शब्दों में कथा की वही कला विद्यमान है जिसके लिए प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखक एन्डर्सन विख्यात है। बंग-महिला की एक रचना 'चन्द्रदेव' से मेरा निवेदन शीर्षक से प्रकाशित हुई है। उसमें निबन्ध कला की कमनीय छटा मुक्त रूप में बिखरी हुई है। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी साहित्य में और उर्दू भाषा में कहानियाँ लिखने के पूर्व बहुत सी बंगला की

१—सरस्वती जनवरी १९०३ -पृ० स० १ चित्र के बायें शीर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम और अति प्रचलित कहानियों के अनुवाद के माध्यम से हिन्दी के दुर्ग में प्रवेश पाया है। उन अनुवादों में धनपत रायकी श्रमशील नवयुवकता की स्पष्ट झलक है। इस प्रकार यदि सन् १९०३ से १९११ तक की सरस्वती की मूल प्रतियों में द्विवेदी जी के श्रम को देखा जाय तो मान लेना पड़ता है कि एकमात्र 'सरस्वती' के कारण द्विवेदी जी ने जो कुछ हिन्दी साहित्य को दिया उसी पथ पर हिन्दी साहित्य आज बहक कर भी चल रहा है।

अनेक लेखों को उन्होंने स्वयं अपने हाथ से पूरा का पूरा दूसरी बार लिख डाला है। कई लेखों के आधे अंश का इतना पर्याप्त संशोधन किया है कि उन लेखों के अक्षरों से अधिक अक्षर उस पृष्ठ पर द्विवेदी जी के पाण्डित्य और सम्पादन का द्योतन करते है। शेष आधे लेख को उन्होंने पूरी तरह अलग से लिखकर जोड़ दिया है। एक लेख कैथी लिपि में लिखा हुआ इस बंडल में है। उस लेख में नागरी लिपि में कांट-छांट करके रचना को सुघर सरस द्विवेदी जी ने बना दिया है। कई विदेशी लेखकोंकी सरस्वती में प्रकाशित होने वाली रचनाओं का भी द्विवेदी जी ने यथेष्ट परिमार्जन किया है। 'सभा' और सम्मेलन के अनेक सभापतियों और अखिल भारतीय नेताओं के बहुत से निबन्धों को द्विवेदी जी ने संशोधित और संपादित किया है। अनेक को उन्होंने प्रकाश में लाकर उनका गौरव बढ़ाया है। हिन्दी के निर्माण, सुधार, और श्रृङ्गार में उनका अथक श्रम इन लेखों के रूप में इस बंडल की अनेक प्रतिलिपियों में साक्षी बनकर सुरक्षित हैं। अनेक गढ़ी हुई रचनाओं को परिष्कृत भावनाओं का नमूना बनाना उनके लिए बायें हाथ का खेल था। अनेक कविताओं में वास्तव में कवि का एक शब्द भी नहीं है। पूरी की पूरी कविता को संशोधन करके द्विवेदी जी ने उसे एकदम नई दीप्ति दे दी है और इस रचना के नीचे उसी कवि महोदय का नाम रहने दिया है। अनेक प्रकाण्ड पंडितों के भेजे गये 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ सुभाषित श्लोकों का अनुवाद अधिक सरस रंग से उन्होंने किया है। उनके संशोधनों में आचार्यत्व का कल्पनीय मनोयोग प्रत्यक्ष झलक उठता है। सन् १९०५ में प्रकाशित 'सरस्वती' की एक कविता में संशोधन करते हुये द्विवेदी जी ने लिखा है "   "।

क्या सचमुच द्विवेदी जी के प्रारम्भिक काल की कविता में उदात्त तत्व की बहुत कमी थी? यदि यह मान्यता सत्य है तो सरस्वती में प्रकाशित प्रारम्भिक कविताओं से हिन्दी काव्य के संस्कार में जो योग दिया गया है, उसी हिन्दी के विविध वादोंको मूल मानना होगा। अनेक लेखों में सुधार की तिथि भी द्विवेदी जी ने दे दी है। जुलाई १९०५ की 'सरस्वती' में एक लेख 'पुस्तक-परीक्षा' सम्बन्धी

१ – सरस्वती हीरक जयंती ग्रंथ-सरस्वती के साठ वर्ष पृ० स० ३०-३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस लेख में 'विहार बन्धु' के संपादक श्री केशवराम भट्ट लिखित हिन्दी व्याकरण की समालोचना की चर्चा है। पुस्तक के परिचय वाक्य एकदम अलग हैं। द्विवेदी जी के संशोधन आज भी काली स्याही में चमक रहे हैं। द्विवेदी जी ने उदाहरण सहित व्याकरण की अनेक व्युत्पत्तियों का यथा 'चाहिए' 'चाहिये, 'इये' 'इए' 'आईन' 'आयीन' आदि शब्दों के सतर्क संशोधन यथा 'तो' 'तब' 'अक्षय' 'अछय' 'इसीलिये' 'इसीलिए' आदि व्याकरणिक भेद के आधार पर अनेक तर्क-निष्ठ और ज्ञान की बातें शुद्ध और सहज हिन्दी के लिये द्विवेदी जी ने अनिवार्य समझ कर सरस्वती में उनका स्पष्ट नियमन किया। द्विवेदीजी ने जबतक 'सरस्वती' संपादित किया तब तक की समस्त लेखों की संशोधित कापियां सभा के द्विवेदी संग्रहालय के कई बण्डलों में सुरक्षित हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का संपादित इतिहास उन पन्नों में बिखरा हुआ है। हिन्दी संपादन कला की अभि-वृद्धि के लिये उनका वैज्ञानिक पद्धति पर अध्ययन आवश्यक है। हिन्दी के कई दर्जन विद्वान मिलकर इस श्रमशील कार्य में अपनी निपुणता और प्रतिभा का कई वर्षों तक योगदान करें तब द्विवेदी जी का युग प्रवर्तक रूप इतना महान लगेगा जितनी अब तक हिन्दी जगत ने कल्पना नहीं की है।

स्वर्गीय श्री शिवपूजन सहाय ने अत्यन्त श्रम के साथ द्विवेदी जी की उपयोगी सामग्रियों में से अनेक नवीन बातोंको एकत्रित करके वर्तमान हिन्दी निर्माताओं की आँखें खोलने का प्रयत्न किया है। हिन्दी के प्रख्यात लेखकों, पत्रकारों एवं ग्रन्थ-कारों के मध्य द्विवेदीजी के सत्तरहवें वर्ष में पदार्पण करने के सम्मान में २ मई १९६३ को समारोह करके काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया था और हिन्दी बोली के प्रतीक पुरुष का सम्मान किया था। उस अव-सर पर 'कर्मवीर' हिन्दी भाषियों को हिन्दी महत्ता से पूर्ण परिचित कराने के लिये पहली बार द्विवेदी जी को 'युगनिर्माता' घोषित किया था। मराठी पत्रिका 'महा-राष्ट्र' ने अपनी संपादकीय टिप्पणी में उन्हें मराठी के प्रकाण्ड निर्माता विष्णु शास्त्री चिपलुड़कर के समान महान मानते हुये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से निवेदन किया था कि द्विवेदी जी को डी० लिट० की सम्मानित उपाधि देकर विश्व विद्यालय हिंदी और अपने को गौरवान्वित करे। श्री संत निहाल सिंह के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी काशी हिन्दू विश्व विद्यालय द्विवेदी जी को डी० लिट० का सम्मान न दे सकी, लेकिन आज के हिंदी के अनेक अध्येता द्विवेदी जी पर डी० लिट० कर चुके हैं। द्विवेदीजी का साहित्यिक विराटत्व इतना व्यापक है कि उनके कार्य का मन से अध्ययन करने के बाद तीन दर्जन डी० लिट० पैदा किये जा सकते हैं। 'हंस' के अभिनन्दनांक में भी द्विवेदी जी के व्यक्तित्व से सम्बन्धित कुछ रचनायें प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई हैं। उस अवसर पर देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने द्विवेदीजी के व्यक्तित्व पर प्रभावशाली प्रकाश डालनेवाली रचनात्मक शक्ति की सश्रद्धा अभिव्यक्ति की थी। रचनात्मक उद्देश्य से परिष्कृत होकर अनेक विशेषांक भी निकाले गये। 'हंस' के इस 'द्विवेदी अभिनन्दनांक' में जिन प्रतिष्ठित लेखकों की रचनाओं का सहयोग आवश्यक था वह इस विशेषांक को नहीं उपलब्ध हो सका है। विशेषांक के अनेक लेखों की रचनायें द्विवेदीजी के व्यक्तित्व पर कम उन रचनाकारों के व्यक्तित्व तक ही सीमित रह गई है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व का विशेष परिचयात्मक गुण भले ही इस विशेषांक की कई रचनाओं में मुखर प्रतीत हो, परन्तु उनकी आलौकिक कर्मनिष्ठा पर किसी भी लेख से वह प्रकाश नहीं पड़ता जो द्विवेदी जी के रचनात्मक आचार्यत्व का प्राण था। 'अभिनन्दन' नामक प्रेमचन्द लिखित संपादकीय अवश्य द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के प्रति निष्ठा और श्रद्धा व्यक्त करनेवाला कहा जा सकता है। द्विवेदी जी की परिष्कारात्मक और लाक्षणिक प्रतिभा तथा निपुण कृतित्व का संग्रह अवश्य ही श्री शिव पूजन जी के लेख में संकेत रूप से व्यक्त हुआ है। सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, कृष्णदेव प्रसाद गौड़ आदि ने अपनी-अपनी श्रद्धांजलि में द्विवेदी जी के पथ प्रदर्शक व्यक्तित्व की व्यावहारिकता को ही व्यक्त किया है।

द्विवेदी जी आधुनिक हिन्दी की श्री और सम्पन्नता की अभिवृद्धि करने वाले उन्नायक तपस्वियों के सिरमौर थे। उनके सत्तरहवें वर्ष-पदार्पण के अवसर पर हिन्दी जगत् ने जीते जी पहली बार निर्माता व्यक्तित्व को पहचानने की दृष्टि पाई थी। 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' के प्रकाशन के उपरान्त ही हिन्दी के उज्ज्वल और प्रशस्थ पथ पर अभिनन्दन ग्रन्थों के प्रकाशन की लम्बी कतार लग गयी। सैकड़ों अभिनन्दन ग्रन्थ आज तक प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ के टक्कर का एक भी अभिनन्दन ग्रन्थ समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। 'हंस' के इस अभिनन्दनांक में प्रेमचन्द ने द्विवेदी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए ठीक ही कहा है। स्वभाव से अत्यन्त दृढ़-प्रतिज्ञ और हृदय से परम कोमल ये हमारे अपने हैं, इस बात को हिन्दी जगत् उसी दिन मान गया जब ये 'सरस्वती' में थे। उन दिनों ये हम सबको पिता की तरह शासित किया करते थे और माता की तरह प्यार। ये हमें हमारी गलतियों पर फटकारते थे। उन्हें प्रेम पूर्वक सुधार देते थे और हमारी सफलता पर हमें प्रेम का मोदक भी खिलाते थे। उन्होंने ठोक-ठोक कर हमें सुधार, पुचकार कर ठीक रास्ते पर चलाया और उत्साह दे-दे कर आगे बढ़ाया। इन सबके बदले आज हम उनका जितना भी सत्कार करें थोड़ा है। यदि आज वे बंगाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते तो बंगाल के विश्वविद्यालय उन्हें डी० लिट० के सम्मानात्मक पदवियों से उन्हें विभूषित करने में अपना गौरव समझते पर हमारे प्रान्त के और विश्वविद्यालयों की बात ही क्या ? हमारा अपना हिन्दू विश्वविद्यालय जिसके प्राण स्वयं मालवीय जी हैं कभी इस प्रकार का गौरव अनुभव करेगा या नहीं, कह नहीं सकते इतना ही कहने की इच्छा होती है कि इसे ऐसा करना चाहिए।"

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित द्विवेदी जी की प्रतिमा प्रतिष्ठापन पन्द्रह मई, ६४ की किरण वेला में सभा के प्रांगण में प्रतिष्ठित करते हुए छायावाद के ज्योति विहग श्री सुमित्रानन्दन पंत ने कहा था,—'आज द्विवेदीजी की प्रतिमा का अनावरण करते समय हम एक शती का अनावरण कर रहे हैं।' उनकी इस बात में कहीं शंका या संदेह नहीं है।

———

जनभारती के महत्वपूर्ण विशेषांक—

तुलसी विशेषांक		१·२५
भारतेन्दु विशेषांक		१·२५
मीरा विशेषांक		१.००
सुभद्रा ,,		२·००
आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल विशेषांक		२·००
रस विशेषांक (भाग १-२)		४.००
रवीन्द्र ,,		२.००
प्रसाद विशेषांक	(भाग १-२)	३·७५
निराला ,,	(,,)	४.२५
हिमालय अंक		३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार और विवेचन

डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी

'विचार और विवेचन' हिन्दी साहित्य के यशस्वी साहित्यकार डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी के २२ अनुसंधानपूर्ण लेखों का संग्रह है। इन निबन्धों में अधिकांश समय-समय पर विभिन्न-पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। विषय-विवेचन की दृष्टि से इनमें काफी वैभिन्य है। संग्रह के सम्पूर्ण निबन्धों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

प्रथम वर्ग में वे निबन्ध आते हैं जिनका विवेच्य विषय हिन्दी साहित्य के आदिकाल या अपभ्रंशकाल से सम्बद्ध है। अपभ्रंश : उल्लेख और काल, अपभ्रंश साहित्य, अवहट्ठ भाषा कौन थी ? पृथ्वीराज रासो, लोककथा के नायक आल्हा-ऊदल शीर्षक लेख इसी श्रेणी में आते हैं।

द्वितीय श्रेणी में वे निबन्ध आते हैं जिनका प्रतिपाद्य भक्तिकाल से लिया गया है। महाकवि सूरदास, मीरा की रसानुभूति, तुलसी की छन्द साधना आदि निबन्ध इसी श्रेणी में आते हैं।

तृतीय वर्ग में वे निबन्ध आते हैं जो विविध विषयों पर लिखे गये हैं—किन्तु उनका सम्बन्ध साहित्य से ही है यथा—हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा साहित्य, हिन्दी साहित्य में वीर रसात्मक काव्य, हिन्दी साहित्य में हास्यरस, हिन्दी काव्य में सौन्दर्य भावना, राष्ट्रभाषा हिन्दी का स्वरूप। ये निबन्ध काव्य एवं साहित्यशास्त्र से विशेष सम्बद्ध हैं।

उपर्युक्त विविध प्रकार के निबन्धों के अध्ययन से यह ज्ञान होता है कि डा० त्रिवेदी की पैठ बहुत गहरी है और दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म और स्पष्ट है। गूढ़ से गूढ़ और अछूते विषय को लेकर लेखक ने अत्यन्त कुशलता और गहराई के साथ उसपर विचार किया है और पाठकों के समक्ष एक नई दृष्टि भी रखी है। इससे साहित्य के विद्यार्थियों की रुचि हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल की ओर अधिक प्रवृत्त होगी और अध्ययन में सहायता भी प्राप्त होगी।

भाषा और शैली की दृष्टि से निबन्ध पूर्ण चुस्त और सुगठित हैं। ऐतिहासिक विषय को भी सरस और सुरुचिपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने में भाषा पूर्ण समर्थ है। विचार की स्पष्टता, गहन विवेचन और व्यापक दृष्टिकोण के साथ-साथ भाषा की सरलता और उपयुक्ता निबन्धों की श्रेष्ठता के द्योतक हैं। निबन्ध शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक और सरस है। अपने विचार की पुष्टि लेखक ने तर्कपूर्ण ढंग से की है। विषय और विषयी (Object of Subject) का सामञ्जस्य लेखक की निबन्धकला के चरमोत्कर्ष का परिचायक है। साहित्य के जिज्ञासु विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए यह संग्रह काफी उपादेय है। पुस्तक पठनीय और संग्रहनीय है।

लाल बहादुर सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोया हुआ सपना

राजेन्द्र अपस्थी
हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रा० लि०
दिल्ली ।

हिन्दी के पिछले कथा दर्शक के सफल कथाकार राजेन्द्र अवस्थी का 'सोया हुआ सपना' एक कलाकार और विवाहिता युवती के प्रेम और कसक भरे जीवन की मार्मिक गाथा है । दोनों एक दूसरे के जीवन में आते हैं, घुल मिल जाते हैं पर सदा दूर ही रहते हैं । मानसिक धरातल पर अत्यन्त निकट पहुँच कर भी सदा के लिए एक दूसरे से अलग हो जाते हैं ।

उपन्यास की कथा चित्रकार जतीन और विवाहिता युवती निगार के मिलन और वियोग की कहानी है जो व्यथा, कसक और करुणा से गिली है । जतीन एक सफल चित्रकार है । अनेक लड़कियां उससे या उसकी कला से प्रेम करती हैं जैसे वीणा, जरीना, निगार आदि । किन्तु जतीन के मन-मन्दिर की एक ही प्रतिमा है—निगार । विधि की विडम्बना कितनी विचित्र है । वह अपना सर्वस्व खोकर भी अन्त में खाली ही रहता हैं । 'निगार' अपने भाग्य का लिखा—समाज और व्यक्ति प्रदत्त यातनाओं को खोजने के लिए पुनः ससुराल लौट जाती है, आसमान से टूटा हुआ तारा जमीन पर आने के पहले ही फिर आसमान पर खींच लिया जाता है ।

कथानक के साथ ही कथा-शिल्प भी अत्यन्त संयत और बारीक है । कहीं कोई भी अंश अनावश्यक प्रतीत नहीं होता । जतीन का चरित्र समग्र रूप से एक सफल कलाकार के जीवन का परिचायक है । 'निगार' का चरित्र-चित्रण मार्मिकता और सम्वेदना से ओत-प्रोत है । अन्य पात्र सामान्य ढंग से चित्रित हैं । कथोपकथन और देशकाल के चित्रण में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । उपन्यास भाषा-शैली की दृष्टि से भी अपने लघु रूप में पूर्ण प्रभावोत्पादक है । उपन्यास का अन्त अत्यन्त हृदय द्रावक है । समग्र रूप में 'सोया हुआ सपना, जीवन की मार्मिक भित्ति पर आधारित एक मर्मस्पर्शी उपन्यास है ।

उषा तालवार

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा आदमी

कमलेश्वर
हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०
दिल्ली ।

हिन्दी कथा साहित्य के प्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर का 'तीसरा आदमी' कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त सफल उपन्यास है। इस लघु उपन्यास में व्यक्ति-मन के भावों एवं विचारों का सामाजिक मनोविज्ञान की भित्ति पर जैसा यथार्थ चिन्तन किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। स्त्री-पुरुष के बीच तीसरे व्यक्ति की स्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र इस कृति में अंकित किया गया है।

उपन्यास का नायक है एक मध्य वित्तीय परिवार का नवयुवक नरेश। चित्रा उसकी नव परिणीता है। दोनों में अत्यन्त सहज दाम्पत्य-प्रेम है किन्तु आर्थिक परिस्थिति अच्छी नहीं है। नरेश को दिल्ली जाना पड़ता है और वहीं पर पति-पत्नी मित्र के घर में रहते हैं। वह भी नवयुवक है नाम है, उसका सुमंत। सुमंत और चित्रा में काफी अच्छा सम्बन्ध हो जाता है। नरेश के मन में शंका पलने लगती है। सुमंत के साथ चित्रा के उदारतापूर्ण व्यवहार और निःसंकोच मेल-जोल ही शंका का मूल है। नरेश चित्रा को छोड़ कुछ काल के लिए भोपाल चला जाता है—परन्तु पुनः दोनों मिलते हैं। ऐसी घटनाएँ दो बार घटती हैं। नरेश के मनमें शंका बढ़ती ही जाती है। वह सदा चित्रा के आनन पर तीसरे व्यक्ति की छाया देखता है और इसी कारण उसका मन सदा उद्विग्न रहता है। खिन्नता के कारण जीवन दूभर हो गया है। अन्त में तीसरा व्यक्ति आत्महत्या कर पति-पत्नी के मार्ग से अलग हो जाता है। उपन्यास का अन्त अत्यन्त शीघ्रतापूर्ण हो जाता है।

उपन्यास में कथा के अलावा नारी- नर के मनोभावों का चित्रण अत्यन्त सहज और सजीव हुआ है। नरेश और चित्रा की मनःस्थिति के वर्णन में लेखक को पूरी सफलता मिली है। वातावरण का चित्रण काफी सफल हुआ है। मध्य वर्गीय जीवन का यह चित्र—"सीली हुई दीवारें······कोने से आती हुई राशन की गन्ध······सांसें गुंथ जातीं और हाथों से पके हुए चावल की गंध फूटने लगती।" कितना मार्मिक और सजीव बन पड़ा है। युगस्थिति और जन-मानस का सफल चित्रण करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है।

कथोपकथन, भाषा-शैली और उद्देश्य की दृष्टि से भी यह लघु उपन्यास पूर्ण सफल है। यद्यपि उपन्यास का अन्त तीसरे व्यक्ति की आत्महत्या के रूप में कुछ खटकता है फिर भी इसके अलावा लेखक के सामने और कोई उपाय भी न था। निस्सन्देह यह उपन्यास कथा-शिल्प और जन-मनोरंजन की दृष्टि से सफल है।

——

लाल बहादुर सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच और झूठ

श्री मन्मथनाथ गुप्त
हिन्द पॉकेटबुक्स प्रा० लि०
दिल्ली ।

श्री मन्मथनाथ गुप्त सम्प्रति एक लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यासकार हैं जिनकी कीर्ति पताका हिन्दी क्षेत्र में विशिष्ट रूप से लहरा और फहरा रही है। उनके उपन्यासों में यथार्थ की स्पष्ट झाँकी रहती है। यही यथार्थता इनके कथानक का प्राण है। आदर्श का दामन थामें यथार्थ का चित्रण करते हुए लेखक उदात्ततत्व से पाठकों को सुपरिचित कराने का प्रयास करते हैं। आलोच्य उपन्यास 'सच और झूठ' लेखक का एक ऐसा ही सामाजिक उपन्यास है जो प्रेम सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है। विद्वान लेखक ने मानव के अन्तर्जगत को स्पष्ट रूप से चित्रित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

गुप्तजी ने 'सच और झूठ' में मानव हृदय के पाप और पुण्य को अछूते दृष्टिकोण से परखा है। कथानक शुरू से अन्त तक रोचक और उत्सुकतावर्द्धक है। श्री प्रकाश की मन: स्थिति का, उनकी व्याकुलता का, उनके वाह्य और आन्तरिक जीवन का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन लेखक ने किया है। फिर उनकी पत्नी मृदुला की विकलता का चित्र है। वह पति को ही दोषी समझकर परकटे पक्षी के सदृश्य तड़फड़ा रही है। किन्तु जब वही दोष उसके एकलौते पुत्र प्रेम पर आ धमकता है तो उसका वात्सल्य भाव किस तरह अपने पुत्र को अपने आंचल में छिपाकर समाजिक तूफान से उसे बचा लेता है, यह देखते ही बनता है। प्रेम और उसकी पत्नी निर्मला का भी अन्तर्द्वन्द बड़ी ही विदग्धतापूर्ण मनोवैज्ञानिक शैली में दर्शाया गया है। साथ-साथ पूर्ण घटनाएँ उपन्यास को एक ही सांस में पढ़ने के लिए बाध्य कर देती हैं।

श्रीप्रकाश, मृदुला, प्रेम, निर्मला की चारित्रिक झाँकी भी मिल जाती है। वैज्ञानिक युग के घटनाशील वातावरण की भी एक स्पष्ट झलक है। भाषा सरल है और साथ ही वाक्य विन्यास भी सरल है। शैली में गति तो अवश्य है पर उस प्रवाह का अभाव है जो पहाड़ी निर्झरिणी में होता है। शब्द चयन में कहीं-कहीं जल्दीबाजी के कारण लेखक ने उपयुक्तता पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसलिए शैली में चपलता होने पर भी प्रवाह नहीं है।

किशोरीरमण तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू ने कहा

डा० केवल धीर

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली ।

'नेहरू ने कहा' डा० केवल धीर की एक जीवनोपयोगी रचना है । युग पुरुष, जन हृदय-सम्राट, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी, जन-नायक और भारतीय गणतंत्र के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू के जीवन की झाँकी इस पुस्तक में स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होती है । उनके विभिन्न विचारों और उनके जीवन की घटनाओं का यह बड़ा ही उपयोगी संकलन है ।

मानवता के लिये दिव्य संदेश देनेवाले इस देवदूत के विचारों को, उसके मानवीय दृष्टिकोण और वसुधैव कुटुम्बकम् के मंत्रों को बड़े ही रोचक, आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से लेख में संजोया गया है । नेहरू के ये विचार-पुष्प इस रचना वाटिका में इतने कलात्मक ढंग से सजाये गये हैं कि माली की रचना प्रक्रिया की प्रशंसा किए बिना रहा भी नहीं जाता । पं० नेहरू की विचार सुरभि दिग्दिगंत में प्रसारित करने वाली यह नन्हीं-सी फुलवारी निश्चित रूप से पाठकों के लिए दर्शनीय है ।

लेखक की भाषा सरल है । शैली प्रभावशाली और आकर्षक है । वाक्य विन्यास चुस्त है । भगवान बुद्ध, महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू के शांति-संदेश पर इस तरह की उपयोगी रचना गीता और रामायण-सा प्रभाव डालेगी । लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है ।

अवनीश पति त्रिपाठी

कसौटी पर—

	पृष्ठ
विचार और विवेचन	९४
सोया हुआ सपना	९५
तीसरा आदमी	९६
सच और झूठ	९७
नेहरू ने कहा	९८
ये मर्द ये औरतें	९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ये मर्द ये औरतें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंटो

प्रकाशक—हिन्द पॉकेट बुक्स

उर्दू कथाकारों में मंटो हा एक ऐसा कथाकार हुआ है जिसने व्यक्तिगत और सामाजिक हर समस्या को अपनी तराशी हुई कलम की नोंक से बिना किसी हिचकिचाहट के व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है। मंटो का कथाकार अपनी ज़िन्दादिली और बेखौफी के लिए आज भी सबसे आगे है। इस उपन्यास में प्रेम के नाम पर होने वाले अनगिन व्यापारों पर मंटो ने अच्छा हमला किया है। "नैतिकता गधे घोड़े खच्चर ऊँट इत्यादि हर जानदार और बेजान चीज पर चौकन्ने सवार की तरह चढ़ी बैठी है। साहित्य, इतिहास और हर मनुष्य की गर्दन पर नैतिकता बिठा दी गई है।" ऐसा लगता है कि जैसे नैतिकता चन्द लोगों की धरोहर है वो अपनी सुविधानुसार थोप रहें हैं। कुंठित संस्कारों की जन्मघूटी पिलाकर सारी पीढ़ी को भ्रमित करनेवाले नैतिक लोगों के आगे एक अमिट प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा कर दिया है, यह उपन्यास लिखकर! एक तरफ राजो की विवशता और सौदागर के चार लड़कों का नाजायज व्यवहार और दूसरी तरफ सईद की प्रेम संबंधी कुंठायें हैं। नारी संबंधी जड़ताओं का चित्र भी प्रस्तुत किया है।

राजो और सईद का चरित्र सुन्दर बन पड़ा है। दो व्यंग्य कहानियाँ टोबा-टेक सिंह और स्याह हाशिये उपन्यास के मूल्य हैं।

श्री हर्ष

Better selection in purchase

is

the *Need of the* day.

For

Durability & Quality

in

Hessian & Bags

ALWAYS RELY ON

PREMCHAND PRODUCTS

Manufacturers

KANORIA COMPANY LIMITED

9, Brabourne Road,

CALCUTTA.

Phone : 22-9121/26 (6 Lines.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76304

Phone : 22-7383

With Best Compliments :-

76304

Shiva Engineering Works.

2, India Exchange Place

CALCUTTA-I.

With best compliments of :-

THE MODERN PROCESSORS

43, Sir Hariram Goenka Street,

CALCUTTA-7.

Phone : Office 33-4533 Factory 66-2446

Chemical Division :- Textile Processing Chemicals & Series

Plastic Division :- Industrial Spares for Electricals, Pharma Ceuticals, Textile, Jute, Automobiles and other Industries.

Engineering Division :- Mechanical & Structural Engineers Founder of Heavy Machine Parts, Comprerision, Machines, Concrete Mixture parts etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

With Best Compliments :- Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

From : **KAMLA STORES**

145, Cotton Street,

CALCUTTA-1.

Gram : YADRAKHO Phone : { **Office : 33-5560** / **Resi : 33-5134**

Dealer in :-

Every Thing Electrical Mill Store Supplier

&

Also Distributor for :-

HINDUSTHAN WIRE PRODUCTS LTD. PATIALA

SUNRISE SPICES

. . . on the Shopping list

A packet of powdered "SUNRISE" spices is an item, never forgotten. No more grinding and toil. The food tastes better . . . . . . !

PRAKASH BROS.

74A, NALINI SETT RD., CALCUTTA-7.

Domain. Guru

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९६४ में बंगीय हिन्दी परिषद

के

दो महत्वपूर्ण प्रकाशन

●

प्रसाद जी की हीर-कजयन्ती पर

'प्रसाद'

प्रसाद-साहित्य पर समीक्षात्मक ग्रन्थ

मूल्य ८.५० पैसे

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

की

जन्म-शती के अवसर पर

'आचार्य द्विवेदी'

शतवार्षिकी-ग्रन्थ

मूल्य—८.००

श्री लालबहादुर सिंह द्वारा राय प्रिंटिंग प्रेस, ४२, पथरियाघाट स्ट्रीट, से मु
एवं बंगीय हिन्दी परिषद्, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२ से प्रकाशि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1960-2001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar